अंक : 66, भाग : 1, वर्ष : 2020-21
Vol. : 66, No. : 1, Year : 2020-21

ISSN:0554-9884
U.G.C. Care Listed Journal

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका

प्रज्ञा

PRAJÑĀ

भारत रत्न महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय जी का सन्देश

"जो लोग निष्काम भाव से काम नहीं करते– उन लोगों में परस्पर ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न हो जाते हैं और कार्य सफल नहीं होने पाता है। किन्तु जहाँ निष्काम भाव से कार्य होता है, वहाँ लोग दूसरे की सफलता देख कर प्रसन्न होते हैं, और एक दूसरे के प्रति प्रेम और सहानुभूति का भाव उत्पन्न होता है।"

"हिन्दू विश्वविद्यालय की संस्थापना विद्यार्थी के भीतर शारीरिक बल के साथ धर्म की ज्योति और ज्ञान का बल भरने के लिए हुई है, इसे सदैव स्मरण रखो।"

प्रज्ञा

PRAJÑĀ

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अंक 66, भाग 1

वर्ष 2020-21

Published
by
The Banaras Hindu University

PRAJÑĀ
(Journal of the Banaras Hindu University)
Vol. 66 No. 1, 2020-21
ISSN 0554-9884
U.G.C Care Listed Journal

© Banaras Hindu University
December, 2020

All correspondence should be addressed to
The Editor 'PRAJÑĀ'
BANARAS HINDU UNIVERSITY
VARANASI - 221 005

Printed at
B.H.U. Press
BANARAS HINDU UNIVERSITY

प्रज्ञा

मुख्य संरक्षक : प्रो. राकेश भटनागर
कुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संरक्षक मण्डल

प्रो. विजय कुमार शुक्ला
रेक्टर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रो. भगवन्त राय मित्तल
निदेशक, चिकित्सा विज्ञान संस्थान

प्रो. प्रमोद कुमार जैन
निदेशक, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (बी.एच.यू.)

प्रो. अनिल कुमार त्रिपाठी
निदेशक, विज्ञान संस्थान

प्रो. रमेश चन्द
निदेशक, कृषि विज्ञान संस्थान

प्रो. ए. एस. रघुबंशी
निदेशक, पर्यावरण एवं धारणीय विकास संस्थान

प्रो. सुजीत कुमार दुबे
निदेशक, प्रबन्ध शास्त्र संस्थान

प्रो. विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र 'विनय'
प्रमुख, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय

प्रो. इनु मेहता
प्राचार्या, महिला महाविद्यालय

प्रो. हीरा लाल प्रजापति
प्रमुख, दृश्य कला संकाय

प्रो. कौशल किशोर मिश्रा
प्रमुख, सामाजिक विज्ञान संकाय

प्रो. रूद्र प्रकाश राय
प्रमुख, विधि संकाय

प्रो. राजेश शाह
प्रमुख, संगीत एवं मंच कला संकाय

प्रो. ओम प्रकाश राय
प्रमुख, वाणिज्य संकाय

सम्पादक मण्डल

प्रो. जय शंकर झा
अंग्रेजी विभाग, कला संकाय

प्रो. सदाशिव कुमार द्विवेदी
संस्कृत विभाग, कला संकाय

प्रो. कमल नयन द्विवेदी
द्रव्यगुण विभाग, आयुर्वेद संकाय,
चिकित्सा विज्ञान संस्थान

प्रो. आनन्द प्रसाद मिश्र
भूगोल विभाग, विज्ञान संस्थान

प्रो. सुमन जैन
महिला महाविद्यालय

प्रो. मिथिलेश कुमार पाण्डेय
अंग्रेजी विभाग, कला संकाय

डॉ. शत्रुघ्न त्रिपाठी
ज्योतिष विभाग, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकाय

डॉ. ज्ञान प्रकाश मिश्र
पत्रकारिता एवं जनसम्प्रेषण विभाग, कला संकाय

सम्पादक
प्रमुख, कला संकाय
प्रो. विजय बहादुर सिंह

मुख्य सम्पादक (मानद)
प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय
इमेरिटस प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

कुलगीत

मधुर मनोहर अतीव सुन्दर, यह सर्वविद्या की राजधानी।
यह तीन लोकों से न्यारी काशी।
सुज्ञान धर्म और सत्यराशी ।।
बसी है गंङ्गा के रम्य तट पर, यह सर्वविद्या की राजधानी। मधुर० ।।
नये नहीं हैं ये ईंट पत्थर।
है विश्वकर्मा का कार्य सुन्दर ।।
रचे हैं विद्या के भव्य मन्दिर, यह सर्वसृष्टी की राजधानी। मधुर० ।।
यहाँ की है यह पवित्र शिक्षा।
कि सत्य पहले फिर आत्म-रक्षा ।।
बिके हरिश्चन्द्र थे यहीं पर, यह सत्यशिक्षा की राजधानी। मधुर० ।।
वह वेद ईश्वर की सत्यबानी।
बनें जिन्हें पढ़ के ब्रह्मज्ञानी ।।
थे व्यास जी ने रचे यहीं पर, यह ब्रह्म-विद्या की राजधानी। मधुर० ।।
वह मुक्तिपद को दिलानेवाले।
सुधर्मपथ पर चलाने वाले ।।
यहीं फले-फूले बुद्ध शंकर, यह राज-ऋषियों की राजधानी। मधुर० ।।
सुरम्य धाराएँ वरुणा अस्सी।
नहाए जिनमें कबीर तुलसी ।।
भला हो कविता का क्यों न आकर, यह वागविद्या की राजधानी। मधुर० ।।
विविध कला अर्थशास्त्र गायन।
गणित खनिज औषधि रसायन ।।
प्रतीचि-प्राची का मेल सुन्दर, यह विश्वविद्या की राजधानी। मधुर० ।।
यह मालवी की है देशभक्ति।
यह उनका साहस यह उनकी शक्ति ।।
प्रकट हुई है नवीन होकर, यह कर्मवीरों की राजधानी।
मधुर मनोहर अतीव सुन्दर, यह सर्वविद्या की राजधानी ।।

- डॉ. शान्ति स्वरूप भटनागर

★

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

भारतरत्न पं० मदन मोहन मालवीय जी

संस्थापक - काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आविर्भाव : वि.सं. 1918 पौषकृष्ण 8 (25.12.1861)
तिरोभाव : वि.सं. 2003 मार्गशीर्षकृष्ण (12.11.1946)

Kul-Geet

ENGLISH TRANSLATION

SO SWEET, SERENE, INFINITELY BEAUTIFUL,
THIS IS THE PRESIDING CENTRE OF ALL LEARNING.

RADIANT KASHI, WONDER OF THE THREE WORLDS
TREASURE-CHEST OF JNANA, DHARMA AND SATYA
NESTLING ON GANGA'S BANK, CENTRE FOR ALL DISCIPLINES.
(SO SWEET, SERENE, INFINITELY BEAUTIFULY ....)

NO RECENT WORK OF BRICK AND STONE
PRIMORDIAL DESIGN OF DIVINITY ALONE
MANSIONS OF VIDYA, CENTRE FOR ALL CREATION.
(SO SWEET, SERENE, INFINITELY BEAUTIFULY ....)

CLEAR HERE IS THE DOCTRINE PURE
TRUTH FIRST, THEN ONLY ONE'S SELF
HOME OF HARISHCHANDRA, TRUTH'S TESTING GROUND.
(SO SWEET, SERENE, INFINITELY BEAUTIFULY ....)

THE VOICE OF GOD IN VEDIC RECORD
CONSTANT INSPIRATION FOR SOUL-ACCORD
WORK-SHOP OF VEDA VYASA, CENTRE FOR BRAHMA VIDYA.
(SO SWEET, SERENE, INFINITELY BEAUTIFULY ....)

FIND HERE THE STEPS TO FREEDOM
TREAD HERE THE PATH OF DHARMA
FLAMING TRAIL BUDDHA'S AND SHANKARA'S CENTRE FOR PHILOSOPHER KINGS.
(SO SWEET, SERENE, INFINITELY BEAUTIFULY ....)

LIFE-GIVING WATERS OF VARUNA AND ASSI
SUSTENANCE OF KABIR AND TULSI
FOUNTAINHEAD OF ELOQUENT SPEECH AND POETRY.
(SO SWEET, SERENE, INFINITELY BEAUTIFULY ....)

MUSIC, ECONOMICS, OTHER ARTS SO MANY
MATHS, MINING, MEDICINE AND CHEMISTRY]
FRATERNAL FORUM OF EAST AND WEST, UNIVERSITY IN TRUEST SENSE.
(SO SWEET, SERENE, INFINITELY BEAUTIFULY ....)

PATRIOTISM OF MALAVIYAJI
HIS INTREPIDITY AND ENERGY
ALL IN YOUTHFUL MANIFESTATION,
CENTRE FOR MEN OF ACTION

SO SWEET, SERENE, INFINITELY BEAUTIFUL,
THIS IS THE PRESIDING CENTRE OF ALL LEARNING.

Composed by the Eminent Scientist* ***Prof. Shanti Swarupa Bhatanagar,* *Deptt. of Chemistry, B.H.U.*

प्रो. राकेश भटनागर
कुलपति
Prof. Rakesh Bhatnagar Ph.D.
FNA, FASc, FNASc
Vice-Chancellor

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
Banaras Hindu University
(Established by Parliament by Notification No. 225 of 1916)
Varanasi–221005 (INDIA)
Phone : 91-542-2368938, 2368339
Fax : 91-542-2369100, 2369951
E-mail : vc@bhu.ac.in
Website : www.bhu.ac.in

17 दिसम्बर 2020

शुभ-संदेश

भारत रत्न पूज्य महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी द्वारा संस्थापित विश्वप्रसिद्ध काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठित शोध पत्रिका ''प्रज्ञा'' के नवीनतम अंक- 66, भाग-1, वर्ष 2020-21 के प्रकाशन के अवसर पर मैं अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करता हूँ। यह पत्रिका विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की केयर लिस्ट में सम्मिलित है। यह त्रैभाषिक पत्रिका है, जिसमें हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषा में लिखे गये शोध प्रपत्र / लेख प्रकाशित होते है। सन् 1958 ई. से यह शोध पत्रिका निरन्तर प्रकाशित हो रही है और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की वैदुष्य परम्परा का सफल निर्वहन करती रही है। इसमें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अनेक विद्वानों के शोध प्रपत्र / लेख प्रकाशित होते हैं। आशा है गत अंकों की भाँति यह अंक भी प्रबुद्ध पाठकों में सहर्ष स्वीकार्य होगा।

मैं इस शोध पत्रिका के लेखन, संपादन एवं प्रकाशन से जुड़े समस्त लोगों को बधाई देता हूँ तथा पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(राकेश भटनागर)

सम्पादकीय

विश्वद्यिलय अनुदान आयोग नई दिल्ली की केयर लिस्ट में पंजीकृत प्रसिद्ध शोध-पत्रिका **'प्रज्ञा'** का वर्तमान अंक 66, भाग-1, वर्ष 2020-21 को पाठकों की सेवा में समर्पित करते हुए मुझे अत्यन्त संतोष एवं हर्ष का अनुभव हो रहा है। यह शोध पत्रिका विगत 62 वर्षों से निरन्तर प्रकाशित हो रही है। इस शोध पत्रिका में ज्ञान के विविध अनुशासनों से सम्बन्धित स्तरीय शोध प्रपत्र/लेख प्रकाशित होते हैं। **'प्रज्ञा'** जर्नल के अंक काशी हिंदू विश्वविद्यालय की वेबसाइट WWW.bhu.ac.in पर भी उपलब्ध हैं, जिसे देश-विदेश के पाठक आसानी से पढ़ सकते हैं। इस प्रसिद्ध शोध पत्रिका में प्राचीन शास्त्रों के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अनेक क्षेत्रों से सम्बन्धित शोध प्रपत्र/लेख प्रकाशित किये जाते हैं। इसमें महामना के विचारों, संकल्पों एवं सिद्धान्तों से अनुप्राणित अनेक लेख प्रकाशित होते हैं। वर्तमान कोविड 19 के प्रकोप के संदर्भ में भारतीय जीवन पद्धति एवं धार्मिक/आध्यात्मिक दृष्टिकोण की सार्थकता प्रमाणित हो रही है। भारतीय चिंतन-पद्धति में अनेक कल्याणकारी प्रावधान किये गये हैं, जिनसे विश्व की सम्पूर्ण मानवता का हित सम्पन्न होगा। इस संदर्भ में भारतीय आयुर्वेद एवं योग विज्ञान के महत्व को सम्पूर्ण विश्व स्वीकार कर रहा है। महामना मालवीय जी भारतीय चिंतन पद्धतियों की ऊर्जा एवं शक्ति से भलि-भाँति परिचित थे, अतएव प्राचीन भारतीय मूल्यों के जीवन्त एवं सार्थक तत्वों के संरक्षण एवं सम्बर्द्धन हेतु उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। उनके संकल्प का प्रतिफल है कि इस विश्वप्रसिद्ध महान विश्वविद्यालय में प्राची / प्रतिची का सुन्दर मेल दिखायी देता है।

'प्रज्ञा' जर्नल के प्रस्तुत अंक (अंक-66, भाग-1, वर्ष 2020-21) में कुल 52 (बावन) शोध प्रपत्र/लेख संकलित हैं। इस अंक में हिंदी भाषा में 32, संस्कृत भाषा में 7 एवं अंग्रेजी भाषा में 13 लेख प्रस्तुत किये गये हैं। प्रस्तुत अंक में हिंदी, संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के विविध पक्षों से सम्बन्धित अनेक लेख प्रकाशित किये गये हैं। इस अंक में प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, चित्रकला एवं संगीत शास्त्र, ज्योतिष एवं दर्शन शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीति विज्ञान, विधि शास्त्र, मीडिया एवं सांख्यिकी आदि ज्ञान के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित ज्ञानवर्धक अनेक लेख प्रकाशित किये गये हैं, जिससे प्रबुद्ध पाठक वर्गों को काफी लाभ मिलेगा, ऐसा मेरा दृढ़विश्वास है।

प्रस्तुत अंक के प्रकाशन के अवसर पर मैं सर्वप्रथम इस महान विश्वविद्यालय के आदरणीय कुलपति प्रो. राकेश भटनागर के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सकारात्मक सहयोग एवं उत्साहबर्धन से हमें पर्याप्त बल मिलता है। तदनन्तर कुलगुरू (रेक्टर) प्रो. विजय कुमार शुक्ल के प्रति हार्दिक कृतज्ञता करता हूँ। इसके बाद कुलसचिव डॉ. नीरज त्रिपाठी एवं वित्त अधिकारी श्री अभय ठाकुर को उनके सकारात्मक सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ। शैक्षणिक सहयोग देने हेतु इस अंक के विद्वान लेखकों को भी साधुवाद देता हूँ। **'प्रज्ञा'** के संरक्षण मण्डल एवं सम्पादक मण्डल के सभी सम्मानित सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। बी.एच.यू. प्रेस के प्रभारी प्रो. हीरालाल प्रजापति तथा उनके सहयोगियों के प्रति शुक्रिया अदा करता हूँ। अंत में **'प्रज्ञा'** कार्यालय के अपने सहयोगियों श्री जय प्रकाश एवं श्री अशोक कुमार को भी उनके सक्रिय सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ।

श्रीनिवास

(डॉ. श्रीनिवास पाण्डेय)
मुख्य सम्पादक (मानद), 'प्रज्ञा' जर्नल
इमरिटस प्रोफेसर एवं पूर्वाध्यक्ष हिन्दी विभाग
तथा पूर्व प्रमुख कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

विषय-सूची

●

आवश्यक सूचना : **''प्रज्ञा''** पत्रिका के इस अंक में छपे हुए सभी लेखों/शोध-प्रपत्रों में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक अथवा विश्वविद्यालय प्रशासन का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

शैली विज्ञान की कसौटी पर 'श्रीरामचरितमानस' का मूल्यांकन

*प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय**

शैली विज्ञान साहित्य-विवेचन की वस्तुनिष्ठ समीक्षा पद्धति है। इस पद्धति के केन्द्र में 'रचना' होती है। कवि या उसका सामाजिक एवं राजनैतिक परिवेश का उतना ही महत्व रहता है जितना की रचना में उसकी अभिव्यक्ति हुयी है। शैली विज्ञान की मान्यता है कि कोई साहित्यिक रचना वस्तुतः भाषा में ही अभिव्यक्त होती है, अतः उसका आरम्भ भी भाषा से होता है और अन्त भी भाषा में ही होता है। कोई भी रचनाकार अपनी संवदेना को उपयुक्त काव्य भाषा में व्यक्त करता है। इसके लिए वह सर्वाधिक उपयुक्त एवं सटीक शब्दों का चयन कर उन्हें सुनियोजित करता है। काव्य की रचना प्रक्रिया में कवि के मनोजगत में उसकी भाव/संवेदना के अनुकूल कई शब्द उभरते हैं। वह उन तमाम पर्यायवाची शब्दों में से उसे जो शब्द उसके भाव को सटीक ढंग से व्यक्त करने में सक्षम होता है, उसको ही वह चुनता है। आवश्यकता पड़ने पर वह भाषा की मानक रूप से भी बिचलन करता है। वह आवश्यकतानुसार भाषा की मानक व्याकरणिक व्यवस्था से अलग हट कर प्रयोग करता है, ताकि वह अपने भावों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त कर सके, इसलिए काव्य भाषा को अतार्किक भाषा भी कहा जाता है।

'शैली विज्ञान' भाषा विज्ञान की अनुप्रयुक्त शाखा है। भाषा विज्ञान में सामान्य भाषा एवं बोलियों का अध्ययन किया जाता है, जबकि शैली विज्ञान में साहित्यिक भाषा का विवेचन किया जाता है। सामान्य जीवन के व्यवहार क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली भाषा के विविध रूपों एवं विविध प्रयोगों को केन्द्र में रखकर भाषा विज्ञान सामान्य भाषा का तात्विक विवेचन करता है। शैली विज्ञान साहित्य में प्रयुक्त काव्य भाषा के सर्जनात्मक स्वरूप को उद्घाटित करता है। इस तथ्य का वैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण करना शैली विज्ञान का मूल लक्ष्य होता है। भाषायी उपादानों से निर्मित कोई साहित्यिक रचना कैसे विशिष्ट बनकर कर सहृदयों को झंकृत कर देती है? इन सभी तथ्यों का उद्घाटन शैली विज्ञान में भाषा के संघटक तत्वों के वैज्ञानिक विवेचन द्वारा स्पष्ट किया जाता है। इस प्रकार शैली विज्ञान की वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति पाठकों को सहजता से रचना के मर्म से अवगत कराती है। यह वैज्ञानिक पद्धति समीक्षक के पूर्वाग्रहों एवं व्यक्तिगत राग-द्वेष से मुक्त कर रचना के वास्तविक महत्व का मूल्यांकन कराती है। यह वस्तुनिष्ठ पद्धति रचना का निष्पक्ष मूल्यांकन कर उसके वास्तविक स्तर एवं महत्व को रेखांकित करती है। इन कारणों से साहित्य के विवेचन क्रम में शैली वैज्ञानिक पद्धति आज के वैज्ञानिक युग में अत्यन्त उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध हुयी है।

शैली वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति की मुख्य कसौटियाँ हैं-

(1) सोद्देश्य चयन कौशल
(2) साभिप्राय बिचलन
(3) सामानान्तरता

(1) <u>सोद्देश्य चयन कौशल</u>

इस कसौटी पर विश्व कवि तुलसीदास कृत 'श्रीरामचरितमानस' अत्यन्त उच्चकोटि का ग्रंथ सिद्ध होता है। गोस्वामी तुलसीदास का शब्द चयन अत्यन्त सटीक एवं विपुल अर्थगर्भी है। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द इतने अधिक उपयुक्त हैं कि उसके स्थान पर आप किसी अन्य शब्द को प्रयुक्त नहीं कर सकते। दूसरे शब्द के प्रयोग से सम्पूर्ण काव्यात्मक सौंदर्य नष्ट हो जाता है। महाकवि तुलसीदास के शब्द चयन कौशल की अद्वितीय विशेषता है कि सामान्य पाठक भी अपने अनुसार अर्थ ग्रहण कर लेता है और जब प्रबुद्ध पाठक उस शब्द के अर्थ गाम्भीर्य पर विचार करता है तब उस शब्द में अन्तर्निहित अर्थ के अनेक परतें परत दर परत खुलती जाती हैं, जिसे समझने पर प्रबुद्ध पाठक अत्यन्त चमत्कृत हो जाता है। इस कारण तुलसीदास का काव्य सामान्य जन के मर्म में लोकप्रिय हो जाता है और शिक्षित समाज एवं विद्वानों के बीच भी समादरणीय होता है। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मेरी कविता **'बुध विश्राम सकल जन रंजनि'** है। अर्थात सामान्य जनों के लिए बोध गम्य और विद्वानों के लिए एक चुनौती (विश्राम) भी है। कहने का आशय यह कि उनकी कविता सामान्य जन के लिए भी उपयोगी है और बड़े-बड़े विद्वानों के लिए भी विचारणीय एवं विवेचनीय है। महाकवि तुलसीदासस जी 'रामचरितमानस' के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालते हुए स्पष्ट रूप से कहते हैं-

''यह शुभ शंभु उमा सम्बादा। सुख संपादन समन विषादा
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा''।[1]

यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह ग्रंथ सामान्य जनों के लिए अनुरंजनकारी है और सज्जनों (प्रबुद्ध पाठकों) को भी अति प्रिय है। सामान्य जन एवं प्रबुद्ध (विशिष्ट) वर्ग दोनों को संतुष्ट करने की दृष्टि से तुलसीदास का काव्य अद्धितीय एवं बिलक्षण है। जन साहित्य (मासलिटरेचर) एवं शिष्ट साहित्य (क्लैसिकल लिटरेचर) का ऐसा मणिकाञ्चन संयोग अन्यत्र अत्यन्त दुर्लभ है।

महाकवि तुलसीदास एक तरफ यह कहते है कि **'कवित्त विवके एक नहिं मोरे, सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे'**, तो दूसरी तरफ यह भी कहते कि **'जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो**

* एमरिटॅस प्रोफेसर एवं मुख्य सम्पादक 'प्रज्ञा' जर्नल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

श्रम बादि बाल कवि करहीं' अर्थात जिस प्रबंध काव्य का आदर प्रबद्ध लोगों द्वारा न हो तो ऐसे काव्य की रचना कवि व्यर्थ में ही करता है। स्पष्ट है कि तुलसीदास उच्चकोटि के पाठकों के बीच में भी अपने काव्य को सम्मानपूर्वक प्रतिष्ठित कराना चाहते हैं। तुलसीदास विश्व के ऐसे विलक्षण कवि हैं जिन्हें गाँव का कम पढ़ा लिखा एवं अशिक्षित व्यक्ति भी समझ लेता है और बड़ा से बड़ा विद्वान जीवन भर अध्ययन करने के उपरान्त भी 'श्रीरामचरित मानस' के सम्पूर्ण मर्म को पूरी तरह समझ लेने का दावा नहीं कर सकता है। समाज के वृहत्तर वर्ग की रूचियों को ध्यान में रखना और उनके बीच सफलता एवं सम्मान पाना तुलसीदास के द्वारा ही सम्भव हुआ है। इसलिए उन्हें **'सुगम अगम कवि तुलसी'** कहा जाता है।

बालकाण्ड के आरम्भ में ही उन्होंने अपने काव्य का परिचय देते हुए स्पष्ट रूप से कहा है-

'रामचरित राकेश कर सरिस सुखद सब काहू।

सज्जन कुमुद चकोर चित्त हित विसेषि बड़ लाहू।।'[2]

अर्थात 'श्रीरामचरितमानस' चन्द्रमा की किरणों के समान सभी के लिए सुखद एवं प्रीतिकर है, लेकिन कुमुद एवं चकोर रूपी सज्जनों (विद्वानों/भक्तों) के लिए विशेष लाभप्रद एवं अत्यन्त सार्थक है। तुलसीदास के इस सैद्धान्तिक कथन का औचित्य उनके ग्रंथ की कुछ पंक्तियों के विवेचन द्वारा स्पष्ट होगा कि कैसे प्रायोगिक दृष्टि एवं सैद्धान्तिक कथन दोनों द्वारा तुलसीदास का काव्य सामान्यजन में ग्रहणीय एवं लोकप्रिय है साथ ही वह विशिष्टजनों में समादरणीय एवं प्रशंसनीय है।

'सुन्दरकाण्ड' में जब हनुमान जी विभीषण से मिलते हैं और कहते है कि इन निशाचरों के बीच में आप अपना जीवन यापन एवं स्वधर्म का निर्वाह कैसे कर पाते है? इस प्रश्न के उत्तर में विभीषण जी ने अत्यन्त संक्षेप में अपने अन्तर्मन के विपुल भावों, अपनी समग्र जीवन चर्या एवं राक्षसों के व्यवहार तथा उनके अंत का भी संकेत कर देते हैं। इतने अधिक अर्थ का वहन तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त बहुअर्थी शब्द 'रहनि', 'दशनन्हि' एवं 'जीभ बिचारी' द्वारा संभव हुआ है-

''सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।।''[3]

इसका सामान्य अर्थ है कि हनुमान जी इन राक्षसों के बीच मैं बैसे ही रहता हूँ, जैसे दाँतों के बीच में जीभ बिचारी बन कर रहती है। इस अर्थ को ग्रहण करने में सामान्य पाठक को भी कोई कठिनाई नहीं होती है। वह आसानी से इस पंक्ति के भाव को समझ लेता है, लेकिन जब प्रबुद्ध पाठक सूक्ष्मता से इसका विवेचन करता है तब इसके अर्थ गाम्भीर्य को समझने पर वह अभिभूत हो उठता है। यह सारा काव्य सौन्दर्य तुलसीदास के सोद्देश्य शब्द चयन कौशल द्वारा संभव हुआ है। 'रहनि' का अर्थ केवल रहना भर नहीं है, अपितु वह सम्पूर्ण जीवन चर्या एवं व्यवहार पद्धति का बोधक है। 'दसनन्हि' के जगह यदि दाँतन्ह रख दिया जाता तब सारा काव्य सौन्दर्य एवं अर्थगाम्भीर्य नष्ट हो जाता। 'दसनन्हि' का ध्वनि साम्य 'दशानन' से है और वह बहुबचन में प्रयुक्त है। इस प्रयोग द्वारा अर्थ निकलता है कि दसाननों अर्थात अनेक राक्षसों से है। दाँत शरीर का कठोरतम अंग है और जीभ कोमलतम। जीभ दाँतों से लड़ नहीं सकती। वह केवल बेचारी (शरणागत/दीन) बनकर ही सुरक्षित रह सकती है। जीभ तभी तक सुरक्षित है जब तक वह दाँतों (राक्षसों) के सीमा में आबद्ध है। बाहर निकलते ही जीभ दाँतों द्वारा घायल हो सकती है। जीभ अकेली है दाँत अनेक। भोजन चबाता है दाँत लेकिन भोजन का असली स्वाद जीभ ग्रहण करती है। इसी प्रकार राक्षस भोग विलास का जीवन जीते हैं, लेकिन जीवन का असली आनंद जीभ (विभीषण) ग्रहण करती है। एक समय ऐसा आता है कि सारे दाँत झर जाते हैं लेकिन जीभ अंत तक बनी रहती है। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण राक्षसों का अन्त होता है और अन्त में केवल विभीषण ही बचते हैं। जीभ की परोपकारी बृत्ति है। दाँत में कुछ फँसने के बाद बार बार जीभ वहाँ जाकर दाँत में फँसे कण को निकालने का प्रयत्न करती है, जैसे विभीषण ने रावण के जीवन के कंटक को निकालने एवं उसे समझाने का प्रयास करता है। इस प्रकार इस पंक्ति से और भी अनेक अर्थ निकाले जा सकते हैं।

सोद्देश्य शब्द चयन कौशल का एक और श्रेष्ठ उदाहरण विचारणीय है-

''रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु नाइ पुकारे।।

× × ×

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना।

× × ×

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा।

आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा

× × ×

कपि देखा दारुन भट आवा। कटकाटाइ गर्जा अरू धावा।।''[4]

उपर्युक्त पंक्तियाँ सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत अशोक बाटिका के युद्ध प्रसंग से सम्बन्धित हैं। तुलसीदास के सोद्देश्य शब्द कौशल का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है। रावण के द्वारा भेजे गये योद्धाओं (भटों) के श्रेणियों एवं स्तरों के अनुरूप हनुमान जी अपनी प्रतिक्रिया देते हैं, जो उनके गर्जने के प्रकार एवं स्तर द्वारा व्यक्त होता है। सबसे पहले साधारण भट आते हैं जिन्हें हनुमान जी बिना कोई गर्जना किये सहजता से मार देते है। उसके बाद नाना प्रकार के भटों को रावण भेजता है, तब हनुमान जी साधारण गर्जना करते हैं। उसके बाद **सुभटों** को लेकर अच्छयकुमार आता है, तब उसकी प्रतिक्रिया में हनुमान जी महाधुनि में गर्जना करते हैं। तदनन्तर मेघनाद जैसे दारुण भट को देखने पर वे कटकटा करके घोर गर्जना

करते है। महाधुनि गर्जन के बाद उससे उच्चश्रेणी की गर्जना (कटकटाइ) की योजना कर तुलसीदास ने सोद्देश्य शब्द चयन कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसमें प्रतिपक्षी की बिकारलता एवं प्रचण्डता के अनुरूप हनुमान जी की गर्जना एवं तैयारी को सार्थक ढंग से व्यक्त किया गया है।

तुलसीदास के सोद्देश्य चयन कौशल की विशिष्टता है कि वे तमाम पर्यायवाची शब्दों में से प्रसंगानुकूल एकदम सटीक एवं सार्थक शब्द का चयन करते हैं। कहीं कहीं वे एक साथ अनेक पर्यायवाची शब्दों का सोद्देश्य प्रयोग करते हैं। एक शब्द के अनेक पर्यायों से कई सार्थक अर्थ छवियाँ व्यंजित होती हैं-

''बिरह अगनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माँह सरीरा

नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरै न पाव देह बिरहागी।''[5]

यहाँ सीता जी हनुमान जी से अपनी बिरह व्यथा एवं प्राण न छोड़ पाने की विवशता को व्यक्त कर रही हैं। इस संदर्भ में वे बिरहाग्नि में तनु (कृश, अत्यल्प एवं रूई की तरह शीघ्र जल जाने वाला) का सार्थक प्रयोग करती हैं। वे स्वाँस के द्वारा शरीर के क्षण भर में जल जाने का उल्लेख करती हैं। यहाँ भी यह सार्थक प्रयोग है क्योंकि शरीर, शीर्यमाण एवं छीजने वाले भाव का द्योतक है। उक्त पर्यायों द्वारा वे अपने तन की सूक्ष्मता का उल्लेख करती हैं लेकिन नयनों से निकलने वाले आँसुओं के कारण उनकी देह जल नहीं पाती। यहाँ देह द्वारा नित्य बृद्धि प्राप्त करने वाले शरीर की व्यंजन है, जो प्रायः बालकों की बढ़ती उम्र के संदर्भ में प्रयुक्त होती है, जो समय के साथ नित्य बढ़ती जाती है। 'देह' शब्द का अत्यन्त सार्थक प्रयोग अशोक वाटिका में सीता जी के सामने किया गया है, जब उनके संदेह प्रकट करने पर हनुमान जी ने अपने विकराल एवं प्रचण्ड रूप का प्रदर्शन किया।

''हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥

कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥''

(सुन्दरकाण्ड, दोहा 16, 6-8)

इस प्रकार तुलसीदास ने सोद्देश्य शब्द चयन कौशल द्वारा उच्चकोटि की काव्यात्मक शक्ति की सर्जना की है। इस प्रकार के सोद्देश्य शब्द चयन अत्यन्त उच्चकोटि के होते हैं।

(2) साभिप्राय बिचलन

इसके अन्तर्गत रचनाकार अपने अभिप्राय के अनुकूल भाषा के मान्य एवं मानक रूप से बिचलन करता है, अलग हटाता है। वह आवश्यकतानुसार भाषा की विभिन्न इकाईयों (ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य एवं अर्थ) के मान्य रूपों से अलग हटकर भिन्न रूप में प्रयोग करता है। वह अपने काव्य के अभिप्राय के अनुकूल लिंग, बचन, कारक, संज्ञा, सर्वनाम एवं विशेषण आदि के मान्य रूपों से हट कर साभिप्राय भिन्न प्रयोग करता है। वह पुलिंग के स्थान पर स्त्रीलिंग और स्त्रीलिंग के स्थान पर पुलिंग का प्रयोग कर सकता है। एक बचन का बहुवचन में और बहुवचन का एकवचन के रूप में प्रयोग कर सकता है। कविवर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने बसंत ऋतु के माधुर्य को प्रकट करने हेतु पुलिंग क्रिया के स्थान पर स्त्रीलिंग का प्रयोग किया है-

'आज प्रथम गाई पंचम' यहाँ पिक पुलिंग शब्द है, अतः व्याकरण के अनुसार 'गाया' क्रिया का प्रयोग होना चाहिए 'गाई' का नहीं। ऐसा करने से कर्कश एवं कठोर ध्वनि का बोध होता है जो बसंत ऋतु के माधुर्य एवं कोमल भाव को नष्ट कर देता।

गोस्वामी तुलसीदास ने स्त्रीलिंग के स्थान पर पुलिंग का प्रयोग किया है-

'मरम बचन सीता जब बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।[6]

यहॉं व्याकरणानुसार 'सीता बोली' का प्रयोग होना चाहिए। तुलसीदास ने सीता की वाणी की कठोरता, कटुता, प्रखरता एवं प्रगाढ़ता को व्यंजित करने के लिए पुलिंग क्रिया का प्रयोग किया है, ताकि सीता की वाणी की प्रगाढ़ता एवं तीव्रता का भाव व्यंजित हो सके। मायावी मारीच की चीख को सुनकर सीता लक्ष्मण जी को बलात् राम की रक्षा हेतु भेजना चाहती हैं, अतएव वे कटु एवं कठोर बाणी का प्रयोग करती हैं। तुलसीदास शालीन एवं मर्यादावादी कवि हैं, अतः इस परिवर्तन द्वारा वे सीता जी की कठोर एवं तिक्ता को संकेत में व्यक्त करते हैं। ध्यातव्य है कि महर्षि वाल्मीकि ने अपने 'रामायण' में सीता जी द्वारा कठोर, निन्दनीय एवं अनेक अशोभनीय शब्दों का प्रयोग करवाया है।

'विनय न मानत जलधि जड़ गये तीन दिन बीति॥

बोले राम सकोप तब भय बिनु होई न प्रीति॥[7]

यहाँ अर्थ बिचलन है, अतः प्रीति का प्रेम अर्थ लेना उचित नहीं है। यहाँ पर अनुशासन या आज्ञा पालन करने का भाव अन्तर्निहित है। अन्यथा भय दिखाकर प्रेम का भाव रखना अनर्थकारी एवं अनुचित है। इसी प्रकार सीता स्वयंवर में धनुष को तोड़ने के लिए उद्यत हुए लक्ष्मण का यह कहना-

'जौ राउर अनुशासन पावउँ। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उड़ाउँ।[8]

यहाँ अनुशासन में अर्थ विचलन है जिसका अर्थ डिसप्लिन न होकर 'आज्ञा' होगा। इसी प्रकार निम्न पंक्ति में भी अर्थ विचलन है-

''हँसत देखि नख सिख रिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥''[9]

यहाँ पापी का अर्थ उदण्ड एवं अशिष्ट होगा।।

(3) सामानान्तरता-

इसके अन्तर्गत रचनाकार समान व्याकरणिक इकाइयों का समानान्तर प्रयोग करता है। वह किसी ध्वनि, शब्द, पद या वाक्य

का अनेक बार प्रयोग करता है। ऐसा करके वह अर्थगाम्भीर्य को तो व्यक्त करता ही है, साथ ही उसमें स्मरणीयता का सहज गुण भी समाविष्ट करता है। आधुनिक कवियों में कविवर नागार्जुन ने 'अकाल और उसके बाद' नामक कविता में इस का अत्यन्त सार्थक प्रयोग किया गया है-

''बहुत दिनों तक चुल्हा रोया। चक्की रही उदास
बहुत दिनों तक कानी कुतिया सोयी उसके पास

× × ×

दाना आए घर के भीतर बहुत दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखे बहुत दिनों के बाद॥''

कविवर तुलसीदास ने भी अपने काव्य में 'समानान्तरता' का अत्यन्त सार्थक एवं बहु अर्थ गर्भी प्रयोग किया है। मरणासन्न महाराज दशरथ के राममय अनन्य प्रेम की व्यंजना निम्न पंक्तियों में की गयी है-

''राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥''[10]

समुद्र पर पुल बाँधने की आश्चर्यजनक खबर पाकर रावण अत्यन्त चौंक उठता है। वह व्याकुल होकर घबरा जाता है। इस असंभव सी घटना को सुनकर रावण अत्यन्त भयभीत एवं चिंतित हो उठा। उसके इस मनोभाव की प्रगाढ़ता एवं तीव्रता को व्यंजित करने हेतु तुलसीदास ने समुद्र के अनेक पर्यायवाची शब्दों का समानान्तर (एक साथ) प्रयोग किया है-

''बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥''[11]

समग्रतः महाकवि तुलसीदास द्वारा बिरचित विश्वप्रसिद्ध ग्रंथ 'श्रीरामचरितनामस' शैली विज्ञान की कसौटियों (सोद्देश्य चयन कौशल, साभिप्राय विचलन एवं समानान्तरता) पर खरा सिद्ध होता है। इन प्रयोगों द्वारा इस ग्रंथ में उच्चकोटि का काव्य - सौन्दर्य सन्निहित हुआ है। इनकी काव्य भाषा की अद्वितीय एवं विलक्षण विशेषता है कि वह सामान्य जन में भी लोकप्रिय एवं ग्राह्य है और शिष्ट जनों में समादरणीय एवं मान्य है।

संदर्भ-

1. 'श्रीरामचरितमानस' गीताप्रेस, गोरखपुर, सं0 2068, एक सौ इकसठवाँ पुनर्मुद्रण 'उत्तरकाण्ड' दोहा सं0 130, चौ0 1,2
2. वही, बालकाण्ड 32/18, 18
3. वही, सुन्दरकाण्ड 7/1
4. वही, दोहा 18,19
5. वही, दोहा 31/7,8
6. वह, अरण्यकाण्ड, दोहा 28/5
7. वही, सुन्दरकाण्ड, दोहा 57
8. वही, बालकाण्ड, दोहा 253/4
9. वही, दोहा 277/6
10. अयोध्याकाण्ड दोहा 155
11. लंका काण्ड, दोहा सं0 5

काशीवासियों के लिए विहिताविहित कर्म

गीतांजलि पाण्डेय[*] एवं प्रो. श्रीकिशोर मिश्र[**]

मानव जीवन की आध्यात्मिक यात्रा का विस्तृत स्वरूप काशी में प्रायः सर्वत्र ही अनादिकाल से संदृष्टित होता रहा है। चेतना के बहुआयामी विकास के लिए नित्य-नैमित्तिकादि कर्मों का शास्त्राज्ञानुकूलित परिपालन एक महानतम साधन है। काशी धर्म, ज्ञान, दान, तपस्यादि साधनों से सर्वदा परिपोषित रही है। इसी महान क्रम की अनुपालना हेतु विभिन्न धर्मशास्त्रों, स्मृतियों का काशी में अध्ययन-अध्यापन अनादिकाल से होता रहा है। चिन्तन की उदात्तता, व्यवहार की मर्यादा, संवेगों पर नियन्त्रण अध्यात्मिक यात्रा के लिए प्रारम्भिक सोपान है। जीवन को विविध आयामों से स्पर्शित करने के लिए, चित्त शुद्धि एवं मूल स्वरूप की ओर अभिप्रेरित होने के लिए विभिन्न शास्त्रों में काशी की महिमा का वर्णन प्राप्त होता है। काशी-निवास पूर्वजन्मों के अनन्त पुण्यों का फल है। काशी निवास विभिन्न आलौकिक साधनाओं के क्रम का जागरण करता है। परन्तु ये तब ही सम्भव है जब शास्त्रोचित विहिताविहित कर्मों के नियम का पालन करते हुए काशी में निवास किया जाए।

अन्नम्भट्ट विरचित तर्कसंग्रह में विहित-अविहित कर्म का वर्णन हमें प्राप्त होता है। 'वेदविहितेत्यर्थः'।[1] अर्थात् वेदों में कहे गये प्रामाणिक वचन ही विहितकर्म है।

अविहित- वेद अविहितेत्यर्थः।[2] अर्थात् वेदों में निषिद्धकर्मों को अविहितकर्म कहते हैं। वेदान्तसारानुसार[3] 'काम्य एवं निषिद्ध' कर्म अविहित कर्मों के अन्तर्गत ही आते हैं शेष चार नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त एवं उपासना कर्म विहितकर्म हैं।

मनुस्मृति के बारहवें अध्याय[4] में विहित एवं निषिद्ध कर्मों का वर्णन प्राप्त होता है। शुभाशुभ कर्मों के बारे में महर्षियों द्वारा किये गये प्रश्न का उत्तर भृगु ने इस प्रकार दिया- मन, वाणी और शरीर से होने वाला कर्म शुभ एवं अशुभ फल देता है और उसी कर्म के अनुसार मनुष्यों का उत्तम, मध्यम और अधम योनि में जन्म होता है।

पद्मपुराण के पातालखण्ड[5] में भृगु से ऋषियों ने पञ्च प्रश्नों में काशीपुरी का सेवन कैसे करना चाहिए ऐसा प्रश्न किया है। उसके रहस्य को बताते हुए भृगु कहते है-

कामना एवं लोभ, दम्भ, मात्सर्य को छोड़कर धर्म एवं मोक्ष को ध्यान में रखते हुए, प्रतिरत से विरत रहते हुए, शान्त एवं दान्त भाव युक्त मन से शङ्कर के ध्यान में निरत, वैध धन से जीवनयापन करते हुए, पापकर्म से विरत, मिट्टी, काष्ठ, एवं सोने में समदृष्टि रखते हुए पञ्चाक्षर मन्त्र जप में निरन्तर निरत रहकर काशी में उपासना करनी चाहिए। काशी में निवास स्वयं में एक उपासना है। सन्मार्ग से अर्जित वित्त से जीविका चलाते हुए, पवित्र धन स्वीकार करते हुए अतिथियों के सत्कार में तत्पर, स्वाध्यायाध्ययन में मग्न, गुरु की सेवा में निरत तथा ब्रह्मचर्य धर्मरत रहते हुए काशी में निवास करना चाहिए।

पवित्र धन स्वीकार करते हुए अर्थात् किसी के धन को न चुराकर वरन् ईमानदारी पूर्वक धनार्जन करना। पातञ्जलयोगदर्शन के व्यासभाष्य[6] स्तेय अर्थात् चोरी का निरुपण करते हुए कहते है कि शास्त्रोक्त विधि के बिना किसी अन्य के द्रव्यों को ग्रहण करना स्तेय कहा जाता है। मन से भी परद्रव्य को ग्रहण करने की इच्छा के अभाव को अस्तेय कहते है।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्[7] अर्थात् अस्तेय विषयक प्रतिष्ठा प्राप्त होने पर सर्व प्रकार के रत्नों की उपस्थिति होती है। अतिथिसत्कार का वर्णन तैत्तिरियोपनिषद् के शिक्षावल्ली में प्राप्त होता है ''अतिथि देवो भव''[8] तथा साथ ही मनुस्मृति के तृतीय अध्याय में अतिथि सत्कार का वर्णन प्राप्त होता है। पञ्चमहायज्ञों में अतिथियज्ञ को बतालकर अतिथिसत्कार की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है- होमो दैवो बलिर्भूतौ नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्[9]।।

जिसके आगमन की कोई तिथि निश्चित न हो उसे अतिथि कहते हैं। इस प्रकार उनके प्रति सदाशयता दिखाना, सद्व्यवहार करना ही अतिथि सत्कार है। इसी प्रकार स्वध्याय में निरत रहना भी विहित कर्म है। पातञ्जलयोगदर्शन के साधन पाद में स्वाध्याय का अर्थ महर्षिव्यास ने इस प्रकार किया है-

मोक्षप्रतिपादक शास्त्रों का प्रतिदिन अध्ययन करना स्वाध्याय है। **''स्वाध्यायों मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा[10]।''** स्वाध्याय की प्रतिष्ठा होने पर अपने अभिमत देवता का साक्षात्कार होता है। **''स्वाध्यायादिष्ट देवतासंप्रयोगः''**[11]। स्वाध्यायाध्ययन भी विहितकर्म है यथा मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में स्वाध्याय का निरूपण इस प्रकार किया गया है-

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः।
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु॥[12]

अर्थात् जो नियमपूर्वक पवित्र व्यक्ति एकवर्षपर्यन्त विधिपूर्वक स्वाध्याय का अध्ययन करता है उसके लिए यह वेद नित्य दुग्ध,

---

* शोधच्छात्रा, कला संकाय, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** प्रोफेसर, कला संकाय, संस्कृत विभाग,काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

दधि, घृत और मधु प्रदान करता है। अर्थात हर समृद्धि को प्राप्त करता है। इसी प्रकार गुरु सेवा विहितकर्म है इसका वर्णन उपनिषदों, स्मृतियों आदि में प्राप्त होता है मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में गुरु सेवा का वर्णन विशद् रूप में प्राप्त होता है- **''गुरुशुश्रूषया त्वैवं ब्रह्मलोकं समश्नुते।''**[13]

अर्थात् गुरु की सेवा से ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है। गुरु के अनादृरित होने पर गृहस्थ की सभी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं। ब्रह्मचर्य पालन भी विहितकर्म है। ब्रह्मचर्य व्रत को महाव्रत कहा जाता है जो मनुष्य ब्रह्मचर्य विधि का पालन करते हुए काशी निवास करता है वो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।[14] योगदर्शन में **''ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः''**[15] इस प्रकार बताया गया है।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में दश वर्जितकर्मों को इस प्रकार बतलाया गया है-

परान्न परिवादश्च परदारास्तथा धनम्
अदानाचारविद्वेषाभक्ष्यालस्यानुदैन्यता।[16]

ये दश महादोष वर्ज्य हैं। काशी में इनसे बचते हुए निवास करना चाहिए। मनुस्मृति के सातवें अध्याय में 10 कामजगण 8 कोधजगण कर्मों को वर्ज्य बतलाया गया है। जो इस प्रकार है-

कामजगण- मृगयोऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियोमदः[17]**।**

तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥

कोधजगण- पैशुन्यं साहसं ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्[18]**।**

वाग्दण्डजं च पारूष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥

अतः काशी में इन सभी वर्जित कर्मों को त्यागकर निवास करना चाहिए।

काशी खण्ड के अनुसार काशी में पाप नहीं करना चाहिए। काशी में पाप करने पर रुद्रयातना का विधान है जो अत्यन्त दारुण है। नरक से भी भयङ्कर दुःसह रुद्रपिशाच होना है। जो लोग अनेक प्रकार के प्रतिग्रहों की अपेक्षा करते हैं, छल कपट से दूसरे का हक हरते हैं उन्हें काशी का सेवन नहीं करना चाहिए।

काश्यां पापं न कुर्वीत, दारुणा रुद्रयातना।[19]

अहो रुद्रपिशाचत्वं नरकेभ्योऽपि दुःसहम् ॥

काशी में रहते हुए आत्महत्या के बारे में सोचना भी नहीं चाहिए। एक दिन में भी काशी में जितना अध्यात्मिक श्रेय प्राप्त हो जाता है उतना श्रेय अन्यत्र कई वर्षों में भी प्राप्त नहीं हो सकता। काशी में निवास, सज्जनों का संग, गंगास्नान, पाप कर्मों से द्वेष, पुण्यकर्मों से लगाव, अभिलषित वस्तुओं में सन्तोष, यथाशक्तिदान, प्रतिग्रह न स्वीकारना ये आठ योग जिसने नियत कर लिये है उनके लिये योगाभ्यास काशी में अनावश्यक हैं।

वासः काश्यां सज्जनानां प्रसङ्गो।

गङ्गास्नानं पापकर्मारुचिश्च॥

पुण्यप्रीतिः स्वेच्छया लाभसौख्यम्

दानं शक्तया न प्रतिग्राह्यमत्र॥

अष्टवेते यस्य सन्त्येव योगाः।

योगाभ्यासैस्तस्य किं काशिकायाम् ॥[20]

असज्जनों के संग से सज्जन पापकर्म का भागी होने लगता है, अतः असज्जनो का संग वर्ज्य है। दान देकर मानव के दुःख को दूर करना चाहिए एतदर्थ काशीवास करते हुए दान करते रहना चाहिए।

काशी में निवास करते हुए प्रतिदिन यात्रा, संकीर्तन, पूजा, दान, विशेष तिथि को तीर्थों में स्नान, मृदुभाषी, सहृदयी होकर रहना चाहिए।

काशीपुरा में रहकर प्रतिदिन गंगास्नान, विश्वानाथ दर्शन भगवान् कमलापति विष्णु का स्मरण पूर्वक वास करें।

काशी में उपवास का भी विशेष महत्व है। काशी में विशेषतिथियों में उपवास करना चाहिए।

मनुष्यों को 'दूंगा' अगर ऐसी प्रतिज्ञा कर ली गयी है तो वो वस्तु अवश्य दे अन्यथा ऐसी प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिए।

अमावस्या एवं पूर्णिमा में दिया गया दान दशगुणित, चन्द्रग्रहण में दिया दान शतगुणित, सूर्यग्रहण में शतगुणित एवं मृत्यु के समय का दान अनन्तगुणित हो जाता है। प्रतिज्ञा करके यदि दान न दिया जाय तो वह यातनाकर ही होता है।[21] कलियुग में दान ही प्रायश्चित है। मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में कलियुग में दान को श्रेष्ठ बतलाया गया है।

''तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥''[22]

यदि मनुष्य इस संसार के अवागमन चक्र से मुक्त होना चाहता है, अर्थात् पुनर्जन्म से मुक्ति चाहता है तो उसे काशी में निवास करना चाहिए। मत्स्यमहापुराण में ये वर्णन प्राप्त होता है-

यदीच्छेन्मानवो धीमान् न पुनर्जायते क्वचित्।

मेरोः शक्तों गुणान् वक्तुं द्वीपानां च तथैव च ॥[23]

काशी सर्वप्रकाशिका[24] में कहा गया है कि- इस अविमुक्त क्षेत्र में ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करने वाला भक्तिमान् व्यक्ति परमपद को प्राप्त करता है। जो धीर पुरुष अल्पभोजन करते हुए इन्द्रियों को वश में कर एक मास तक यहाँ निवास करता है, वह महान् दिव्य

पाशुपत व्रत का अनुष्ठन कर लेता है। पुण्यदायक मोक्ष एवं योगगति का अधिकारी हो जाता है। अविमुक्त क्षेत्र में रहने से श्रेष्ठ गति, परम सिद्धि एवं श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त होता है।

त्रिस्थलीसेतुकार का कथन है कि काशी में किये गये पाप के फलस्वरूप पहले नरक भोग तब रुद्रपिशाच योनि की प्राप्ति होती है। पद्मपुराण में ही कहा गया है जो कि भृगु एवं ऋषियों के संवाद के रुप में है- ऋषियों ने भृगु महर्षि से पूछा-पापात्मा क्या पहले पिशाचयोनि प्राप्त करता है? अथवा अन्यत्र पहले नरक में पतित होता है। उत्तर में महर्षि भृगु कहते हैं-

काशी में किए गये पाप का फल अत्यन्त दारुण है। वाराणसी में मृतपापी यमयातना नहीं भोगता है। उसके नियामक तो भगवान् भैरव कपालधारी 'कालराज' है। काशी में किए गये पापों के फलस्वरूप जो दुःख प्राप्त होता है। वैसा दुःख तो अन्तक भी प्रदान नहीं कर सकता।

''काश्यां कृतेन पापेन यद् दुःखं समवाप्यते।

अन्तकोऽपि न तद्दुःखं तादृशं चार्पितुं क्षमः॥''[25]

ऋषियों ने 'सूतजी' से पूछा कि काशी में ऋण करके जो काशी में ही मर जाता है क्या उस ऋणी की मुक्ति नहीं होती? सूत जी उत्तर में कहते हैं कि धार्मिक व्यक्ति ऋण से भीत होकर विषाद के कारण मर जाता है तो भी वह सद्यः ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है।[26] भगवान् शङ्कर उसका ऋण अपना ऋण समझ कर तारकमन्त्र का उपदेश कर देते हैं। जो व्यक्ति कुटुम्ब के योग एवं कीर्ति के लिए ऋण लेकर मोहग्रस्त होकर मर जाता है वह पापात्म अशुद्ध देह यातना प्राप्त करता है।

''निद्रातन्द्रा तथाऽऽलस्यं पैशुन्यमिति ते दश।

अविमुक्ते स्थिता विघ्नाः शक्रेण विहिताः स्वयम् ॥''[27]

पद्मपुराण में कहा गया है कि काशी में जो मनुष्य स्वधर्म का पालन करते हुए निवास करता है वह सहजता एवं शीघ्रता से मोक्ष-रूप फल अवश्य प्राप्त करता है।

काश्यां यो निजधर्मेण मुमुक्षुस्तिष्ठति द्विजः।

अनायासाविलम्बाभ्यां स एव लभते फलम् ॥[28]

अतः इस काशी में निवास करते हुए इन्द्रियों पर नियन्त्रण परमावश्यक है, विषयासक्ति से विरत रहते हुए, अन्तःकरण शुद्ध करते हुए, बुरे कर्मों को त्यागकर, सत्कर्मों की रक्षा इत्यात्मक नियमों का पालन करते हुए निवास करना चाहिए। ब्रह्मवैवर्त-

काश्यां स्यित्वा हीन्द्रियाणां व्ययं नो।

कुर्याद् यत्नात् सत्कृतं रक्षणीयम् ॥

काशी में जो लोग सत्यधर्मपरायण हैं, दान, व्रतानुष्ठानों एवं स्वशाखीय वेद के अहर्निश स्वाध्याय में निरत हैं उन्हें सर्वत्र व्याप्त रहते हुए भी कलि बाधित नहीं करता है।

कुटुवाणी बोलने वाला प्राणी नरक से आया है ऐसा मानना चाहिए। हे मुनिसत्तमों। निःसन्देह वह पुनः नरक में ही जाएगा। दूसरों की निन्दा करने वाला पापी सभी पापों को सम्पादित करने वाला होता है।

मत्स्यपुराण में कहा गया है जो इस अविमुक्त में दस सुवर्णनिर्मित पुष्प का दान करता है तथा वहाँ धूप दान करता है, उसे अग्निहोत्र का फल प्राप्त होता है। भूमिदान के समान ही गन्धदान का फल कहा गया है।

अग्निहोत्रफलं धूपे गन्धदाने तथा शृणु

भूमिदानेन तत्तुल्यं गन्धदानफलं स्मृतं॥[29]

मत्स्यमहापुराण के 184 अध्याय[30] में कहा गया है- काम, क्रोध, लोभ, दम्भ स्तम्भ, अतिशय, मात्सर्य, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य तथा पिशुनता - ये दश विघ्न जो स्वयं इन्द्र द्वारा विहित हैं, अविमुक्त में स्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त विनायकों के उपद्रव निरन्तर सिर पर सवार रहते हैं, किन्तु ये सभी भक्तों के प्रति भगवान् की अनुकम्पा के कारण पुण्यफल प्रदान करते हैं। श्रेष्ठ देवताओं और तत्त्वद्रष्टा मुनियों के द्वारा शास्त्र की आलोचना के आधार पर इस स्थान को परमगुह्य कहा गया है।

पुत्र, भाई, पिता जो कोई भी काशी में पापाचरण करता है उसे त्याग देना चाहिए, क्योंकि संसर्ग से आत्मनवति विषयक भय होता है। गुरुद्रोह तथा विप्रद्रोह में तत्पर मनुष्य को सर्वशः धर्मसम्पन्न होने पर भी काशी सिद्ध नहीं होती। काशी में महात्मा को धर्मरत होकर रहना चाहिए।

काशी में रहने वाले सभी प्राणी शिव एवं विष्णु स्वरूप हैं। इस कारण काशी में रहने वाले पापियों की भी निन्दा नहीं करनी चाहिए। काशी में निवास करती जनता की सेवा से श्रेष्ठ सौभाग्य एवं अन्य कोई धर्म नहीं है तथा काशीवासियों के प्रति किये गये अपराध से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

ब्रह्मवैवर्त- काशीस्थाश्च जनाः सर्वे शिवविष्णुस्वरुपिणः।

तस्मात् काशीजनान्नैव दूषयेदपि पापिनः॥[31]

काशी निवासी जनों को गङ्गाजल से शौचादि कर्मों का सम्पादन दोषावह नहीं है। शङ्कर का स्पष्ट कथन है- अविमुक्त क्षेत्र में आकर गङ्गा से ही समस्त क्रियाओं का निष्पादन करना चाहिए।।[32]

अतः पुर्वोक्त सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट है कि वे सारे कर्म जिनसे रजोगुणी एवं तमोगुणी वृत्ति का अभिवर्धन होता है, वे सभी

कर्म काशी क्षेत्र में निषिद्ध है। वे कर्म जिनसे सत्त्वगुण की वृद्धि होती है उन्हें विहितकर्म के रूप में जानना चाहिए।

सन्दर्भसूची-

1. तर्कसंग्रह, पृ0सं0 81
2. तर्कसंग्रह, पृ0सं0 81
3. वेदान्तसार, पृ0सं0 29
4. मनुस्मृति द्वादश अध्याय, श्लोक सं0 3, पृ0सं0 443
5. काशी सर्वप्रकाशिका, पृ0सं0 95-96
6. पातञ्जलयोगदर्शन, व्यास भाष्य, पृ0सं0 278
7. पातञ्जलयोगदर्शन, साधनपाद सूत्र सं0 37, पृ0सं0 291
8. तैतिरियोपनिषद्, शिक्षावल्ली, पृ0सं0 60
9. मनुस्मृति, तृतीय अध्याय, श्लोक सं0 70, पृ0सं0 77
10. पातञ्जलयोगदर्शन, व्यासभाष्य, साधनपाद, पृ0सं0 284
11. पातञ्जलयोगदर्शन, साधनपाद, पृ0सं0 297
12. मनुस्मृति, द्वितीय अध्याय, श्लोक सं0 107, पृ0सं0 100
13. मनुस्मृति, द्वितीय अध्याय, श्लोक सं0 233, पृ0सं0 139
14. मनुस्मृति, द्वितीय अध्याय, श्लोक सं0 235, पृ0सं0 140
15. पातञ्जलयोगदर्शन, साधनपाद, सूत्र सं0 38, पृ0सं0 292
16. काशी सर्वप्रकाशिका, पृ0सं0 96
17. मनुस्मृति, सप्तम अध्याय, श्लोक सं0 47, पृ0सं0 167
18. मनुस्मृति, सप्तम अध्याय, श्लोक सं0 48, पृ0सं0 167
19. काशीसर्वप्रकाशिका, पृ0सं0 97
20. काशीसर्वप्रकाशिका, पृ0सं0 97
21. काशीसर्वप्रकाशिका, पृ0सं0 100
22. मनुस्मृति, सप्तम अध्याय, श्लोक सं0 86, पृ0सं0 44
23. मत्स्यमहापुराण, 182 अध्याय, श्लोक सं0 21, पृ0सं0 756
24. मत्स्यमहापुराण, 182 अध्याय, श्लोक सं0 92, पृ0सं0 756
25. काशीसर्वप्रकाशिका, पृ0सं0 102
26. काशीसर्वप्रकाशिका, पृ0सं0 103
27. मत्स्यमहापुराण, 183 अध्याय, श्लोक सं0 81, पृ0सं0 763
28. मत्स्यमहापुराण, 184 अध्याय, श्लोक सं0 41, पृ0सं0 768
29. मत्स्यमहापुराण, 184 अध्याय, श्लोक सं0 41, पृ0सं0 768
30. काशीसर्वप्रकाशिका, पृ0सं0 108
31. काशीसर्वप्रकाशिका, पृ0सं0 111
32. काशीसर्वप्रकाशिका, पृ0सं0 111

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. तर्कसंग्रह-अन्नम्भट्ट विरचित, व्याख्याकार-शेषराजशर्मा रेग्मी, प्रकाशन-चौखम्बा सुरभारती वाराणसी, वर्ष 2011
2. तर्कसंग्रह-अन्नम्भट्टकृत, व्याख्याकार-शेषराजशर्मा रेग्मी, प्रकाशन-चौखम्बा सुरभारती वाराणसी, वर्ष 2011
3. वेदान्तसार-सदानन्दप्रणीत, व्याख्याकार-डॉ0 आद्याप्रसाद मिश्र, प्रकाशन-अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2011
4. मनुस्मृति अनुवादक-पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशन-'नवलकिशोरविद्यालय' गोमती तट लखनऊ, वर्ष 1917
5. काशी सर्वप्रकाशिका, श्री मन्नारायणभट्टकृत, सम्पादक-नितिन रमेश गोकर्ण (आई0ए0एस0), प्रकाशन-शारदा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वर्ष 1585
6. पातञ्जलयोगदर्शन, महर्षिपतञ्जलिकृत, श्री ब्रह्मलीनमुनि व्यासभाष्य, प्रकाशन-चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, वि0सं0-2067
7. पातञ्जलयोगदर्शन, पतञ्जलिकृत, श्रीब्रह्मलीनमुनि व्यासभाष्य, प्रकाशन-चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, वि0सं0 2067
8. तैत्तिरीयोपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, वि0सं0 2067
9. मनुस्मृति, अनुवादक-पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी प्रकाशन-'नवलकिशोरविद्यालय' गोमती तट लखनऊ, वर्ष 1917
10. पातञ्जलयोदर्शन, पतञ्जलिकृत, श्री ब्रह्मलीनमुनि व्यासभाष्य, प्रकाशन-चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, वि0सं0 2067
11. पातञ्जलयोदर्शन, पतञ्जलिकृत, श्री ब्रह्मलीनमुनि व्यासभाष्य, प्रकाशन-चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, वि0सं0 2067
12. मनुस्मृति, अनुवादक गिरिधर गोपाल शर्मा, प्रकाशन-चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, वर्ष 2016
13. मनुस्मृति, अनुवादक गिरिधर गोपाल शर्मा, प्रकाशन-चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, वर्ष 2016
14. मनुस्मृति, अनुवादक गिरिधर गोपाल शर्मा, प्रकाशन-चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, वर्ष 2016
15. पातञ्जलयोदर्शन, पतञ्जलिकृत, श्री ब्रह्मलीनमुनि व्यासभाष्य, प्रकाशन-चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, वि0सं0 2067
16. काशी सर्वप्रकाशिका, श्री मन्नारायणभट्टकृत, सम्पादक-नितिन रमेश गोकर्ण (आई0ए0एस0), प्रकाशन-शारदा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वर्ष 1585
17. मनुस्मृति, अनुवादक-पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशन-'नवलकिशोरविद्यालय' गोमती तट लखनऊ, वर्ष 1917
18. मनुस्मृति, अनुवादक-पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी प्रकाशन-'नवलकिशोरविद्यालय' गोमती तट लखनऊ, वर्ष 1917
19. काशी सर्वप्रकाशिका, श्री मन्नारायणभट्टकृत, सम्पादक-नितिन रमेश गोकर्ण (आई0ए0एस0), प्रकाशन-शारदा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वर्ष 1585
20. काशी सर्वप्रकाशिका, श्री मन्नारायणभट्टकृत, सम्पादक-नितिन रमेश गोकर्ण (आई0ए0एस0), प्रकाशन-शारदा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वर्ष 1585

21. काशी सर्वप्रकाशिका, श्री मन्नारायणभट्टकृत, सम्पादक-नितिन रमेश गोकर्ण (आई0ए0एस0), प्रकाशन-शारदा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वर्ष 1585
22. मनुस्मृति, अनुवादक-पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी प्रकाशन-'नवलकिशोरविद्यालय' गोमती तट लखनऊ, वर्ष 1917
23. मत्स्यमहापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि0सं0 2074
24. मत्स्यमहापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि0सं0 2074
25. काशी सर्वप्रकाशिका, श्री मन्नारायणभट्टकृत, सम्पादक-नितिन रमेश गोकर्ण (आई0ए0एस0), प्रकाशन-शारदा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वर्ष 1585
26. काशी सर्वप्रकाशिका, श्री मन्नारायणभट्टकृत, सम्पादक-नितिन रमेश गोकर्ण (आई0ए0एस0), प्रकाशन-शारदा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वर्ष 1585
27. मत्स्यमहापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि0सं0 2074
28. मत्स्यमहापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि0सं0 2074
29. मत्स्यमहापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि0सं0 2074
30. काशी सर्वप्रकाशिका, श्री मन्नारायणभट्टकृत, सम्पादक-नितिन रमेश गोकर्ण (आई0ए0एस0), प्रकाशन-शारदा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वर्ष 1585
31. काशी सर्वप्रकाशिका, श्री मन्नारायणभट्टकृत, सम्पादक-नितिन रमेश गोकर्ण (आई0ए0एस0), प्रकाशन-शारदा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वर्ष 1585
32. काशी सर्वप्रकाशिका, श्री मन्नारायणभट्टकृत, सम्पादक-नितिन रमेश गोकर्ण (आई0ए0एस0), प्रकाशन-शारदा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वर्ष 1585

संत की नई परिभाषा गढ़ता उपन्यास : बिश्रामपुर का संत

सुषमा[*] एवं प्रो. रामकली सराफ[**]

श्रीलाल शुक्ल का 'बिश्रामपुर का संत' आचार्य विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन पर केन्द्रित होने के साथ-साथ एक चरित्र प्रधान उपन्यास भी है। इस उपन्यास की कथा जमींदार कुँवर जयंती प्रसाद सिंह की चारित्रिक खूबियों एवं खामियों के ताने-बाने से बुनी गई है। इनके बड़े भाई तअल्लुकेदार एवं राजनीतिक प्राणी थे। अंग्रेजों के समय सत्याग्रह आन्दोलन में कई बार जेल भी जा चुके थे किन्तु आजादी के बाद वे एक समाजवादी नेता बन गए और किसी समाजवादी आन्दोलन में जेल चले गये तभी से कुँवर जयंती प्रसाद सिंह हाईकोर्ट की वकालत छोड़कर रियासत को संभालने लगे। सामंती परंपरा में पले होने के बावजूद बड़े भाई आम लोगों के साथ आसानी से घुल-मिल जाते थे लेकिन कुँवर जयंती प्रसाद सिंह का स्वभाव ऐसा न था 'जयंती प्रसाद सिंह किसी दूसरी धातु के थे। वे स्वभाव से अड़ियल थे और इस अड़ियलपने को स्वाभिमान समझने के आदी थे। अपने जिस विवेक पर उन्हें बड़ा भरोसा था वह वास्तव में हर परिस्थिति में अपना हित समझने की चतुरता का ही दूसरा नाम था।[1] सन् 1952 ई0 में जमींदारी प्रथा की समाप्ति के पश्चात् आचार्य विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन के समय इन्होंने भी अपने दो गाँव दान देकर प्रथम ग्राम दानी होने का श्रेय प्राप्त कर लिया जबकि इसके पहले बेतवा नदी के किनारे मंगरौठ नामक गाँव में ग्राम दान हो चुका था। इनके इस ग्रामदान की मंशा को समझते हुए किसी सिरफिरे ने कहा- ''इन गाँवों में धरा क्या है? आधे से ऊपर तो ऊसर-बंजर-बीहड़ है।''[2] ग्रामदान के साथ-साथ कुंवर जयंती प्रसाद सिंह भूदान कार्यालय और लोगों के निवास के लिए अपनी कोठी में ही व्यवस्था करवाते हैं। इस प्रकार कुंवर साहब लोगों के हृदय में अपनी एक अलग छाप छोड़ने की कोशिश करते हैं और यह साबित करना चाहते हैं कि वे सच्चे सर्वोदयी हैं।

उपन्यास शुरू होता है कुंवर जयंती प्रसाद सिंह के सपने से जहाँ वे अस्सी वर्ष की उम्र में भी पच्चीस-छब्बीस की उम्र के सपने देख रहे हैं जबकि राज्यपाल के रूप में उनके कार्यकाल का थोड़ा ही समय रह गया है वह सपना देखते हैं कि- ''वह उनकी बाँहों में नहीं थी; वे खुद उसकी बाँहों में थे। पर तय नहीं था कि वह कौन थी। वह शायद सुन्दरी थी; पर जयश्री भी हो सकती थी।''[3]

जयश्री से इनकी मुलाकात विश्वविद्यालय में पढ़ाई करने के दौरान तब हुई जब हास्टल के मेस में खाने की परेशानी को देखते हुए इनके पिता पड़ोस के एक जमींदार जो उनके मित्र तथा दूर के रिश्तेदार भी थे उनके यहाँ इनके रहने और खाने की व्यवस्था की गयी। जयश्री इस घर की बहू थी। वही इनकी पहली और आखिरी प्रेयसी थी। उसका पति इंग्लैंड में पढ़ाई कर रहा था और जयश्री सास, श्वसुर के साथ घर संभाल रही थी। उनका घर रेलवे के पास था जिससे रेलगाड़ी के आने की खट्र-खट्र होती रहती थी जैसे ही रेलवे यार्ड में किसी गाड़ी की शंटिंग शुरू हो वे उसी लय के साथ अपनी यौन-यात्रा को आगे बढ़ाते। जैसे-तैसे करके कुंवर जयंतीप्रसाद सिंह ने बी0ए0 द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण किया और आगे की पढ़ाई के साथ घर वालों ने उन्हें बाहर भेज दिया। जयश्री भी अपने पति के साथ इंग्लैंड चली गई कुछ समय बाद किसी दुर्घटना में उसकी मौत हो गई। सर्वोदय यात्रा के दौरान जब उनकी मुलाकात सुन्दरी से हुई तो उन्हें सुन्दरी में जयश्री का भ्रम होने लगा या अपनी लंपटता को छिपाने का बहाना था- ''आँखों की भंगिमा और नाक के नुकीलेपन की समानता को छोड़कर वे एक-दूसरे से बिल्कुल अलग थी। फिर ऐसा क्यों था कि जयश्री के लिए अपनी असंभव आसक्ति वे सुन्दरी पर आरोपित करने लगे थे? क्या अपनी लंपटता को गरिमा-मंडित करने उसे औचित्य देने का यह बहाना भर नहीं था?''[4] राज्यपाल कुँवर जयंती प्रसाद सिंह को अपनी उम्र का तकाजा न था वे तो सुन्दरी को देखते ही पागल हो गए। उनकी इस हरकत का पता तभी चल जाता है जब सुन्दरी अपना नाम बताती है ''तब वे अपनी अभ्यस्त व्यवहार के अनुसार मुस्कराये बोले ''सुन्दरी? वह तो आप हैं ही; पर आपका नाम क्या है?''[5] सुशीला जयंती प्रसाद की वाहियात हरकत को समझ गयी थी इसी से तो व्यंग्य करती है ''क्यों सुन्दरी चलोगी कुँवर साहब के हरम में?''[6]

सर्वोदय के प्रति सुन्दरी के अदम्य साहस, निष्ठा, त्याग एवं समर्पण को नजरअंदाज़ कर एक पुरुष सिर्फ उसे भोग की वस्तु भर समझता है और उसकी भोग लिप्सा तीव्र होती जाती है उसे उसका शारीरिक सौन्दर्य ही दिखाई देता है। बेतवा किनारे जिस 'विनय वाटिका' को देख लोग दाँतों तले ऊँगली दबा लेते थे वह सुन्दरी के जीवट की ही मिशाल पेश करती है।

विवेक कुँवर जयंती प्रसाद सिंह का पुत्र है। वह दिल्ली विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र विषय का प्रोफेसर है। वह वामपंथी विचारधारा का है। भूदान में दी गई जमीन पर जो सहकारी फार्मों एवं सामुदायिक खेती की व्यवस्था थी वह कितनी सफल हुई यह विवेक के कथन से स्पष्ट हो जाती है- ''खेती या तो किसान अपनी

---

* शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** प्रोफेसर, शोध निर्देशिका/विभागाध्यक्षा, हिन्दी विभाग,काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जमीन पर कर सकता है, या मज़दूर बनकर दूसरे के जमीन पर।......दरअस्ल वह सिर्फ भ्रष्ट कार्यकर्ताओं और उनसे भी ज़्यादा भ्रष्ट सरकारी कारकुनों की संपत्ति है।''[7]

फार्मों एवं सामुदायिक केन्द्रों को मिलने वाले सरकारी अनुदान पर ही सभी अपनी गिद्ध दृष्टि लगाये रहते थे। किस तरह भारत सरकार के उच्च पदों पर किसी व्यक्ति को छिपे-छिपे और कई तरह की खींचतान के बीच एक हैसियतदार ओहदे पर बैठा दिया जाता है। यह सब कुछ विवेक पहली बार बहुत नजदीक से देख रहा था वह हँसता हुआ कहता है- ''बाबूजी इन राजनीतिक जंतुओं में सचमुच ही अगर कोई ऐसा दिखे- जिसकी हैसियत कुत्ते से बेहतर हो तो मुझे बताइएगा। देखना चाहूँगा कि वह कैसा दिखता है।''[8] इससे यह स्पष्ट है कि उच्च पदों को पाने और उस पर बने रहने के लिए क्या-क्या षड्यंत्र करने पड़ते हैं। आज का समय तो और भी दूषित हो गया है किसी भी कार्य में पारदर्शिता नाम की चीज ही नहीं है चाहे ओ सी0बी0आई ऑफिसर हो या सुप्रीमकोर्ट, हाईकोर्ट के जज।

देश की आजादी के लिए जिन लोगों ने सचमुच त्याग एवं संघर्ष किया आजादी के बाद उनकी जगह बाजी और मार लेता है सच्चे कर्मठशील, संघर्षी देश के लिए महान त्याग करने वाले नेता का ताज उनके सर सज जाता है और वे लोग कहीं किसी अंधेरे में खो जाते हैं या गुमनाम हो जाते हैं जिन्होंने अपना सब कुछ देशहित के लिए बलिदान कर दिया- ''स्वतंत्रता आन्दोलन के दिनों में भी त्याग संघर्ष के साथ जिनके नाम जुड़े थे वे सभी खरे सिक्के न थे। अब ऐसा लगा कि राजनीति के बाजार में खोटे सिक्कों को जानबूझकर चलाने की कोशिश की जा रही है। इस प्रक्रिया में संदिग्ध अतीत और उससे भी ज़्यादा संदिग्ध भविष्यवाले कई नये चेहरे त्याग और संघर्ष की गाथाओं के नायकों के मुकाबले बाज़ी मार ले गये।''[9]

श्रीलाल शुक्ल की रचनाएँ एक तरफ देश की तमाम विसंगतियों एवं विडम्बनाओं पर करारा व्यंग्य करती हैं तो दूसरी तरफ मानवता को बचाये रखने की जद्दोजहद भी। 'विश्रामपुर का संत' अपने समय की राजनीति पर तीखा व्यंग्य करता है। कुँवर जयंती प्रसाद सिंह जिस समय राजनीति में आये उस समय देश की राजनीति करवट बदल रही थी। स्वाधीनता संग्राम में जेल यात्रा के प्रमाणपत्र से अधिक रईसों, उद्योगपतियों एवं अफसरों से सांठ-गांठ का महत्व बढ़ गया था। वंशवाद एवं परिवारवाद अपनी जड़ जमाना शुरू कर दिया था।

आज भी पूँजीपति और ताकतवर लोग किस तरह गरीब को और गरीब और असहाय बनाये रखने का तिकड़मी खेल-खेल रहे हैं इसका सबूत रामलोटन है वह कहता है- ''आदमी से मैं नहीं डरता मालिक, न बाघ बघर्रा से। डर मुझे काग़ज़ से लगता है। काग़ज़ ने हमारी ज़मीन कैसे ले ली, मैं नहीं जानता।''[10] ज़मींदारी प्रथा के टूटने के तीस-बत्तीस साल बाद भी कहीं-कहीं ज़मीदार लोग किसानों से जबरन कर वसूल करते थे, इतना ही नहीं अपने शौक को पूरा करने के लिए भी किसानों पर अतिरिक्त कर लगाए जाते थे- ''लगान, यानी ज़मीन का वार्षिक कर तो था ही, उससे भी ज्याद्ा सांघातिक कर वे थे जो राजा साहब की परिवार की खुशी के मौकों पर लगाये जाते थे। राजा साहब को हाथी खरीदना है, किसानों पर 'हथियावन' नाम का कर लगा दिया! मोटर खरीदने के लिए 'मोटरावन' और रानी साहबा गर्भवती हुईं तो नये कुँवर साहब के स्वागत में 'पेटपिरावन'!''[11] इससे स्पष्ट है कि जो खून पसीना एक कर अन्न उपजाता है, जो अन्नदाता है उसके बच्चे और वो भूखों मरते हैं और कोई उनकी गाढ़ी कमाई से शानो शौकत बघारता है।

सुन्दरी और सुशीला जैसे अनेक लोग जो अपना सर्वस्व दान कर जीवनदानी बनकर भूदान आन्दोलन से निष्ठापूर्वक जुड़े थे तब उसका ऐसा हस्र क्यों हुआ? इस पर श्रीलाल शुक्ल गम्भीरता से सवाल उठाते हैं। निर्मल भाई जैसे लोग शुरू-शुरू में तो इससे बड़ी ईमानदारी तथा निष्ठापूर्वक जुड़े दिखाई देते हैं किन्तु इनका मकसद कुछ और ही रहता है। सुन्दरी के निधन के पश्चात् सुशीला की भेंट कुँवर जयंती प्रसाद सिंह से होती है तब वह बताती है कि कैसे सोने की तस्करी के मामले में वह आज कल तिहाड़ जेल में बंद है। वह बताती है कि उसने उससे विवाह भी कर लिया था और अब वे बरसों से अलग हैं। निर्मल भाई और कुंवर जयंती प्रसाद सिंह जैसे लोग अपने स्वार्थसिद्धि हेतु ऐसे आन्दोलनों से जुड़ते रहे हैं। मधुरेश लिखते हैं कि- ''निर्मल भाई और कुंवर जयंती प्रसाद सिंह जैसे लोगों की उपस्थिति इस या किसी भी आन्दोलन की कमजोर रीढ़ मानी जा सकती है। भले ही लेखक की मंशा न रहा हो, लेकिन इससे यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि पुरुषों की अपेक्षा सुशीला और सुन्दरी जैसी स्त्रियों की उपस्थिति इस आन्दोलन का कहीं ठोस आधार थी। लेकिन सुन्दरी की उपलब्धियों का जो हस्र बिश्रामपुर के आश्रम के सन्दर्भ में अंकित है, आश्रम की विभिन्न संस्थाओं और भूमि विवाद के संबंध में, वह इस समूचे आन्दोलन की मूलभूत दुर्बलता की ओर भी एक अर्थपूर्ण संकेत माना जा सकता है। आंदोलन से जुड़े लोगों के वर्ग चरित्र और आन्दोलन में किसी व्यावहारिक योजना और कार्यनीति के अभाव में ही वस्तुतः उसके विघटन के बीज छिपे थे।''[12]

विवेक सुन्दरी से प्रेम करता है और उससे विवाह करना चाहता है। वह विवाह का प्रस्ताव सुन्दरी के सामने रखता है और उसे आश्वस्त करता है कि वह उसके रास्ते में किसी प्रकार की रूकावट नहीं बनेगा लेकिन सुन्दरी जो जवाब देती है उसके स्पष्ट है कि वह आन्दोलन के प्रति कितना समर्पित है वह कहती है- ''विवेक, तुम जानते हो, मैं वहाँ अपना परिवार छोड़कर यहाँ एक नया परिवार बसाने नहीं आयी हूँ। मेरे सामने एक मिशन है। कोर्टशिप, विवाह- यह सब मेरे एजेंडा में नहीं है।''[13] एक स्त्री का अपने लिए इस तरह का फैसला कितना साहसिक है। सुशीला भी निर्मल भाई से अलग हो गई लेकिन उसे इस बात पर जरा भी

अफसोस नहीं है क्योंकि उसने उसके विश्वास को तोड़ा है। वह कहती है हमारे बीच पहले भी कुछ नहीं बचा था, अब भी कुछ नहीं बचा इसलिए तलाक लेना भी जरूरी नहीं था। पर मैं अब अपने नाम के आगे उसके नाम का बोझ नहीं ढोना चाहती। उपन्यास में सुन्दरी को किस रूप में प्रस्तुत किया गया है इस पर विचार करते हुए गिरिराज किशोर लिखते हैं- ''सुन्दरी उपन्यास में एक सफल सर्वोदयी कार्यकर्त्ता की जगह जयंती प्रसाद सिंह के मानसिक विलास के साधन के रूप में ज्यादा उभरी।...... अगर उसके साथ-साथ सुन्दरी का काम भी होता तो शायद उसका व्यक्तित्व कुँवर जयंती प्रसाद सिंह के व्यक्तित्व से बड़ा नहीं तो बराबर का हो सकता था।''[14]

कुँवर जयंती प्रसाद सिंह 'विश्रामपुर' में किसी प्रकार का प्रायश्चित करने नहीं गए थे न ही वैराग्य के कारण बल्कि जब देखते हैं कि अब मेरा राजनीतिक कद बहुत छोटा या लगभग समाप्तप्राय है तो वह बड़े ही रहस्यमय ढंग से गंगा में कूद कर आत्महत्या कर लेते हैं। न तो उनका 'बिश्रामपुर' के साथ कोई गहरा लगाव था न ही सर्वोदय के प्रति किसी तरह की प्रतिबद्धता। 'गिरिराज किशोर', 'बिश्रामपुर' उपन्यास पर टिप्पणी करते हैं- ''मुझे लगता है कि अच्छे खासे चरित्र प्रधान उपन्यास पर गलत चिप्पी लगा दी गयी। अगर इसे 'भूदान आन्दोलन पर लिखी गयी महत्वपूर्ण कृति न कहा गया होता तो मुझे पूरा विश्वास है कि लेखक की मंशा के अनुसार यह उपन्यास कुँवर जयंती प्रसाद सिंह के अन्तर्विरोधों के माध्यम से शायद भूदान के अंतर्विरोध को भी उभार पाता। 'बिश्रामपुर का संत' में तो कुंठित व्यंग्य है। कुंठित इसलिए कि उपन्यास का पूरा कलेवर इस बात को साबित नहीं करता।''...... अगर इस उपन्यास पर भूदान आन्दोलन पर लिखी गयी पहली महत्वपूर्ण कृति का लेबल न लगा होता तो अंतर्विरोधों से घिरे एक राजपुरुष, जमींदार और पदलोलुप, कामुक की मानवीय त्रासदी का चरित्र प्रधान पठनीय उपन्यास होता। इसमें सर्वोदय कथा से ज्यादा उसके नायक के अहं की हत्या है। बाकी सब चरित्र कुंवर साहब की त्रासदी को ही उभारने का काम करते हैं। उस रूप में वह एक सफल और पठनीय उपन्यास है। कभी-कभी यह होता है कि हम किसी कृति को अपने आग्रहों के कारण उसकी असल जगह से हटा कर गलत कोटर में बैठा देते हैं। इस उपन्यास की भी यही त्रासदी है।''[15]

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास आजाद भारत की ऐसी महागाथा है जिसमें आजादी के बाद के भारतीय समाज की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को परत दर परत उद्घाटित किया गया है। इनका उपन्यास 'राग दरबारी' भले ही कुछ आलोचकों को रास नहीं आया और उस पर अनेक आरोप लगाए गये किन्तु समाजशास्त्रियों ने इसे आजादी के बाद बदलते ग्रामीण समाज की पड़ताल के दस्तावेज के रूप में मान्यता दी। हिन्दी साहित्य जगत के सातवें दशक में जहाँ रूमानियत, आंचलिकता, दाम्पत्य एवं मध्यवर्गीय जीवन केन्द्र में था वहीं श्रीलाल शुक्ल आजाद भारत में पैदा हुई परिस्थितियों की गहनता से पड़ताल कर रहे थे। इनका उद्देश्य भारतीय लोकतंत्र, सामाजिक, राजनीतिक एवं पारिवारिक मूल्यों, नैतिकताओं की यथार्थ अभिव्यक्ति है। इनका उपन्यास 'राग दरबारी' चली आ रही औपन्यासिक परंपरा को तोड़ नया आधार एवं स्वरूप गढ़ता है। इनके उपन्यासों को समझने के लिए लीलाधर जगूड़ी का यह वक्तव्य सार्थक है कि- ''उनके उपन्यासों को समझने के लिए और उनकी सामाजिक और सामयिक व्याख्या करने के लिए हमें उपन्यास साहित्य को जांचने के सारे प्रतिमान बदलने पड़ेंगे और सौन्दर्य-दृष्टि को भी एक नई दृष्टि देनी पड़ेगी।''[16]

संदर्भ :

1. 'बिश्रामपुर का संत' (उपन्यास), श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, पेपरबैक्स, पहला संस्करण : 2008, पाँचवीं आवृत्ति : 2015, पृ0सं0 21
2. वही, पृ0 25
3. वही, पृ0 7
4. वही, पृ0 50
5. वही, पृ0 25
6. वही, पृ0 29
7. वही, पृ0 40
8. वही, पृ0 68
9. वही, पृ0 100
10. वही, पृ0 114
11. वही, पृ0 131
12. 'श्रीलाल शुक्ल की दुनिया', अखिलेश, लेख, 'व्यंग्य, उपन्यास बनाम उपन्यास में व्यंग्य', मधुरेश, पृ0सं0 207
13. 'बिश्रामपुर का संत' (उपन्यास), श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, पेपरबैक्स, पहला संस्करण : 2008, पाँचवीं आवृत्ति : 2015, पृ0सं0 135
14. वही, पृ0 203
15. 'श्रीलाल शुक्ल की दुनिया', सं0 अखिलेश, लेख, 'एक पठनीय उपन्यास की यह कैसी त्रासदी!', गिरिराज किशोर, पृ0सं0 202
16. राग दरबारी : 'आलोचना की फांस', संपादक- रेखा अवस्थी, लेख 'उपन्यास की नई परंपरा', लीलाधर जगूड़ी, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2014, पृ0सं0 172

●

योग दर्शन में समाधि

गोल्डी पाण्डेय[*] *एवं प्रो. उषा शर्मा*[**]

योग साधना की अन्तिम एवं चरम अवस्था को समाधि कहते हैं जिसमें समाधिस्थ योगी का वाह्य जगत से सम्बन्ध टूट जाता हैं। इस दशा में योगी चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता हैं अतः मोक्ष प्राप्ति के पूर्व योगी को समाधि की अवस्था से गुजरना आवश्यता है। योगभाष्य में योग्य को पारिभाषित रूप में कहा गया है-

''योगः समाधि''[1]

इसे अन्यत्र इस रूप में भी समझा जा सकता है कि पातञ्जल योगशास्त्र में ''चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया हैं।''

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः[2]

समाधिस्थ अवस्था में योगी की चित्त वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं। चित्त की वृत्तियाँ चूंकि अज्ञान जनित होती हैं अतः इन्हें रोकना निरोध करना आवश्यक हैं तभी समाधि की सिद्धि या योग की स्थिति होती है।

योग से सम्बन्धित सभी ग्रन्थों में इसे योग के अन्तिम अंग के रूप में मान्य किया गया है। विभिन्न उपनिषदों में समाधि की विवेचना उसके स्वरूप का प्रतिपादन भिन्न रूप से किया गया है। किन्तु उसका सारतत्व लगभग समान है। भारतीय चिन्तन धारा में योग-दर्शन का विशेष महत्व है, इस दर्शन का सभी आस्तिक दर्शनों में लोकप्रिय स्थान हैं, आज भी यह अपनी लोकप्रियता के मामले में अग्रणी है।

योग उन शास्त्रों में नहीं जिनमें तर्क के द्वारा किसी विषय को बुद्धिनिष्ठ किया जाता है। यह जिज्ञासु को कल्याण मार्ग की तरफ अग्रसर होने का उपाय बताती है जिसपर चलकर उसे जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति होती है। इस मार्ग को अष्टांग मार्ग कहते है- जो है यम, नियम,आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। जिसके द्वारा चित्त वश में किया जाता है और क्रमशः निरोध की ओर ले जाता है ऐसे तीन उपाय हैः धारणा ध्यान, समाधि। चित्त की जो अवस्था धारण से आरम्भ होती है, वह समाधि में जाकर पूर्णता को प्राप्त करती है। जब किसी विषय का चिन्तन होती है तो उस चिन्तन क्रिया के तीन अंग होता है, इनमें से किसी के भी अभाव से चिन्तन क्रिया नहीं हो सकती और चिन्तन की निरर्थकता हो जाएगी। इस चिन्तन के तीन अंग है- चिन्तन करने वाला, चिन्त्य अर्थात जिस विषय की चिन्ता की जाय इन क्षेत्रों के बीच का समय अर्थात् चिन्ता। ऐसे तीन अंगों वाली क्रिया को त्रिपुटी कहते है, धारणा और ध्यान दोनों में त्रिपुटी होती है, साधक अपने चित्त को देश विशेष पर बांधता है तब वह द्रष्टा चिन्तक या ध्याता के रूप में होता है, चित्त की चंचलता के कारण ध्येय हट जाता है और दूसरा ध्येय सामने आ जाता है, परंतु अभ्यास के बढ़ने पर एक ही ध्येय सामने आता रहता है, इसे हम प्रयास की एकतानता कहते है परंतु त्रिपुटी तब भी रहती है। अभ्यास की अधिकता होने पर धीरे-धीरे त्रिपुटी के दो अंग लुप्त हो जाते है केवल एक ध्येय अंग भासमान होता है। जब ध्याता को मैं किसी वस्तु का ध्यान कर रहा हूँ या अमूक वस्तु मेरे ध्यान का विषय किया जा रहा हैं वही अनुभव में रहती है तो यह अवस्था समाधि कहलाती है अर्थात् जब तक ध्यानावस्था है तब तक साधक के ज्ञान में वही दो स्तर होते है। जब मैं की ही अनुभूति रहे यह भी अनुभूति न रहे कि अनुभव किया जा रहा है यह अवस्था समाधि कहलाती है। यह समाधि मुख्यतः दो प्रकार की होती है जिसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य की त्रिपुटी हैं उसे सविकल्पक एवं जिसमें दृश्यमान शेष रहता है उसे निर्विकल्पक समाधि कहते हैं।

ब्रह्मसूत्र में भी योग का प्रसंग आया है-

''आसीनः सम्भवात्''[3]

''अंचलत्वं चापेक्ष्य''[4]

जब साधक के संयम (धारणा, ध्यान समाधि) का अभ्यास परिपक्व हो जाता है तब वह किसी भी ध्येय विषय को लेकर उसके विषय में अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म आंतरिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस पर संयम कर सकता हैं। संयम के द्वारा प्राप्त समाधिस्थ अवस्था में जिसके निम्नतम से उच्चतम तक भिन्न-भिन्न स्तर है, जब साधक संयम को दृढ़ कर लेता हैं तभी उसको समाधि की प्रथम अवस्था में पहुँचने का मार्ग प्राप्त होता हैं तथा तत्ससम्बन्धी प्रज्ञा उत्पन्न होती है। इस प्रज्ञा के प्रकाश में सम्प्रज्ञात समाधि का मार्ग स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। प्रज्ञाओं के प्रकाश से आलोकित मार्ग पर चलकर योगी चारों सम्प्रज्ञात समाधियों को पार कर विवेक ज्ञान प्राप्त करता हैं, जिसके द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा उत्पन्न होती हैं और अन्त में ऋतम्भरा प्रज्ञा के प्रकाश से असम्प्रज्ञात समाधि का मार्ग प्रकाशित हो जाता हैं तथा योगी उस मार्ग पर चलकर कैवल्य प्राप्त करता हैं।

---

* शोधार्थी, संस्कृत विभाग, कला संकाय,काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, कला संकाय,,काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

यह समाधि दो प्रकार की होती हैं-

क. सम्प्रज्ञात समाधि

ख. असम्प्रज्ञात समिाधि।

क. सम्प्रज्ञात समाधिः-

सम्प्रज्ञात समाधि चित्त की एकाग्र अवस्था हैं जिसमें चित्त किसी विषय विशेष के साथ एकाकार वृत्ति धारण कर लेता हैं। इसमें ध्येय के अतिरिक्त अन्य सब वृत्तियों का निरोध हो जाता है। यह अवस्था सत्वगुण प्रधान होता है। इसमें रजोगुण और तमोगुण तो केवल वृत्तिमात्र होते है। इस व्यवस्था में चित्त वाह्य विषयों के रज और तम से प्रभावित नहीं होता जिससे कि वह सुख-दुःख चञ्चलता आदि से तटस्थ रहता हैं। इसीलिए उस अवस्था में चित्त अत्यधिक निर्मल और स्वच्छ होता हैं। अन्य समस्त विषयों से चित्त हट कर केवल ध्येय विषय पर ही स्थिर रहने से सत्त्व के प्रकाश में ध्येय वस्तु के स्वरूप का संशय विपर्यय रहित यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता हैं। जिस भावना विशेष से यह यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है उस भावना विशेष को ही सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। समस्त विषयों को छोड़कर केवल ध्येय विषय को ही चित्त में रखने का नाम भावना हैं। सम्प्रज्ञात समाधि में भिन्न-भिन्न स्तर है। एक स्तर से दूसरा स्तर पर अभ्यास के द्वारा ही पहुँचा जाता हैं। सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्थाएँ ध्येय विषय के ऊपर आधारित होती हैं। इस प्रकार वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद हैं। जिसका उल्लेख पातञ्जलयोगसूत्र में मिलता है-

''वितर्कविचारानन्दऽस्मितारुपानुगमात्संप्रज्ञातः''[5]

ख. असम्प्रज्ञात समाधि :-

सम्प्रज्ञात समाधि में समस्त वृत्तियों का निरोध नही हो पाता है। इतना ही नहीं अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था पार कर लेने के बाद भी जो विवेकख्याति की अवस्था योगी को प्राप्त होती है। वह विवेक- ख्याति स्वयं भी एक उच्चतम सात्विक वृत्ति हैं। अतः विवेकख्याति की परिपक्वावस्था धर्ममेघ समाधि में भी भेद ज्ञान रूपी उच्चतम् सात्विक वृत्ति विद्यमान रहती है। सम्प्रज्ञात समाधि कालिक वृत्तियों तथा विवेकख्याति रूपी सात्वित वृत्ति के भी पूर्ण रूप से निरोध हो जाने पर उस निरोध के कारण पर-वैराग्य का निरन्तर अनुष्ठान रूप अभ्यास करने से जो संस्कार-शेष अवस्था प्राप्त होती है उसे असम्प्रज्ञात समाधि कहते है। इस अवस्था में समस्त वृत्तियों का निरोध होकर वृत्ति रहित अवस्था को प्राप्त होता है। विवेकख्याति अवस्था के परिपक्व हो जाने पर प्रज्ञा के प्रकाश में योगी को यह प्रतीत होने लगता हैं कि यह अवस्था स्वरुपावस्थिति नहीं है। जब योगी इस प्रकार की भावना का निरन्तर अनुष्ठान करके इस विवेक ख्याति रूप वृत्ति को भी प्रयत्नपूर्वक हटाता रहता हैं तब उसे ही पर-वैराग्य का अभ्यास कहते हैं। इसके अभ्यास से इस वृत्ति का भी निरोध हो जाता हैं तब उस अवस्था को ही असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। इस असम्प्रज्ञात समाधि की पूर्णवस्था ही निर्बीज समाधि कही जाती हैं।

इसमें पर-वैराग्य द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा जन्य संस्कारों का भी निरोध हो जाता हैं। उसके निरोध होने पर पुराने और नए समस्त संस्कारों का निरोध हो जाता है। यह पर-वैराग्य के बाद की अवस्था है जिसमें समस्त वृत्तियों तथा संस्कारों के प्रवाह का निरोध हो जाता है, निर्बीज समाधि कहलाती है। इस प्रकार समाधि के मुख्यतः दो भाग स्पष्ट होते है-

सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात समाधि।

असम्प्रज्ञात समाधि श्रद्धा, वीर्य, स्मृति समाधि और प्रज्ञा के द्वारा सिद्ध होती है। ईश्वर प्राणिधान के द्वारा असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करने उपस्थित होने वाले चित्त के समस्त विघ्न दूर होते है तथा जीवात्मा का साक्षात्कार होता हैं सम्प्रज्ञात समाधि के बाद योगी को असम्प्रज्ञात समाधि का लाभ प्राप्त होता हैं, असम्प्रज्ञात समाधि, समाधि की परिपक्व अवस्था है जिसमें निरोध संस्कार के अतिरिक्त कुछ नहीं बचता है। उसके बाद ये निरोध संस्कार स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधन्निर्बीजः समाधिः।[6]

उपर्युक्त तथ्य को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं। जैसे किसी कटोरी में जल डालकर उसमें सोने का टुकड़ा डाल दिया जाय, और वह नीचे डूब जाए यदि जल शुद्ध और निश्चल हो तो हम उस सोने के टुकड़े को देख सकते है। परन्तु उसमें मिट्टी मिली हो और वह हिल रहा हो तो सोना या तो दिखाई नहीं देगा या फिर उसका स्वरूप विकृत दिखाई देगा। सोने के वास्तविक स्वरूप को देखने के लिए जल को स्वच्छ होना चाहिए या फिर मिट्टी नीचे की तरफ स्थिर हो और जल चंचल न हो तो सोने का वास्तविक स्वरूप दिखाई पड़ेगा।

आत्मा सोने की भाँति शुद्ध है परंतु हम उसका सीधा साक्षात्कार नहीं करते चित्त के माध्यम से करते है। चित्तरूपी जल उसकी यथावत अनुभूति नहीं होने देता। चित्त में कामक्रोधादि वासनाएं पुराने संस्कार रूपी मल है एवं चित्त की चंचलता रूप दोष है जो चित्त को योगाभ्यास से दूर रखती है, यह योग कोई नयी शक्ति नहीं प्रदान करता है और न कोई नयी योग्यता उत्पन्न करता है। परन्तु आत्मदर्शन के मार्ग में चित्त द्वारा उत्पन्न हुई बाधा को दूर करता है अर्थात् जिस चश्में से आत्मसाक्षात्कार करना है उसे स्वच्छ कराने का माध्यम है योगाभ्यास। इस योगाभ्यास को पतञ्जलि ने इस शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया है।

''सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः।[7]

जिस अवस्था में चित्त मे सर्वार्थता का क्षय और एकाग्रता का उदय हो उसको समाधि परिणाम कहते हैं। हमारा चित्त सर्वार्थ होता

हैं। एक के बाद एक अनेक पदार्थ उसके विषय बनते है। विक्षिप्त चित्त का यही लक्षण हैं कि वह किसी एक जगह पर देर तक नहीं टिक सकता। विषय से विषयान्तर में फेंका फिरता हैं, ऐसे चित्त में रजोगुण की प्रधानता होती है यद्यपि थोड़ा सा मेल सत्त्वगुण का भी होता हैं जिसके कारण उसमें थोड़ी-थोड़ी देर के लिए कुछ स्थिरता आ जाती है। जब ऐसा होने लगे सत्त्वगुण के मात्रा के बढ़ने के फलस्वरूप रजोगुण की मात्रा कम होने से एकाग्रता कुछ बड़ी अर्थात् सर्वार्थता कुछ कम हो तब यह कह सकते है कि चित्त में समाधि परिणाम का उदय हुआ। समाधि तत्काल नहीं आ जाती। समाधि परिणाम का उदय धारणा की अवस्था में होगा। धीरे-धीरे ध्यान की अवस्था पहुँचते पहुँचते जब प्रत्यय की एकतानता होगी तब वह एकाग्रता परिणाम की अवस्था जाएगी, एवं जब इस प्रकार ध्यान करते-करते एकाग्रता दृढ़ होगी तब चित्त का झुकाव समाधि की ओर बढ़ जाएगा। और अन्त में वह निरोध परिणाम भी उदय होगा जो समाधि का वास्तविक स्वरूप होगा।

एक मन में विचार उपस्थिति होता है कि जो योगभ्रष्ट साधक है अर्थात् एक जन्म में जिनका योगाभ्यास पूर्ण नहीं है, उनका प्रयास क्या निरर्थक हो जाएगां पतञ्जलि ने योगदर्शन में बताया है कि उनका प्रयास निष्फल नहीं होगा। अपितु कुछ काल तक पुण्य कर्म योगाभ्यास के फलस्वरूप ऊँचे लोक में सुख भोगकर वह फिर मनुष्य योनी में जन्म लेते हैं और अच्छे कुल में जन्म धारण करते हैं। यदि उनका पिछले जन्म का योगाभ्यास अच्छा रहा तो योगियों के कुलमें ही जन्म लेते हैं और इसके बाद पिछले जन्म का छोड़ा गया अभ्यास फिर से आरम्भ करते हैं। योगभ्रष्टों में कुछ पूर्वजन्म में बड़े अच्छे अभ्यासी होते हैं उनको नया शरीर धारण करने पर भी बहुत सी स्मृति बनी रहती हैं और प्रारम्भ से अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं पड़ती हैं। प्रारम्भिक औपचारिकताएँ जैसे उपदेश या दीक्षा उनके लिए बहाना मात्र होता हैं। ऐसे लोगों की सामाधि को ''भव'' प्रत्यय कहते हैं। भव प्रत्यय का अर्थ हैं- ''जन्म है कारण जिसका''। इन लोगों के लिए इनके जन्म को समाधि का कारण कह सकते हैं। परंतु ऐसे लोग बहुत थोड़े होते हैं। अधिकांश साधकों को चाहे उन्होंने पिछले जन्म में कुछ अभ्यास किया भी हो एक बार नीचे से प्रयत्न प्रारम्भ करना पड़ता हैं। इनके लिए समाधि उपाय प्रत्यय हैं अर्थात् उसका कारण उपाय हैं। ऐसे लोगों के लिए समाधि की अनुभूति श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि तथा प्रज्ञापूर्वक होती हैं अर्थात् चित्त में इन गुणों का उदय होता हैं और इसमें से प्रत्येक गुण समाधि प्राप्त करने के लिए एक दूसरे के लिए उत्तरोत्तर प्रबल साधक होते हैं।

समाधि का द्वितीय भेद है असम्प्रज्ञात समाधि जिस पद तक पहुँचते हुए साधक के सम्बन्ध में बहुधा धर्ममेघ शब्द का व्यवहार सुनने में आता है कहा जाता है कि ऐसा योगी धर्ममेघ अवस्था में निरन्तर रहता हैं इस सम्बन्ध में पतञ्जलि कहते हैं-

''प्रसंख्यानेऽकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेधर्ममेघः समाधि।''[8]

प्रसंख्यान में भी कुसीद की इच्छा न रखने वाले व्यक्ति को सर्वथा विवेकख्याति होने पर धर्ममेध समाधि प्राप्त होती हैं। कुसीद ब्याज को कहते है। साधारण मनुष्य जब पुण्य कार्य करता है तो वह ब्याज के रूप में किसी लाभ की इच्छा रखता हैं। परंतु जो योगी प्रसंख्यान अर्थात् ज्ञान की ओर से भी विरक्त हो गया है। उसको प्रतिक्षण शास्त्र विवेकख्याति अर्थात् प्रधान और उसके विकारों की ओर से पृथकता की ही अनुभूति होती है। यह वह अवस्था है जिसमें योगी को विवेकख्याति की ओर से भी विरक्ति हो जाती है क्योंकि विवेकख्याति बुद्धि का धर्म है और अब वह बुद्धि से भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहता। ऐसा अवस्था में ऐसा कहा जाता है कि उसको धर्ममेघ समाधि प्राप्त हो गयी है। धर्ममेध सामाधि में धर्म शब्द का अर्थ है परमपुरूषार्थ का साधक ज्ञान।

इस प्रकार योगदर्शन में समाधि के दो भेद बताए है सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात समाधि। इसके प्रत्येक सोपान का अनुशरण कर साधक अपने जीवन के परमलक्ष्य तक पहुंच जाता हैं अर्थात् मनुष्य को इस दुःख मय संसार चक्र में बार-बार आवागमन या जन्म-मरण की गति से सर्वदा के लिए छुटकारा पाने के लिए योग को साधन के रूप में बतलाया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. योगभाष्य-पातञ्जलयोग सूत्र
2. पातञ्जलयोग सूत्र – 1/2
3. ब्रह्मसूत्र – 4/1/7
4. ब्रह्मसूत्र – 4/9/9
5. पातञ्जलयोग सूत्र – 1/17
6. पातञ्जलयोग सूत्र – 1/15
7. पातञ्जलयोग सूत्र – 3/11
8. पातञ्जलयोग सूत्र – 4/29

प्रकृतिहित-रक्षणविमर्श

सुनीता मिश्रा[*] एवं प्रो. उपेन्द्र पाण्डेय[**]

प्रकृतिहितरक्षण का विचार जब मन में आता है, तो सर्वप्रथम प्रकृति शब्द के अर्थ को भलीभांति जानने का प्रयत्न करते हैं। विश्व वाङ्मय का आद्य महाकाव्य वाल्मीकि रामायण के प्रारम्भ में मुनिश्रेष्ठ नारद से महर्षि वाल्मीकि जी ने प्रश्न किया, कि सम्प्रति इस लोक में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़व्रती, चरित्रवान् सर्वभूत हितसाधक विद्वान् आदि सोलह गुणों से युक्त व्यक्ति कौन है? यह जानने के लिए मेरे मन में बड़ी उत्कण्ठा है और इस प्रकार के व्यक्ति को जानने में आप समर्थ हैं। महर्षि वाल्मीकि की इस बात को सुनकर तीनों लोकों को जानने वाले नारद जी अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे कहा-कि यद्यपि आपके द्वारा वर्णित ये सारे गुण इस समय संसार के मानवों में दुर्लभ हैं, तथापि कतिपय उन गुणों से युक्त व्यक्ति को मैं बतलाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें- ऐसा कहने के पश्चात् नारद जी ने इक्ष्वाकु वंश में समुत्पन्न अनेकविध गुणों से युक्त राम का वर्णन किया। ऐसे गुण सम्पन्न राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने की इच्छा जब राजा दशरथ को हुयी, तो सर्वप्रथम प्रकृतिशब्द का प्रयोग आद्यकाव्य के माध्यम से इस प्रकार सर्वविदित हुआ-

प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया।
यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः।।[1]

इस श्लोक की गोविन्दराजीय व्याख्या इस प्रकार की गयी है-

प्रकृतीनां = प्रजानां हितैः = हितकरणैर्युक्तम्।
अनेन सर्वानुकूल्यमुक्तम् एवं भूतं रामं प्रकृतिप्रियकाम्यया = अमात्यादीनां प्रीतिकरणेच्छया।
प्रकृतिपंचभूतेषु स्वभावे मूलकारणे।
छन्दःकारणगुह्येषु जन्मामात्यादिमातृषु।।

इस वैजयन्ती कोषानुसार प्रकृति-शब्द जड़चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत्-सृष्टि को रूपायित करता है। अर्थात् यह सुस्पष्ट है, कि स्थावर-जंगम, चेतन-अचेतन, चराचर विश्व विधाता की सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृति है। इसलिए महाकवि शिरोमणि कालिदास ने भी विश्व-प्रसिद्ध अपने नाटक अभिज्ञानशाकुन्तम् के भरतवाक्य द्वारा विश्व के समग्र राष्ट्रनायकों को सचेत करते हुए प्रिय आत्मेच्छा इस प्रकार प्रकट की है-

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः।।[2]

सांख्य दर्शन के आद्य वक्ता एवं प्रवर्तक आचार्य कपिल मुनि द्वारा प्रकट किये हुए और तत्पश्चात् गुरुशिष्य-परम्परा से आये हुए ज्ञान को अपने गुरु से प्राप्त कर उस दर्शन में निहित सिद्धान्त को अच्छी तरह जानकर उस ज्ञान को संक्षिप्त रूप में आर्या छन्दों के माध्यम से लोकोपकार के लिए आचार्य ईश्वरकृष्ण ने ''सांख्यकारिका'' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया, जिसमें 'मूलप्रकृति' का अर्थ किसी प्रकार के कार्य का कारण होना है। अर्थात् जिसका अन्य कोई कारण न हो वह कारण-तत्त्व प्रकृति, प्रधान, अव्यक्त एवं अक्षर आदि अभिधानों से अभिहित होता है-

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।।[3]

इस प्रकार सांख्यदर्शन केवल दो तत्त्व मानता है, जिनमें से एक जड़ तत्त्व है, दूसरा चित् तत्त्व, जड़ तत्त्व जगत् का उपादान कारण है, उपादान कारण को 'प्रकृति' शब्द के द्वारा भी अभिहित किया जाता है; और सांख्यदर्शन उपादान कारण के लिए मुख्यतः प्रकृति शब्द का ही प्रयोग करता है। ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थरत्न महाभारत के मध्य में हृदयस्थल के रूप में विराजमान अष्टादशाध्यायी श्रीमद्भगवद्-गीता में तो प्रकृति शब्द के अनेकविध अर्थ अभिव्यक्त हुए हैं, जिनमें अट्ठारहवें अध्याय के ६9वें श्लोक में योगेश्वर श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को निमित्त बनाकर प्रोक्त यह श्लोक विशेषरूप से द्रष्टव्य एवं मन्तव्य है-

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।।[4]

इस श्लोक के भावार्थ को हृदयंगम करने से यह स्पष्ट होता है, कि इस चराचर जगत् में जो कुछ भी हो रहा है, उसमें 'प्रकृति' ही मुख्य कारण है। वैसे तो महाकवि कालिदास द्वारा उपर्युक्त भरतवाक्य में भी आद्य कवि महर्षि वाल्मीकि के माध्यम से 'रामायण' में उपात्त प्रकृति शब्द का अर्थ जड़चेतनात्मक समग्र सृष्टि

* शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी
** प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

को भी माना है। इसीलिए तो भरतवाक्य के द्वारा पार्थिव=राजा को विश्वविधाता की इस सम्पूर्ण स्थावर-जंगमात्मक प्रकृष्ट=महत्त्वपूर्ण, कृति=रचना को तत्पर होकर संरक्षण व संवर्धन के लिए जागरूक किया गया है। इससे सुस्पष्ट होता है, संसार में विधाता की सर्वोत्कृष्ट रचना रूप मानव को प्रयत्नपूर्वक समस्त जीवों तथा नदीनदपर्वत-पादपादि के हित-संरक्षणार्थविशेषरूप में तत्पर होना चाहिए, जो आज भौतिक विकास के कारण अचिन्तनीय होता जा रहा है।

महाकवि कालिदास विरचित विश्वविश्रुत नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अङ्क में वर्णित श्लोक के तात्पर्य को केवल आत्मसात् कर आचरण में उतारा जाय, तो सम्पूर्ण प्रकृति के समग्र हित का संरक्षणरूप कार्य सर्वथा स्वतः सिद्ध जो जायेगा। निसर्गसुन्दरी शकुन्तला के पतिगृह-गमन की बेला में महाकवि शिरोमणि कालिदास ने एक सिद्धाश्रम के कर्मठ एवं तपस्वी कुलपति के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व मानव को अत्यन्त मार्मिक एवं महत्त्वपूर्ण सन्देश देने के लिए ही जड़ तत्त्व यानि वृक्षादि में चेतन तत्त्व को स्थापित कर उनमें तादात्म्य भावापन्न होने के लिए ही निर्देश व उपदेश दिया है-

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥[5]

इस पद्य में कवि ने लता, वृक्ष, गुल्म आदि में भी आत्मतत्त्वरूपी चेतनता का आधान करते हुए इनसे भी शकुन्तला के लिए अनुज्ञा की कामना की है। उक्त श्लोक का अभिप्राय है, कि ''ऋषि कण्व उस शकुन्तला के पतिगृह-गमन के लिए लता वृक्षादि से आज्ञा माँगते हैं, जो प्रकृति-सुन्दरी शकुन्तला लताओं के सींचने के पूर्व स्वतः जल पीने हेतु यत्न भी नहीं करती है और जो प्रकृति-मण्डना होकर भी अतिस्नेह के कारण पत्ते को भी आभूषण बनाने के लिए नहीं तोड़ती है तथा किसी लता गुल्म में पहली बार पुष्प लगने पर प्रमुदित होकर उत्सव मनाती है, वही प्रकृति से प्रेम करने वाली शकुन्तला आज पतिगृह जाने को उद्यत है, इसलिए आप समस्त लता-वृक्ष-गुल्म आदि भी इसे जाने की अनुमति प्रदान करें।'' इस श्लोक के माध्यम से कवि ने पूरे विश्व मानव को प्रकृति-हित के संरक्षणार्थ एवं संवर्धनार्थ निर्देशित किया है, किन्तु अद्यतन मानव अपनी भोगलालसा की सम्पूर्ति के लिए एवं अपने अहंकार की सम्पुष्टि के लिए प्राकृतिक सम्पदा अर्थात् वनों को काट रहें हैं। वे कभी भी मातृभूमि विश्वम्भरा वसुन्धरा के भविष्य की सुरक्षा नहीं कर रहे हैं। वस्तुतः सम्पूर्ण वृक्ष मातृभूमि के शृंगार के साधनरूप हैं, अतः कभी भी उन्हें काटना नहीं चाहिए, क्योंकि वृक्षों के नष्ट हो जाने पर अमृतरूपा यह वसुधा माँ रूष्ट होकर अपनी सन्तानों को पर्याप्त रूप में अभीष्ट वस्तुओं को प्रदान नहीं कर पायेगी। आज विश्व पर्यावरण एवं जलवायु-परिवर्तन की समस्याओं को लेकर अहर्निश चिन्तित है। इस प्रकार की चिन्ताओं की अभिव्यक्ति आज भी संस्कृत-काव्यों की रचना में देश के शब्दशिल्पी कामदुघा सुरभारती के माध्यम से कर रहे हैं। जैसा कि संस्कृत के आधुनिक काव्य में भी ऋषियों की पारम्परिक विचारसरणि से आपूरित भाव प्रस्फुटित होता है –

आत्मभोगाभिलाषस्य सम्पूर्त्तये

प्राकृतं वैभवं यैर्वनं छिद्यते।

आत्मनोऽहंकृतेश्चाऽत्र सम्पुष्टये

मातृभूमेर्भविष्यं न तै रक्ष्यते॥[6]

मातृशृंगारभूतास्त्विमे पादपा

नैव भेद्या कदापि जनैः साम्प्रतम्।

तद्विनष्टेषु रूष्टाऽमृता मे धरा

सन्ततिभ्यो न दास्यत्यलं काङ्क्षितम्॥[7]

प्राचीन प्रभूतियों की श्रेष्ठता को ग्रामीण परिवेश आज भी जीवन में धारण किये हुए हैं। सब कुछ बढ़े सुन्दर बने, नवीनता को अंगीकार किया जाए पर भारतीयता के साथ अच्छी लोकमान्यताएँ विस्मृत नहीं होनी चाहिए।

इन श्रेष्ठ स्मारकों को प्रस्तुत करते हुए कवि स्मरण कराता है, कि स्त्री माता-समान है, सद्गुरु परमेश्वर-तुल्य है, शिष्य पुत्र-तुल्य है, गाय और सर्प की पूजा-परम्परा जीवित रखनी चाहिए। नीलकण्ठ का दर्शन विजयादशमी के दिन मंगलदायक है और कुम्भ पर्व के अवसर पर परस्पर में सम्मिलन सर्वदा होना चाहिए। ये सभी लघु मन्त्र हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति संश्लिष्ट बनी हुई है और प्रकृतिहित-रक्षणरूप कार्य स्वतः सिद्ध होता आ रहा है। इसीलिए आज भी अपनी गुणवत्ता से यहाँ की तपःपूत धर्मरक्षित धरा दूसरों को भी आकृष्ट करती है। इन विषयों को प्रसाद शैली में स्मरण कराने वाली सूक्तियों को देखें-

धेनुनागौ सुपूज्यौ हि यद्भारते

नीलकण्ठो विहंगश्च सम्मान्यते।

भारतं सादरं तन्नमामो वयं

सर्वदा कुम्भपर्व प्रतिष्ठाप्यते॥

वर्तमान में सम्पूर्ण संसार में प्रकृतिहित-रक्षण के लिए अथवा पर्यावरण संरक्षण के लिए अत्यधिक जो चर्चाएँ हो रही हैं, वह कोई नयी नहीं है, क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से ही इनके वर्णन एवं संरक्षण में वेद व उपनिषद् पुराण तथा समग्र प्राचीन एवं अर्वाचीन संस्कृत साहित्य सर्वदा ही तत्पर हैं। इसीलिए हमारे शास्त्रों में वर्णाश्रम व्यवस्था के माध्यम से प्रत्येक प्राणी के लिए शास्त्र विहित कार्य

सुनिश्चित किये गये हैं। मानव के सर्वविध कल्याण के लिए भारतीय प्राच्य विद्याओं में वनौषधियों, वृक्षों नदी-नद पर्वतों एवं वन्य-प्राणियों की अनिवार्यता तथा उनकी सुरक्षा के उपाय भी प्रचुरता से समुपदिष्ट हैं। वस्तुतः विचार करने पर यह सुस्पष्ट प्रतीत होता है, कि इस प्रकार का प्रदूषित वातावरण पहले नहीं था, क्योंकि सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचनारूप मनुष्य अपने आचार-विचारों से और अपने आहार-व्यवहार से समस्त मानसिक शारीरिक एवं वाचिक क्रिया-कलापों पर नियन्त्रण रखता हुआ अपने आस-पास स्थित स्थावर-जंगम पदार्थों की सुरक्षा हेतु प्रयत्नशील रहता था, वैसे ही पर्यावरण संस्थापन की सर्वाधिक क्षमता मनुष्यों में ही थी, किन्तु आज भौतिकवादी आधुनिक युग में मनुष्य विविध प्रकार की सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के संसाधनों के एकत्रीकरण की प्रवृत्ति से अपने पार्श्वस्थित प्राणियों एवं अन्य बहुमूल्य पदार्थों की उपेक्षा कर अपने आध्यात्मिक जीवन को सर्वथा विस्मृत करता जा रहा है, जिसके कारण बाह्य पांचभौतिक पदार्थों से सुसम्पन्न व्यक्ति भी मानसिक रूप से एवं चारित्रिक दृष्टि से अधःपतन की ओर उन्मुख होते दिख रहे हैं। आज हम इस प्रकार के विषाक्त तत्त्वों से घिरते जा रहे हैं, कि प्रतिक्षण हमें सावधान किया जा रहा है।

प्राच्य विद्याओं में प्रकृतिहितरक्षण एवं पर्यावरण की परिशुद्धि के लिए वर्णित उपायों की उदासीन प्रवृत्ति के कारण ही आज इस प्रकार की भयावह एवं दुःखद स्थिति समुत्पन्न हुई है। हमारे शास्त्रों में तो सुरभि वनवातों से स्वच्छ शीतल जल से सुस्वादु एवं स्निग्ध-हृद्य आहारों से एवं कर्णप्रिय सन्तुलित ध्वनियों से समस्त जन-जीवन और लोक-चरित के संरक्षार्थ अनेक दृष्टान्तों द्वारा बहुविध उपदेश तथा अनेकविध मार्ग निर्दिष्ट हैं, किन्तु उन्हें अन्धानुकरण एवं अनुपयोगी कहकर जिस परम्परा की उपेक्षा आधुनिक वैज्ञानिक करते थे, वे ही आज प्राच्य-विद्या एवं प्राचीन परम्परा को लेकर प्रकृतिहितरक्षण एवं पर्यावरण संरक्षण की चर्चा जब सर्वत्र करते हैं, तब हम सब भी जागरूक होने लगते हैं। वर्तमान में विद्युत् एवं तैल से संचालित अनेक प्रकार के प्रौद्योगिक यन्त्रों एवं परिवहनों से निर्गत होने वाले प्रदूषित धूम द्वारा प्राकृतिक वायु प्रायः दुर्लभ हो गया है। पृथ्वी के निरन्तर सन्दोहन एवं समुत्खनन से उसके अन्तःस्थल में स्थित निर्मल जल-धारा प्रदूषित होती जा रही है। सम्मिश्रित खाद्य पदार्थों से चतुर्विध भोज्य पदार्थ भी सम्प्रति स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता जा रहा है। अत्यधिक जनसम्मर्द एवं कर्कशध्वनिविस्तारक यन्त्रों से अर्थात् सर्वत्र प्रसृत व्यर्थ कोलाहलों से ध्वनिप्रदूषण आज निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इसलिए हमारे शास्त्रों में सभी प्रकार के स्थावर जंगम पदार्थों के परिरक्षण एवं परिशुद्धि के लिए वृक्ष, पर्वत, नदी-नद, पशु-पक्षी तथा अन्य पदार्थों की पूजा अनेक अवसरों पर विविध महोत्सवों के माध्यम से की जाती है।

''राजा कालस्य कारणम्'' इस उक्ति के अनुसार राजा के विचार आचार के द्वारा एवं शासन-पद्धति से ही प्रजाजन का आहार-विहार नियन्त्रित होता है, क्योंकि अपने शासन काल में राष्ट्रनायक ही प्रजाओं के लिए आदर्शभूत होता है। इससे स्पष्ट होता है, कि बाह्य एवं आभ्यन्तर तत्त्वों के संरक्षणार्थ न केवल वर्तमान में अपितु सर्वदा ही मानवों के आध्यात्मिक जीवन की महत्ता को स्वीकारना पड़ेगा, तभी हम सम्यक्रूप से प्रकृतिहितरक्षण में सफल हो पायेंगे।

वस्तुतः सम्पूर्ण मानव-मन सुख शान्ति के लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहता है, इसके लिए सत्यमय जीवन आवश्यक है, क्योंकि सत्य-अहिंसा-अस्तेय ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह- ये पांच योगदर्शन में यम कहे गये हैं, जिनका अनुपालन समस्त विश्व-मानव को करना चाहिए, मानव जीवन को पवित्र करने के लिए त्याग, तपस्या एवं तपोबल के महत्त्व को अंगीकार करने वाले दिलीप, रघु आदि अनेक अनुकरणीय राजाओं तथा वाल्मीकि, वशिष्ठ, कण्व आदि ऋषियों की जीवनचर्या का ज्ञान भी प्रकृतिहित-संरक्षण के लिए आवश्यक है। आज ऐसे संयम-धनी और सुन्दर मन वाले लोगों का ऐसा शंखनाद हो, जो नाद न केवल इस भव्य-भारत राष्ट्र को अपितु सम्पूर्ण विश्व को भी कृत्रिम भावों से हटाकर सहज भाव को स्वीकारकर सुखमय जीवन के लिए लोगों को सच्ची प्रेरणा दे। इसके लिए हमारे प्राचीन शास्त्र ही देशकाल एवं पात्र के अनुसार कर्तव्य एवं अकर्तव्य कर्म का ज्ञान कराकर हम लोगों को नियत कर्म में सम्प्रेरित करेंगे। इसीलिए भारतीय वैदिक वैज्ञानिकों ने यज्ञोत्पन्न धूमविज्ञान के माध्यम से शुद्ध वायु द्वारा भूमण्डल के सम्पूर्ण जीवों एवं वनस्पतियों, अग्नि, जल एवं स्थल की रक्षा के लिए तथा प्रदूषित वातावरण के परिशोधन के लिए घर-घर में यज्ञ की उपादेयता प्रदर्शित की है। वर्तमान में प्रायः समस्त मानव अपनी सुखसमृद्धि के लिए पर्वत एवं वृक्षों के उच्छेदन से नदी-नदों के प्रवाहों को बांधने से पशु-पक्षि मृगादि जीवों के हनन से अहर्निश नैसर्गिकी सुषमा को विनष्ट कर रहा है।वस्तुतः वर्तुलाकार यह भूमण्डल सभी ओर से आवरणों द्वारा आच्छादित है। जिस प्रकार सुन्दर वस्त्रों से आवृत्त शरीर सुशोभित होता है वैसे ही पर्यावरण से आरक्षित यह संसार भी सुन्दर लगता है। इस समय भूमण्डल पर भूमि के कम्पन से धन-जन आदि की महती क्षति हो रही है, जिसकी अनुभूति हम सबको हो रही है, किन्तु भूकम्प आदि उत्पातों की स्थिति बार-बार क्यों आती हैं इस पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि हमारे शास्त्र में पृथ्वी की परिभाषा ''तत्र गन्धवती पृथिवी'' कही गयी है जो प्रशस्त एवं नैकविध गन्धों वाली है जो गन्ध निरन्तर उससे (पृथ्वी) निःसृत होती रहती है।गन्ध और वायु के निःसरण और ग्रहण के लिए जिस प्रकार शरीर के अंगों में नौ द्वार निर्मित हैं, उसी प्रकार विश्व को भरण पोषण करने वाली और आठ वसुओं को धारण करने वाली वसुन्धरा के भी अंगों में बहुविध प्राकृतिक छिद्र होते हैं, जिनके माध्यम से हम लोगों की यह भूमि माता गन्धों का परित्याग एवं ग्रहण करती है तथा वह उन छिद्रों से ही अपने जीवन के लिए और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने अन्दर स्थित चराचरों के एवं अपने बाहर स्थित जड़-चेतनों के सम्यक् उत्पत्ति के लिए और उनके संपोषण के लिए निरन्तर वायु,

जल, आतप आदि अपनी अभीष्ट वस्तुओं को ग्रहण करती है। इस प्रकार स्वल्प आदान और बहु प्रदान ही माता की तरह इस पृथिवी का स्वभाव निसर्गतः सिद्ध है, किन्तु आज भगवती विश्वम्भरा माता के गोद में क्रीडन करते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले उसके पुत्र मानव जब बहुविध पदार्थो को प्राप्त करने के लिए उसी माँ भूमि का निरन्तर खनन करते हैं, उसके ऊपर नैकविध महोच्च भवनादि के निर्माण से उसको पीड़ित करते हैं तथा उसके जीवनाधायक छिद्रों को बन्द करते हैं, तब न चाहती हुई भी पीड़िता भयत्रस्ता वह केवल कातर दृष्टि से आत्मरक्षा के लिए उच्छ्वास लेती है, तो उसके अंगो में तीव्र कम्प होता है, जिसके कारण उसके ऊपर आश्रित स्थावर एवं जंगम पदार्थों का बहुत बड़ा विनाश होता है, जिसे अद्यावधि बुद्धिबल, धनबल एवं जनबल भी नहीं रोक पाता है। भूकम्प होने का यही मुख्य कारण परिलक्षित होता है। वस्तुतः पृथ्वी माता अथवा प्रकृति का इस तरह के प्राकृतिक विनाश में कोई दोष नहीं है, क्योंकि संसार में समस्त संसरणशील जड़ एवं चेतन पदार्थ अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अहर्निश जागरूक दिखते हैं, किन्तु जहाँ गन्ध वाली पृथ्वी के सम्पूर्ण छिद्र विशाल भवनों द्वारा तथा अनेक प्रकार के आधुनिक यन्त्रादि द्वारा आच्छादित कर दिये जाते हैं, वहीं पर प्रायः इस प्रकार की विनाशलीला होती है; क्योंकि वहाँ की भूमि-माता की वेदना असह्य हो जाती है यह विश्वम्भरा माँ कभी भी और किसी प्रकार से भी अपने पुत्रों को दुःखित एवं पीड़ित करने की कल्पना भी नहीं करती। भूमि के खनन, परमाणु आदि विस्फोटक पदार्थों के तीव्राघातों से उत्पीड़न तथा उन स्थानों पर भवनादि का निर्माण सभी लोग सम्पन्न करते हैं, परन्तु इस भूमि माता का संरक्षण कैसे हो इस विषय में कभी कोई विचार भी नहीं करता। इसीलिए हमारे पूर्वज ऋषियों से परम्परा-प्राप्त स्वस्तिवाक् (कल्याणमयी वाणी) का पाठ हम लोग समस्त मंगल कार्यों के आरम्भ में करते हैं, जो इस प्रकार है-

'ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँशान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरोषधयःशान्तिः व्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिःसर्व्वँशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।[8]'

अर्थात् इस राष्ट्रिय वैदिक मन्त्र द्वारा आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधी, वनस्पति, सम्पूर्ण देव, ब्रह्म, समस्त चराचर जगत् एवं शान्ति की भी शान्ति-कामना की भावना अभिव्यक्त की गयी है; जिस शान्ति के माध्यम से हम समस्त स्थावर-जंगम भी शान्त और सुखी होते हैं- क्योंकि मन्त्रोक्त सभी पदार्थों के अशान्त होने पर प्रकृति में भी अशान्ति उत्पन्न होती है और प्रकृति के अशान्त होने पर हम लोग भी अशान्त होने लगते हैं। इसीलिए इन बातों पर विचार करके ही भारतीय संस्कृति एवं प्राच्य विद्याओं में सर्वप्रथम उपर्युक्त आधारभूत तत्त्वों की शान्ति के लिए प्रत्येक कर्म में स्वस्तिवाचन की परम्परा अद्यतन भौतिकवादी आधुनिक समय में भी सुस्थिर है।

विशेष धातव्य यह भी है कि विश्वविधाता ब्रह्मा ने जब सृष्टि क्रम में सर्वश्रेष्ठ रचना रूप प्रजाओं की रचना का आरम्भ किया, तो प्रकृतिहित संरक्षण के लिए ही साथ-साथ यज्ञों की संरचना भी की।वे जानते थे कि ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। अर्थात् इन दोनों के साहचर्य के बिना प्रकृति यानि प्रजाओं एवं पंचमहाभूतों की संरक्षा कथमपि सम्भव नहीं है एक दूसरे को आदान-प्रदान रूप यज्ञ सर्वदा होता रहे। इसीलिए शास्त्रों में विशेष रूप से मानव जीवन की ऐहलौकिक एवं पारलौकिक अभ्युन्नति के लिए अनेक विध यज्ञों के आयोजन का विधान किया तथा उनके स्वरूप वैविध्य का विशद विवेचन भी किया। इससे सुस्पष्ट होता है कि मानवों का समग्र जीवन ही यज्ञमय है। यज्ञ का सम्बन्ध देवता की अर्चना से और मनुष्यों के एकत्रीकरण से एवं विद्या-धनादि विविध पदार्थों के दान से है, क्योंकि यज्ञ में देवपूजा के माध्यम से समाज के अनेक प्रकार के लोगों का सम्मिलन होता है और उनमें त्यागपूर्वक जीवनयापन की भावना जागृत होती है इसलिए हमारे दैनिक कार्यों में प्रतिपद यज्ञ की आवश्यकता होती है। आज आधुनिक युग में भी यदि सम्पूर्णकार्य यज्ञ स्वरूप मानकर किया जाय तो वही कर्म कर्मयोग हो जाये। इसीलिए तो योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मफल में आसक्ति को छोड़कर यज्ञ निमित्त कर्म करने के लिए अर्जुन को समुपदेश दिया है। यज्ञीय भावना समुत्पन्न कर उसे सुदृढ़ करने के लिए ही सम्पूर्ण मानव मात्र की शान्तसुखमय लोक-यात्रा को सम्पन्न कराने वाले व्यवहार शास्त्र (मनुस्मृति) के रचयिता महर्षि मनु ने प्रत्येक सद्गृहस्थ के लिए प्रतिदिन पाँच महायज्ञों के अनुष्ठान को आवश्यक बताया, क्योंकि कर्मयोगी गृहस्थों के गृह में चूल्हा चक्की आदि पञ्च उपकरणों के कारण जीव-हिंसा अहर्निश होती है, उनका प्रायश्चित क्रमशः अध्यापन, तर्पण, आहुति भूतों के लिए बलिदान एवं अतिथि पूजन से होता है। ये पांच यज्ञ करणीय हैं, अध्यापन अर्थात् विद्यादान अथवा ज्ञानदान को ब्रह्मयज्ञ कहा गया है और श्राद्ध-तर्पण आदि कर्म को पितृयज्ञ कहा गया है। होम या आहुति का तात्पर्य यह है कि देवों के लिए पुरोडाश आदि हव्य पदार्थों का अग्नि में श्रद्धापूर्वक समर्पण करें, इसी को देवयज्ञ कहा गया है और भोजन करने से पूर्व प्राणियों के लिए भोज्य पदार्थों का किञ्चित् अंश का परित्याग ही भूतयज्ञ कहा गया है तथा भोजन के अवसर पर पूर्व सूचना दिये बिना घर में आये हुए अतिथियों को सम्मानपूर्वक भोजन कराना ही मनुष्य यज्ञ माना जाता है। इन पांच प्रकार के यज्ञों के माध्यम से क्रमशः लोक, पितर, देव, भूत एवं अतिथि को सन्तुष्ट करके सद्गृहस्थों को भोजन करने का निर्देश है, ये पांच यज्ञ प्रतिदिन होते हैं इसीलिए ये महायज्ञ कहलाते हैं।

सम्प्रति विश्व-मानव के समाज में इन यज्ञों की न्यूनता के कारण ही सर्वत्र प्रकृति-हित-संसाधन का संरक्षण नहीं हो पा रहा है।

मानव जीवन में यह यज्ञ सदैव व्याप्त होना चाहिए। यह यज्ञ न केवल मानव करते हैं, अपितु सम्पूर्ण प्रकृति में भी अहर्निश स्वाभाविक यज्ञ होता रहता है, क्योंकि यह जगत् अग्निषोमात्मक है। अग्नि में सोम तत्त्व की आहुति प्रतिदिन निरन्तर होती है, जिससे संसार के सभी पदार्थ उत्पन्न होते हैं। प्रकृति यज्ञ के क्रम में सोमतत्त्व अन्तरिक्ष में व्याप्त रहता है तथा सूर्य प्रकाश के संघर्ष से वह सोम तत्त्व प्रज्वलित होता है। इसीलिए हम सभी को यह प्रकाश उपलब्ध होता है। तैल आदि पदार्थो में भी सोम तत्त्व की जितनी मात्रा व्याप्त रहती है, वही अग्नि के संयोग से प्रदीप्त होकर दीपक आदि के माध्यम से हमें प्रकाश देती है उसी सोम तत्त्व की आहुति पार्थिव अग्नि में सम्पन्न होती है, जिसके द्वारा सभी प्रकार के बीजों का अंकुरण होता है तत्पश्चात् वे अंकुर सूर्य के आकर्षण रूप यज्ञ के द्वारा निरन्तर बढ़ते हैं और अंकुर में सोमतत्व का जो अंश है, उसको सूर्य अपनी किरणों के माध्यम से सम्यक् आकृष्ट करता है, जिससे अंकुर बढ़कर परिपक्व होने पर परिणाम रूप में हम लोगों को अन्न देते हैं। इसलिए सोमतत्त्व ही सूर्य के प्रकाशों में विद्यमान अग्नि का अन्न है। यह प्राकृतिक यज्ञ जीवन में प्रतिदिन होता रहता है, जिससे प्राणियों के दैनिक जीवन एवं उसके समस्त कृत्य सर्वदा व्यवस्थित होते हैं, इस प्रकार यह सुस्पष्ट होता है कि प्रकृति-हित-संरक्षण के लिए आधुनिक वर्तमान युग में भी बाल्यावस्था से शिक्षा संस्कारादि के द्वारा यज्ञ की महत्ता को प्रचारित प्रसारित किया जाय।

संदर्भ-ग्रन्थसूची-

1. वाल्मीकि रामायण बाल काण्ड 1/20
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7/35
3. सांख्यकारिका श्लोक 3
4. गीता अध्याय18 श्लोक 59
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंक4श्लोक 9
6. राष्ट्रगौरवम्, श्लोक 23
7. राष्ट्रगौरवम्, श्लोक 24
8. राष्ट्रोत्कर्ष-विमर्श, पर्यावरण-संरक्षण

●

वाकाटक राजवंश के ताम्रपत्रों एवं पाषाण अभिलेखों में उत्कीर्ण लिपि का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. विनिता अजातशत्रु तोलानी एवं प्रो. मीना लाल***

दक्षिण भारत की महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में प्रसिद्ध वाकाटक शासकों के सम्मिलित रूप से अब तक कुल 40 अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं, जिनका भौगोलिक विस्तार उत्तर में मध्य प्रदेश के पन्ना जिले (भूतपूर्व जसो राज्य)[1]से दक्षिण में उत्तरी कर्नाटक के बीदर जिले[2] तक तथा पूर्व में वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य के राजनांदगांव जिले[3] से पश्चिम में महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले[4] तक था। इन 40 अभिलेखों में से 31 ताम्रपत्र (सूची सं0 1) तथा 9 पाषाण अभिलेख (सूची सं0 2) हैं। स्पष्ट है कि वाकाटकों के ताम्रपत्र अधिक एवं पाषाणलेख संख्या में कम हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य वाकाटकों द्वारा अभिलेख लेखन के लिए प्रयुक्त आधार सामग्री में उत्कीर्ण अक्षरों की लिपिगत विशेषताओं का अध्ययन करने के साथ ही पाषाण सामग्री पर लेख लिखने से सम्बन्धित कठिनाइयों एवं ताम्रपत्रों पर लेख उत्कीर्ण करने से सम्बन्धित सकारात्मक परिस्थितियों का अध्ययन करना है।

सामान्य परिचय : लगभग 260 वर्षों (250 ई0 से 510 ई0) तक शासन करने वाले वाकाटक राजवंश के कुल 16 राजाओं के नाम साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक स्रोतों के माध्यम से ज्ञात होते हैं (जिनमें से मात्र 9 राजाओं के शासनकाल में लिखवाये गये अभिलेखों की जानकारी है)। इस राजवंश के विषय में अध्ययन सर्वप्रथम 1836 ई0 में प्रवरसेन द्वितीय के **सिवनी ताम्रपत्र** की खोज से आरम्भ हुआ।[5] इस ताम्रपत्र की प्राप्ति के बाद भी वाकाटक शासकों का कालक्रम विद्वानों के मध्य विवाद का विषय बना हुआ था। तदनन्तर 1912 ई0 में प्रभावती गुप्ता के **पूना ताम्रपत्र** की प्राप्ति से वाकाटकों का काल निर्धारित करने में सहायता मिली।[6] यह ताम्रपत्र वाकाटकों की नन्दिवर्धन शाखा के शासक रुद्रसेन द्वितीय की पटरानी एवं गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावतीगुप्ता से सम्बन्धित है। तत्पश्चात् सन् 1939 ई0 में महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र के अकोला जिले में वाशीम ग्राम से विन्ध्यशक्ति द्वितीय का **वाशीम ताम्रपत्र** प्राप्त हुआ[7] जिससे वाकाटक राजवंश के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। वाशीम ताम्रपत्र की प्राप्ति के पूर्व तक विद्वानों का यह मानना था कि वाकाटक राजवंश अपने अन्तिम काल तक अविभाजित रहा। परन्तु इस ताम्रपत्र की विषयवस्तु से यह ज्ञात हुआ कि वे दो शाखाओं में विभाजित थे।

वाकाटकों के अधिकांश अभिलेख पेटिका-शीर्ष लिपि में उत्कीर्ण किये गये हैं। इन सभी वाकाटक अभिलेखों में प्रभावतीगुप्ता के पूना ताम्रपत्र[8] एवं उसके पुत्र प्रवरसेन द्वितीय के काल में लिखवाये गये रामटेक शिलालेख[9] को छोड़कर शेष सभी अभिलेख वाकाटक काल में प्रचलित पेटिका-शीर्ष लिपि में लिखवाये गये हैं।

इस लिपि की यह विशेषता है कि इसके अक्षरों के शिरोभाग पर बायीं ओर को एक पेटिका बनी हुई है, जो भीतर से अधिकांशतः रिक्त तथा कभी-कभी ठोस रूप में भी प्राप्त होती है। इसके अक्षरों की लम्बाई अधिक और चौड़ाई कम है तथा इसके शीर्ष अधिकांशतः वर्गाकार एवं यदा-कदा आयताकार भी मिलते हैं। यह लिपि चतुर्थ शताब्दी ई0 से आठवीं-नौवीं शताब्दी ई0 के मध्य वाकाटकों, कुछ समय के लिए गुप्तों, शरभपुरीय, पाण्डुवंशी शासकों, नल, पूर्वी गंगों, माठरों तथा कुछ कदम्बों एवं पल्लवों के अभिलेखों में देखने को मिलती है।[10] इन सभी राजवंशों में से वाकाटक शासकों के अभिलेखों में इस लिपि का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है जिसके कारण इस लिपि को **'वाकाटक लिपि'** के नाम से भी जाना जाता है। वाकाटकों के लगभग सभी अभिलेखों में अक्षरों के शीर्ष पर बायीं ओर को पेटिका-शीर्ष उत्कीर्ण किये जाने के कारण इसे **'वामपार्श्वी पेटिका-शीर्ष लिपि'** के नाम से अभिहित करना अधिक तर्कसंगत लगता है।

वाकाटकों ने अभिलेख लेखन के लिए मुख्य रूप से दो उपादानों को आधार बनाया :**अ)** धातु एवं **ब)** पाषाण।

अ) धातु : इसके अन्तर्गत ताम्रपत्रों को रखा गया है। वाकाटक शासकों ने बड़ी संख्या में ग्रामदान दिये एवं दान में दी गई भूमि अथवा ग्राम को प्रमाणिक बनाने के उद्देश्य से ताम्रपत्रों को जारी किया। इस प्रकार इन ताम्रपत्रों का प्रयोग दानग्राही के द्वारा प्रमाण पत्र के रूप में किया जाता था। ये दस्तावेज वास्तविक दस्तावेज नहीं होते थे, अपितु ये राजशासन अथवा राजकीय अधिकार-पत्र का प्रतिरूप मात्र होते थे। इसकी मूल प्रति को राजकीय कार्यालय में ही रखा जाता था। शासक द्वारा दिये गये दान का प्रारूप सर्वप्रथम वहन योग्य ताड़पत्रों पर लिखा जाता था। प्रत्येक पत्र में कुछ ही पंक्तियाँ होती थीं। सम्बन्धित अधिकारी वर्ग द्वारा इसे अनुमोदित किये जाने के पश्चात् ये मूलप्रति उत्कीर्णक को सौंप दी जाती थी जो निर्दिष्ट ताम्रपत्रों पर इसे उत्कीर्ण कर इसका प्रतिरूप तैयार करता था।

ब) पाषाण : ताम्रपत्रों के अतिरिक्त वाकाटक शासकों ने शिलाओं एवं गुहाओं पर भी अपने लेख उत्कीर्ण करवाये। परन्तु इनकी संख्या ताम्रपत्रों की अपेक्षा बहुत कम है। यह स्वाभाविक भी

* पूर्व शोध छात्रा, प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** प्रोफेसर, प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्त्व विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

है क्योंकि धातु की अपेक्षा पाषाण पर लेख उत्कीर्ण करवाना अपेक्षाकृत एक कठिन कार्य था। धातु की तुलना में पाषाण की सतह इस योग्य नहीं होती थी कि इस पर आसानी से लेख उत्कीर्ण किया जा सके। इन पर लेख उत्कीर्ण करने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता होगा और उसके बाद भी इन पर उत्कीर्ण किये गये अक्षर धातु पर उत्कीर्ण किये गये अक्षरों की तुलना में इतने स्पष्ट और सुन्दर भी नहीं बन पाते थे। सामान्यतः इन पाषाण निर्मित शिलाओं एवं गुहाओं पर लेख उत्कीर्ण करवाने का उद्देश्य किसी धार्मिक अथवा जनकल्याणकारी कार्य को लेखबद्ध कराना होता था। यह धार्मिक कृत्य कभी-कभी स्वयं राजा द्वारा अथवा कभी-कभी उनके सामन्तों, सचिवों एवं माण्डलिकों के द्वारा भी किये जाते थे, यथा किसी मन्दिर अथवा देवालय का निर्माण, किसी बाँध अथवा झील का निर्माण, विहार-गुहा खुदवाना, गन्धकुटी खुदवाना, गुहादान करना आदि।

ताम्रपत्रों एवं पाषाणलेखों की विषयवस्तु एवं उनके प्रयोग को जानने के पश्चात् यह जानना आवश्यक है कि ऐसे क्या कारण थे कि वाकाटक शासनकाल में ताम्रपत्रों का प्रयोग अधिक एवं पाषाणलेखों का प्रयोग कम किया गया है-

प्रथमतः ताम्रपत्रों पर लेख उत्कीर्ण करना एक सहज कार्य था, जबकि पाषाण पर लेख उत्कीर्ण करवाना अपेक्षाकृत दुष्कर कार्य था। द्वितीयतः ताम्रपत्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक वहन करना आसान था, जबकि पाषाण सामग्री इस योग्य नहीं होती थी। तृतीयतः जब किसी व्यक्ति विशेष को दान दिया जाता है तो ताम्रपत्र पर उसे उत्कीर्ण करवा कर उसे जारी करना एवं उसकी प्रतिलिपि दानग्राही को सौंपना सहज था जिसे वह जीवनपर्यंत अपने साथ रख सकता था। वहीं पाषाण का प्रयोग अभिलेख लेखन के लिए तब किया गया है जब दिया जाने वाले दान सर्वजन के कल्याण की दृष्टि से अथवा किसी धार्मिक समुदाय के कल्याणार्थ दिया गया हो।

आधार सामग्री में अन्तर का प्रभाव अक्षरों के आकार प्रकार पर पड़ता है। पाषाण पर लेखन कार्य की असहजता का एक स्पष्ट प्रमाण व्याघ्रदेव का नचना शिलालेख है।[11] इस शिला पर एक ही लेख को दो बार दो भिन्न-भिन्न छोरों पर उत्कीर्ण किया गया है। इनमें भी प्रथम लेख अपूर्ण है। इसके अपूर्ण होने का कारण शिलाखण्ड के उस भाग का असपाट होना प्रतीत होता है। सम्भवतः इसी कारण से इस लेख को उस शिला के दूसरे छोर पर पुनः आरम्भ करके पूर्ण किया गया है।[12]

वाकाटक अभिलेखों की उपादानगत भिन्नता के विषय में जानने के पश्चात् अब हम ताम्रपत्रों एवं पाषाणलेखों में मिलने वाले अक्षरों के भिन्न-भिन्न स्वरूपों का तुलनात्मक अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत करेंगे-

पेटिका-शीर्ष

- पाषाण लेखों में पेटिका-शीर्ष का वर्गाकार अथवा आयताकार स्वरूप बहुत स्पष्ट नहीं है जबकि ताम्रपत्रों में अधिकांशतः इसे सुन्दर एवं स्पष्ट ढंग से बनाया गया है-

पाषाणलेख	ताम्रपत्र
त	
 21वीं पं0 अजन्ता की सत्रहवीं गुहा का लेख	 44वीं पं0,16वाँ अक्षर पृथिवीषेण द्वितीय का महुर्झरी ताम्रपत्र

- नन्दिवर्धन शाखा के आरम्भिक पाषाण लेखों में पेटिका-शीर्ष को अक्षर के बायीं ओर बनाने के साथ ही कुछ स्थानों पर उसके दाहिनी ओर को भी बनाया गया है-

	गंज शिलालेख
त	 तृतीय पं0, 10वाँ अक्षर

- दानी ने पेटिका-शीर्ष को दो उपप्रकारों- 1) रिक्त वर्गाकार पेटिका-शीर्ष एवं 2) ठोस वर्गाकार पेटिका-शीर्ष में विभाजित किया है।[13] वाकाटकों के ताम्रपत्रों में अधिकांशतः रिक्त वर्गाकार पेटिका-शीर्ष का एवं पाषाणलेखों में अधिकांशतः ठोस वर्गाकार पेटिका-शीर्ष का प्रयोग किया गया है[14]-

पाषाण अभिलेख	ताम्रपत्र
ठोस वर्गाकार पेटिका-शीर्ष	**रिक्त वर्गाकार पेटिका-शीर्ष**
 म अजन्ता की सोलहवीं गुहा का लेख 15वीं पं0	 क पृथिवीषेण द्वितीय का माण्ढळ ताम्रपत्र 39वीं पं0, 22वाँ अक्षर

अक्षर-आकार

- पाषाण लेखों की तुलना में ताम्रपत्रों के लेख अधिक स्पष्ट एवं सुन्दर हैं। इनमें प्रयुक्त शैली को सहजता से पहचाना जा सकता है, परन्तु पाषाण की सतह के सपाट न होने के कारण अक्षरों की

स्वरूपगत भिन्नता को चिह्नित कर पाना कठिन है। उदाहरणार्थ कभी-कभी एक ही ताम्रपत्र में समान अक्षर को अक्षर रचना की तीनों शैलियों में उत्कीर्ण किया गया है-

पृथिवीषेण द्वितीय के बालाघाट ताम्रपत्र में अक्षर रचना शैली		
प		
कोणीय शैली	**प्रवाही शैली**	**मिश्रित शैली**
 21वीं पं0, 8वाँ अक्षर	 7वीं पं0, 9वाँ अक्षर	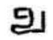 27वीं पं0, चतुर्थ अक्षर

इसके विपरीत पाषाणलेखों में लेखन कार्य असहज होने के कारण अक्षरों की शैलीगत भिन्नता को चिह्नित कर पाना प्रायः दुःसाध्य है-

देवसेन का हिस्से-बोराला शिलाफलक लेख	
प	**व**
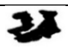 तृतीय पं0, 8वाँ अक्षर	 तृतीय पं0 33वाँ अक्षर

- पाषाण अभिलेखों में मिलने वाले त अक्षर का प्रकार सामान्यतः वाकाटक ताम्रपत्रों में नहीं मिलता।[15] वाकाटक ताम्रपत्रों में इसे भिन्न प्रकार से उत्कीर्ण किया गया है-

पाषाण अभिलेख	**ताम्रपत्र**
त	
 देवसेन का हिस्से-बोराला शिलाफलक लेख प्रथम पं0, चतुर्थ अक्षर	 प्रवरसेन द्वितीय का माण्ढळ ताम्रपत्र 20वीं पं0, तृतीय अक्षर

- पाषाण अभिलेखों में अधिकांशतः व अक्षर का त्रिकोणात्मक स्वरूप मिलता है एवं ताम्रपत्रों में अधिकांशतः इसका समकोण स्वरूप ही मिलता है।[16]

पाषाण अभिलेख	**ताम्रपत्र**
व	
 रुद्रसेन प्रथम का देवटेक शिलालेख तृतीय पं0	 प्रवरसेन द्वितीय का जांब ताम्रपत्र 16वीं पं0, 21वाँ अक्षर

- सामान्यतः वाकाटक ताम्रपत्रों में ग एवं श अक्षर के साथ पेटिका-शीर्ष उत्कीर्ण किया गया है। परन्तु पाषाणलेखों में इनके साथ पेटिका-शीर्ष नहीं मिलता।

पाषाण अभिलेख	**ताम्रपत्र**
पेटिका-शीर्ष रहित	**पेटिका-शीर्ष सहित**
 ग अजन्ता की सोलहवीं गुहा का लेख 12वीं पं0	 ग प्रवरसेन द्वितीय का जांब ताम्रपत्र 30वीं पं0, 16वाँ अक्षर
 श अजन्ता की सोलहवीं गुहा का लेख 27वीं पं0	 श प्रवरसेन द्वितीय का माण्ढळ ताम्रपत्र 36वीं पं0, 9वाँ अक्षर

- पाषाण अभिलेखों में न का फन्दाकार प्रकार ही मिलता है, नागरी प्रकार नहीं मिलता, जबकि ताम्रपत्रों में इसके फन्दाकार प्रकार (सर्वाधिक प्रचलित प्रकार) के साथ ही कुछ स्थानों पर इसका नागरी प्रकार भी मिलता है।

पाषाण अभिलेख	**ताम्रपत्र**	
न		
फन्दाकार प्रकार	**फन्दाकार प्रकार**	**नागरी प्रकार**
 देवसेन का हिस्से-बोराला शिलाफलक लेख द्वितीय पं0, 13वाँ अक्षर	 प्रवरसेन द्वितीय का यवतमाल ताम्रपत्र 17वीं पं0 12वाँ अक्षर	 प्रवरसेन द्वितीय का पट्टन ताम्रपत्र 34वीं पं0, 13वाँ अक्षर

मात्राओं के आकार-प्रकार

- वाकाटक ताम्रपत्रों में म अक्षर के साथ ह्रस्व इ की मात्रा को एक ओर ही प्रदर्शित किया गया है अर्थात् या तो बायीं ओर की लम्ब रेखा के शीर्ष पर अथवा दाहिनी ओर की लम्ब रेखा के शीर्ष पर, परन्तु हिस्से-बोराला शिलाफलक लेख में इसे दोनों लम्ब रेखाओं को स्पर्श करते हुए उत्कीर्ण किया गया है-

ह्रस्व इ की मात्रा	देवसेन का हिस्से-बोराला शिलाफलक लेख
मि	 द्वितीय पं0, 9वाँ अक्षर

संयुक्ताक्षर निर्माण पद्धति

- यद्यपि संयुक्ताक्षरों को उनके समान उच्चारित क्रम में एक के नीचे एक उत्कीर्ण किया गया है, परन्तु पाषाण अभिलेखों में प्रायः इन्हें इनके समान अनुपात में उत्कीर्ण नहीं किया गया है। कभी इनका आकार सामान्य से बड़ा एवं कभी सामान्य से छोटा है, जबकि ताम्रपत्रों में इन्हें समुचित अनुपात में उत्कीर्ण करने का प्रयास किया गया है। यथा-

पाषाणलेख	ताम्रपत्र
 स्था रुद्रसेन प्रथम का देवटेक शिलालेख 5वीं पं0	 क्त पृथिवीषेण द्वितीय का बालाघाट ताम्रपत्र 6वीं पं0, 5वाँ अक्षर

निष्कर्ष

निष्कर्षरूप में हम यह कह सकते हैं कि सम्भवतः ताम्रपत्रों एवं पाषाण सामग्री पर लेख लिखने वाले लेखकों के दो भिन्न-भिन्न वर्ग थे। उपादानगत भिन्नता के कारण अक्षरों के स्वरूप, उसकी स्पष्टता में भिन्नता होना सहज था, वाकाटक अभिलेखों की लिपिगत विशेषताओं का अध्ययन करने के उपरान्त हम यह कह सकते हैं कि ताम्रपत्रों में कुछ अक्षरों को लेखक ने व्यक्तिगत अभिरुचि के फलस्वरूप नवीन रूप देने का प्रयास किया है, जबकि पाषाण अभिलेखों में इस प्रकार की नवीनता दिखायी नहीं देती।

आरम्भिक पाषाण लेखों में पेटिका-शीर्ष के भिन्न-भिन्न प्रकार यथा पेटिका-शीर्ष का कभी दाहिनी, कभी बायीं अथवा कभी अक्षर के मध्य भाग से उत्कीर्ण किया जाना। एक ही शिलालेख में कभी ठोस, कभी रिक्त पेटिकाओं का प्रयोग, कभी-कभी एक ही अक्षर में दो पेटिकाओं को कोरते हुए प्रथम पेटिका को ठोस तथा द्वितीय को रिक्त बनाना। अक्षरों को बनाते समय उनके उचित अनुपात को ध्यान में न रखना। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आरम्भिक पाषाणलेखों को उत्कीर्ण करने के समय तक वाकाटक राजवंश के अक्षरों का मानक आकार निर्धारित नहीं हुआ था अथवा यह भी सम्भव है कि आरम्भिक काल में पाषाण पर लेख लिखने वाले लेखकों का वर्ग इस लिपि के चिह्नों को उत्कीर्ण करने में उतना अभ्यस्त नहीं था। वहीं उत्तरवर्ती शासकों के काल में पाषाणलेखों में अक्षरों में इतनी अधिक विविधता दिखायी नहीं देती।

सूची सं0- 1 वाकाटक ताम्रपत्रों की सूची

क्र. सं.	दानदाता	प्राप्ति-स्थल	जारी करने का राज्यवर्ष	जारी करने का स्थान	सन्दर्भ-ग्रन्थ
1	पृथिवीषेण प्रथम	मोहला, जिला-राजनांदगांव, राज्य-छत्तीसगढ़	-	-	ए0इ0, जिल्द 22, पृ0 207-212, अभिलेख सं033
2	रुद्रसेन द्वितीय	माण्ढळ, जिला-नागपुर, राज्य-महाराष्ट्र	5वाँ राज्यवर्ष	-	ए0इ0, जिल्द 43, भाग-1, पृ0 5-15, अभिलेख सं02
3	प्रभावतीगुप्ता	पुने, जिला-पुने, राज्य-महाराष्ट्र	13वाँ राज्यवर्ष	नन्दिवर्धन, आधुनिक नगरधन	ए0इ0, जिल्द 15, पृ0 39-44, अभिलेख सं0 4
4	प्रवरसेन द्वितीय	जांब, जिला-वर्धा, राज्य-महाराष्ट्र	द्वितीय राज्यवर्ष	नन्दिवर्धन, आधुनिक नगरधन (जिला-नागपुर)	ए0इ0, जिल्द 26, पृ0 155-161, अभिलेख सं021
5-6	प्रवरसेन द्वितीय	बेलोरा, जिला-वर्धा, राज्य-महाराष्ट्र	11वाँ राज्यवर्ष	नन्दिवर्धन, आधुनिक नगरधन, (जिला-नागपुर)	का0इ0इ0, जिल्द 3, पृ0 16-21, अभिलेख सं0 4-5

7	प्रवरसेन द्वितीय	माण्ढळ, जिला-नागपुर, राज्य-महाराष्ट्र	16वाँ राज्यवर्ष	प्रवरपुर, आधुनिक पौनार (जिला-वर्धा) या मनसर (जिला-नागपुर)	ए0इ0, जिल्द 41, पृ0 68-76, अभिलेख सं0 9
8	प्रवरसेन द्वितीय	चम्मक, जिला-अमरावती राज्य-महाराष्ट्र	18वाँ राज्यवर्ष	प्रवरपुर, आधुनिक पौनार जिला-वर्धा) या मनसर (जिला-नागपुर)	का0इ0इ0, जिल्द 3, पृ0 235-243, अभिलेख सं0 6
9	प्रवरसेन द्वितीय	सिवनी, जिला-सिवनी, राज्य-मध्य प्रदेश	18वाँ राज्यवर्ष	सम्भवतः प्रवरपुर, आधुनिक पौनार (जिला-वर्धा) या मनसर (जिला-नागपुर)	का0इ0इ0, जिल्द 3, पृ0 243-249, अभिलेख सं0 7
10	प्रवरसेन द्वितीय	मसोद, जिला-नागपुर, राज्य-महाराष्ट्र	19वाँ राज्यवर्ष	-	जे0इ0एस0आई0, जिल्द 10, पृ0 108-116
11	प्रवरसेन द्वितीय जारीकर्ता-प्रभावतीगुप्ता	ऋद्धपुर, जिला-अमरावती, राज्य-महाराष्ट्र	19वाँ राज्यवर्ष	रामगिरीस्वामी की पादुका से (आधुनिक रामटेक नागपुर के समीप)	का0इ0इ0, जिल्द 5, पृ0 33-37, अभिलेख सं0 8
12	प्रवरसेन द्वितीय जारीकर्ता-प्रभावतीगुप्ता	मिरेगांव, जिला-भण्डारा, राज्य-महाराष्ट्र	20वाँ राज्यवर्ष	-	ए0बी0ओ0आर0आई0, जिल्द 81, पृ0 1-4
13	प्रवरसेन द्वितीय	जांब, (खाण्डवी) जिला-अहमदनगर राज्य-महाराष्ट्र	21वाँ राज्यवर्ष	भरितभटकस्थान, आधुनिक भरतवाड़ (जिला-नागपुर)	ए0बी0ओ0आर0आई0, जिल्द 91, पृ0 1-31
14	प्रवरसेन द्वितीय	इन्दौर, जिला-बालाघाट, राज्य-मध्य प्रदेश	23वाँ राज्यवर्ष	त्रिपुरी (त्रिपुरी वास्कट) अस्थायी आवास आधुनिक तेवर, जबलपुर के समीप	ए0इ0, जिल्द 24, पृ0 52-56, अभिलेख सं0 7
15	प्रवरसेन द्वितीय	दुदिया, जिला-छिंदवाड़ा, राज्य-मध्य प्रदेश	23वाँ राज्यवर्ष	प्रवरपुर, आधुनिक पौनार (जिला-वर्धा) या मनसर (जिला-नागपुर)	ए0इ0, जिल्द 3, पृ0 258-62, अभिलेख सं035
16	प्रवरसेन द्वितीय	तिरोडी, जिला-बालाघाट, राज्य-मध्य प्रदेश	23वाँ राज्यवर्ष	नरत्तंगवाड़ीस्थान	ए0इ0, जिल्द 22, पृ0 167-176, अभिलेख सं027
17	प्रवरसेन द्वितीय	वडगांव जिला-चन्द्रपुर, राज्य-महाराष्ट्र	25वाँ राज्यवर्ष	हिरण्य, अस्थायी आवास	ए0इ0, जिल्द 27, पृ0 74-79, अभिलेख सं0 16

18	प्रवरसेन द्वितीय	यवतमाल, जिला-यवतमाल राज्य-महाराष्ट्र	26वाँ राज्यवर्ष	-	ए0इ0, जिल्द 42, पृ0 30-34, अभिलेख सं0 3
19	प्रवरसेन द्वितीय	पट्टन, जिला-बैतूल राज्य-मध्य प्रदेश	27वाँ राज्यवर्ष	प्रवरपुर, आधुनिक पौनार (जिला-वर्धा) या मनसर (जिला-नागपुर)	ए0इ0, जिल्द 23, पृ0 81-88, अभिलेख सं0 14
20	प्रवरसेन द्वितीय	पाण्ढुर्णा (तीगांव), जिला-छिंदवाड़ा, राज्य-मध्य प्रदेश	29वाँ राज्यवर्ष	प्रवरेश्वर मन्दिर, (प्रवरेश्वर-देवकुलस्थान, मनसर) जिला-नागपुर	का0इ0इ0, जिल्द 5, पृ0 63-68, अभिलेख सं0 14
21	प्रवरसेन द्वितीय	पौनी, जिला-भण्डारा राज्य-महाराष्ट्र	32वाँ राज्यवर्ष	प्रवरपुर, आधुनिक मनसर, जिला-नागपुर	ए0इ0, जिल्द 38, भाग-2, पृ053-56, अभिलेख सं010
22	प्रवरसेन द्वितीय	बालाघाट/पटना संग्रहालय ताम्रपत्र, जिला-बालाघाट राज्य-मध्य प्रदेश	-	-	का0इ0इ0, जिल्द 5, पृ0 69-72, अभिलेख सं0 15
23	प्रवरसेन द्वितीय	रामटेक/मनसर, जिला-नागपुर राज्य-महाराष्ट्र	-	-	का0इ0इ0, जिल्द 5, पृ0 73-75, अभिलेख सं0 16
24	पृथिवीषेण द्वितीय	माण्ढळ, जिला-नागपुर, राज्य-महाराष्ट्र	द्वितीय राज्यवर्ष	रामगिरीस्थान	ए0इ0, जिल्द 41, पृ0 159-180, अभिलेख सं0 17
25	पृथिवीषेण द्वितीय	माण्ढळ, जिला-नागपुर, राज्य-महाराष्ट्र	10वाँ राज्यवर्ष	बेण्णतटस्थान	ए0इ0, जिल्द 41, पृ0 159-180, अभिलेख सं0 17
26	पृथिवीषेण द्वितीय	महुर्झरी, जिला-नागपुर, राज्य-महाराष्ट्र	17वाँ राज्यवर्ष	पृथिवीसमुद्र	ए0बी0ओ0आर0आई0, जिल्द 53, पृ0 183-194
27	पृथिवीषेण द्वितीय	बालाघाट,(अपूर्ण ताम्रपत्र) राज्य-मध्य प्रदेश	-	बेम्बार (वासक) अस्थायी आवास	ए0इ0, जिल्द 9, पृ0 267-271, अभिलेख सं0 36
28	विन्ध्यशक्ति द्वितीय	वाशीम, जिला-अकोला, राज्य-महाराष्ट्र	37वाँ राज्यवर्ष	वत्सगुल्म आधुनिक वाशीम	ए0इ0, जिल्द 26, पृ0 137-155, अभिलेख सं0 20
29	देवसेन	बीदर, जिला-बीदर, राज्य-कर्नाटक	5वाँ राज्यवर्ष	वत्सगुल्म आधुनिक वाशीम (जिला वाशीम)	जे0इ0एस0आई0, जिल्द 13, पृ0 71-75
30	देवसेन	मूलस्थान अज्ञात, इण्डिया ऑफिस, लंदन	-	वत्सगुल्म आधुनिक वाशीम	का0इ0इ0, जिल्द 5, पृ0 101-102, अभिलेख सं0 24
31	देवसेन	थाल्नेर, जिला-धुले, राज्य-महाराष्ट्र	तृतीय राज्यवर्ष	-	अग्रेरियन स्ट्रक्चर एन सेण्ट्रल इण्डिया एण्ड दि नॉर्दर्न डेकन, 350-500 A.D. ए0 स्टडी ऑफ वाकाटक इन्सक्रिप्शन्स, पृ0 82-83

सूची सं0- 2 वाकाटक पाषाण अभिलेखों की सूची

क्र. सं.	सम्बन्धित शासक का नाम	प्राप्ति-स्थल	जारी करने का राज्यवर्ष	सन्दर्भ-ग्रन्थ
1	रुद्रसेन प्रथम	देवटेक, जिला-चन्द्रपुर, राज्य-महाराष्ट्र	-	का0इ0इ0, जिल्द 5, पृ0 1-4, अभिलेख सं0 1
2 4	पृथिवीषेण प्रथम का सामन्त व्याघ्रराज	नचना एवं गंज जिला-पन्ना, राज्य-मध्य प्रदेश	-	का0इ0इ0, जिल्द 5, पृ0 89-92, अभिलेख सं0 20-22
5	प्रवरसेन द्वितीय	रामटेक, जिला-नागपुर, राज्य-महाराष्ट्र	-	दी एज़ ऑफ दी वाकाटकाज, पृ0 253-257, चित्र सं0 35
6	देवसेन	हिस्से-बोराला, जिला-अकोला, राज्य-महाराष्ट्र	शक संवत् 380	ए0इ0, जिल्द 37, पृ0 1-4, अभिलेख सं01
7	हरिषेण का मन्त्री वराहदेव	अजन्ता (गुहा संख्या-16), जिला-औरंगाबाद, राज्य-महाराष्ट्र	-	का0इ0इ0, जिल्द 5, पृ0 103-111, अभिलेख सं0 25
8	हरिषेण का मन्त्री वराहदेव	घटोत्कच (गुहा), जिला-औरंगाबाद, राज्य-महाराष्ट्र	-	का0इ0इ0, जिल्द 5, पृ0 112-119, अभिलेख सं0 26
9	हरिषेण का सामन्त (नाम अज्ञात)	अजन्ता, (गुहा संख्या-17) जिला-औरंगाबाद राज्य-महाराष्ट्र	-	का0इ0इ0, जिल्द 5, पृ0 120-129, अभिलेख सं0 27

सन्दर्भ सूची

1. मिराशी, वी0वी0 1963, का0इ0इ0, जिल्द 5, गवर्नमेंट एपिग्राफिस्ट फॉर इण्डिया, उटाकामुंड, पृ0 89, अभिलेख सं0 20-21
2. शास्त्री, पी0वी0, 1986, हैदराबाद प्लेट्स ऑफ वाकाटक देवसेन, इयर 5, जे0इ0एस0आई0, जिल्द 13, पृ0 71
3. जैन, बी0सी0, 2005, उत्कीर्ण लेख, संचालनालय, संस्कृति एवं पुरातत्त्व, छत्तीसगढ़, पृ0 183
4. मिराशी, वी0वी0, 1963, पूर्वोक्त, पृ0 112, अभिलेख सं0 26
5. मिराशी, वी0वी0, 1964, वाकाटक राजवंश का इतिहास तथा अभिलेख, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, पृ0 1
6. वही, पृ0 3
7. वही, पृ0 4
8. मिराशी, वी0वी0 1963, पूर्वोक्त, पृ0 5, अभिलेख सं0 2
9. शास्त्री, ए0 एम0, 1997, वाकाटकाज़ सोर्सेज़ एण्ड हिस्ट्री, नई दिल्लीः आर्यन बुक्स इण्टरनेशनल, पृ0 125-135
10. ओझा, जी0सी0 1993, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, नई दिल्लीः मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा0लि0, पृ0 82-83
11. मिराशी, वी0वी0, 1963, पूर्वोक्त, पृ0 89-1, अभिलेख सं0 20-21
12. वही, पृ0 89, अभिलेख सं0 20-21
13. दानी, ए0एच0, 1986, इण्डियन पैलियोग्राफी, मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा0लि0, नई दिल्ली, पृ0 81
14. पाषाण लेखों के अतिरिक्त प्रवरसेन द्वितीय के चम्मक ताम्रपत्र एवं हरिषेण के थाल्नेर ताम्रपत्र में भी ठोस वर्गाकार पेटिका-शीर्ष का प्रयोग किया गया है।
15. एकमात्र हरिषेण के थाल्नेर ताम्रपत्र में त अक्षर का यह प्रकार मिलता है।
16. हरिषेण के थाल्नेर ताम्रपत्र में पाषाण लेखों की भाँति व अक्षर का त्रिकोणात्मक स्वरूप मिलता है।

काशी में बौद्ध-धर्म एक आभिलेखिय अध्ययन

पूजा अर्चना एवं प्रो. मीना लाल***

सारनाथ में भगवान बुद्ध द्वारा धर्मचक्रप्रवर्तन के उपरान्त उत्तर भारत के गंगा के मैदानी भागों में बौद्ध-धर्म वैदिक कर्मकाण्डों से संघर्ष करते हुए विस्तार से फैला। बौद्ध-धर्म के विस्तार में सारनाथ का महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह पावन केन्द्र तत्कालीन परिस्थिति में सम्पूर्ण काशी जनपद के साथ कोसल नरेश महाकोसल के आधिपत्य में था[1]। महाकोसल ने अपनी कन्या का विवाह मगध नरेश बिम्बिसार (543-493 ई0पू0) के साथ करके काशी ग्राम जिसकी आय एक लाख वार्षिक थी, अपनी कन्या को महाचुण्णमूल (दहेज) में उसके शृंगार-स्वरूप दे दिया।[2] चूँकि राजा बिम्बिसार भगवान बुद्ध का अनुयायी था, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में ही सारनाथ को शासन की तरफ से महत्व मिलने लगा था। जब अजातशत्रु (493-459 ई0पू0) ने राजगद्दी की लालच में अपने पिता बिम्बिसार की हत्या कर दी, तब तत्कालीन कोसल नरेश प्रसेनजित ने उसे काशी ग्राम की आय देनी बन्द कर दी। जिसके परिणामस्वरूप दोनों पक्षों में युद्ध हुआ, जिसमें अन्ततः प्रसेनजित ही विजयी हुआ।[3] फलस्वरूप उसने अपनी पुत्री वाजिरा का विवाह अजातशत्रु से कर पुनः काशी ग्राम को महाचुण्णमूल स्वरूप मगध को सौंप दिया।

प्राचीन भारतीय इतिहास में बौद्ध-धर्म की गतिविधियों को प्रभावित करने वाले साम्राज्यों में मौर्य, शुंग, कुषाण, गुप्त मौखरी, हर्षवर्द्धन, पाल, कलचुरि, गाहड़वाल, साम्राज्य प्रमुख रहे। इन्हीं राजवंशों को आधार बनाकर प्रस्तुत शोध-पत्र में काशी में बौद्ध-धर्म की गतिविधियों का अभिलेखों के माध्यम से अवलोकन करने का प्रयास किया गया है, जो इस प्रकार है-

सारनाथ से मौर्यकालीन कई अवशेष मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि अशोक के काल में सारनाथ (इसिपत्तन) की बहुत अधिक उन्नति हुई और यहाँ भिक्षु-भिक्षुणियों के संघ स्थापित हो गये। सारनाथ से मिले अशोक के ***'स्तम्भोंत्कीर्ण लेख'***[4] जिसे ***'संघ भेद लेख'*** भी कहा जाता है, में राजा का शासन-पत्र अंकित है। ***'सारनाथ स्तम्भ लेख'***[5] से अशोक का उद्देश्य संघ में बढ़ती हुई विग्रह भावना व अनुशासन हीनता को रोकना था। शासन पत्र में उल्लेख है कि ''जो कोई भी संघ में विग्रह उत्पन्न करेगा, चाहे वह भिक्षु हो या भिक्षुणी उसे श्वेत वस्त्र पहनाकर संघ से निष्कासित कर दिया जाएगा।'' सारनाथ में प्रतिमास पूर्णिमा के दिन बौद्ध-धर्म के अनुयायी भिन्न-भिन्न जगहों से आकर एकत्र होते थे। राजाज्ञा के अनुसार धर्म महामात्य उन्हें सन्मार्ग बताते थे एवं यह स्मरण दिलाते थे कि धर्म एवं कर्म में किसी भी प्रकार की विषमता उत्पन्न न की जाये। स्तम्भ लेख से अनुमान होता है कि अशोक के शासन काल में सारनाथ में बौद्ध-भिक्षु तथा भिक्षुणियाँ अधिक संख्या में निवास करते थे।

राजघाट की खुदाई से मिले साक्ष्यों से पता चलता है कि काशी पर शुंगों का शासन था। बौद्ध ग्रन्थों में उल्लिखित शुंगों को बौद्ध-धर्म का कट्टर विरोधी बताया जाना तत्कालीन बौद्ध-साहित्य के विवरणकारों का स्वार्थी दुष्प्रचार प्रतीत होता है जिसे ब्राह्मण मतावलम्बियों ने भी अपने स्वार्थ वश प्रचारित किया, क्योंकि शुंगों का ब्राह्मण कट्टर पंथी होने का प्रमाण अन्य किसी साक्ष्य से नहीं मिलता। विभिन्न क्षेत्रों में बौद्ध केन्द्रों में हुए बौद्ध-कला एवं निर्माण सम्बन्धी कार्य इस तथ्य के प्रमाण हैं कि शुंग शासक इतने निम्न-स्तर तक नहीं पहुँचे थे जो तत्कालीन समय के सबसे लोकप्रिय एवं सामान्यजन के बौद्ध-धर्म को बुरी तरह आहत करते। शुंग काल में सारनाथ में एक वेदिका का निर्माण कराया गया जिसके कुछ अवशेष सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित हैं। सारनाथ से शुंग काल की अनेक कलात्मक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं।[6] प्राप्त अवशेषों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि शुंग काल में सारनाथ में बौद्ध-धर्म का विकास मौर्य काल की भाँति भले ही क्रान्तिकारी ढंग से नहीं हुआ, परन्तु इसे सतत् विकास अवश्य माना जा सकता है।

ईस्वी सन् की प्रथम सदी के अन्त में काशी-क्षेत्र पर कुषाण वंश का आधिपत्य स्थापित हो गया। कुषाण शासक विमकडफिसेज की मुद्राएँ वाराणसी से प्राप्त हुई हैं।[7] इसके उपरान्त कनिष्क राजा हुआ, जो एक धर्मसहिष्णु शासक था। ***'कुषाण कालीन सारनाथ से मिले लेख'*** से पता चलता है कि कनिष्क के तीसरे राज्यवर्ष के पहले अर्थात् 81 ई0 से पूर्व इसका अधिकार वाराणसी पर हो चुका था।[8] यह लेख मथुरा के भिक्षु बल द्वारा बनवाई गई बोधिसत्व प्रतिमा पर है। लेख का अभिप्राय है कि महाराज कनिष्क के तृतीय राज्य संवत्सर में त्रिपिटज्ञ भिक्षु बल ने बोधिसत्व की प्रतिमा एवं यक्ष मूर्ति की वाराणसी में उसी जगह स्थापना की जहाँ भगवान् बुद्ध मृगदाव (सारनाथ) यात्रा के दौरान् चंक्रमण करते थे। इस प्रतिमा की स्थापना का उद्देश्य भिक्षु बल के माता-पिता, उपाध्याय, आचार्य, अन्तेवासी त्रिपिटज्ञ बुद्ध मित्र क्षत्रप वनस्फर और खरपल्लाण एवं चतुर्परिषद् के साथ सर्वसत्वों का हित-सुख था।[9] दूसरे लेख से जो प्रतिमा के पीठ पर है, ज्ञात होता है कि भिक्षु बल ने महाक्षत्रप खरपल्लाण और क्षत्रप वनस्पर की मदद से यह प्रतिमा बनवाई।

* शोध छात्रा, प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** प्रोफेसर, प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्त्व विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

उपर्युक्त लेख से यह पता चलता है कि कनिष्क के तीसरे राज्यवर्ष में वाराणसी (काशी) क्षत्रप वनस्फर और महाक्षत्रप खरपल्लाण के अधिकार में थी।

इस प्रकार कुषाण काल में सारनाथ में बौद्ध-धर्म की व्यापक प्रगति हुई। ***'सारनाथ बोधिसत्व प्रतिमा लेख'*** से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहाँ त्रिपिटकों का अध्ययन होता था। भिक्षु बल स्वयं त्रिपिटज्ञ थे, अनेक भिक्षुणियाँ भी त्रिपिटज्ञा थीं। सारनाथ के विहार में आचार्य, उपाध्याय एवं अन्तेवासी भी बौद्ध-धर्म के पठन-पाठन में लीन रहते थे। राजघाट की खुदाई से मिली एक मुद्रा पर 'भिसक विहारे थेरस भिक्षु संघस' शब्द खुदा है।[10] इससे प्रतीत होता है कि इस काल में सारनाथ में 'भिषग् विहार' नाम का बौद्धों का एक विहार था। राजघाट (वाराणसी) से मिली कुछ अन्य मुद्राओं से भी वाराणसी पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। एक मुद्रा पर 'भगवतो सितस' लेख है। दूसरी मुद्रा पर कुषाण लिपि में 'बुद्धस्य' लेख दो लक्षणों के बीच में है। दाहिनी ओर चक्र शीर्षक वाला स्तम्भ और बायीं ओर सारनाथ में धर्मचक्रप्रवर्तन की घटना लोगों को स्मरणीय थी और बुद्ध के आदरणार्थ भक्तगण ऐसी मुद्रा वहाँ चढ़ाते थे।[11] सारनाथ से मिले एक पत्थर के छत्र के टुकड़े पर भगवान बुद्ध द्वारा धर्मचक्रप्रवर्तन के समय के उपदेश उत्कीर्ण हैं। इसमें बौद्ध-धर्म के 4 आर्य सत्य आये हैं। लेख की लिपि अंतिम कुषाण काल की हैं। स्टेनकोनो का कहना है कि उत्तर-भारत से प्राप्त पालि का एकमात्र लेख है और इससे पता चलता है कि पालि-त्रिपिटक का उस समय अस्तित्व था जिसे काशी के लोग जानते थे एवं अध्ययन करते थे।[12] इस प्रकार हम देखते है कि इस काल में काशी में बौद्ध-धर्म का वर्चस्व था।

कनिष्क के पश्चात् वसिष्क, हुविष्क एवं वासुदेव आदि कुषाण नरेशों के शासन का उल्लेख मिलता है। परन्तु इनके समय में बौद्ध-धर्म की स्थिति में कुछ विशेष विकास या बदलाव का उल्लेख नहीं मिलता है। कुषाणों का अवसान प्रारम्भ होते ही मध्य देश के मघों ने अपनी शक्ति एवं साम्राज्य का विस्तार प्रारम्भ कर दिया। अन्ततः 150 ई0 के आस-पास इन्होंने वासुदेव के नेतृत्व वाले कुषाण वंश का अंत कर काशी-क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इसके फलस्वरूप मघों के समय में काशी प्रदेश में बौद्ध-धर्म की स्थिति पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इस काल में काशी में बौद्ध-धर्म राज्याश्रय के अभाव में संघर्षरत् थी।

चौथी शताब्दी के प्रथम भाग में उत्तर-भारत में गुप्त साम्राज्य की स्थापना श्री गुप्त द्वारा की गई। वैसे यह निश्चित रूप से कह सकना संभव नहीं है कि काशी क्षेत्र गुप्त आधिपत्य में कब आया परन्तु यदि गुप्त साम्राज्य की पौराणिक सीमा वस्तुतः चन्द्रगुप्त प्रथम की राज्य-सीमा का उल्लेख करती है तो इसमें काशी-क्षेत्र भी अवश्य सम्मिलित रहा होगा। अतः आरम्भ से ही इस क्षेत्र को गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत माना जा सकता है।

सारनाथ और मथुरा की बौद्ध-कला इसी युग की देन है। चूँकि गुप्तों का मुख्य क्षेत्र पूर्वी उत्तर-प्रदेश का क्षेत्र ही था। इसीलिए इनसे काशी कौशाम्बी क्षेत्र को एक लम्बी अवधि तक राजनीतिक स्थिरता के साथ-साथ सांस्कृतिक समृद्धि भी मिली।

गुप्त युग में सारनाथ से मिली बौद्ध- मूर्तियों के आधार पर कहा जा सकता है कि बोधिसत्वों की पूजा यहाँ बढ़ रही थी। कुषाण युग में महायान ने अपने सम्प्रदाय में अन्य हिन्दू देवी- देवताओं को लेकर अपने को उत्कर्षित करने का प्रयास किया। मैत्रेय एवं अवलोकितेश्वर की इस युग की अनेक मूर्तियाँ सारनाथ से मिली हैं। पद्मपाणि, तारा, प्रज्ञापारमिता और दूसरे महायानी देवी-देवताओं की पूजा भी इस युग में बढ़ी। कुमारगुप्त द्वितीय के ***'सारनाथ बुद्ध प्रतिमा लेखवर्ष 154'***[13] में भगवान बुद्ध की प्रतिमा की स्थापना का भी उल्लेख हुआ है, जो अप्रतिम गुणों से सम्पन्न थी। इसे बौद्ध-भिक्षु अभयमित्र ने अपने माता-पिता, गुरुजनों के पुण्यार्जन तथा अपनी संतुष्टि के लिए निर्मित करवाया था।

राजघाट से मिली मुद्राओं से तो यह स्पष्ट है कि स्कन्दगुप्त के समय में भी वाराणसी गुप्त- साम्राज्य के अन्तर्गत थी। इसके पश्चात् के गुप्त शासक अत्यन्त दुर्बल सिद्ध हुए। उसका सहोदर पुरुगुप्त गद्दी पर बैठा जो एक बौद्ध शासक था। परन्तु इसके काल में सारनाथ में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ इसके बाद के वर्षों में जो शासक गद्दी पर बैठे उनमें बुद्ध गुप्त भी एक था, जो एक बौद्ध धर्मावलम्बी शासक था।

छठीं शताब्दी के मध्य में काशी पर कन्नौज के मौखारियों का राज्य स्थापित हो गया।[14] कन्नौज में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के उपरान्त मौखरियों ने अपना राज्य-विस्तार पूर्व की ओर प्रारम्भ किया। इस दिशा में कौशाम्बी, काशी का गंगा के मैदान का बृहद उपजाऊ क्षेत्र पड़ता था, जिस पर मगध के मागध-गुप्तों की भी दृष्टि थी। परिणामतः दोनों के मध्य लम्बे समय तक संघर्ष चला। इस संघर्ष को अन्ततः हर्षवर्धन ने ही विराम दिया। हर्षवर्धन (606-647 ई0) का शासन उत्तर एवं पूर्वी भारत के विस्तृत भाग पर था। इसके अन्तर्गत काशी भी सम्मिलित था। इसी के शासन काल में महान् चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया। इसका विवरण समकालीन बौद्ध-धर्म की गतिविधियों का एक अमूल्य मूल्यांकन है। इसके अनुसार हर्षवर्धन बौद्ध धर्मावलम्बी था। ह्वेनसांग स्वयं सारनाथ (वाराणसी) में आया था।[15] इसने सारनाथ में बौद्ध-धर्म की समृद्धि का विवरण दिया है। ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि तत्कालीन सारनाथ (इसिपत्तन, मृगदाव) में भगवान् बुद्ध की गतिविधियों से सम्बन्धित निर्माण की एक श्रृंखला बना ली गई थी।

पूर्व मध्ययुग में हर्षवर्धन की मृत्यु के साथ ही उत्तर-भारत में हिन्दू प्रभुत्व का अवसान प्रारम्भ हो गया। इस उथल-पुथल के कारण भी सारनाथ में धार्मिक गतिविधियों में कोई विशेष कमी नहीं आई। सारनाथ आरम्भ में प्रतिहारों के आधिपत्य में आया किन्तु

उनके लेख यहाँ से नहीं मिलते। प्रतिहारों के पश्चात् इस पर बंगाल-बिहार के पालों का आधिपत्य हो गया। पाल शासक बौद्ध मतावलम्बी थे। अतः उन्होंने सारनाथ में अनेक बौद्ध विहार बनवाये एवं लेख उत्कीर्ण करवाया।

8वीं सदी तक सारनाथ में वज्रयानियों का बहुत तेजी से प्रसार हुआ जिसके फलस्वरूप यहाँ अनेक बोधिसत्वों और देवियों की पूजा बढ़ी। इस सम्बन्ध में सारनाथ में मिले स्थिरपाल एवं बसन्तपाल का 1026 ई0 का लेख उल्लेखनीय है। इसे ***'महीपाल का सारनाथ लेख 1026 ई0'*** भी कहा जाता है।[16] यह लेख एक मूर्ति की पीठ पर है। इसमें वर्णित है कि- गौडाधिपति महीपाल की आज्ञा से स्थिरपाल एवं उसके छोटे भाई वसन्तपाल ने धर्मराजिका स्तूप तथा धर्मचक्र विहार की मरम्मत करवायी और अष्टमहास्थान गन्धकुटी नाम के एक नये मंदिर की स्थापना की। इस लेख से यह भी पता चलता है कि महीपाल बौद्ध धर्मावलम्बी होने के बाद भी हिन्दू-धर्म को आदर की दृष्टि से देखता था।

11वीं सदी में कलचुरियों का काशी पर राज्य था। ***'कलचुरि कर्णदेव के सारनाथ से मिले 1058 ई0 के लेख'***[17] से ज्ञात होता है कि कम से कम 1058 ई0 तक सारनाथ में 'सद्धर्मचक्रविहार' नाम का एक विहार था। लेख से यह भी पता चलता है कि इसमें आने वाले भक्तगण महायानी थे, क्योंकि इसमें महायानियों के धार्मिक ग्रन्थ ***'अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता'*** की नकल करने की बात कही गई है। इस लेख और सारनाथ से मिली अनेक मूर्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय सारनाथ में महायानियों का वर्चस्व था, जो धीरे-धीरे वज्रयान शाखा में सम्मिलित हो रहा था।

कर्ण के बाद चन्देल राजा कीर्तिवर्मा ने यहाँ अपना राज्य स्थापित किया। परन्तु इसके शासन के कुछ ही वर्षों बाद गंगा-यमुना के दोआब में एक नई राज्य शक्ति का उदय हुआ। जिसने 1090 ई0 के करीब काशी से लेकर कन्नौज तक अपना अधिकार स्थापित कर लिया। ये काशी के गाहडवाल थे।[18] इनके शासन की स्थापना से पूर्व उत्तर-प्रदेश उत्तर-भारत के शेष भागों की तरह भयानक उथल-पुथल से गुजर रहा था। गाहड़वालों ने न केवल भयानक अराजकता से उत्तर-प्रदेश की रक्षा की वरन् करीब 100 वर्षों तक इसे भारतवर्ष का अग्रणी राज्य बनाए रखा। गाहड़वालों ने अपनी सत्ता की शुरुआत काशी से ही की।[19] मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहासकारों ने भी गाहड़वालों को काशी का ही राजा बताया है।[20] गाहड़वाल वंशावलियों में गाहड़वाल कुल का प्रारम्भ यशोविग्रह[21] से होता है, परन्तु इस वंश का वास्तविक संस्थापक महीचन्द्र का पुत्र राजा 'चन्द्रादित्य' था। इस वंश के सबसे प्रतापी राजा गोविन्दचन्द्र द्वारा वाराणसी की रक्षा किए जाने का उल्लेख है। लक्ष्मीधर की प्रशस्ति से भी इस बात का साक्ष्य मिलता है। गोविन्दचन्द्र के बाद गाहडवाल वंश में जयचन्द्र ख्याति प्राप्त राजा हुआ, परन्तु लगातार मुस्लिम आक्रमणों को झेलता हुआ वह अन्ततः 1194 ई0 में मोहम्मद गोरी के आक्रमण से अपने राज्य की रक्षा करने के क्रम में चन्दावर के युद्ध में मारा गया। इसी के साथ गाहडवाल वंश एवं हिन्दू शासन का दौर समाप्त हुआ जिन्होंने काशी सहित उत्तर-भारत के अनेक हिन्दू- बौद्ध तीर्थ स्थलों को काफी क्षति पहुँचाई।

गाहड़वाल स्वयं वैष्णव थे परन्तु उन्होंने अपनी सहिष्णुता के कारण बौद्ध-धर्म को काफी प्रश्रय दिया जिसके परिणामस्वरूप मुस्लिम काल की विनाश लीला से ठीक पूर्व बौद्ध-धर्म एक बार पुनः जनसामान्य के मध्य पहुँचता प्रतीत हुआ। गोविन्दचन्द्र के समय में वाराणसी बौद्ध-विहारों के लिए प्रसिद्ध थी। कुमारदेवी गोविन्द्रचन्द्र की चार रानियों में से तीसरी थी। ***'कुमारदेवी के सारनाथ लेख'***[22] से पता चलता है कि जंबुई पत्तलिका (आधुनिक जमुई) के लोगों ने कुमारदेवी से धर्मचक्र जिन विहार की मरम्मत के लिए आग्रह किया था और इसे स्वीकार कर कुमारदेवी ने सारनाथ के बौद्ध- मंदिरों की मरम्मत करवाई। इस घटना से तत्कालीन वाराणसी के लोगों में बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा एवं जागरूकता का पता चलता है। गोविन्दचन्द्र के बाद विजयचन्द्र राजा हुआ। विजयचन्द्र ने ही 1168 ई0 में जयचन्द्र को युवराज नियुक्त किया जो उसकी मृत्यु के बाद 1170 ई0 में राजा बना। बोधगया से प्राप्त अभिलेख में जगन्मित्रा नन्द द्वारा जयचन्द्र को बौद्ध-धर्म में दीक्षित करने का उल्लेख आया है। संभवतः इसी कारण जयचन्द्र को बुद्ध एवं बौद्ध-विहारों के प्रति श्रद्धा थी। गोविन्दचन्द्र की पत्नी कुमारदेवी एक वज्रयानी बौद्ध महिला थी। इसके सारनाथ के लेख से पता चलता है कि इन्होंने सारनाथ में बौद्ध धर्म अथवा वज्रयान की काफी सहायता की।

सारनाथ में मिली एक मुद्रा से भी यह पता चलता है कि धर्मेक्षा स्तूप को, जिसको मुद्रा में 'धमाक'[23] कहा गया है, लोग बहुत आदर की दृष्टि से देखते थे और इसकी पूजा करते थे। कुमारदेवी निर्मित विहार में एक सुरंग का होना इस तथ्य का सूचक है कि उस काल में विहारों में दुराचार काफी बढ़ गया था। जो भी हो यह तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि गाहड़वाल शासक वैष्णव धर्मानुयायी होने के कारण बौद्ध-धर्म को विशेष संरक्षण न दे सके, फलस्वरूप बौद्ध-धर्म यथावत् बना रहा।

उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि अशोक के शासन काल में बौद्ध-धर्म का विकास काशी (सारनाथ) में चरमोत्कर्ष पर था। शुंग काल में इसका प्रभाव कम देखने को मिलता है, क्योंकि शुंगो के समय पुनः ब्राह्मण धर्म का वर्चस्व स्थापित हुआ। आगे चलकर कुषाण शासकों द्वारा बौद्ध-धर्म में महायान सम्प्रदाय का अत्यधिक विकास हुआ, क्योंकि कुषाण शासक विदेशी थे, इसलिए उन्होंने उस समय के धर्म विशेष, जो जनता में लोकप्रिय था, उसी को प्रश्रय दिया। गुप्तों के शासन काल में वैष्णव धर्म का चरमोत्कर्ष होने के फलस्वरूप बौद्ध-धर्म का प्रभाव कम देखने को मिलता है। सारनाथ में इनके कुछ अभिलेख देखने को मिलते हैं। परवर्ती गुप्त शासकों द्वारा बौद्ध-धर्म के विकास में योगदान दिया गया। इसके

पश्चात पूर्व मध्यकाल के कुछ अभिलेख जिनमें महीपाल का सारनाथ अभिलेख, कर्ण का सारनाथ अभिलेख, कुमारदेवी का सारनाथ अभिलेख विशेष उल्लेखनीय है जो बौद्ध-धर्म की प्रगति में सहायक है।

इस प्रकार मौर्य काल से गाहड़वाल काल तक की लम्बी ऐतिहासिक अवधि में काशी में बौद्ध-धर्म की गतिविधियाँ सदैव जीवन्त एवं सृजनात्मक रहीं। वस्तुतः इस अवधि में बौद्ध-धर्म और काशी ने एक दूसरे को बहुत अधिक प्रभावित किया, जिसे इस शोध-पत्र में अभिलेखों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. मोतीचन्द्र, 1985, *काशी का इतिहास,* द्वितीय संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0- 4.
2. *वही-* पृ0 4.
3. *वही-* पृ0 4.
4. *कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम्,* खण्ड-अ, सारनाथ लघु स्तम्भ लेख, (संपादक) हुल्श, पृ0-116
5. *वही-* पृ0 116.
6. सिंह, शशिभूषण, 2011, *बौद्ध- धर्म को काशी की देन,* सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-48.
7. मोतीचन्द्र, *पूर्वोद्धृत,* पृ0-53.
8. *इपीग्राफिया इण्डिका,* खण्ड- 8, कुषाण कालीन सारनाथ बौद्ध- प्रतिमा लेख, पृ0-171.
9. *वही-* पृ0 171.
10. पाण्डेय, उमा, 1980, *भारत के सांस्कृतिक केन्द्र : वाराणसी,* दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लि0, नई दिल्ली, पृ0-26-27.
11. मोतीचन्द्र, *पूर्वोद्धृत,* पृ0- 60.
12. साहनी, डी0आर0, 1944, *केटलॉग ऑफ दि म्यूजियम ऑफ आर्कियोलॉजी ऐट सारनाथ,* गवर्नमेंट प्रेस, कलकत्ता, पृ0- 230 एवं राजा अश्वघोष का 40 वें वर्ष का लेख- *इपी0 इण्डिया,* भाग-8, पृ0-171.
13. गुप्त, पी0एल0, 2013,*प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख,* खण्ड-2, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0-87.
14. मोतीचन्द्र, *पूर्वोद्धृत,* पृ0-80.
15. *वही,* पृ0-80-81.
16. *इपीग्राफिया इण्डिया,* खण्ड-14, महीपाल का सारनाथ अभिलेख, पृ0-139.
17. *कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम्,* खण्ड-4, (संपादक) वी0वी0 मिराशी, कलचुरि शासक कर्णदेव का सारनाथ लेख, पृ0-139.
18. पाठक, विशुद्धानन्द, 1990, *उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास,* चतुर्थ संस्करण, उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, लखनऊ, पृ0 345-346.
19. *वही,* पृ0सं0-346.
20. मोतीचन्द्र, *पूर्वोद्धृत,* पृ0-93.
21. पाठक, विशुद्धानन्द, *पूर्वोद्धृत,* पृ0-347.
22. *इपीग्राफिया इण्डिया,* खण्ड-9, कुमारदेवी का सारनाथ अभिलेख, पृ0-319-328.
23. दत्त, एन0 एवं के0डी0, वाजपेयी, 1956, *उत्तर प्रदेश में बौद्ध-धर्म का विकास,* प्रकाशन ब्यूरो, उ0प्र0 सरकार, लखनऊ, पृ0-251.

●

समकालीन नारीः सृजनात्मक लेखन

पूजा गौड़[*] एवं प्रो. राधेश्याम दूबे[**]

न केवल कविता में बल्कि अन्य सृजनात्मक क्षेत्रों में भी नारीवाद का स्वर आज बुलन्द है। नारीवाद नारी की स्वतन्त्रता पर बल देनेवाला विचार है, जिसे समकालीन दौर में काफी प्रोत्साहन मिला है। अगर आज नारी सशक्त है, तो इसकी वजह उनका स्वतन्त्रता-हनन के विरूद्ध संघर्ष की अदम्य इच्छा है। नारी एक ऐसी शक्ति है, जो शताब्दियों से चले आ रहे शोषण के खिलाफ लड़ने का साहस रखती है, जिसने समाज के विभिन्न शोषण तन्त्रों के अधीन चरमराने वाले क्षेत्रों को पहुँचाना है। नारी का जो यह बदला स्वरूप आज भारतीय परिवेश में दिखाई दे रहा है, उसकी मूल वजह पश्चिम की नारी-मुक्तिवाद है, जिसने इस भारतीय परिवेश में नारी को नई दिशा दी, जिससे कि इसकी विशेषता और प्रामाणिकता बढ़ी है।

नारी की अस्वतन्त्रता का सबसे बड़ा मूल कारण उसका पारिवारिक दायित्वों से मुक्त न होना है। यहीं से उसकी अस्वतन्त्रता का आरम्भ होता है। स्त्री सम्बन्धी जितनी भी पारम्परिक मान्यताएँ हैं वे सभी इनको बढ़ावा देती है। आज के प्रगतिशील दृष्टिकोण के बावजूद ये स्त्री को परोक्षतः कटघरे में पाना चाहते हैं, जिसे तोड़ना आसान नहीं है। इसलिए गम्भीर स्त्री लेखन की दिशाएँ सदैव कुण्ठित होती हैं। जहाँ वह जीवन्त और सक्रिय रहती है वहाँ उसको सामान्यीकृत या सरलीकृत किया जाता है।

''नारी मुक्ति के आधुनिक बोध के साथ ही समस्त पुराने नैतिक बन्धन टूटने लगे और पुरानी आस्थाएँ नए रूप ग्रहण करने लगी। स्त्री ने अपने आत्मबलिदान, त्याग के चिरन्तना स्वरूप को चुनौती देते हुए स्व की पहचान बनाने के लिए समानता का अधिकार चाहा है। पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता ने उसे आदर्शवादी श्रृंखलाओं से बाहर निकालकर यथार्थ से परिचय करवाया है।''[1]

''नारी को अपनी पहचान यद्यपि इस समाज के भीतर ही बनानी है, और इसमें विद्यमान परम्परागत मूल्यों, जो उसके विकास में बाधक है, उनका खुलकर विरोध करना है। अपने धरातल को ठोस बनाकर अपनी जगह-तलाशनी है। बदलते सन्दर्भों में जहाँ नारी की भूमिका बदली है, वहीं पुरुषों के रवैये में भी परिवर्तन आया है। किन्तु अभी भी नारी की भूमिका में सेवा, त्याग, समझौता, दीनता, समर्पण और हीनता की भावनाओं को ही महत्त्व दिया जाता है, अभी भी उसकी बौद्धिक क्षमता और व्यक्तित्व को नकारने की मानसिकता बनी हुई है। अतः कहीं दबाव और तनाव है, तो कहीं विद्रोह और स्वच्छन्दता का आग्रह। मुख्य रूप से अहं भाव का टकराव सर्वाधिक है। सामाजिक समस्याओं में पुरुष प्रधान सत्ता, देह लोलुप दृष्टि, दहेज प्रथा ने नारी के संघर्ष, अस्मिता की तलाश में कठोर प्रहार किया है।''[2]

आज के समय की नारी में अब बहुत बदलाव आ चुका है। अब तक जो घर की चार-दीवारी में सिसकती अपने प्रति जो शोषण का भाव एवं अन्याय, घुटन को आज की नारी अब इसे सहन नहीं करती हैं, बल्कि अब उसके भीतर विस्फोट हो चुका है। आज वह अपने कर्तव्यों और अधिकारों के बराबर बंटवारे की माँग करते हुए अपनी स्वाभिमानी चेतना, अपनी पहचान और क्षमता को मनवाने का संकल्प लिए मुखर हो रही है।

महिला रचनाकारों ने नारी को उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व देने का प्रयास किया है, जिसमें नारी मात्र को सिर्फ एक शरीर या वस्तु नहीं समझा जाता है, बल्कि उसे स्वतन्त्र निर्णय लेने वाली एवं अपनी आवाज सुनने वाली, एक दिल के साथ-साथ एक प्रखर मस्तिष्क रखने वाली सतत् ऊर्जा है- यद्यपि उसे अपने ऊपर हावी रही परम्परा, संस्कारों की परत को हटाने में बहुत संघर्ष करना पड़ा है। इन महिला रचनाकारों ने नारी मन की अतृप्त इच्छाओं को उन्मुक्त रूप से अभिव्यक्त करने पर **कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग** के उपन्यासों को बोल्डनैस के कारण नैतिकता के बन्धनों को तोड़ने वाला बताया गया है। वहीं **उषा प्रियंवदा, नासिरा शर्मा, ममता कालिया, सूर्यबाला, परवेज, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, अल्का सरावगी** आदि नामों की एक लम्बी सूची है, जिन्होंने नारी मन को झकझोरा है। इन लोगों ने ही नारी की सुप्त जकड़नावस्था से मुक्ति दिलाई है। उसकी वेदना, सोच स्वतन्त्र पहचान की कोशिश को बखूबी चित्रित किया है। इसके साथ-साथ इन लेखिकाओं ने नारी की स्वयं 'जद्दोजद को भी स्वर दिया है। जहाँ नारी अपने ही नारी समाज की संकीर्णताओं से संघर्ष करती हुई परिवार की मर्यादा के नाम पर समझौता परस्ती का मार्ग चुनती है। इन लेखिकाओं ने नारी मन में स्वयं का सम्मान करने का भाव, आत्मविश्वास की प्रबलता का भाव निर्णय की पहल, बौद्धिकता का प्रयोग करने की आश्वस्ती इन नारियों ने जगाई है।

''भारत में मर्द नामक संवर्ग की दो सामान्य कोटियाँ पायी जाती हैः पहले संवर्ग में आते हैं चिड़चिड़े अरसिक और दूसरे में वे चिरअतृप्त महाकामी जो एक ही तरह का रिकार्ड हर जगह बजा देते हैं, जो स्त्री सामने पड़ी, उसको देखकर उन्हें बिस्तर ही याद आता

---

* शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** आचार्य पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

है, उनका वश चले तो दफ्तरों में भी एक बिस्तर बिछा लें और किसी अफरा-तफरी में भी यौन पिपासा मिटाने से बाज नहीं आएँ। पहली कोटि के मर्दों के लिए स्त्री बॉक्सिंग बैग है और दूसरी कोटि के मर्दो के लिए पेप्सी कोला की टिन- **'पियो और फैंको'**। समृद्ध घरों के पुरुष दूसरी वाली कोटि में आते हैः घर में एक सजी-धजी पत्नी किटी पार्टी और गहने तुड़वाने-बनवाने में मस्त और बाहर निजी सचिव से लेकर क्लाइण्टों तक के साथ होटलों-मोटलों की सैर। तकलीफ के साथ लिखना पड़ता है कि सम्पादक, प्रकाशक, नाट्य-निर्देशक, शोध-निर्देशक, सिनेमा के प्रोड्यूसर और कुछ स्थापित कवि-कथाकार, संगीतकार, कलाकार और शिक्षक भी इसी श्रेणी में आते हैं- राजनीतिज्ञों की तो बात ही छोड़ दे! स्त्रियाँ अपनी कृति, अपनी प्रतिभा का मूल्यांकन कराने निकलती हैं और छोटा-सा सब्ज़बाग़ दिखाकर **'ताज़ की एक और कलंगी; टोपी का एक और फुदना'**, **'अनदर फेदर इन द मैप'** के रूप में सजा लिया जाता है।''[3]

अगर आज नारी जाति स्वतंत्र हुई है, तो यह उनके संघर्षों का ही नतीजा है कि आज के इस शोषित, पीड़ित, दमनकारी समाज में उन्हें उनके पहचान से पहचाना जाता है। इतने संघर्षी के बाद जो उन्हें आजादी दिख रही है, इसमें भी नारी को उसके प्रति सजग रहना पड़ेगा। नारी की पारम्परिक छवि के रूप में जो रूप हमारे सामने आया वह था, समाज और परम्परा की आचार संहिताओं का अनिच्छा से स्वीकार का भाव था। ऐसा रूप स्वयं व दूसरों को राह नहीं दिखा सकता। आज भी स्त्री स्वयं को पुरुष की आँख से ही देखती समझती आई है। आज भी देखा जा रहा है कि जब-जब स्त्री स्वयं को स्वयं की आँख से देखने की कोशिश की है, समाज और परम्परा की आचार संहिताओं द्वारा उसकी स्वतन्त्र चेतना से भारी कीमत वसूल की गई है।

''**दीप्ति खण्डेलवाल** कोहरे में स्त्री की इसी सजगता को स्पष्ट करते हुए कहती है- मैं हृदय के साथ बुद्धि भी रखती हूँ। यदि सर्वस्व दूँगी तो सर्वस्व चाहूँगी भी.....अधिकार दूँगी तो अधिकार लूँगी......चेतना के, जीवन के, स्वप्न व यथार्थ के, सारे सन्दर्भ ही नहीं, अर्थ भी बदल चुके हैं।''[4]

''जहाँ स्त्री ही पारम्परिक छवि में उसके पिता, पति व पुत्र के संरक्षण में रहना पड़ता था, वहाँ आज आधुनिक रूप में उसने इसका विद्रोह करते हुए अपनी पहचान अपने बल पर बनाने का निश्चय किया है, उसका आत्मश्विास आज किसी कंधे, बैसाखियों का मोहताज नहीं है। औरत के इसी रूप को **नासिरा शर्मा** देखती हैं- एक घर औरत का अपना भी हो सकता है, जो उसके बाप व शौहर के घर से अलग, उसकी मेहनत और पहचान का हो।''[5]

कविता तथा अन्य सृजनात्मक क्षेत्रें में आज नारीवाद का स्वर बुलन्द है। समकालीन दौर नारीवाद की स्वतंत्रता पर बल देने वाला विचार हैं जिसे समकालीन दौर में काफी प्रोत्साहन मिला है। इन सभी के पीछे नारी के स्वतन्त्रता-हनन के विरूद्ध संघर्ष की अदम्य इच्छा विद्यमान है। शोषण के खिलाफ जो लड़ने का साहस आज के नारियों में आया है, वो शताब्दियों से चले आने वाले संघर्षों का परिणाम है। जिसने समाज के विभिन्न शोषण तन्त्रों के अधीन चरमराने वाले क्षेत्रों को जाना-पहचाना है। इन्हीं संघर्षों में पली-बढ़ी नारी का जीवन आज बेहद बुलन्द है। इस चरमोस्थिति को नई दिशा देने का काम पश्चिम के नारी-मुक्तिवाद ने दिया। यही वजह है कि आज के भारतीय परिवेश में इसकी प्रामाणिकता बढ़ी है।

''नारीवाद सभी प्रकार की गैरबरारियों से नारी को मुक्त कराने की **'थियरी'** है, चाहे वह जातिवाद का बन्धन हो या धर्मवाद की साम्प्रदायिकता। भारतीय समाज व्यवस्था की जटिलता में नारीवाद के प्रश्नों को हल करना चुनौती है।''[6]

''हिन्दी में तुलसीदास, जायसी, मीरा, सूरदास पर नारीवाद की दृष्टि से विचार हो रहा है। प्रेमचन्द, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी आदि के साहित्य पर भी इस दृष्टि से अध्ययन-अनुसन्धान जोर पकड़ रहा है। सैकड़ों की संख्या में लघु शोध प्रबन्ध तथा शोध प्रबन्ध लिखे जा रहे हैं लेकिन सोच और प्रतिमान सब विदेशी हैं। यह भी ध्यान में रखना होगा कि पश्चिम में काली महिलाओं के विवाह तथा यौनचार का जो श्वेत मर्दवादी रूप है, वह कम से कम भारत में तो नहीं है। यहाँ वेश्यावृत्ति है, नारी देह का व्यापार है यौन हिंसा, बलात्कार है लेकिन यह सब भूमंडलीकरण बाजारवाद, उपभोक्ता संस्कृति के वृद्ध पूंजीवाद, सामंतवाद, कुलीनतावाद से जुड़ा है।''[7]

स्वातन्त्र्योत्तर नारी में अपने अस्तित्व व्यक्तित्व और अस्मिता के प्रति जो जागरूकता आई, वह उसकी व्यक्तिगत सामाजिक व राजनैतिक चेतना के कारण ही उत्पन्न हुई। इस चेतनायुक्त नारी ने नैतिकता, परम्परा और आस्था के पुराने मूल्यों को नकारते हुए अपने को एक जड़ वस्तु के रूप में स्थापित किये जाने से इन्कार कर दिया। उसने अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व, आवश्यकताओं और अधिकारों की माँग की। आज के बदलते सन्दर्भों में अपने को, अपनी पहचान देने को चुनौती के रूप में लेते हुए परम्परागत आदर्शमय मूर्ति को खण्डित कर एक हाडमांस की जीति जागती नारी के रूप में अपना निर्णय स्वयं लेने की पहल की, साथ ही अपनी स्थिति एवं अधिकारों को लेकर उसमें चेतना का संचार हुआ। आज नारी की उड़ान उस परिंदे की भाँति है, जिसने जीवन के उतार-चढ़ाव से स्वयं में ऐसा आत्मबल का संचार किया है, जिसे कोई भी दिग्भ्रमित नहीं कर सकता। फलस्वरूप मुझे 'पिंक' फिल्म की वह प्रभावशाली कविता याद आती है, जिसे स्वयं फिल्म अभिनेता 'अमिताभ बच्चन' जी ने बड़े ही प्रभावोत्तेजक ढंग से कहा है, जिसने नारी मन को बड़े ही गहराई से छुआ है-

तू खुद की खोज में निकल,
तू किस लिए हताश है।
तू चल...तेरे वजूद की,
समय को भी तलाश है।

जो तुझसे लिपटी बेड़ियाँ,
समझना इनको वस्त्र तू...
ये बेड़ियाँ पिघला के,
बना ले इनको शस्त्र तू।
तू खुद की खोज...........॥

चरित्र जब पवित्र है,
तू क्यों है, ये दशा तेरी...
ये पापियों को हक नहीं,
कि ले परीक्षा तेरी।
तू खुद की खोज...........॥

जला के भस्म कर उसे,
जो क्रूरता का जाल है...
तू आरती की लौ नहीं,
तू क्रोध की मशाल है।
तू खुद की खोज...........॥

चुनर उड़ा के ध्वज बना,
गगन भी कपकपायेगा...
अगर तेरी चुनर गिरी,
तो एक भूकंप आएगा...
तो एक भूकंप आएगा।
तू खुद की खोज...........॥

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. महिला लेखन में चेतना के बदलते स्वर - डॉ0 शमा खान, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, प्रथम संस्करण-2007, पृ0 85
2. वही, पृ0 85, 86, 87
3. स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष - अनामिका, वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, © 2012, अनामिका प्रथम संस्करण, पृ0 227, 228
4. महिला लेखन में चेतना के बदलते स्वर, डॉ0 शमा खान, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, प्रथम संस्करण-2007, पृ0 134
5. वही, 134
6. हिन्दी आलोचना समकालीन परिदृश्य, कृष्णदत्त पालीवाल, सामयिक बुक्स, नइ दिल्ली-110002, संस्करण-2014, पृ0 139
7. वही, पृ0 140

●

भवचक्र का चित्रात्मक संयोजन

प्रो. दीप्ति प्रकाश मोहन्ती एवं डॉ. राजेश कुमार शुक्ल***

यह सर्व स्वीकृत तथ्य है कि जीवमात्र स्वभावतः अतीत और भविष्यत् के संगमस्थल पर होता है, अतीत उसके वर्त्तमान में संग्रहीत और भविष्यत् उसके उद्दिष्ट रहता है। यह स्वभावत जीवन के अन्नमय और प्राणमय अस्तित्व के स्तर पर भी उपलब्ध होता है, किन्तु मनोमय स्तर पर **काल विषयक एक आधार भूत क्रान्ति घटित** होती हैः इसका अतीत वर्तमान में आकर समाहित नहीं हो जाता, बल्कि एक प्रकार से ज्यों का त्यों बना रहता है। इसी प्रकार भविष्यत्रूप का स्वरूप उद्दिष्ट वर्तमान का नहीं होता बल्कि वह भी वर्त्तमान से पृथक् **अनागत काल** में **स्थापित** होता है। यूं तो आकाश मण्डल में अनेक छोटे बड़े ग्रह, उपग्रह तथा **तारापुंज** इत्यादि अस्तित्वमान है जो **काल की कला है 'सर्वकतृत्वरूपा वैः क्रियाशक्तिः कला भवेत्,** कर्मगत नियोजना की सुन्दरता ही दृष्टि का विशेष पक्ष है, जहाँ कला की शक्ति जिस भी माध्यमों में अभिव्यक्त होती है वही **चित्रमय संसार का दर्शन है।** गर्भस्थ ज्योति की वन्दना में **ज्योतिष** के **उपदेष्टा ललित कलाओं** से निमज्जित थे। जीवन चित्र को विधिरूप में ग्रहण करके ही उन्होने **'नवग्रह'** जिनका सृष्टि में रहने वाले **जीवमान सत्ता** पर **पूर्ण 'नियन्त्रण है** को उज्ज्वलता दी। यह विद्या कर्मयोग का **'अमृत-कलश'** है जिस पर **अनके चित्र अंकित** है। जिसको देखने और समझने की चेष्टा है आनन्द के शाश्वत उपमान। **रूपरंग**, **रेखा**, **भाव**, **लावण्य**, **योजना** का **प्रमाण भवचक्र** का **सादृश्य प्रतीक है**। यही 'प्रतीक मानवीय चेतना की अभिक्रिया है।' भूत का सम्भूत, सम्प्रति का भभूत, भविष्य का अवधूत विमल प्रत्यभिज्ञा का आश्रय है- सत्यं शिवम् सुन्दरम् की भावना।

कला की **आराधना** सौन्दर्य के बीच ही हो सकती है, क्योंकि **ब्रह्मा** ने **कला** की **रेखा खिंची** है, वे नृत्य के संगीत के, शब्द-साधना के और शिल्प के आदि प्रवर्त्तक हैं। **सरस्वती** और **विश्वकर्मा जैसे मस्तिष्क एवं हस्त कौशल के वैभव** से **ज्ञान मंडल जागृत** होता है। पार्थिव सृष्टि के मूर्धन्य मानव के चरम उत्कर्ष को नमस्कार, जिसके चमत्कार में **अजन्ता** और **एलौरा**, **खजुराहों** का अंकन **आलेख** का **प्रलेख** है। एक महान् देश की सांस्कृतिक परम्परा में जीवन को जोड़ने वाली **सन्धि रेखा ज्योतिष की पयस्विनी** है। सिन्धु सभ्यता, मोहन जोदड़ों के नगरीय रूप वैदिक काल का महनीय रूप सिद्ध साधकों की प्रकृति है। गुरू शिष्य की **अमन्द ज्योति** है, यह अन्धकार की विराट् शून्यता में प्रकाशमान ललक को भर देता है। कालिदास, भारवि, बाण भवभूति, शंकर **अभिनव गुप्त** और **तुलसी** को जोड़ने वाली लघु संस्कार है। **ललाट लोचन** को पढ़ने वाले, साहित्य संगीत और कला में सन्दोहित होकर विवर्तित है। एक प्रकार से भारतीय दृष्टि की पूर्णता जीवन के जिस सामंजस्य की परिकल्पना कर सकती थी, उसकी इसमें अवतारणा सम्भव हुई, भावना क्रिया और बुद्धि की संघटना जीवन की एकावली है, यही ज्योतिष का कला में मुख प्रतिपाद्य है। कला के उपदेष्टा चतुष्षष्ठी कलाओं को जीवन के विधि रूप में ग्रहण करके निर्दिष्ट किए। चित्र संस्कृति में निखिल कल्याण की सृष्टि हुई है और इसलिए वह **मेखला** की तरह **भारत** के **कलात्मक विस्तार** को **समेटने वाला सूत्र** बना हुआ है। चर-अचर की संस्कृति ज्ञान की सम्प्रीति है यही स्पन्द स्वर्ण अण्ड (हिरण्यगर्भ) का सन्दर्श है। जिसके अर्थगत शून्य में तम और ज्योति का पूरा विलास भरा पड़ा है। नाना विधि रूपों का उत्कर्ष ललाट लोचन की ललक बन गयी। अजन्ता के **भवचक्र** बिबुध दुर्बल तनु के रूप में अर्पित साधन धाम बन गया। नर ने नारायण को देखा नारायण ने नर को और कल्पना को अल्पना ने अपना स्थान ले लिया। निर्जीव में सजीव **प्राणात्मिका** का **अभिषेक** आकृति को **छन्दोबद्ध** कर गयी। जगत् ज्योति के **जगतपति** और ज्योतिष के देदीप्यमान **लोचन** मार्त्तण्ड और ईशान हैं। इसमें सन्देह का कोई कारण नहीं हो सकता कि नव ग्रहों ने अपनी अपूर्व प्रतिभा से नियत भावी चित्रपट को आलोकित ही नहीं किया है अपितु जीवन को नई दिशा प्रदान कर प्राणवान् भी बनाया है। विधाता की कल्पना शक्ति अप्रतिम व अवर्णनीय है। वर्णना की दृष्टि से ज्योतिष की समग्र दृष्टि अभिनव सोपान का निर्माण करती है। चित्रकला की दृष्टि से जीवन मुख्यों के संरक्षण में ''कुण्डलित पट''[1] उस महाकाश की तरह प्रतीत होते हैं जहाँ सभी प्रकार की उपाधि से युक्त भाग्याकाश का समावेशन हो जाता है। दैवज्ञ ऋषियों का वाग्वैभव उदाच एवं स्फीत है। जिसका प्रभाव **रचना कला** पर भी पड़ा है। चित्रकला का सौन्दर्य ही प्रेम पर आधारित है। कोई भी कला प्रेम के स्पन्दन के बिना सजीव नहीं हो सकती है। वैदिक काल से लेकर अद्यतनीन जितने भी ज्ञानात्मक आहुतियाँ रचनात्मक यज्ञ में दी गयी, उनमें उसकी ही प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण है, जिसमें प्रज्ञा प्रेम का सफल परिपाक हुआ है। गुणात्मक मेघा से यहाँ प्रीति भी विवक्षित है। सहस्त्राब्दियों के काल कवलित हो जाने के बाद भी अन्तरिक्ष का आलोढ़-विलोढ़न रहस्यों की कुंजिका स्त्रोत हैं। वैदिक

---

* चित्रकला विभागाध्यक्ष एवं संकाय प्रमुख, दृश्यकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** पूर्व शोधछात्र, चित्रकला विभाग, दृश्यकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ऋचाओं में जगत् पति 'रसो वै सः' होकर नियति भावी चित्र पट पर अपनी **माया** का **रूप खींचते** हैं। यह रूप प्रेम के परिपाक से पूर्ण है, जो विविधता को प्राप्त करता है। ये विविध रूप हमारे जीवन के रिक्त को भरते हैं। जीवन रूपों का कुटुम्बी है। **अ-रूप** का भी **एक रूप है**, इस रूप का वृहद् वर्णन **नवग्रहों के स्वरूपों** में हैं। सजातीय-विजातीय प्रेम व उसकी परिणति का सफल चित्रण नवग्रहों के संयोजन में मिलता है। अनेक विधि का वर्णन पर्याप्त रूपों से ही हुआ है। अतः जागतिक स्थिति पर भी प्रीति संसार सौन्दर्य को बाँधने का कार्य करती है। ग्रह-निष्पन्द का अनवरत-**प्रवहमान-स्रोत** ही मानव मात्र के लिए **संजीवनी** है। इच्छाक्रिया की प्रीति बिना जीवन ही शुष्क निराश्रित व लक्ष्य विहीन हो जाएगा।

नियत भावी चित्रपट् पर **नवग्रह संयोजन** युगान्त् व्यापी जीवन की स्थिर आधार शिला का न्यास है। जिसमें अनेक गति पथ हैं। इस पथ पर न भय है न स्खलन अपतु ये अपने पथ में स्थिर होते हुए भी गतिमान् है। ''प्रत्येक नक्षत्र प्रत्येक ग्रह अप्रतिम तेज से प्रकाशित है।''[2] इस आलोकित जीवन में अपने **धर्म** पर **ध्रुव** रहते हुए हम दूसरों से बिना टकराए **प्रगति** के **बढ़ते चरण** बन सकते हैं। प्राणिमात्र के लिए, प्रकृति तत्त्व के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए जिन प्रशस्त नियमों और उदार जीवन क्रम की आवश्यकता होती है वह **ज्योतिष तत्त्व** की **संस्कृति** में उन सबके लिए **एक सुन्दर प्रतीक** ही बन गया है। हमारे सहस्त्र मुखी जीवनक्रम को नियन्त्रित करने में जो श्रेय '**नवग्रह**' को प्राप्त है वह और किसी को नही है। नवग्रह कुछ स्पष्ट और निश्चित आदर्शों के प्रतिनिधि हैं। यदि हम उन आदर्शों के राज मार्ग पर अग्रसर होना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम **ज्योतिष धर्म** के **गुण समूह** के प्रतिपादित स्वरूप को अच्छी तरह से परीक्षा करके समझ लें।

जन्म हमारे काल क्रम की तिथि से **परे विधाता की आकल्पना** है। इस आकल्पन में **जन्म** का **क्षण** आते ही हमें अपनी सभ्यता के उस धुँधले प्रभात का स्मरण हो आता है, जिसमें 'सूर्य की ''उषः कालीन'' किरणों के प्रकाश में **मानव** और **देव** दोनों साथ-साथ विचरते हुए दिखाई देते हैं।'[3] उस युग की गाथाओं के समुदाय में से **वेद**, **पुराण**, **उपनिषद्**, शास्त्र के तथ्य और कल्पना का विश्लेषण **सूत्रात्मकता का प्रतीकार्थ चिन्तन है।** वस्तुतः-

सृष्टि के विविध रूपों को हमारे यहाँ **''नाम''** कहा गया है और इस **'नाम' 'रूप'** का **व्याकरण ही** सृष्टि के **रहस्य** की **कुंजी** है। ऐसा माना गया है, यही सृष्टि की दार्शनिक व्याख्या भी की गयी है'[4] आलोकित करना और आलोकित होना। जगत् व्यापार की सृष्टि पर्याय के रूप में दृष्टिगत चिन्तन ऋग्वेद में व्यक्त है। ज्योति को देवताओं की धारिका नवग्रहों की प्रेरिकशक्ति मानने के स्वाभाविक कारण कल्याण का निधान है। सूर्य के प्रकाश में जो शक्ति है वह, **जीवन** के **अर्थ** को **खोलती** है। चन्द्रमा की क्षमता आचरण के उच्चासन पर ही परिणामों की शृंखला है। ग्रहों की ज्ञान राशि में पैठना है तो ज्योतिष के द्वार से संभव है।

'आकाशीय **ज्योतिर्बिम्ब** पूर्वाभिमुख प्रस्थान करते हुए प्रत्येक नक्षत्रों का भोग करते हैं वस्तुतः वही ग्रह कहलाते हैं। ये ग्रह-नक्षत्र, राशि-समूहों का प्रतिनिधित्व करते हुए उदय काल में लग्न कहलाते हैं।'[5] इसी लग्न के द्वारा ग्रहों के **'संयोग-वियोग'** से **'जातक'** के **'शुभ'** या **'अशुभ-फल'** का संज्ञान मिलता है। इन नक्षत्र-ग्रहों में कुछ सुधारश्मि, कुछ विषम-रश्मि, कुछ उभय-रश्मि और कुछ उभय-शून्य-रश्मि वाले हैं। पृथ्वी पर सुवृष्टि, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, सुभिक्ष या दुर्भिक्ष का **प्रतियोग जन्म कालीन प्रबलता** या **दुर्बलता** है। जन्म के पूर्व या जन्म के बाद **कहे गए फल 'जातक'** कहलाता है। जयति जननिवासो जातको जन्मवादः''[6] ''वैदिक युग में विचारों के **गरूड़ ज्ञान** के आकाश में बहुत ऊँचे उड़े। वह ज्ञान का **सद्यः प्रभात** था, उसकी ''उषः कालीन'' रश्मियों से स्फूर्ति पाकर मन के वैनतेय ने प्रचण्ड शक्ति के साथ अपने पंख फड़फड़ाए। **पृथिवी** और **द्यु-लोक** के अनन्त अन्तराल में **ज्ञान सुपर्ण** ने अपने लिए जो **चित्र खींचा** वहीं **ज्योति का लोक** ज्योतिष हुआ।''[7] जिसके विस्तार में ''उरू लोक'' की कल्पना निश्चित की गयी। यह 'उरु लोक' या महनीय प्रवाह ज्ञानपुंज में हर एक को अपने लिए रचना पड़ता है।''[8] ज्ञानाग्नि के समिन्धन से **विश्वास** का **'अश्वेमेध'** स्वच्छन्द विचरण करता है। जिसकी महिमा का वरिष्ठ भाव अन्यत्र दुर्लभ है। यह महाय्य कर्म जो प्रशस्ति योग्य हों, वह दूरगम विचरण योग्य मन का सर्वप्रथम स्वयमेव संस्कार का निमज्जन है। ''विश्व विचार शक्ति के नियन्ता ने मानवीय 'धी' या बुद्धि को प्रेरित किया, जिसकी महिमा का चिन्तन 'धी युंजन का पवित्रतम् कर्त्तव्य है। 'धी' प्रचेतन' देवों का उत्कृष्ट विधान है और '**धी युंजन** मानुषी कार्य है।''[9] मन के **कल्प वृक्ष** का चिन्तन समाधि युक्त संकल्प का व्याधिमुक्त विकल्प है। **स्थिति** और **सम्प्रीति** की तपोमयी जीवन प्रणाली का आविष्कार ज्योतिष का नमस्कार है।''[10]

नियति भावी चित्र पट पर अव्याहत सत्ता की क्रीड़ा में नवग्रह संयोजन **ज्योति संस्कृति का मेरुदण्ड** है। जगत्पति की कला-विकला **ऋत्** और **सत्य** का **अन्वेषी** है। द्रष्टाओं ने उठने और गिरने को पहचान लिया और दिनमान की सवारी को, जीवन की तैय्यारी में विश्वकर्मा को भेंट कर दिया। विश्व के सारे कला कर्म जिनके अधीन हैं उसने गम्भीर रूचि को प्रदर्शित किया, और कांचन चित्रांगम के रूप में लोक को रम्यता प्रदान कर दिया। सृष्टि की आत्मा को कला के **नव रसों** में **भाव-विभाव** के साथ नवग्रहों को **समय** का **पंक्ति वाची** बना दिया। **भविष्य** के **गति पथ** में **पंक्तियों का अर्थ है हर-क्षण** की **लड़ियां**। इन्ही क्षणों से हमारा जीवन निर्मित है- **'नवो नवो भवति जायमानः'** **'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति'**। **'याथातथ्यतोऽर्थान् व्यृदधाच्छश्वतोभ्यः**

समाभ्यः तदेव रूप रमणीय तायाः। एक-एक क्षण महत्त्वपूर्ण है। क्षण क्षण पर हमारी गति हो स्थिति हो यही हमें समूहवाची बनाती है। प्रत्येक पल को उत्सव की भाँति जीना ही इच्छानुशासन है।जीव की उत्पत्ति में भी हमारे भीतर की प्रसन्नता का ही उभार मिलता है, जिससे **भावी रूप** के **रचनात्मक स्पर्श** को **कलात्मक विज्ञान** कहा जाता है। सब प्रकार से रूप संयुक्त ''दो देव-विष्णु एवं विश्वकर्मा, दो ऋृषि जमदग्नि व विश्वामित्र, दो नाग काद्रेव व कम्बलाश्वतर, दो गन्धर्व सूर्यवर्चा और धृतराष्ट्र साथ चलते हैं। अपनी सुन्दरता से बड़े-बड़े योगियों का मन हर लेने वाली 'तिलोत्तमा' और 'रम्भा' नाम की अप्सराएँ **'रश्मि रथ'** के साथ चलती हैं ये जीवन के गति पथ की मनोरंजनार्थ शक्ति हैं। साथ ही ऋृत जित् व सत्यजित् दो महान् बलवान सारथी तथा बह्मोपेत व यज्ञोपेत नामक दो राक्षस भी सेवार्थ तत्पर रहते हैं। ''ये सभी **देव दानव** अपने **अत्यधिक तेज** के **प्रभाव से मार्त्तण्ड** को और भी तेजवान बनाते हैं।''[11]

जगत् के **न्यास में नियति भावी चित्रपट** के **उपन्यास नवग्रहों के विन्यास हैं**। जिसमें अनेक संयोजन है। इस संयोजन का सन्तुलित पक्ष एवं असन्तुलन का प्रतिपक्ष ज्ञान मण्डल का स्वरूप है। लोकोपकारी **मंगलाचरण** करने वाला भौतिक रूप को **देवयुग** में **प्रजापति** ने **रचकर** तैयार किया। इसमें **काल पुरूष** के **लोचन सूर्य** और **चन्द्र** बनें जो दृश्य के अदृश्य और अदृश्य के दृश्य रूप हैं। **जीवन का रथचक्र रश्मिरथ** की प्रेरणा है। पृथ्वी पुत्र **'मंगल' रूद्र** के **मस्तक** से गिरता है, वहीं दूसरी ओर अगाध गाम्भीर्य वाले अतीव सुन्दर **'बुध'** समुद्र हैं। **'बृहस्पति'** का मस्तिष्क **'गंगा-यमुना'** की वारि धाराओं के **उज्ज्वल कंठाहार हैं**। **ज्ञान गंगा के कला रूप 'शुक्र'** का **वक्ष स्थल** हैं। जिसका अगम्य विस्तार सृजनात्मकता का भूप्रदेश है। **सर्वांग सुन्दर 'चन्द्र शुक्र'** और **'बुध'** हैं। अनेक रत्नों की समृद्धि, दिव्य ओषधि-वनस्पतियों के भण्डार और उपयोगी जीवन की सम्पत्ति **'न्याय'** के **अधीन शनि** के पास सुरक्षित है। पशु-पक्षी-सरीसृप शंख जीवी को चारों ओर से भरपूर करके प्रस्तुत करने वाले विधाता ने मानवीय संसाधन को समृद्ध किया है। भूत के ठठरी से भविष्य का सन्दर्श, वर्त्तमान का पुष्प संकट और विघ्न की छाया बनकर राहू केतू का ग्रास बनते हैं। **प्राण भाव** और **मन** का **अधिष्ठान केन्द्र ज्योतिष** का **मथा** हुआ **मक्खन** है। जीवन प्रवाह के प्रारम्भ में ही लक्षणसूत्र प्रकट होते हैं। जिसकी दिशा और दशा का संज्ञान विलक्षण दिव्यता ही स्वीकारती है। कालभाव का चैतन्य अनन्त है। चक्रवत अनंतता का द्योतन एक **प्रतीक** है। संवत्सर या क्षण के गतिपथ अहोरात्र का परिवर्त्तन-ये सब **गतिमय चक्र** के उदाहरण है यह गुणन का परिगणन है। विवस्वान का स्यन्दन एक सन्ततगामी है यह 'चरैवेति' 'चरैवेति' 'चरैवेति' का धुन पकड़ता है। यह जीवन दर्शन का प्रयोगात्मक विज्ञान है। **जिज्ञासा** की प्रबल **मनीषा** की **मीमांसा** मे **नीर-क्षीर** विवेकीय तत्त्व **पुंजिभूता** है।

विश्वजनीन जीवन तीन कलशों में विभाजित है। यथा-**रजत-स्वर्ण-अमृत। तप** के **उत्सर्ग** में जीवन की अपरिहार्य आवश्यकता दैवीय-दानवीय और मानवीय रूपों और प्रतीकों में प्रकट प्रयत्न है।

सृष्टि में सर्वत्र अनन्त चैतन्य की सत्ता है। जिसमें- प्राण-भाव-और मन की कारिका, कला और सौन्दर्य की धारिका, धर्म की राजिका है। ब्रह्माण्ड और पिण्ड के साम्य में आकार व्यञ्जक आभास के कारण **काल** का **कलारूप** अन्तःकरण स्थित **प्रतिभान से जन्मना** बनता है न कि बाह्य निमित्तमात्र से इस प्रकार **''चित्र निवेश्य परिकल्पित सत्त्व योगा, रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु''** तिरस्कार के संस्कार में भी चन्द्र का उदय चित्र चित्त को आह्लादित करता है। उसका चित्र भी वही करता है। इस सम्बन्ध में स्थिरत्वकृत और अस्थिरत्वकृत भेद ही सुविदित आलोक है। भौतिक रूपों की रचनाओं के कारण भूत परमाणु पर्यन्त अवयवों के निरन्तर सञ्चालित होने पर तथा रूप के प्रदर्शक और काल के विधायक भुवन-भास्कर **(सूर्य)** के परिस्पन्द (**गतिमान** होने पर) **नैसर्गिक दृश्य** का **स्पन्दन** उसी प्रकार नहीं स्थित होता, किन्तु चित्रित **(चित्रणीय रूप की निर्मिति में)** शाश्वत (=सुस्थिर) जैसा हो जाता है; क्योंकि **नित्य** रम्य और अत्यन्त हर्ष उत्पन्न करने वाला होता है; यह काव्य कला का सत्य क्षण का निमित्त प्रतिदर्श है। यह शंका निर्मूल है कि चित्र भी नष्ट हो जाते हैं, दृश्य पुनः अपने को नया कलेवर दे देते हैं। ज्योतिष का रहस्य भेदन दर्शन का स्थिरत्व-अस्थिरत्व नहीं, अपितु **क्षण** का **अनित्यत्व प्रयोज्य** है, क्योंकि चित्र का नाश **पट**, वर्णद्रव **(रंग)** आदि लेखन सामग्री का ही नाश है, चित्रबुद्धि का नाश नहीं है। इस प्रकार **विवेकीय पीठ** पर **उत्पत्ति** और **विनाश** उसकी **अभिव्यक्ति** की अपेक्षा से होते हैं। स्मृति का **सूत्र** प्रातिभ साक्षाद् का **गोचर अर्थ** है, जिसके **संकेतभूत नव-ग्रह संयोजन** हैं।

''चारों वेद और ऋृषि गण अपने बनाए गए वाक्यों से सूर्य की स्तुति करते हुए **सूर्य रश्मितो जीवोऽभि जायते**, की वन्दना प्रस्तुत करते हैं। अर्थात् सूर्य की किरणों (नारायण की कृपा) से ही जीव की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार अपने रथ पर चलते हुए दिवाकर सातों द्वीपों और सातों समुद्रों समेत ''**सृष्टि का पर्यटन** करते हुए **दिवस-निशा** का **आमन्त्रण देते** हैं।''[12] **घटी, पल, मास, अयन** तथा **सम्वत्** के **अभिप्रेत रूप** सहस्त्र किरणों में तीन सौ **देव लोक** पर, तीन सौ **पृथ्वी लोक** पर तथा चार सौ किरणें **पितृलोक** पर **गिर के बिखरती** हैं। उषा और छाया की संज्ञा विश्वकर्मा की तनया है। इनकी सन्तति बड़ी प्रतापी संज्ञा से यम यमी यमुना, वैवस्वत मनु अश्विनी कुमार तथा रेवन्त और छाया से शनिदेव, भद्रा, तपती तथा सावर्णि मनु हुए। दोनों अश्विनी कुमार औषधि ज्ञाता देववैद्य है। नौ पीठ शक्तियाँ- दीप्ता, सूक्ष्मा, जया,

भद्रा, विभूति, विमला अमोघा विद्युता एवं सर्वतोमुखी हैं। संज्ञा के अन्य नाम सुरेणु, त्वाष्ट्री, द्यौ बड़वा, प्रभा एवं राज्ञी नाम से प्रसिद्ध बारह शक्तियों से ओत-प्रोत- इड़ा, सुषुम्ना, विश्वार्चि, इन्दु, प्रमर्दिनी, प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला प्रबोधिनी, नीलाम्बरा अमृता तथा घनान्तस्था के नाम से ख्यात "**सत्य** के **प्रतिष्ठान** में **आदिकालीन चेष्टा** है।"[13] रक्तिम आभा **अग्निवर्णा रथ वेद स्वरूप है।** रथ में एक ही चक्र, बारह आरे सम्वत्सर और बारह मास कहलाते है' रथ में छः नेमियाँ हैं जो छः ऋतुएँ हैं रथ में तीन नाभियाँ हैं जो तीन चौमासे के रूप में लोकप्रिय हैं। आयुधों में चक्र, शक्ति, पाशांकुश मुख्य है। सात रंग के सात घोड़े **'इन्द्र धनुषी' रज्जुओं** से **प्रगति** के **बढ़ते चरण** हैं। "सूर्य स्थिर होकर भी **गतिमान** है। जिसके **प्रतिमान** में सम्पूर्ण ग्रह **नियमबद्ध सूत्र** पकड़े चलायमान होते हैं। सम्पूर्ण ग्रहों को एक-एक बार अपनी **प्रभा** से **अस्तंगत** कर देते हैं। **'हमारे नीलाम्बर'** की गोद में पूर्वाभिमुख चलते हुए प्रत्येक राशियों का भोग करते **ग्रह समस्त नक्षत्रों** का **मान** रखते हैं **ग्रह राज** का ऐसा नियन्त्रण **योग कुयोग सुयोग** की **सन्धि रेखा** है। इस रेखा पर **दशा- महादशा** की **लीला भोग** का **प्रतीक** है। अमावस्या-पूर्णिमा-संक्रान्ति, ग्रहण **माया** की **छाया** है अथवा छाया की माया है। **चन्द्र मन** का **उद्दीपन** है, यह **गहन अन्धकार को चीरता है। पृथ्वी** का भी, **आदमी** का भी**, 'एकः चन्द्रः तमो हन्ति' सुन्दरता** का **अलंकार दाग** के साथ है, सागर के प्रशान्त छाती पर शून्यता की चादर ओढ़े **मन्वन्तर-मन्वन्तर का दर्पण है।** शुभ दृष्टि का पण्डित पाप रूप में कामातुर, चंचल निहित प्रहर में, समूची यात्रा के अन्त में अपनी स्थिति में सारे गति पथ मिलते हैं, अपनी **'शून्यता के केन्द्र बिन्दु पर'।** बाहर के सारे दृश्य भीतर के अन्धेरे में सूर्य के समान जलते रहते हैं। सत्त्व बली मंगल **रणांगन** के **प्रायोजक** है **अमंगल** का **विज्ञापन** क्षुब्धता का परिचायक है, सूर्य-चन्द्र से **चुनौतीपूर्ण कसौटी** है। चेहरों की ज्योति आँखों की आभा 'रक्त' वर्णा क्रूर, मध्य देह कृश-उग्र, पित्त-प्रकृति चंचलांगी है। **खड़ा रहने** और **चलने** का **द्वन्द्व** सिखाते हैं। **वाणी** और **बुद्धि** के सौन्दर्य से अवसरवाद के प्रतिष्ठाता, कूट ध्वनि के चयनार्थ, 'पित्त-वात-कफ प्रकृति' वाले बुध **स्वस्तिकर सौजन्य** है। स्मृति के प्रवाह में स्तम्भ, भविष्य की भंगिमा के रूपाकार हैं। दूर्वा, पन्ना वर्णा औषधि **कला प्रपन्ना** हैं। सूर्य चन्द्र से समीपता सुभाषित है। काल खण्ड की जड़ता को भंग करने वाले बृहस्पति **ब्रह्मणस्पति** यानी महान पंडित है। आगत और विगत में सम्पूर्ण, **ज्ञान** के **महोच्चार** है। **समकाल** का गहन् **परिप्रेक्ष्य** इनके पास सुरक्षित है, पिंगल वर्णी **'गुरु पुष्य'** के **विज्ञानी** है। इनका **शुभत्व सूर्य** और **चन्द्र** से **दिव्य** और **भव्य** है। मानुषी दीप्ति के तटबन्ध पर समय और परम्परा के अन्वेषी 'शुक्र' श्वेत वर्णी है। हमारी **कला स्मृति** को उलीचने का संसाधन है। यह **गोधूली की सघन छाया** से निकलते हुए अपने समूचेपन को पश्चिम से समझते हैं। यह आगामी **भविष्य** का **बीज**, **रेखा चित्रों** की सरलता में **चन्द्रमा** का **प्रारूपण** है, **सुन्दरता कला** की **आत्मा** समय के **गतिपथ** की पहचान है। सैन्यपति, न्याय के प्रयोक्ता से **सम्बन्ध सहजात** है। ये **देव-धर्म** के मन्त्री **ज्ञान-प्रभा** के प्रतिद्वन्दी है। समय की सीढ़ियों पर संश्लिष्टता का चित्र खींचने वाले भृत्य नील वर्णी हैं, काल के नव खण्ड को शुद्ध करने वाले **'साढ़ेसाती'** भय के आकांक्षित है, जिसमें दमित निष्प्रेषित, **अत्याचारित,** हाहाकार भरे **आर्त्तनाद में बन्दी** स्थिति को जन्म देने वाली चुनौती **उचित अर्थ** को व्यक्त करती है। देह के बन्धन से मुक्त **भूत** का **भयभीत रूप** राहू धूम्र वर्णा है मस्तक विहीन केतु **पुनर्जन्म।** है **'पताका'** रूप में धर्म रूचि जगाता है। शुभ ग्रह का सद्भेद पाप ग्रह का असद् भेद **भाग्यवंद** का **चरित्र** हैं।" "दशम और एकादश के सभी ग्रह **मधु यामिक उत्स** जगाते हैं। अष्टम में सभी ग्रह **काल केतु** हैं।"[14] 28वें नक्षत्र **'अभिजित'** में सब ग्रह **'साष्टांगे दण्डवते प्रारब्धम्'** हैं। हमारा स्वभाव है कि अतीत का प्रतीत लघु है। लेकिन ज्ञात की अज्ञता से **जीवन** के **ज्ञान द्वार** पर एक **दीपक** जला देते है यदि आप देखना चाहें तो।

'इतिहास के क्रम में मानवीय विवेक ने पहले प्रकृति को अपने ही **'अतिमानवीय'** अथवा **'अतिलौकिक'** रूप में परखा और दैवी शक्ति को मन के धरातल पर संयुक्त किया, तब वरूण, अग्नि, इन्द्र, अदिति, उषा, मित्र सूर्य, मरूत, गंगा, चन्द्र, पूषण आदि रूपों का **इन्द्रजाल** बिछाया उसके पश्चात् जीवन की उन्नति हेतु प्रकृति के 'पूर्व अज्ञात **रहस्यात्मक सूत्रों** का **संज्ञान** लिया अर्थात् प्रकृति पर क्रमशः विजय प्राप्त की।' इच्छा तथा कर्म का परिपाक एक **कलश** से लेकर **आकाश गंगा** तक काल के अक्ष पर परिवर्त्तनशील जो **चित्र उभरे,** वह **विशेष क्षण** की निमग्नता थी।[15] जो स्थिर हुआ वह चेतनस्मृति और चिन्तन की **क्रियामूलक शृंखला** बनीं। कहने सुनने एवं सुनाने का संयोजक गति का संग्राहक है। गत्यात्मक घटनाओं भावनाओं की लोकरंजिनी गाथाओं का नया रूप, अतीत और अनागत की सम्पृक्ति, दोनों की सन्धि है।

सत्य की **सन्धारणा** कल्पना के **विशेष आवरण** में अत्यन्त आकर्षक हो उठती है। भूत एवं भविष्य की पथगामिनी वर्त्तमान मस्तिष्क का आन्दोलन हुई। सक्रिय अंश का पुरुषार्थ **नकारात्मक ऊर्जा** का **विसर्जन** है। अनन्त सत्ता की ज्योति में ज्योतिष **जगत् चित्र** का **सम्प्रेषक** है। सृष्टि में विश्वाकार की अन्तर्भूमि पर आसीन '**कला महामाया** के **पंच कंचुक** हुए, (- काल, नियति, राग, विद्या तथा कला) जो रूप विधायिनी शक्ति की धात्री है' वही जगत् की **काल रात्रि, महारात्रि, दारुणरात्रि, मोहरात्रि** है। वाग्देवी के अधिष्ठान से मस्तिष्क एवं हस्त कौशल का वैभव, मेधा शक्ति का सोपान है, जिस पर विज्ञान का मान ही चढ़ता है। इस **मान** का शान **वेद** है, जिसका तीसरा नेत्र ज्योतिष है- **'त्रिनयनं**

ज्योतिषंस्मृतम्' जगत् की आत्मा अमर्त्य, तेजोमय है। जन्म-मृत्यु, यौवन और वार्द्धक्य **समय की शिला है,** जिस पर कितने **मधुर चित्र, धर्म** एवं **दर्शन** से अनुप्राणित है। शून्य की परिपक्वता प्रज्ञा की गहनता है। 'काल से ही अस्तित्व है। काल स्वरूप अश्वरूपी रथ का वाहक है। वह सप्त रश्मियों और सहस्राक्ष से युक्त है। वह जरा रहित एवं प्रचुर पराक्रम सम्पन्न है। लोक उसके चक्र हैं। उस पर **कवि** एवं **कलाकार आरोहण** करते हैं। वह काल सप्त चक्रों का वाहक है। चक्रों की सात नाभियाँ हैं। वह अक्ष धुरी अमृत अनश्वर है। वह प्रथम देव 'काल' भुवनों को प्रकट करता हुआ सतत गतिशील है। **विश्व ब्रह्माण्ड रूप भरा हुआ कुम्भ काल** के **ऊपर स्थापित** है। सन्त ज्ञानीजन काल को विभिन्न प्रकार से देखते हैं। वह काल दृश्यमान प्राणियों के सामने प्रकट होकर उन्हें अपने में समाहित कर लेता है। मनीषी काल को विकारों से रहित आकाश के समान कहते हैं। काल भुवनों का पोषण करने वाला सभी में श्रेष्ठ रीति से व्याप्त है। वही भूतकाल में इनका पिता और अगले जन्म में पुत्र हो जाता है। काल से बड़ा कोई भी तेज नहीं है। काल ने ही **दिव्यलोक** को उत्पन्न किया और इसी ने सभी प्राणियों की आश्रयभूता भूमि को उत्पन्न किया। **भूत, भविष्य** और **वर्त्तमान** सभी अविनाशी काल के आश्रित हैं। काल में ही विश्व का भूत है। नेत्र भी काल के आश्रित होकर विविध पदार्थों को देखते हैं। काल में ही मन, काल में ही प्राण और काल में ही सभी नाम समाहित हैं, जो समयानुसार प्रकट होते हैं। काल की अनुकूलता से ही प्रजाजन आनन्दित होते हैं। **तपःशक्ति, ज्येष्ठता** और **ब्रह्म विद्या** इसी काल में सन्निहित है। काल ही सबका ईश्वर, प्रज्ञा का पालक और सभी का पिता है। काल ही ब्राह्मी चेतना को विस्तृत कर परमेष्ठी को धारण करता है। सृष्टि के आरम्भ में काल ने सर्वप्रथम **प्रजापति** का **सृजन** किया तत्पश्चात् प्रजाजनों की रचना की।

काल स्वयम्भू है। सभी के **द्रष्टा कश्यप** काल से प्रादुर्भूत हुए तथा काल से ही तपःशक्ति उद्भूत हुई।' 'काल से आप : ज्ञान, तप : शक्ति और दिशायें उत्पन्न हुई हैं। काल के सामर्थ्य से **सूर्य** उदित होता है और पुनः उसी में प्रविष्ट हो जाता है। काल से ही **पवन** का प्रवाह है और काल से ही विशाल पृथ्वी गतिमान हो रही है और विशाल दिव्य लोक भी काल के आश्रय है। काल में ही लोक प्रतिष्ठित है। हमारी **संस्कृति** काल से **उद्भूत, परिपक्व** और **विविध धाराओं** को स्वयं में समाहित करने का सामर्थ्य रखती है।' विधाता विश्व की अनन्त सृष्टि करता है उसकी अभिव्यक्ति **'छाया तप'*** की कला का आकर्षण है। यह **कलाकार** की **मौलिक रचनात्मक शक्ति है** जो काल के भूत और भविष्य खण्ड को घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में अर्थवत्ता देती है', अर्थात् विधाता की भाँति कल्पनात्मक गुण के द्वारा सृष्टि के इस शाश्वत कर्म की पुनरावृत्ति करता है, असम्बद्ध या विरोधी तथ्यों को नई उद्भावना प्रेषित करता है। अनेक वस्तुओं के अप्रत्याशित सम्बन्धों को अनुसन्धित्सु होता है आदि। वस्तुतः '**कल्पना** (कलाकार का मनोलोक है जहाँ रचना-विधान संचलित होता है) मानवीय सार्वभौमिकता की विशिष्टता है। **मौलिक रूपायन** के इस भेद में जगत् के प्रति वैयक्तिक सत्य की नवीन संयोजना है, जो कला दर्शन मानवीकी शास्त्रों, विज्ञान आदि में नानाविध मार्गों की सहचरी है।' 'भारतीय **चित्र चिन्तन** दृष्टि प्रधान होने के कारण तम और ज्योति के खेल से बराबर आकृष्ट रही है', ज्योतिष की दृष्टि भी भाग्य वन्द में होने के कारण छाया और आतप का वैषम्य बड़ा गूढ़ रहता है और इन युग्म छटाओं के स्तर भी बहुविध हैं। '**चित्र** और **ज्योतिष** के ज्ञान प्रकाश, ज्योति, द्युति, दीप्ति, प्रभा, विभा, आभा, कान्ति, आलोक, आभास, उजास, उज्ज्वल आतप, चन्द्रिका ये शब्द प्रकाशवाची होते हुए भी भिन्न-भिन्न अर्थच्छटा रखते हैं', अभिलाषित झलक प्रकाश पुंज की सर्व हल्की रेखा है एवं अभिलाषित धुन्धलके कुंज सबसे तीव्र। दिव्य कल्पना का योग ज्योतिष का भोग है, इस भोग का प्रसाद और प्रमाद प्रभात और सायंकालीन विभा है।' मृग मरीचिका का प्रत्यालोक आलेक से भी प्रतिघाती है। 'सूर्य की प्रभा प्रखर और जाज्वल्यमान होती है, अरूणिमा की रेख, दिन मान का तेज, मध्याह्न की विदग्धता, सायं की आभा बादलों की श्यामलता सँवरायी सिमटता क्षण की हलचल है। **रंगों** की **समलयता** नैसर्गिक सूक्ष्मता और विस्तार का उद्घाटन है।' आत्मगत प्रेम की उपमा **समर्पण का अर्क है** कालिदास ने **''दिवस इवार्ष श्यामस्तपात्यते जीवलोकस्य''** कहा है, चन्द्रमा की चाँदनी या चन्द्रिका के भी अपने प्रभूत है, द्वितीया और पूर्णिमा में अद्वितीय है, नभ थल और जल पर चन्द्र और सूर्य की किरणें नाचती हैं, कुहाच्छन्न की प्रहेलिका में एक झलक की झिलमिलाहट है चन्द्रमा की ज्योति शीतल मलय समीर सहारे **अमृत** होती है, दृष्टिगोचर तारों की ज्योति बड़ी रोचक होती है, अपनी तरलता के द्वारा अमावस्या की निशा में जगमगाने लगते हैं, परन्तु **यामिनी** के आगे **टिमटिमाते** ही रहते हैं। विद्युतीय कौंध में नेत्रोन्मीलन सम्भव नहीं होता इसीलिए **कड़कती सौदामिनी** मनमध्य सोच विचार कर संस्कृतज्ञों ने स्फुरित किया है। **(''विद्युद्दाम-स्फुरित-चकिर्तर्यत्र पौरांगनानालोलायांङ्ग्यदं न रमसे लोचनैर्वैचितोऽसि'')** दामिनी की दमक वर्षा की सुषमा है। **इन्द्रधनुष** का **तीर** विलुप्त होकर **प्रकृति का हर्ष है।** सप्तरंगों की दीप्ति में दीप शिखा की लौ ज्योति कड़ी का प्रदीप है। नीलाज्वल प्रकाश से अन्धकार ज्यादा घना है **''तम आसीत्तमसा गूढ़मग्रे''** (ऋग्वेद नासदीय सूक्त) सृष्टि के आरम्भ और प्रलय के क्षण में तमस से घिरा प्रतिरूप अभाव का प्रभाव था। भारतीय चिन्तन की मीमांसा में अन्धकार का प्रभाव प्रकाश का अभाव नहीं, यह भाव रूप स्वतंत्र पदार्थ है। **छाया अन्धकार की मैत्री है,** इस मैत्री के बिना **आकृति** और **रंग** की कल्पना भी सम्भव नहीं है। ज्योतिष की छाया में दोष का प्रतिबिम्ब परिधि का अनालोक है। भाग्य प्रहर का विभात जीवन की प्रकृति का ग्रहण है। इस ग्रहण के ग्रहीता पापग्रहों या शुभ ग्रहों का अस्तंगत

अथवा नीचस्थ रूप है। **जीवन के चित्रलोक** में **ज्योतिष** का **आलोक** सामंजस्य रखता है। शुद्धचित्र की छाया में, छाया और प्रकाश के ही प्रभाव को तीव्रता, मन्दता और मृदुलता के रौरव **रचे** या **खींचे** जाते हैं। चित्र खींचते समय आमुख पर छाया बचायी जाती है ताकि त्रिआयामी पक्ष लुप्त न हो जाय। आलोक आड़े-तिरछे ही अनुकूल है, सीधे प्रतिकूल हैं। छाया आतप की सूक्ष्मता तालमेल का युग्म है इस युग्मिका का चरम रहस्य जीवन प्रसंग का आस्वाद है, जैसा कठोपनिषद् के ऋषि का कथोप कथन है- **''ऋृतं वदन्तौ सुकृतस्य लौके गुहांप्रविष्ठौ परमेऽपरार्थे। छाया तपौ ब्रह्म विदों वदन्ति पंचाग्नयो ये च त्रिणाचिकेता॥''** कालक्रम के वास्तविक अर्थ में उद्‌गीथ, दहर, अमृत आदि समस्त विद्याओं का मूल प्रयोजन जगत् की आत्मा का विस्तार है। सूर्य को सृष्टि की आत्मा कहा गया है। 'जीव की उत्पत्ति में भी इनका अच्छुण्ण योगदान अपेक्षित है।'

उत्तर और **दक्षिण** अयन के वासी आदिकाल से सूर्य सभी **बारह राशियों** के स्वामी थे। बाद में इन्होंने **एक राशि** का **अधिपति चन्द्रमा** को और **मंगल बुध, गुरू, शुक्र** व **शनि** को **दो-दो राशियों का अधिपति** बना दिया। सभी राशियों के स्वामी **सिंह** राशि के **अधिपति** स्वयं रहे।'' इनकी आराधना की साधना में उषाकालीन रश्मियों से स्फूर्ति और सन्ध्या कालीन छाया से निशा का निमन्त्रण अर्धांगिनी की प्रणय लालसा दहका देती है। यम और नियम का प्रत्याहार सन्तति-वान हैं। आयु, विद्या-बुद्धि एवं यशोबल जल पथ के फड़-फड़ाए कमल है, जिस पर भ्रमर के भँवर गुंजन से आत्मौपम्य दृष्टि यावज्जीवन उत्साह का संचार **ब्रह्माण्ड पिण्ड का एकत्व है,** जो समस्त प्राणियों में समवेत व्याप्त है। खरमास, मलमास-अधिमास के नारायण रेवन्त हैं, विश्वग्रस्त पक्ष संक्रान्ति की क्रान्ति है। ग्रहराज का रश्मि रथ **'चरैवेति चरैवेति'** का धुन है क्योंकि वह ऋृत के जन्मा है, तप से उत्पन्ना हैं। **''ऋृतं च सत्यं च तपसोऽध्यजायत''** ऋृत का आशय गति और तप का अर्थ बिजली का फूल है, जिस के चमक बिना एक भी क्षण व्यर्थ है जिसकी महत्ता की सत्ता पर **छायादोष** का ग्रहण, दण्ड घड़ी के बाद छिटक जाता है, **'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यपिहितं मुखम्'** तप की आँच और ऋृत के फैलाव ने उस छेंक को फेंक दिया जिसको ढकने की चेष्टा की गयी। सत्य रूप का आवरण स्वर्णिम मंजूषा है। जिसमें **निरंकृत** एवं निमज्जित तत्त्व **अभिरंजित** है। कर्त्तव्य रूप का सत्यार्थ आलोक **अर्थशाली भावों** का एक सूत्र है जिसका प्राण तप है, इस तप के रूप में साधना मेरूदण्ड है, जिसकी शक्ति का ज्ञान दार्शनिक चिन्तन का रहस्यमेव संकेत है।

वैचारिक नभ के **गरूण ज्ञान सुपर्ण** है, जो **विश्वभुवन के न्यास** में छायातप का वैषम्य अन्तरंग रूप का बहिरंग अनुबन्ध है, निष्पाप रूप की सुन्दरता मनोमय के सूने प्रांगण को आनन्द से विभोर कर देती है। दो पक्षियों की **निद्रास्तुति** एवं **जागृति वन्दना कृष्ण** और **शुक्ल वर्ण** की **गोप्ता** हैं, सहअस्तित्व के क्रियामाण उपलब्धि में छायाऽआतप के समतुल्य संयुक्त प्रचेता हैं, वृक्ष की एक शाखा इनके वास की प्रशाखा है, जहाँ का फलास्वादन एक की **रसतृप्तेन वृत्ति** है, तो वहीं दर्शन की निवृत्ति दूसरे की शोभा है। मौन स्वीकृति का दृश्यवत् कौतुक जीवात्मा एवं परमात्मा की **निर्विकार संस्कृति** का **सर्विकार** (सत्कृत) रूप है।

वस्तुतः रूप और अरूप के समरूप की संज्ञा सर्वनाम का भेद है। नीलाम्बर की गोद में दिव्यांकित पक्षियों का भरना और विचरना निर्द्वन्द चित्ति का चित्रकूट है, जिसके बिम्ब में तन्त्राक्षरीय रेखीय तत्त्व का पुंजीभूत रूप ब्रह्मात्मक रचित आत्मजा है। चम्पा वर्ण की तन्मात्रिका गायत्री पीली हैं एवं अग्नि से अर्चित होत्र आग्नेय हैं। अर्न्तचित्त के बिम्ब में **विराट् सूत्र** का **प्रतिबिम्ब** अधिष्ठान चेतन रूप पर जगद्रूप **चित्र दीप** का **प्रज्ज्वलन** है, जिसमें आरोपित देहधारियों का तटस्थ जीव नाम कल्पित चिदाभास है, अर्थात् शुद्ध बुद्धि के मुमुक्ष में **'नानायोनि समुत्पन्ना भवति, जन्म मरणादि'** चित्राकृति का ज्ञान जीवन का **तान** और **बान** है। इसलिए 'जन्मांग के चित्र पट् पर छाया और तप के रूप खिलते है, ये रूप बदलते नहीं अपितु बदल देते हैं उस रूप को जिसे जीवन कहते हैं। **सत्य सन्ध** का **यह रूप अखण्ड है** जिसका कोई प्रति रूप नहीं है इन रूपों के कई पहलू हैं। देश और काल के भेद से मान चित्र के रूप कई रूप हो सकते हैं, पर जन्म सत्य का शुद्ध-अशुद्ध रूप अनुपात योग तप है- यह कर्म से समुद्‌गत भूत रूप होता है। मंगल मूर्ति की छवि कल्याण रूप है, जिनकी छाया में **विधाता के दर्पण, रूपों** के प्रतिबिम्ब का निर्माण करते हैं, वे **रूप जातकाभरण** का **पोषण** करते हैं। ''जीवन रूपों की माया है, जिसकी काया में सुरूपता और कुरूपता आकृति की अनुरूपता है। **ज्योति रूप** की **जिज्ञासा** जन्म लग्न की **प्रत्याशा** है। जिसमें अयनांश रूप का पैमाना, स्वभाव का चलना, भाव का तप रूप है। चन्द्रांग की समरूपता गोचर का अभिरूप है। नवमांश का रूपांश **भाग्यांश** का **चित्रांश** है। कारकांश का दिगन्त रूप केन्द्रांश का विस्तार है, अक्षांश और देशान्तर विशिष्ट् रूप का अभिप्राय है। ग्रह रूपों के नामांकित सोतों से जिन कूपों का निर्माण होता है वह स्थान के लाघव हैं। दशाओं के दिव्य रूप, प्रत्यन्तर के भव्य रूप **भोग** का **भभोग रूप** हैं। **पिण्डायु चक्र** का अभ्यन्तर, जन्मान्तर की आयु है। मार्केश का रूप, अन्त का स्वरूप, जीवन का रूपान्तर है। योग रूपों के परिवार में सुयोग-दुर्योग कुयोग का जन्मोपयोगी पक्ष है, विशेष का सविशेष रूप राजयोग के लक्षण हैं। **प्रवज्या** की **त्रिज्या** में विकारों की निवृत्ति है। कुलदीपक गुलचाँदनी, मणिबन्ध-नक्षत्र बन्ध, **मणिकांचन** का **संयोग** जीवन रूपी स्यन्दन काल की गति से गतिमान रूप है। षडाष्ट्क, समसप्तक, नवपंचक दिशाओं के प्रगति बाधक रूप हैं। राशिभूत, अंश, कला-विकला घटी पल का अनिमेष रूप अंक, बीज, और रेखा गणित का परिगणन है। **पंचांग** (तिथि-वार-नक्षत्र-करण-योग) के **अनुशासन** में, **रचनात्मक**

सहयोग और **गुणात्मक परिवर्त्तन** का नाम रूप ही ज्योतिष है।'' आचार-विचार और व्यवहार के रूपों में वर्त्तमान और भावी जीवन की आकांक्षा बहुप्रतीक्षित रूप है। आश-नैराश्य के दो रूपों में नैतिक मान मूल्यों के आदर्श जीवन के प्रतिदर्श रूप बने तभी जीवन के चित्र संसार में बहुरंगी रूपावली का अभिविन्यास आकृतियों का न्यास होगा। **रूपमुंजिका** की यह धारणा दृश्य मूलक कलाओं पर रूपवाहिनी बनकर ऐसे उतरती है जैसे **मँजा** हुआ- **उरेहित सूत्र।** जीवन चित्र की संस्कृति में जो दिगम्बर रूप है, वह पूर्व जन्म का साधना पक्ष है, जिसका प्राण रूप तप है वही श्वेताम्बर का उज्ज्वल रूप है। इस उज्ज्वलता के जाज्वल्य रूप **भाग्याकाश** में **छा जाते है,** फलाफल के निकष पर जो निवेश है वह अन्तरंग रूप का **भवचक्र** है। ''जीवन साधना के फलितार्थ, आस्तिक बुद्धि से अर्पित कर्म का समर्पित भावरूप ही, कर्म योग की **'प्रदीपित शिखा की ज्योति को अमन्द'** दे सकेगी''। विवेक के प्रज्वलित-स्फुलिंग धधकाए रूप की सार्थकता है। विचार मन्थन के अनन्तर चिन्तन पर लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण का निदान जीवन मर्म की बोधात्मक निष्ठा है। ''आत्म प्रणति के चित्र क्रूर नियति का आलेख है, जिसमें विरह, मिलन, के योग हृदयग्राही, उच्छवसित आँखे अश्रुकलित स्वप्न का विश्लेष है। जिसकी कातरता में प्रगाढ़तर प्रीति पगती है। स्मृति के आवेग से तन्मयता के तार टूट जाते हैं और निःशेष का शेष संकेत सत्व का परिज्ञान है **'सर्व खल्विदं दुःखं'**। वस्तुतः **लिलार का दोष मन का परितोष है। नव्य का मौलिक प्रतिमान चित्रात्मकता का परिप्रेक्ष्य है।''**

जयति जन निवासो जातको-जन्मवादः -

आकाश गंगा के चित्रलोक में पवित्र रंग के अनेक लोकोपकारी मंगलो, अमंगलों के परा-अपरा रूप को प्रजापति ने रचित किया। इसमें **'ज्योतिषां ज्योति, चित्रषांम् प्रतीति'** का **त्रिफुलिया अंकन** कमल की पंखुड़ी है, जिसके वक्ष पर **'ग्रह वृत्त'** का उज्ज्वल निभोज्ज्वल कान्ति कान्तम का **हिरण्यमयी कण्ठहार** शोभित है। मध्य केन्द्र का अगम्य विस्तार है। सर्वांग-सुन्दर इस मण्डलीय प्रदेश में, स्थान की समृद्धि एवं वृद्धि दृष्टि् दिव्यता है, रत्नों के निवसित प्रतीक शान्ति प्रगति, लाभोन्नति के कारक हैं। **देव शिल्प** के ये रूप पाप और **पुण्य** का **मोचन** और **विमोचन** करते। औषधियों वनस्पतियों की नक्षत्रीय उपयोगिता, पशु-पक्षियों की गुणावली **विधाता** की **दूरदर्शिता** है। जगत् सम्पत्ति की योग्यता **विधायिनी शक्ति** की कला है। ग्रहीय कल्प की निष्ठुरता मानवीय चरित्र का कल्प है। **त्रिकाल वन्द** का **अभिकल्प** मानव मस्तिष्क का उन्नत स्वरूप है। स्त्री, पुरूष, बाल, वृद्ध, किन्नर कूबड़ आदि के **रूपाकृति संसृति चक्र** का **गर्भ** है। दोष का विदोष काल का प्रदोष है। कर्म प्रवृत्ति के बीजाकुंर से भाग्य वृक्ष का फल महाफल दायी है। **प्रकृति** की **कृति जीवन** की **संस्कृति** है। **ज्योतिष** की **ज्योति जीवन रथ की दिशा** है, जिसकी दशा में कर्म और धर्म की धुरी विज्ञान का धाम है। मन वचन और कर्म का कुशल क्षेम एक दूसरे से अपेक्षित है। उपेक्षित, विस्मृति, दारूण-दुःख का मूल है। शरीर रक्षा के मंत्र में ग्रह का तन्त्र महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान करते हैं। एक जीते जागते चित्रपट् के रूप में आचरण के अर्थ सूक्त इंगित तथ्य का आकर्षण हैं। जीवन वृत्ति का चक्र भूत, सम्प्रति, एवं भावी रूप के पूरक हैं। गगनमण्डल में प्रत्येक नक्षत्र-ग्रह वक्री और मार्गी रूप के प्रचेता है। निश्चित पथ में निर्भय एवं स्खलित दोष से मुक्त विचरण **जीवन धर्म का ध्रुव** है। प्रतिरोध से परे भी प्रगति के संचरण नीति-अनीति का संज्ञान ले सकते है, द्वन्द मान अर्थ और अनर्थ का भावार्थ सर्वांग प्रकार है। योग्य मानव की कल्पना नियतात्मता है। जिसकी कान्ति में चन्द्रमा, क्रोध में कालाग्नि, क्षमा-गुण में पृथ्वी, त्याग में दधीचि और सत्यार्थ धर्म में अविचलित प्रज्ञा बुद्धि (अर्थात् सुखः दुःख, हानि-लाभ, जीवन मरण में एक सम्भूति) का योग कर्म क्षेत्र की **प्रतिभूति** है। वस्तुतः नक्षत्राकाश में उड़ने वाले ज्ञान पृथ्वी की पहुँच में किस भाँति लोकार्पित हों इसका यत्न **विज्ञान** की **अभिलाषा** भी है और संशोधित जिज्ञासा भी। **उपग्रहीय बल ग्रह** के ही **निकट दर्शन** है। लौकिक जीवन का रूप सदा समक्ष रहा है किन्तु पारलौकिक स्वरूप का चिन्तन् ज्ञान वृद्ध की शोभा है। ज्ञानरश्मि के विराट् में शरीर मूँज-घास है, आत्मा उसके भीतर की सींक है। जिस प्रकार मूँज से इषीका का निष्काषन है वैसे ही जन्मांग के चित्रपट्ट से वर्णपट्टिका का साक्षात्कार जीवन फल की आत्मा का विस्तार है। मानस के सच्चे रूप का उद्वेलन **प्रज्ञापारमिता** है, गुणोत्कर्ष के अंश में अवदान का संकल्प भवदान है। वैदिक ज्योति के गतिमान रथ चक्र में नियन्ता को महिमा का चिन्तन दर्शन का नियामक सूत्र है। प्रत्येक प्राणी के ललाट चिन्तन के **'चिन्तामणि'** दृढ़ संकल्प की **कौस्तुभ मणि** सुशोभित हो यही ज्योतिष एवं चित्र संस्कृति की पूर्णता है।

'भवचक्र' जगत् संचालन की एक व्यवस्था है। जिसमें कर्मगत् नियोजना विशेष शुद्धि है, यह प्रक्रिया जन्म जन्मान्तर की प्रक्रिया का बोध कराती है। चित्रपट का खेल जीवन का मेल है, जिसे भुवि भारभूता का चित्रहार कहते हैं। जिसमें, यमराज, भैरव, भैरवी, दण्डपाणि है। शूल पाणि 'रुद्र' छवि वाली मूर्ति उत्कीर्णित चित्र शिल्प है, कलाकामारि की देह यष्टि अत्यन्त अनोखी है। उसकी ऊँचाई 2.70 मीटर है। इसके सिर का जटामुकुट (पगड़ी) जोड़ीदार सर्पो से निर्मित है। प्रतिमा में रूद्र शिव के हाथ एवं अंगुलियों को सर्प की भाँति आकार दिया गया है। प्रतिमा के दोनों ओर (ऊपरी भाग पर) एक-एक सर्पफण छत्र कन्धों के ऊपर दिखाया गया है। इसी तरह बाँए पैर में लिपटे हुए फण युक्त सर्प का अंकन है। दूसरे जीव-जन्तुओं में कान एवं कुण्डल मोर से, आँखों की भौंहे एवं नाक छिपकली से मुख की ठुड्डी केकड़ा से निर्मित है तथा भुजाएँ मकर मुख से निकली हैं। शरीर के विभिन्न अंगों में सात देवमुख निर्मित है। यह प्रतिमा देवरानी जेठानी मन्दिर

के उत्खनन से प्राप्त हुई है। 1873-74 में इसकी खोज हुई थी, 'जेडी0 वेलगर' द्वारा। यह स्थल शिवनाथ और मनियारी नदी के संगम पर स्थित है।

संदर्भित पुस्तकें-

1. रमेश कुन्तल **'मेघ' अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा**/वाणी प्र0 नयी दिल्ली/पृ0 17, वर्ष 2001.

2. वही, कला और सौन्दर्यबोधशास्त्र, पृ0 2.

3. **अथर्ववेद** 11.53.1.10.

4. प्रो0 विजय नारायण पाण्डेय- **'भारतीय संस्कृति और कला',** पृ0 (XIII) पुरोवाक्/साहित्य संगम प्रकाशन- इलाहाबाद संस्करण 2003.

   'कठोपनिषद' अध्या. 2, बल्ली 3, श्लोक, 5 मुण्डकोपनिषद्, पंचदशी का चित्रदीप प्रकरण, 'अथातो सौन्दर्यजिज्ञसा'।

5. डॉ0 रमेश कुन्तल 'मेघ'- **(कल्पना)** पृ0 184, 85 वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2001.

6. **'दण्डी'**- शब्दाख्या ज्योति न होती तो संसार अंधेरे में रहता/सन्दर्भ पं0 विद्यानिवास मिश्र- द डिस्क्रिप्टिव टेक्नीक ऑफ पाणिनि : एन इंट्रोडक्शन, 1966) हमारे अलंकार शास्त्र में- कहा गया है- जैसे- शब्दचित्रं वाच्यचित्रंमव्यग्यं त्ववरं स्मृतम्। 05 - काव्य प्रकाश, प्रथम उल्लास।
   चित्र मात्र ही अक्षर है- क्या शब्द चित्र क्या वाच्य चित्र- उसमें इंगित निधान नहीं है।

7. **दुष्करं भव संयोग काले दुःस्थानमाययुः।**

   तत्फलामभ्यपायैव तदा पूज्यतमाः ग्रहाः॥ -(वृह0 सं0 1/6-7, 9)

   'पूर्वं जन्मार्जितं कर्म फलेन भोग्यप्तं' को ज्योतिषशास्त्र उसी प्रकार व्यक्त कर देता है, जैसे दीपक अन्धेरे में रखे पदार्थो को स्पष्ट दिखा देता है। प्रतीकात्मक प्रविधि की लोचना में आचार्यों ने भाषा चिन्तन में जल ज्योति, दीपक ब्रह्म का चयन करते हुए शाब्दिक और भाषिक व्यवस्था का विवेचन किया है। प्रो0 दिलीप सिंह- भाषा का संसार/वाणी प्र0 नयी दिल्ली/2008/पृ0 56, 68.

8. चित्राणि साकं दिवि रोचनानि ....

   अहानि गोर्भिसपर्यामिनाकम्।

   - (अथर्व0 17/7/1)

9. नवो नवो भवति जायमानाः, क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः यथातथ्यतोऽर्धानः व्यदधाच्छश्वतीभ्यः।।
   संस्कृतज्ञों ने इस कथन की पुनरावृत्ति की है।

   कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्ति।

   - (महाकवि भास)

   महाकवि भास के अनुसार सुख और दुःख भाग्यवाद का खेल है। जो परिवर्त्तन का वाहक है।

10. ॐ चित्रं देवानां मुद्गादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरूणस्याग्नेः। आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्यात्मा जगतस्तस्थुषश्च।।
    (ऋक्0 1/115/1, शु0 यजु0 7/42) भावार्थ है- जो तेजोमय किरणों के पुंज, मित्राग्नि, वरुण : आदि देवताओं एवं समस्त विश्व के प्राणियों के नेत्र हैं और स्थावर- जंगमात्मक समस्त जीवनिकाय के अन्तर्यामी आत्मा हैं, वे भुवन भास्कर अपने प्रकाश से (आकाश पृथ्वी और अन्तरिक्ष) पूर्ण करते हुए आश्चर्य रूप से उदित हो रहे हैं।

11. पं0 जयगोविन्द शास्त्री- **आस्था-अनास्था**/सूर्य का मीन राशि में प्रवेश/**खरमास क्या है?** सूर्य देव से इसका क्या सम्बन्ध है? हिन्दी दैनिक जागरण- 15 मार्च 2016.

12. अत्यन्त प्राचीन कुण्डलित चित्र पट, कलात्मक रूप से निर्मित भारत कला भवन में संरक्षित है।' जिसमें रंग रेखा भाव का निमज्जित रूप अंकित है।

13. 'ज्योतिश्चक्रेतु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभं। ज्योतिर्ज्ञानं तु यो वेद सः याति परमां गतिभि।।' ज्योतिष चक्र में संसार के सभी जनों का शुभोशुभ (गणित फलित) विद्यमान रहता है, जो ज्योतिष शास्त्र को जानता है, वह परमगति (ब्रह्मसायुज्य) को प्राप्त होता है। **पियूष धारा** में **महर्षि गर्ग** का **वचन।**

14. ''कुरुक्षेत्र के मैदान में स्वयं परब्रह्म द्वारा दी गयी वह शंखध्वनि है- ''**निराशीनिर्ममी भूत्वा युध्यस्थ विगत ज्वरः**'' अर्थात् कर्मप्रधान देहधर्म पर देवता भी लालायित रहते हैं। इसीलिए भारतभूमि का एक नाम कर्मभूमि है।

15. उत्तर मेघ में यक्ष कि टिप्पणी है-
त्वामालिख्यं प्रणय कुपितां धातुरागैः शिलायामात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्। अस्त्रैस्तावन्मुहुरूपचितैर्दृष्टि रालुप्यते मे क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृन्तान्तः॥45॥

●

''प्रज्ञा''
नियम एवं निर्देश

1. ''**प्रज्ञा**'', जहाँ तक संभव होगा, वर्ष में दो प्रकाशित होगी : प्रथम अंक सत्रारम्भ के अवसर पर और दूसरा अंक मालवीय जयंती के अवसर पर।

2. ''**प्रज्ञा**'' पत्रिका में प्रकाशनार्थ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शोध छात्रों एवं अध्यापकों के लेख/शोध प्रपत्र सम्पादक ''**प्रज्ञा**'' के कार्यालय में प्रथम अंक के लिए 30 नवम्बर तथा द्वितीय अंक के लिए 30 अप्रैल तक पहुँच जाने चाहिए। शोध छात्रों के लेख/शोध प्रपत्र अपने निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष से संस्तुत एवं अग्रसारित होने चाहिए।

3. ''**प्रज्ञा**'' जर्नल में प्रकाशित लेखों/शोध प्रपत्रों के लेखकों को ''**प्रज्ञा**'' की दो प्रतियाँ दी जायेगी : प्रथम लेखकीय प्रति और दूसरी प्रतिमुद्रण की 10 प्रतियों के बदले में।

4. सभी प्रकार का शुल्क, सम्पादक ''**प्रज्ञा**'' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका, वाराणसी-221005 के नाम भेजें।

5. **शोध-प्रपत्र/लेख के पाण्डुलिपि निर्माण सम्बन्धी दिशा निर्देश :**

   (क) संगणक (कम्प्यूटर) पर टंकित शोध प्रपत्र/लेख की एक प्रति सी०डी० के साथ ''**प्रज्ञा**'' कार्यालय में जमा करना होगा।

   (ख) पाण्डुलिपि ए-4 आकार के बाण्ड पेपर पर डबल-स्पेस में टंकित होना चाहिए। लेख के चारों तरफ 2 से०मी० की हासिया छोड़ें।

   (ग) **हिन्दी एवं संस्कृत भाषा में टंकित लेखों के लिए दिशा निर्देश :**

   ए.पी.एस.-डी.वी.-प्रियंका रोमन फॉन्ट, शीर्षक– 17 प्वाइंट ब्लैक, लेखक का नाम – 13 प्वाइंट इटैलिक ब्लैक, टेक्स्ट– 13 प्वाइंट, फोलियो – 11 प्वाइंट और पाद टिप्पणी 9 प्वाइंट।

   (घ) **अंग्रेजी भाषा में टंकित लेखों/शोध प्रपत्रों के लिए दिशा निर्देश :**

   'टाइम्स न्यू रोमन' फॉन्ट, शीर्षक – 14 प्वाइंट आल कैप्स काला, लेखक का नाम – 11 प्वाइंट सभी कैप्स इटैलिक ब्लैक, टेक्स्ट – 11 प्वाइंट ऊपर नीचे की पाद टिप्पणी और फोलियो – 9 प्वाइंट।

   (ङ) **टंकित पृष्ठ संख्या : अधिकतम 10 पृष्ठ।**

6. लेखक का घोषणा-पत्र :

''**प्रज्ञा**'' जर्नल में प्रकाशनार्थ प्रेषित ''........'' शीर्षक लेख/शोध प्रपत्र का लेखक मैं घोषणा करता हूँ कि—

   (अ) मैं लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है, और साथ ही अपने लेख/शोध प्रपत्र को ''**प्रज्ञा**'' जर्नल में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ।

   (ब) यह लेख/शोध प्रपत्र मूल रूप से या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छापने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है।

   (स) मैं ''**प्रज्ञा**'' जर्नल के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। ''**प्रज्ञा**'' में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापी राइट का अधिकार **सम्पादक ''प्रज्ञा''** को देता हूँ।

लेखक का नाम एवं हस्ताक्षर ....

दिनांक एवं स्थान ....

मोबाइल/टेलिफोन नं0 ....

●

''नीर, सलिल, पय : अमृत-जीवन'' (वेदों के विशिष्ट सन्दर्भ में)

अंजली जायसवाल[*] एवं प्रो. (श्रीमती) सरस्वती सिंह[**]

वेद भारतीय संस्कृति के प्राणतत्त्व है, जो स्वयं में विभिन्न ज्ञान-विज्ञान के गूढ़ रहस्यों को समाहित किये हुये है। उनमें से एक ज्ञान **''पञ्चमहाभूतों''** का है, जिसके पञ्चतत्त्वों-पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश में अनेकों गुणमयी रहस्य छिपें है। सम्पूर्ण सृष्टि इन्हीं पञ्चतत्त्वों से मिलकर बनी है। 'भूत' शब्द से पञ्चतन्मात्राओं का कथन किया जाता है और पञ्चमहाभूत भी 'भूत' शब्द से कहे जाते है क्योंकि पञ्चतन्मात्रा एवं पञ्चभूततत्त्व का मिश्रण ही 'स्थूल-शरीर' होता है और यह शरीर ही 'भूतात्मा' कहलाता है। **मैत्रायणीय आरण्यक** में कहा भी गया है-

''पञ्चतन्मात्रा भूतशब्देनोच्यन्तेऽथ पञ्चमहाभूतानि भूत शब्देनोच्यन्तेऽथ तेषां यत्समुदयं तच्छरीरमित्युक्तमथ यो ह खलु वाव शरीर मित्युक्तंस भूतात्मेत्युक्तम्''[1]

ये पञ्चतत्त्व मानव जीवन के लिए एक उपयोगी तत्त्व है इसलिए इन्हें ब्रह्माण्ड में व्याप्त लौकिक एवं अलौकिक वस्तुओं का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कारण एवं परिणति माना गया है जैसे सृष्टि में तत्त्वों का न्युनाधिक होना विनाश की स्थिति उत्पन्न करता है, उसी प्रकार मानव शरीर में भी इन तत्त्वों का न्युनाधिक होना अनेक विकारों को उत्पन्न करता है। इसलिए सृष्टि हो या मानव शरीर दोनों स्थानों पर 'पञ्चतत्त्वों' का संतुलित रूप में होना आवश्यक है नौ द्रव्यों में इन पञ्चतत्त्वों का प्रथमतः स्थान है जिसमें जलतत्त्व का विशेष स्थान है।[2] इसलिए ईश्वर ने पृथ्वी हो या मानव शरीर, दोनो में प्रधानरूप से 'जलतत्त्व' को रखा हैं। पृथ्वी का दो तिहाई भाग जल से परिपूर्ण है और मानव शरीर भी पूरा 70 प्रतिशत जल से परिपूर्ण है। यहाँ तक की माँ के गर्भ में विद्यमान एक माह का शिशु जिसका पूरा शरीर 99 प्रतिशत केवल जल तत्त्व से बना होता है। ऐतरेयोपनिषद् में कहाँ गया है-**''सोऽद्भय एव समुद्धत्यामूर्छयत्'**[3] अर्थात् जल से ही अवयवयुक्त पुरूष का जन्म हुआ है। सृष्टि में 'जीव-जीवन-जल' इन तीनों का आपस में गहरा सम्बन्ध है ईश्वर ने जब सृष्टि की रचना प्रारम्भ की तो जीव की उत्पत्ति के पश्चात् उनके जीने के सुविधाओं को सर्वप्रथम उत्पन्न किया और उन्हें सर्वप्रथम क्षुधा एवं पिपासा से संयुक्त कर दिया-

''ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनाया पिपासाभ्यामन्ववर्जितः[4]

यह सर्वविदित है कि क्षुधा की तृप्ति अन्न से एवं पिपासा की तृप्ति जल से होती है और जल के बिना अन्न की उत्पत्ति सम्भव ही नहीं है कहा भी गया है '**आपो वा अन्नम्**'[5] अर्थात् जल ही अन्न है। जहाँ अन्न को खाने से मानव शरीर 'क्रियावान' होता है वहीं जल को पीने से 'प्राणवान' होता है। मानव का क्रियावान होना 'मन' पर आश्रित होता है इसलिए मन सदैव प्राण से बंधा हुआ है अतः मन को **अन्नमय** एवं जल को **प्राणमय** कहा गया है जल एवं अन्न की महत्ता के विषय में अनेक तथ्य उपनिषदों में प्राप्त होते है **छान्दोग्योपनिषद्** में कहा गया है कि- अन्न मनुष्य के अन्दर विद्यमान षोडश कलाओ को जागृत करता है और जल मनुष्य के प्राण को जागृत करता है[6] अर्थात् मनुष्य अन्न के बिना कुछ दिन जीवित रह सकता है लेकिन जल के बिना जीवित रहना सम्भव नहीं है। सृष्टि में विद्यमान पञ्चतत्त्वों का प्रयोजन जीवन देना एवं जीवन को संतुलित बनाये रखना है। पृथ्वी पर जल की उपलब्धता मानव हित के लिए ही है, जो जीवन संरक्षण के साथ-साथ '**आपः स्त्रोत**'[7] अर्थात् जीवन के स्त्रोतो के रूप में है।

जल, जीवन का स्त्रोत है। इससे जल के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उठते है प्रथम प्रश्न यह उठता है कि जल का स्त्रोत अर्थात् उत्पत्ति कैसे है? इसका उत्तर वैदिक ग्रन्थों में अन्यत्र मिलते है- **ऐतरेयोपनिषद्** में जल की उत्पत्ति 'रेतस'[8] से **मुण्डकोपनिषद्** में 'अक्षर ब्रह्म से,[9] **प्रश्नोपनिषद्** में 'पुरूष द्वारा रचे प्राण से[10] **ऋग्वेदीय** मन्त्रों में इन्द्र[11] द्वारा **मनुस्मृति** में तेज से[12] जल की उत्पत्ति बतलायी गयी है। मनुस्मृति के वाक्य का समर्थन **तैत्तिरीयोपनिषद्** के प्रस्तुत मंत्र से भी होता है **ज्योतिष्याप: प्रतिष्ठिताः** अर्थात् ज्योति में जल प्रतिष्ठित है।[13] दूसरा प्रश्न यह उठता है कि जल का मूलस्थान कहाँ है? जिसका उत्तर **ऐतरेयोपनिषद्** में इस प्रकार मिलता है- लोको की रचना में '**अधस्तान्ता आपः**'[14] अर्थात् जो नीचे का लोक है जो पृथ्वी है वह 'आपः' है। **तैत्तिरीय आरण्यक** में '**आपमापामपः सर्वाः**'[15] कहकर जलों को सर्वत्र विद्यमान बतलाया गया है।

प्राप्तिस्थान भेदों से जल में कोई भिन्नता प्राप्त नहीं होती। तर्कसंग्रह में जल का लक्षण देते हुए कहा गया है- **'शीतस्पर्शवत्यः आपः'** अर्थात, जल वही कहलाता है जिसका स्पर्श शीतल हो। जल के दो भेदो नित्य एवं अनित्य का तात्पर्य क्रमशः हमेशा विद्यमान रहना एवं निश्चित कार्य समाप्ति के बाद समाप्त हो जाना है क्योंकि नित्य से ही अनित्य की उत्पत्ति होती है जैसे कारण से कार्य की। अनित्यरूप जल कार्य है जो उत्पन्न होने

* शोधच्छात्रा, कला संकाय, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** शोध निर्देशिका, प्रोफेसर, कला संकाय, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

के कारण क्षणिक है, जो पृथ्वी के नीचे विद्यमान वरुण लोक में शरीर रूप में विद्यमान है, जीभ के अग्रभाग से ग्रहण करने योग्य है और इन जलों का पृथ्वी पर स्थान नदी, तालाब, समुद्र, कूप आदि है।[16] जल के अनेक गुण है जिनमें प्रथम गुण 'रूप' है। रूप सात प्रकार के होते है प्रथम रूप 'शुक्ल' है जिसके दो भेद है - भास्वरशुक्ल एवं अभास्वरशुक्ल। इनमें से 'अभास्वरशुक्ल' नामक रूप जल का गुण है[17] और मधुर रस से युक्त गुण भी जल का है[18] जो कि जल पृथ्वी पर पाया जाता है जिसके कारण पृथ्वी पर होने वाले दुष्प्रभाव का असर जलों पर भी पड़ता है

जैसे- सुगन्ध एवं दुर्गन्धरूपी प्रदूषण का प्रभाव।[19] विज्ञान के क्षेत्र में जल को प्रमुख रासायनिक द्रव के रूप में जाना जाता है क्योंकि जल एक सांसिद्धिक द्रव[20] है अर्थात् स्वभाव से ही वह 'द्रव' है। पांचवा गुण जल का 'स्नेह' अर्थात् चिकनाहट है[21] जो किसी भी पदार्थ में मिलाने पर उसमें चिकनाहट ला देता है, जैसे-, मिट्टी में जल मिलाने पर, आटे में जल मिलाने पर इत्यादि जो लौकिक रूप में प्रत्यक्ष देखें जाते है। यह एक मात्र ऐसा गुण है जो केवल जल में ही प्राप्त होता है। जल, जो कि एक प्रमुख रासायनिक द्रव है जिसका वैज्ञानिक रासायनिक सूत्र H_2O है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में जल का सूत्र दिया गया है कि मित्र और वरूण के संयोग से जल प्राप्त होता है- **'मित्रंहूते पूतदक्षं वरूणं च रिशादसम् धियं घृताचीं साधन्ता।'**[22]

अर्थात् जल की प्राप्ति के लिए मैं पवित्र ऊर्जा वाले मित्र और दोषों को नष्ट करने वाले वरुण को ग्रहण करता हूँ। यहाँ मित्र से तात्पर्य Oxygen से है और वरुण से तात्पर्य Hydrogen से है। इसलिए जल में अग्नि की विद्यमानता सिध्द् होती है। ऋग्वेद में अग्नि को जल प्रवाहों के गर्भ से उत्पन्न कहा गया है[23]। अग्नि ही नदियों के जल का संरक्षण करता है, इसलिए ऋग्वेद में उसे **'जामिः सिन्धुनां भ्रातेव**[24] अर्थात् जल का 'भ्राता' कहा गया है। यहाँ अग्नि से तात्पर्य तेज से है इस तेज की प्राप्ति सूर्य से होती है। सूर्य अपने किरणों के माध्यम से जलों की रक्षा करता है। क्योंकि जिस प्रकार सूर्य, मनुष्यों में प्राण का संचार करते है वैसे ही जलों में भी प्राण धारण करने की क्षमता होती है। यह क्षमता जल प्रवाहों में स्थित सूक्ष्म अग्नि के कारण ही है। जल का मानव शरीर में प्रवेश होने पर वह तीन भागों में विभक्त होकर शरीर के तीन हिस्सों में बँट जाता है। **छान्दोग्योपनिषद्** में कहा है-**'आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहित योऽण्ष्ठिः सप्राणः'**[25] अर्थात् पीया हुआ जल तीन प्रकार का हो जाता है, जल का स्थूलतम भाग 'मूत्र' हो जाता है मध्यभाग 'रक्त' हो जाता है सूक्ष्मभाग 'प्राण' हो जाता है। इसलिए ऋग्वेद में प्रार्थना की गयी है- हे जलसमूह! जीवन रक्षक प्रत्येक औषधियों को हमारे शरीर में स्थित करें। जिससे निरोग होकर चिरकाल तक सूर्यदेव का दर्शन करते रहे। प्रस्तुत मंत्र में जल को औषधि एवं जल चिकित्सा के रूप में दिखाया गया है।[26] इसके अतिरिक्त जलतत्त्व की एक प्रमुख उपयोगिता कृषि क्षेत्रों में देखी जाती है जिसके बिना अन्न का उत्पन्न होना सम्भव ही नहीं है। जल जिस प्रकार जीवों में प्राण का संचार करता है वैसे ही बीजों एवं पौधो में भी प्राण का संचार एवं वृद्धि करता है। **अथर्ववेद** के अधिकतम सूक्त कृषि से सम्बन्धित है जिसमें जल की उपयोगिता को बतलाते हुए कहा गया है- **'शुनासीरेह स्ममे जुषेनथाम। यद्दिवि चक्रथुः पथस्तेनेमापुप सिञ्चतम'**[27] अर्थात् हे वायु और सूर्यदेव आप हमारी हवि का सेंवन करें। आकाश में स्थित जलदेवता वर्षा के द्वारा इस भूमि को सिंचित करें।

वेदों में जल द्वारा आतिथ्यसत्कार का भी उल्लेख मिलता है- **'या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः**[28] अर्थात् जिस जल को यज्ञ में ले जाते है यह वहीं जल है जो अतिथि के लिए समर्पित है। **कठोपनिषद** में यम द्वारा नचिकेता का आतिथ्य सत्कार जल के द्वारा किये जाने का उल्लेख है[29] जल तत्त्व की वेदों में अनेक प्रकार से प्रशंसा की गयी है कही देवता के रूप में तो कहीं औषधि के रूप में। ऋग्वेद में जल को सत्य के रूप में ग्रहण किया गया है।[30] वरुण देव सत्य के देवता है और जल के अधिष्ठाता देव होने के कारण जल सत्यस्वरूप है। **याज्ञवल्क्यस्मृति** के **व्यवहाराध्याय** के **दिव्य प्रकरण** के अन्तर्गत महाभियोग के संदेह निवृत्ति कर सत्य की प्राप्ति हेतु 'जलतत्त्व को पञ्चदिव्य अर्थात् तुला, विष, अग्नि, जल, कोप के अन्तर्गत रखा गया है। दिव्य तत्त्वों का प्रयोग वर्णानुसार किया जाता है, जिसमें वैश्य वर्ण के लिए जल तत्त्व से दिव्य प्रयोग करने का आदेश है अतः जल से संदेह निवृत्ति कैसे किया जाय उसे कहते है-

'सत्येनमाऽभिरक्ष त्वं वरुणेत्यमिशाप्यकम्।

नाभिध्दध्नोदकस्यस्य गृहीत्वोरु जलं विशेत्।। ९०८

समकाल मिषं मुक्तमानीयान्यो जवीनरः।

गते तस्मिन्निमग्रङ्ग पश्येच्चेच्छुद्धिमाप्नुयात।। ९०९

अर्थात्, हे वरुण! आप सत्य से मेरी रक्षा करें इस वचन से जल को अभिमन्त्रित कर नाभि तक जल में खड़े व्यक्ति की कमर पकड़कर जल में प्रवेश करे। उसके डुबकी लगाने के साथ ही छोड़े गये बाण को लेने के लिए एक तीव्र मति वाला व्यक्ति जाय। यदि बाण को ले आने के समय तक वह डुबकी लगाये रहे तो वह शुद्ध अर्थात् सत्य है।

जल तत्त्व का ज्योतिष शास्त्रों में भी विशेष महत्त्व बतलाया गया है। ज्योतिष में नक्षत्रों तारों आदि की गणना की जाती है जिनका सम्बन्ध भी मानव के व्यवहार से है। ज्योतिष मे ऐसे चार तत्त्वों की चर्चा गई है जिसके आधार पर राशियों का वर्गीकरण किया गया है। चार तत्त्व है-जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु। जल-तत्त्व की तीन राशियाँ होती है- कर्क, मीन, वृश्चिक। ये तीनों राशियाँ जलचर राशियाँ कहलाती है। जल के सभी गुण चन्द्रमा में प्राप्त होते

है इसलिए इन जलचर राशियों का चन्द्रमा से गहरा सम्बन्ध है चन्द्रमा मन का कारक होता है और मानव का क्रियावान होना मन पर आश्रित होता है जल के समस्त गुण इन तीन जलचर राशि वालों के व्यक्तितत्त्व में पाये जाते है।[31] **वराहमिहिर** के **बृहतसंहिता** के **दकार्गलाध्याय** के 1-142 श्लोकों में भूमि पर जल विद्यमानता के संकेत बतलाये गये है साथ ही उसके संरक्षण का भी निर्देश दिया है- **'पुंसा यथाङ्गषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः'** अर्थात् जैसे मनुष्य के शरीर में शिरा अर्थात् नशे होती है वैसे ही पृथ्वी में भी ऊँची-नीची जल की शिराये होती हैं। इसलिए योग-साधना या तंत्र-साधना में हस्त-मुद्राओं की स्थिती पर विशेष ध्यान दिया जाता है। क्योंकि शरीर पञ्चतत्त्वों से मिल कर बनी होती है और उन पञ्चतत्त्वों का नियंत्रण हाथों की पञ्च अंगुलियों पर निर्भर है। मानव शरीर प्रकृति की सर्वोत्तम रचना है और इस रचना में हाथों की रचना श्रेष्ठ है। जिस प्रकार माता के हाथों का स्पर्श एक छोटे शिशु को शीतलता प्रदान करती है उसी प्रकार हाथों का ये स्पर्श मानव शरीर को निरोगी बनाता है। हाथों की पांचो अंगुलियाँ पञ्चतत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती है। अंगूठे में अग्नि तत्त्व, तर्जनी में वायु, मध्यमा में आकाश, अनामिका में पृथ्वी और कनिष्ठिका में जल-तत्त्व पाया जाता है। इसलिए योग में कनिष्ठिका अर्थात जल-तत्त्व से सम्बन्धित दो मुद्राएँ बनती है जैसे- यदि शरीर में जल-तत्त्व की कमी हो तो कनिष्ठिका को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाये, यदि जल तत्त्व की अधिकता है तो कनिष्ठिका को अंगूठे के जड़ भाग से लगा कर फिर अंगूठे से कनिष्ठिका पर दबाव डालते है।[32] इसके अतिरिक्त **योग कुण्डल्योपनिषद्** में भी कहा गया है ध्यान के द्वारा पञ्चत्त्वों को जागृत किया जाता है। जिसमें जल तत्त्व के स्थान को **'स्वाधिष्ठान चक्र'** कहा जाता है जो मूलाधार चक्रों से थोड़ा ऊपर योनेन्द्रियों के मूल में विद्यमान होता है। कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा इस चक्र को जागृत करने के उपाय बतलाये गये है जिससे पञ्चतत्त्वों पर नियन्त्रण किया जा सके और शरीर को रोगहीन बना सके।[33] **श्वेताश्वतरोपनिषद्** में कहा गया है।

पृथिव्यप्तेजाऽनिलख समुत्थिते, पञ्मत्मके योगगुणे प्रवृत्ते।

न तस्य रोगो, न जरा, न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमय शरीरम्॥2.12

अर्थात्, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश की अभिव्यक्ति होने पर अर्थात् पञ्चभूतमय योग गुणो का अनुभव होने पर जिसे योगाग्निमय शरीर प्राप्त हो गया है उस योगी को न रोग होता है, न वृद्धावस्था प्राप्त होती है, और न ही उसकी असामयिक मृत्यु ही होती है।

निष्कर्षतः जल तत्त्व मानव जीवन के प्रत्येक भाग से जुड़ा हुआ है, जीव की प्रत्येक ईकाई जल के बिना सम्भव नहीं। वृद्धि हो या नाश दोनो में जल की उपस्थिति आवश्यक है। जल की महत्ता वैदिक काल से देखी जाती है और आज भी देखी जा रही है लेकिन दुःख इस बात की है कि महत्त्व को देखते हुए भी उसे कोई समझना नही चाहता न आत्मसात करना चाहता है वर्तमान में जल प्राप्ति संकट समूचे भारत में देखी जा सकती है जिसका एकमात्र समाधान जल-संरक्षण है। जल का संरक्षण अपने छोटे-छोटे प्रयासों से की जा सकती है। आवश्यकता से अधिक जल का प्रयोग न करना, बिना किसी कारण के जल को बर्बाद न करना। जितना हो सके उतना जल को संरक्षित करने एवं रखने की योजना बनानी चाहिए। ज्योतिष शास्त्र, भूत, भविष्य, वर्तमान की समस्त घटनाओं को जानता है जिससे उसने वर्तमान के जलसंकट का भी अनुमान लगा लिया था इसी कारण बृहतसंहिता में जलसंरक्षण के उपायो का निर्देश पहले ही दे दिया गया। जल की उपयोगिता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है चाहे वो जीवन का प्रारम्भ हो या अन्त। मनुष्य अन्न के बिना कुछ दिन जीवित रह सकता है लेकिन जल के बिना जीवित रहना सम्भव ही नही क्योंकि 'जल ही जीवन' है इसलिए यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं होगा कि **''नीर सलिल पय अमृत-जीवन''।**

संदर्भ सूची :-

1. मैत्रायणीय आरण्यक (3.2)
2. तर्क संग्रह, ढुण्डिराज शास्त्री, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वर्ष 2012,पृ0 4
3. ऐतरेयोपनिषद् (1.1.3)
4. ऐतरेयोपनिषद् (1.2.1)
5. तैत्तिरीयोपनिषद (3.8.1)
6. छान्दोग्योपनिषद् (6.7.1-6)
7. श्वेताश्वतरोपनिषद (1.15)
8. ऐतरेयोपनिषद् (1.1.4)
9. मुण्डकोपनिषद् (2.1.3)
10. प्रश्नोपनिषद् (6.4)
11. ऋग्वेद (1.32.1)
12. मनुस्मृति (1.78)
13. तैत्तिरीयोपनिषद् (3.8.1)
14. ऐतरेयोपनिषद (1.1.2)
15. तैत्तिरीय आरण्यक (9.9.8)
16. तर्कसंग्रह, ढुण्डिराज शास्त्री, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वर्ष 2012 पृष्ठ-9
17. तर्कसंग्रह, ढुण्डिराज शास्त्री, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वर्ष 2012, पृष्ठ 19
18. तर्कसंग्रह, ढुण्डिराज शास्त्री, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वर्ष 2012, पृष्ठ 20
19. तर्कसंग्रह, ढुण्डिराज शास्त्री, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वर्ष 2012, पृष्ठ 20

20. तर्कसंग्रह, ढुण्डिराज शास्त्री, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वर्ष 2012, पृष्ठ 28

21. तर्कसंग्रह, ढुण्डिराज शास्त्री, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वर्ष 2012, पृष्ठ 29

22. ऋग्वेद (1.2.7)

23. ऋग्वेद (6.5.3-4)

24. ऋग्वेद (1.65.7-8)

25. छान्दोग्योपनिषद् (6.5.2)

26. ऋग्वेद (1.23.21)

27. अथर्ववेद (3.16.9)

28. अथर्ववेद (9.6.5)

29. कठोपनिषद् (1.1.7)

30. ऋग्वेद (1.23.5)

31. https://www.astrovidhi.com>blog

32. https://www.guldusta.com>hast-mudra

33. योगकुण्डल्योपनिषद्

संदर्भग्रन्थसूची -

1. ऋग्वेद संहिता, सम्पादक-वेदमूर्ती तपोनिष्ठ पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक- युग निर्माण योजना ट्रस्ट, गायत्री तपों भूमिक मथुरा, वर्ष 2010।

2. अथर्ववेद संहिता, सम्पादक-वेदमूर्ती तपोनिष्ठ पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक- युग निर्माण योजना ट्रस्ट, गायत्री तपों भूमिक मथुरा, वर्ष 2010।

3. तर्क संग्रह, ढुण्डिराज शास्त्री, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वर्ष 2012

4. मैत्रीयणीय आरण्यक, लेखक पं0 श्री पाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी

5. ऐतरेयोपनिषद्, अनुवाद- शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर

6. तैत्तिरीयोपनिषद्, अनुवाद- शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर

7. छान्दोग्योपनिषद्, अनुवाद- शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर

8. श्वेताश्वतरोपनिषद्, अनुवाद- शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर

9. मुण्डकोपनिषद्, अनुवाद- शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर

10. प्रश्नोपनिषद् अनुवाद- शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर

11. मनुस्मृति, लेखक - डॉ0 गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष- 2010।

12. तैत्तिरीय आरण्यक, व्याख्याकार एवं सम्पादक- डॉ0 जमुना पाठक, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी, वर्ष 2014

13. कठोपनिषद् अनुवाद- शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर

14. योगकुण्डल्योपनिषद्, 108 उपनिषद् साधनाखण्ड, पं0 श्री राम शर्मा आचार्य, प्रकाशक-संस्कृति संस्थान, बरेली, वर्ष- 2013

बापू का संगीत प्रेम

कुमारी शालिनी[*] *एवं प्रो. रेवती साकलकर*[**]

'बापू' गुजराती तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पिता के लिए प्रयुक्त एक आदरसूचक सम्बोधन है जो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के लिए आदरपूर्वक प्रयुक्त हुआ।

''महात्मा'', संस्कृत भाषा का यह शब्द ऋग्वेद के पन्नों पर उन महापुरुषों के लिए प्रयोग किया गया जो सदैव अपने मन, कर्म तथा वाणी से जगत के कल्याण की कामना रखते हों।

आज महात्मा शब्द से सम्पूर्ण विश्व को जिस व्यक्ति का विचार आता है, वास्तव में वह इस शब्द के पर्याय रूप हैं। जिनका सम्पूर्ण जीवन सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए देश प्रेम को समर्पित रहा। गांधी जी ने सदैव अंहिसावादी विचारों का अनुसरण करते हुए देश हित में अनेक कार्य किये। बापू के अहिंसावादी विचार न सिर्फ भारतवासीयों के लिए प्रेरणा दायक सिद्धांत बने अपितु विश्व भर में उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों का अनुसरण किया गया। महात्मा गांधी पूर्ण रूप से एक कर्मयोगी थे जिन्होने अपने अध्यात्मिक सिद्धान्तों को राजनीति से जोड़ कर सम्पूर्ण भारत वर्ष को एकता के सुत्र में बांध दिया। हम सभी गांधीजी को एक महान नेता, कानूनविद्, स्वतन्त्रता सेनानी और एक असाधारण व्यक्तित्व के रूप में जानते हैं। किन्तु गांधीजी एक महान विचारक के साथ ही कला व संगीत के प्रशंसक भी थे।

किसी भी व्यक्ति के विचारों व उसकी रूची में पारिवारिक वातावरण की विशेष भुमिका होती है। जो उसके व्यक्तित्व में आजीवन बने रहते हैं। गांधी जी के पिताजी सनातन धर्म से सम्बन्ध रखते थे तथा उस क्षेत्र में जैन परम्पराओं का भी प्रभाव था। बापू की माता भक्तिभाव में विशेष रूची रखती थीं जिसका सीधा प्रभाव गांधी जी के व्यक्तित्व में परिलक्षित होता है अतः भजनों में गांधीजी की विशेष रूची थी। गुजरात के आदि कवि नरसिंह मेहता द्वारा रचित भजन ''वैष्णव जन तो'' बापू के प्रिय भजनों में से एक है। इस भजन में बापू के जीवन व उनके सिद्धांतों के दर्शन होते हैं सम्भवतः इसी कारण से यह बापू का अतिप्रिय भजन रहा।

बापू की दृष्टि में 'संगीत' मनुष्य के मानवीय गुणों का विकास कर बेहतर समाज की स्थापना व राष्ट्रीय एकीकरण में सहायक है। बापू के अनुसार ''सच्चे संगीत में साम्प्रदायिक अनेकता के लिए कोई स्थान नहीं है। संगीत हमेशा से राष्ट्रीय एकीकरण के सर्वोत्तम उदाहरण के रूप में रहा है, संगीत का मंच ऐसा स्थान है जहां हिन्दू मुस्लिम एक साथ बैठ कर बिना किसी द्वेष के कार्यक्रमों में सम्मिलित होते हैं।''[1]

15 अप्रैल 1926, अहमदाबाद में बापू ने देश के युवाओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि ''यदि संगीत को उसके व्यापक अर्थ में देखें तो यह एकीकरण की भावना से ओत-प्रोत है जीवन का कोई भी पक्ष इससे अछुता नहीं है यदि अधिकाधिक लोग अपने बच्चों को संगीत की शिक्षा दें तो यह भी उत्कृष्ट राष्ट्र निर्माण में एक महत्वपूर्ण योगदान होगा।''[2]

बापू ने संगीत के आंतरिक मर्म को समझते हुए सदैव संगीत के द्वारा लोगों के हृदय में प्रेम, अहिंसा और अनेकता में एकता की भावना को विकसित करने के प्रयास किए। जिसके जीवन्त उदाहरण के रूप में बापू की आश्रम परम्परा देखने को मिलती है। बापू के साबरमती स्थित सत्याग्रह आश्रम में प्रतिदिन प्रातः 4 बजे से दिनचर्या प्रारम्भ होती थी तथा प्रतिदिन प्रार्थना के निर्धारित समय 4 बज कर बीस मिनट पर सभी आश्रमवासी आश्रम के प्रार्थनाकक्ष में उपस्थित हो जाते थे।[3] गांधी जी का मानना था कि प्रार्थना के द्वारा शांति की स्थापना की जा सकती है।[4] बापू को प्रतिदिन सुबह प्रार्थना में भजन सुनना अत्यधिक प्रिय था। वह रोज़ अपने दिन की शुरूआत इन्ही भजनों से करते थे। कहते हैं कि अत्यधिक व्यस्त परिस्थितियों में भी बापू कभी प्रार्थना में जाना नहीं छोड़ते थे। आश्रम का वातावरण पूर्ण रूप से सांगीतिक था। वहां अनुशासन का विशेष ध्यान रखा जाता था तथा आश्रम की अनुशासित दिनचर्या में सुबह और शाम का समय संगीत को सर्मपित था। प्रार्थना कक्ष में सभी स्त्रियां व बच्चे एक ओर पंक्ति में तथा पुरूष दूसरी ओर पंक्ति में बैठा करते थे, बापू सर्वदा सभी के बीच में बैठा करते थे। आश्रम की सांगितिक व्यवस्था बनाए रखने का दायित्व आचार्य नारायण मोरेश्वर खरे को प्राप्त था।

आश्रम की प्रातःकालीन प्रार्थना में गाए जाने वाले भजन प्रातर्गेय रागों में तथा शाम की प्रार्थना में गाए जाने वाले भजन सायंकालीन रागों में निबद्ध थे। प्रार्थना का प्रारम्भ ''प्रातःस्मरामि हृदिसंस्फुरदात्मतत्वं'', ''शान्ताकारं भुजगशयनं'' आदि श्लोकों से होता था। इसके पश्चात् ''रघुपति राघव'', ''श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारी'' आदि भजन हुआ करते थे। प्रातःकालीन प्रार्थना में राग तोड़ी में निबद्ध ''दीन को दयालु दानी दूसरा न कोई'', राग सोहनी में ''ऐसी मुढ़ता या मन की'' आदि भजन तथा सायंकालीन प्रार्थना

* शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

में राग भुपाली में स्वरबद्ध ''गाईये गणपति जगवंदन'', राग देस में ''तु दयालु दीन हौ।'', राग खमाज में ''ऐसी हरि करत दास पर प्रीती'' आदि हिन्दी भाषा के भजन होते थे। आश्रम की मुख्य विशेषताओं में से यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि आश्रम में अनेक धर्मों तथा भाषाओं जैसे हिन्दी, संस्कृत, गुजराती, मराठी, बंगाली, अंग्रेजी आदि में प्रार्थना गीत तथा राष्ट्रीय गीत हुआ करते थे।[5] इस सांगीतिक पहल का मुख्य कारण भिन्न-भिन्न धर्मों व भाषाओं से सम्बन्ध रखने वाले लोगों में समानता की भावना को विकसित करना था। कहते हैं कि एक बार एक मुस्लिम धर्म की बहन जिनका नाम रेहाना तय्यब था उन्होने बड़ी ही मधुर कण्ठ से फ़ातिहा नाम से प्रसिद्ध हुयी कुरान शरीफ की एक आयत बापू को सुनायी थी जो बापू को अत्यधिक प्रिय हो गई और उसे भी प्रार्थना में सम्मिलित कर लिया गया। साथ ही 1942 में आगा खा़न के महल में डा0 गिल्डर ने पारसी धर्म ग्रन्थ से ''मजदा अन मोअवहिश्ता'' सुनाई थी जिसे बापू ने पारसी धर्म की प्रार्थना के रूप में आश्रम की प्रार्थना मे सम्मिलित किया। इस प्रकार सत्याग्रह आश्रम में अनेक धर्मों जैसे बौद्ध, मुस्लिम, पारसी आदि के प्रार्थना गीत होते थे। आश्रम की ये सांगितिक परम्परा सिर्फ भारतीय भाषाओं तक ही सीमित नहीं थी अपीतु विदेशी नागरिक भी बापू की प्रयोगशाला में सत्य और अहिंसा के पाठ सीखने आते थे। आश्रम में एक बार एक जापानी भाई का आगमन हुआ जो बापू के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे वे प्रतिदिन प्रार्थना से पहले बापू को प्रणाम किया करते थे उनके पास एक ढोलकी थी जिसे बजाकर वे ''नम्यो हो रेगे क्यों'' का पाठ तीन बार किया करते थे तथा प्रार्थना समाप्त होने के पश्चात वे उसे गाया भी करते थे।[6]

कहते है 1939 में जब महायुद्ध शुरू हुआ तब सरकार ने उन जापानी भाई को गिरफ्त में ले लिया, उनके जाने के बाद बापू ने जापानी भाई के स्मरण में उनके प्रार्थना गीत ''नम्यो हो रेगे क्यों'' को भी आश्रम की प्रार्थना में सम्मिलित कर लिया। डॉन बायर्ने की पुस्तक ''महात्मा गाँधी- The man and his massage" के अनुसार लंदन में विधि की शिक्षा ग्रहण करते समय बापू ने संगीत शिक्षा लेने के क्रम में वायलिन सीखना प्रारम्भ किया था तथा साथ ही कुछ समय तक नृत्य भी सीखने के प्रयास किये, बापू कहते थे यदि जीवन में संगीत न हो तो मैं अपने कार्यभार व उनकी ज़िम्मेदारीयों का सुचारू रूप से वहन करने में समर्थ न होता, बापू के अनुसार संगीत मात्र कंठ से उत्पन्न नहीं होता यह मन, इंद्रियों तथा हृदय से होता है।[7] बापू संगीत को आत्मिक सुख का साधन मानते थे वे भारतीय संगीत के साथ ही पाश्चात्य संगीत में भी रूची रखते थे वे बीथोवन का सिम्फनी संगीत भी सुनते थे। साथ ही भारतरत्न एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी द्वारा गाया हुआ मीरा भजन ''हरि तुम हरो जन की पीर'' बापू का अत्यन्त प्रिय भजन था। शांति निकेतन के प्रवास के दौरान बापू को शांति निकेतन का संगीत अत्यधिक आकर्षक लगा। अतः बापू ने श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर जी से शांति निकेतन की संगीत परम्परा में भारतीय संगीत के साथ पाश्चात्य संगीत को भी स्थान देने का आग्रह किया।[8]

बापू ने देशवासियों में आपसी सामन्जस्य बनाए रखने हेतु संगीत का प्रयोग किया तथा आपसी समरसता को विकसित करने के क्रम में ''रघुपति राघव राजा राम'' भजन में ''ईश्वर अल्लाह तेरो नाम सबको सम्मति दे भगवान'' सम्मिलित किया।[9] बापू ने संगीत को मनोरंजन का साधन न मानते हुए आत्मशांति के उपकरण के रूप में देखा तथा संगीत को आध्यात्मिक उन्नति का साधन मानते हुए आश्रम परम्परा में संगीत को विशिष्ट स्थान दिया। सत्याग्रह आश्रम के आचार्य पं0 नारायण मोरेश्वर खरे जी ने अपनी पुस्तक ''आश्रम भजनावलि'' में बापू के आश्रम में होने वाले भजनों, गज़लों तथा भिन्न-भिन्न भाषाओं के गीत जिनका गायन आश्रम में हुआ करता था उनका संग्रह किया है साथ ही इन गीतों के पदों के साथ ही उनके रागों का नामोल्लेख भी किया है ''आश्रम भजनावलि'' के अनुसार साबरमती के आश्रम में राग भांजी, राग मालकंस, राग पहाड़ी, राग खमाच, राग मांड, तिलंग, बिहाग राग बिभास, राग सारंग, भैरव, राग बहार आदि रागों में भजन गज़ल व कीर्तन हुआ करते थे जा सांगीतिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

आचार्य खरे ने अपनी पुस्तक में आश्रम में गाए जाने वाले कुछ कीर्तनों का नामोल्लेख भी किया है-

जिसमें-

1. हरे राम, हरे राम, हरे राम हरे
   भजमन निशिदिनी प्यारे
2. रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सिताराम
3. राम लक्ष्मण जानकी, जय बोलो हनुमान की
4. मारूति राया बलभीमा, भजना लागी घा प्रेमा
5. जय जय राम कृष्ण हरि, सांवल्या रामकृष्ण हरि
6. शिव हर शंकर गौरीशं, बन्दे गंगाधरमीशं

आदि कीर्तन सम्मिलित है। ''आश्रम भजनावलि'' में संग्रहित अनेक भाषाओं के भजन व गज़ल में से बापू के कुछ प्रिय भजनों व गज़लों का लघु संग्रह निम्नलिखित है-

हिन्दी भजन-

राग भैरवी - तीनताल

माई सरस्वती शारदा
विद्यादानी दयानी दुःखहरनी
जगतजननी ज्वालामुखी माता
कीजे सुदृष्टि सेवक जान इतनो,
अपनो कर बख्श दीजे,
ताल तान कर सुहाग बुध अलंकार

संस्कृत नित्यपाठ-

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्वं
सच्चितसुंखं परमहंसगतिं तुरीयम्
यत् स्वप्नजागर सुषुप्त मवैति नित्यं
तद् ब्रह्म निष्कलम हं न च भूतसंघः

गुजराती भजन-

राग-खमाज-धुमाली

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे
पर दुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे
सकळ लोकमां सहुने बंदे, निंदा न करे केनी रे
वाच काच मन निचल राखे, धन-धन जननी तेनी रे
समदृष्टि ने तृष्णात्यागी, परस्त्री जेने मात रे
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे
मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ वैराग्य जेना मानमां रे
रामनाम शु ताली लागी, सकळ तीरथ तेना तनमां रे
वणलोभी ने कपटरहिते छे, करतां, कुळ एकोतेर तायां रे

मराठी भजन-

राग पूर्वी-तीनताल

ते मन निष्ठुर कां केले,
जे पूर्ण दयेने भरलें
गजेनद्राचे हांके सरिसें, धाउनियां आले
प्रहलादाच्या भावार्थासी, स्तंभी गुरगुरले
पांचाळीच्या करूणावचने, कळवकुनी आलें
एका जनार्दनी पूर्ण कृपेनें निशिदिनिं पदि रमलें

ग़ज़ल

है बहारेबाग दुनिया चंदरोज़
देख लो इसका तमाशा चंदरोज़
ऐ मुसाफ़िर कूच का सामान कर
इस जहां में है बसेरा चंदरोज़
पूछा लुकमां से जिया तू कितने रोज़।
दस्ते हज़रत मलके बोला चंदरोज़।।
बाद मदफन् कब्र में बोली कज़ा।
अब यहां पे सोते रहना चंदरोज़।।
फिर तुम कहां और मैं कहां ऐ। दोस्तों।
साथ है मेरा तुम्हारा चंदरोज़।।
क्यों सताते हो दिले बेजुर्म को
जालिमो, है ये ज़माना चंदरोज़।।
याद कर तु ए 'नज़ीर' कबरों के रोज़।
ज़िंदगी का है भरोसा चंदरोज़।।[10]

महात्मा गांधी का सम्पूर्ण जीवन लोकहित और देश सेवा को समर्पित रहा तथा स्वाधीनता संग्राम के संघर्ष में सगीत ने सदैव बापू को संबल प्रदान किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. देविका, बी0आर0, द महात्मा एण्ड म्यूजिक, द हिन्दू – 4 अक्टूबर 2018 से साभार
2. वही
3. चांदीवाला, ब्रजकृष्ण, बापूनी सेवामा, नवजीवन मुद्रालय, अहमदाबाद
4. The collected works of Mahatma Gandhi, vol-83, page no. 87
5. खरे, नारायण मोरेश्वर, आश्रम भजनावलि, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, संवत् 1981, अहमदाबाद
6. चांदीवाला, ब्रजकृष्ण, बापूनी सेवामा, नवजीवन मुद्रालय, अहमदाबाद
7. Byrne, Donn, Mahatma Gandhi – The Man and His Massage, Orient Longman Ltd. Bombay, p. 19-20
8. The collected works of Mahatma Gandhi, vol-82, page no. 251
9. Pandey, Mrinal, Mahatma Gandhi Found Refuge in Music, National Herald, 30 Sept. 2018 से साभार
10. खरे, नारायण मोरेश्वर, आश्रम भजनावलि, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, संवत् 1981, अहमदाबाद

मौखिक परम्पराओं का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्त्व

प्रो. प्रद्युम्नशाह सिंह एवं देवेन्द्र प्रताप यादव***

मौखिक परम्पराएँ एक सामाजिक उत्पाद है और उनका स्वरूप बहुत अंशों में मानव की सामाजिक संरचना, भौगोलिक स्थिति और पर्यावरण से उसके अन्तः सम्बन्धों द्वारा निर्धारित होता है। वर्तमान में जितनी भी मौखिक परम्पराएँ दृष्टिगोचर होती है उन सबका एक सुनिश्चित ऐतिहासिक आधार है। यहाँ तक की भारतीय संविधान भी इस चीज को मान्यता देता हैं क्योंकि लोक परम्पराओं से लोगों का भावनात्मक लगाव होता है साथ ही लोगो को उन परम्पराओं से अपनेपन का एहसास भी होता रहता है। मानव जाति के बहुत बड़े हिस्से में मौखिक परम्पराएँ उनकी संस्कृति के सारतत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है। क्योंकि ये परम्पराएँ सभी संस्कृतियों का एक महत्त्वपूर्ण अंग होती है।[1] मौखिक परम्पराओं के द्वारा ही धार्मिक और लौकिक दोनों प्रकार का ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होता रहता है इसीलिए उनका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। लेकिन समय के साथ परिवर्तन भी होता रहता है। प्राचीन काल में जनसंचार का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम यही मौखिक परम्पराएँ ही थीं इनका महत्त्व आज के संचार माध्यमों से कम नहीं था।[2] जीवन की आर्थिक और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का कार्य मौखिक परम्परा से प्राप्त कार्य-कौशल और क्रियात्मक ज्ञान के कारण ही चलता रहता है।

मौखिक परम्परा के विषय में विचार करते समय हम उसमें प्रायः केवल मिथक और धार्मिक कथाएँ, आख्यान और महाकाव्य, लोकगीत, लोककथाएँ तथा कहावतें और पहेलियाँ, इन्हीं को सम्मिलित करते हैं। ये सब मौखिक परम्परा के महत्त्वपूर्ण अंग हैं; परन्तु इस परम्परा का निर्माण केवल इन्हीं से नहीं होता। परम्परा में जादू-टोने और मन्त्र-तन्त्र भी आते हैं। जो धार्मिकता और ग़ैर-धार्मिकता तथा लौकिकता की सीमा-रेखा पर होते हैं- वे ऐसे धार्मिक अनुष्ठान होते हैं जो ग़ैर-धार्मिक उद्देश्यों के लिए किये जाते हैं। मौखिक परम्पराएँ लौकिक-व्यावहारिक ज्ञान का भी विशाल भण्डार हैं, यद्यपि कुछ रूपों में इस प्रकार के ज्ञान में भी कभी-कभी सुनिश्चित धार्मिक स्वर सुनाई देते हैं। विभिन्न विषय, जैसे खगोल विज्ञान, कृषि विज्ञान, औषधि, मौसम विज्ञान और प्रारम्भि अभियन्त्रण तथा टेक्नोलॉजी मौखिक परम्परा के दायरे में रहते है। ज्ञान और दस्तकारी तथा शिल्प-कौशल इस परम्परा के माध्यम से हस्तान्तरित किये जाते हैं। सौन्दर्यबोध की अभिव्यक्ति और अनेक प्रकार के कला के रूप नृत्य, नृत्यनाटिका और नाटक-मौखिक परम्परा में महत्त्वपूर्ण रूप से जुड़े हैं। मौखिक परम्परा को सम्पूर्णता में देखा जाए तो वह संस्कृति का भण्डार तथा आधान भी है और संचालन-माध्यम भी। जन-संचार के प्रमुख माध्यम मौखिक परम्परा थी; जन-संचार के माध्यमों के विकास के बाद भी इनकी महत्त्वपूर्ण और सार्थक भूमिका कायम है।

मौखिक परम्परा और लिखित परम्परा में सम्बन्ध :

मौखिक परम्परा अधिकांशतः अज्ञात होती है। सामान्य अर्थ में वह सामूहिक अनुभव और प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व करती है। उसे जो कुछ विभिन्न स्रोतों-व्यक्तियों, बाह्य समूहों और आन्तरिक समूहों-से प्राप्त होता रहता है उसे वह अदृश्य रूप से आत्मसात करती जाती है। अनुभव के माध्यम से अनेक पीढ़ियों के द्वारा प्राप्त की गयी शिक्षाएँ इसमें निश्चित स्वरूप पाती हैं। परन्तु, मौखिक परम्परा अपरिवर्तनशील नहीं होती। लोग नये-नये प्रयोग तथा खोज करते हैं, उन्हें नये तरीकों से नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में जो सफलता मिलती हैं वह मौखिक परम्परा का अंग बन जाती हैं। सांस्कृतिक प्रगति के साथ मौखिक परम्परा में भी अवश्यम्भावी परिवर्तन होते रहते हैं; साथ ही इस परम्परा में होने वाले परिवर्तन व्यापक सांस्कृतिक परिवर्तनों को प्रेरित करने का माध्यम बनते हैं। नयी धाराओं का जन्म होता है और वे मौखिक परम्परा की मुख्यधारा में मिल जाती हैं। मौखिक परम्परा की परिधि पर परिवर्तन अधिक होते हैं; उसके सारभाग या मूल में कुछ स्थायित्व बना रहता है।

लिखित परम्परा और मौखिक परम्परा के बीच पूरा अलगाव नहीं होता है। प्रारम्भिक चरणों में मौखिक परम्परा ही लिपिबद्ध की जाती है; विशेषतः मौखिक परम्परा के महत्त्वपूर्ण अंशों को यह सम्मान प्राप्त होता है। अधिकांश मिथक प्रतीकात्मक होते हैं और कई संस्कृतियाँ उन्हें अपने पुराण और इतिहास के रूप में स्वीकार करती है। मिथकों का आकार लघु हो सकता है, परन्तु कई संस्कृतियों में वे अन्तरावलम्बी आख्यानों की विराट् शृंखला का रूप भी लेते हैं। मिथक अपने अनेक रूपों में संसार की प्रायः सभी संस्कृतियों में मिलते हैं। उन्हें संस्कृतियों-विशेषकर लोक संस्कृतियों का अधिकार-पत्र माना जा सकता है; सामाजिक व्यवहार में सही-गलत, उचित-अनुचित, अनिवार्य-वैकल्पिक आदि का निर्धारण उनमें अन्तर्निहित होता है। उनमें ज्ञान, जीवन-दर्शन, प्रेरणा और व्यवहार कौशल के तत्त्व घुले-मिले होते हैं।

* प्रोफेसर, जैन बौद्ध दर्शन विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** शोध छात्र, जैन बौद्ध दर्शन विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जनरीतियों का व्यावहारिक स्वरूप :

जनरीतियाँ सामाजिक व्यवहार के मानक निर्धारित करती हैं। वे व्यवहार का नैतिक मूल्यांकन नहीं करतीं और उनका प्रवर्तन अनौपचारिक ढंगों से किया जाता है, जनरीतियों को व्यापक सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है और सामान्यतः उनका उल्लंघन नहीं किया जाता। इस स्वीकृति की पृष्ठभूमि में तार्किक विश्लेषण नहीं होता, जनरीतियाँ मूलतः परम्परा पर आधारित होती हैं।[3] वे व्यवहार के नैतिक मानक निर्धारित करती हैं। उन्हें अस्वीकार करने का विकल्प नहीं होता; समाज उनका प्रवर्तन कठोरता से करता है। और ये मौखिक परम्पराएँ, जनरीतिया आदि विधि के दायरे से बाहर होती हैं, किन्तु पारम्परिक संस्थाएँ उनके उल्लंघन के प्रति सतर्क रहती हैं। उनकी स्वीकृति का आधार होता है समाज का उनके प्रति भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक लगाव रहता है और ये नियम साहित्य के अनेक रूप-लोकगीत, लोककथाएँ, गाथाएँ, मुहावरे, पहेलियाँ आदि के माध्यम से इन मिथकों को लोकवार्ता में शामिल किया जाता है। कुछ लोग मिथकों को लोकवार्ता का ही एक रूप मानते हैं, कुछ उन्हें एक स्वतन्त्र विधा के रूप में देखते हैं। लोकविश्वासों और जनश्रुतियों के साथ लोकाचार, पर्व, उत्सव, व्रत और संस्कार आदि को भी लोकवार्ता का ही अंग मानकर लोगों को उसका पालन करने की अपेक्षा की जाती है। कई मौखिक परम्पराएँ जब विच्छिन्न हो जाती हैं तब भी उनके कुछ अवशिष्ट रह ही जाते हैं; उनका पालन या तो रूढ़ियों के रूप में बिना तर्क के किया जाता है या नये सन्दर्भों में उन्हें नये अर्थ दे दिये जाते हैं।

मौखिक परम्परा के लक्षण :

परम्परा की परिभाषा उसके महत्त्वपूर्ण अभिलक्षणों के उल्लेख से अधिक स्पष्ट होगी। क्योंकि अभिलक्षणों में उसके प्रकार्यों का संकेत सरलतम रूप में मिलता है। जैसे-

1. परम्परा एक बहुआयामी संकल्पना है, जो जीवन के अनेक पक्षों का स्पर्श करती है। यह संस्कृति की पर्यायवाची नहीं है, किन्तु संस्कृति के अनेक क्षेत्रों में मानक सन्दर्भ-प्रतिरूप अवश्य है। संस्कृति के सभी पक्ष परम्परा द्वारा निर्देशित नहीं होते, किन्तु कुछ ऐसे अवश्य होते हैं जिनमें इसकी बहुत प्रभावी भूमिका होती है।

2. निरन्तरता परम्परा का महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण है। इसका यह अर्थ नहीं है कि इसका समय-फलक 'आदि' से आरम्भ होकर 'अन्त' पर समाप्त होता है, परन्तु कई पीढ़ियाँ इसका स्पर्श पाती हैं। क्योंकि एक समय में तीन या चार पीढ़ियों का सह-अस्तित्व सम्भव है, परम्परा की न्यूनतम समयावधि में उससे दोगुनी अथवा छः से आठ पीढ़ियों का कालखण्ड अपेक्षित है। परम्परा के कुछ अंग इससे भी अधिक दीर्घजीवी होते हैं। उसमें परम्परा की पुरातनता अवश्य है। निरन्तरता अपने-आप में एक गुण है जो परम्परा में आस्था जगाता है।

3. परम्पराएँ स्थिर नहीं होतीं, गत्यात्मकता उनका एक महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण है। परम्परा की परिधि में ही उसके कुछ पक्षों के सम्बन्ध में प्रश्न उठते रहते हैं और शंकाएँ भी समय-समय पर असहमति, विरोध और सुधार का स्वर सशक्त भी होता है। बौद्धिक और वैचारिक धरातल पर उठने वाले प्रश्न नये मत, सम्प्रदाय और पन्थों को जन्म देते हैं और अन्ततः अपनी विशिष्ट छाप के साथ विराट् परम्परा का अंग बन जाते हैं। हिन्दू, ईसाई, इस्लामी और बौद्ध धर्मों में अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ फूटीं। उन्हें स्वतन्त्र परम्पराओं के रूप में देखा जा सकता है और मातृ-परम्परा की शाखाओं के रूप में भी। परम्परा में आमूल परिवर्तन करने के क्रान्तिकारी प्रयोग भी हुए। सोवियत रूस, चीन और पूर्वी यूरोप का अनुभव हमें बताता है कि ऐसे प्रयत्न परम्परा को कुछ नये मूल्य और अर्थ तो देते हैं, पर वे समग्र परम्परा को बदलने में समर्थ नहीं होते। यही उसकी विशेषता है।

4. परम्परा का प्रवाह अन्य परम्पराओं से भी प्रभाव ग्रहण करता है और उन्हें भी प्रभावित करता है। सशक्त परम्पराएँ यदि दूसरी परम्पराओं में सीधा हस्तक्षेप करती हैं तो उन्हें प्रतिरोध भी सहना पड़ता है। इसके विपरीत जब वे समभूमि पर बिना किसी विरोधी या प्रतिस्पर्धात्मक भूमि पे खड़ी होती हैं तो वे एक-दूसरे का सन्तुलित मूल्यांकन भी करती हैं।

5. परम्परा समय द्वारा परीक्षित और प्रमाणित होती है। उसकी आधार भूमि मिथकीय चेतना और ऐतिहासिक अनुभव द्वारा निर्मित होती है। इस कारण परम्परा का अंग होना स्वयं अपने-आप में प्रमाण मान लिया जाता है। आस्था की मान्यताओं का तर्क और विवेकसम्मत होना अनिवार्य नहीं है, उनकी तर्क और विवेक की अपनी भिन्न परिभाषाएँ होती हैं। समाज की आन्तरिक प्रक्रियाएँ परम्परा का मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन करती हैं, जिससे उसे नयी व्याख्या और अर्थ मिलते हैं। इन प्रक्रियाओं की सफलता की दो शर्तें होती हैं। पहली वे अन्तर्जनित हो और दूसरी, परिणाम के स्थायीकरण के लिए उन्हें पर्याप्त समय मिले बाहर से थोपे गये या हड़बड़ी में किये गये परिवर्तन प्रतिरोधक प्रवृत्तियों को जन्म देते हैं, जो विशेष स्थितियों में बहुत शक्तिशाली और विस्फोटक सिद्ध हो सकते हैं।

6. परम्पराओं का क्षेत्र अत्यन्त संवेदनशील होता है। उनसे जातीय स्मृतियाँ जुड़ी होती हैं और सांस्कृतिक अस्मिता उनमें अभिव्यक्ति पाती है। उनमें सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के वे प्रतिष्ठा-चिन्ह भी अन्तर्निहित होते हैं जिनमें समाज अपनी छवि के गौरव शिखर देखता है। परम्परा के अति संवेदनशील पक्षों की अवमानना जातीय निरादर की द्योतक हो सकती है।

7. परम्परा की संरचना को कई भिन्न दृष्टिकोणो से देखा जा सकता है। उनके अन्तर्भौम के मूल्यों की स्वीकृति और व्यवहार-प्रकारों का पालन अनिवार्य होता है। बहिर्भोम में वे मूल्य और व्यवहार-प्रकार आते हैं जिनके विकल्पों का प्रावधान भी परम्परा की परिधि-सीमा में होता है। इन सार्वभौम, लोकव्यापी और वैकल्पिक तत्त्वों के अतिरिक्त परम्परा के कुछ अंग केवल विशिष्ट समूहों, समुदायों या वर्गों मात्र से जुड़े रहते हैं।

8. बड़े समाजों में परम्परा की संरचना का स्वरूप अन्त्यत संश्लिष्ट हो सकता है। इनमें परम्पराओं के अनेक धरातल तथा रूप होते हैं जिनकी एक सीमा तक स्वतन्त्र छवि तथा पहचान होती है पर जो सभ्यता सूत्रों से जुड़े होने के कारण अन्तः सम्बन्धी और अन्तरावलम्बी भी होती हैं।

   लोक और नागर परम्पराएँ एक-दूसरे से अलग होते हुए भी अनेक सूक्ष्म तन्तुओं से जुड़ी रहती हैं। प्राचीन सभ्यतावाले देशों में स्थानीय, क्षेत्रीय शास्त्रीय परम्पराएँ अपनी पहचान और अस्मिता के प्रति सजग होते हुए भी सभ्यता-सूत्रों से जुड़ी होती हैं। लघु और मध्यस्तरीय परम्पराओं को इकाइयों के रूप में देखा जा सकता है। और उनके विशद एकीकृत रूप में भी उदाहरण के लिए, भारत की जनजातियों और छोटे जनपदों की लघु परम्पराएँ हैं, संस्कृति क्षेत्रों की मध्स्तरीय परम्पराएँ हैं और एक महान् शास्त्रीय-परम्परा भी है। लघु और मध्यस्तरीय परम्पराओं ने महान् परम्परा को कुछ दिया है और उससे बहुत-कुछ लिया भी है।

9. आस्थाओं के आग्रह और दुराग्रह परमपराओं के सह-अस्तित्व को सम्भव बनाते हैं अथवा उनमें संघर्ष उत्पन्न करते हैं। संस्कृतियों का बहुवाद समसामयिक विश्व की अनिवार्यता है, किन्तु अस्मिता और अस्तित्व की समस्याओं ने कई स्थानों पर उनमें संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर दी है। परम्परा के आन्तरिक स्रोतों से ही सह-अस्तित्व का पर्यावरण बनाना सम्भव है।

10. परम्परा एक सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ है, किन्तु उसका जो रूप हमारे सामने आता है वह एक मानसिक संरचना है। परम्परा के व्याख्याकार उसकी रचना और पुनर्रचना करते हैं। ये व्याख्याएँ देश और काल की मनः स्थिति आवश्यकताओं को दबावों से प्रभावित होती हैं। उनका तथ्यात्मक आधार तो होता है पर व्याख्या और पुनर्रचना की प्रक्रिया में अर्थों और मूल्यों को नये मोड़ दिये जा सकते हैं। परम्पराओं के गठन में एक आन्तरिक तर्क होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि परम्परा की संरचना पर विचार करते समय हम तथ्यात्मक आधार, ऐतिहासिक विवेक और श्रेयस्कर भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कोई निर्णय करे।

आधुनिक मिथक शास्त्र को एक बौद्धिक उपलब्धि माना जा रहा है। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्परा की समझ के लिए उनपर विचार और विश्लेषण अधिक प्रासंगिक है, क्योंकि वे समसामयिक मिथकों पर केन्द्रित हैं, प्राचीन मिथकों पर नहीं। साहित्य, कला और संचार-माध्यमों द्वारा नित्य नये मिथकों का निर्माण किया जाता है। ये मिथक अपनी प्रस्तुति में यथार्थ को नये आयाम देते हैं और बड़े व्यापक रूप से समसामयिक जीवन के कई पक्षों को प्रभावित करते हैं। राजनीति, उद्योग और वाणिज्य विज्ञान और प्रविधि, मनोरंजन और खेलकूद जैसे विविध क्षेत्रों का स्पर्श ये मिथक करते हैं और वे सर्वग्राहिता को नयी दिशा देते हैं। हमें इन मिथकों को पढ़ने और समझने का तरीका सीखना चाहिए। जिससे हम उनके चिह्नों और प्रतीकों को समझकर उनके वास्तविक मन्तव्य तक पहुँच सकें।[4]

धार्मिक और लौकिक जीवन में मौखिक परम्परा का अवदानः

धार्मिक और लौकिक दोनों प्रकार का ज्ञान मौखिक परम्परा से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होता है। सांस्कृतिक धरोहर के हस्तान्तरण में मौखिक कथन तथा स्मृति की निर्णायक भूमिका होती है। महान् सभ्यताओं में भी मौखिक परम्पराओं का कम महत्त्व नहीं होता, क्योंकि इनमें 'महान् परम्परा' के साथ अनेक 'लघु परम्पराओं'का भी अस्तित्त्व रहता है। 'महान् परम्परा' मुख्यतः नगरीय शिक्षित वर्ग द्वारा निर्मित होती है, उसमें अमूर्त, रहस्यात्मक सौन्दर्यबोध का चित्रण होता है। यह 'महान् परम्परा' 'लघु परम्पराओं' के अनेक तत्त्वों को काफी मात्रा में आत्मसात करती है। इस प्रकिया में ये तत्त्व 'महान् परम्परा' के तत्त्व बने जाते हैं। अनेक प्रतीकों को नये अर्थ मिलते हैं, उनकी पुनर्व्याख्या की जाती है, जिसमें उनके दार्शनिक तत्त्व और अधिक समृद्ध हो जाते हैं। जब 'महान् परम्परा' की प्रतीक – व्यवस्था 'लघु परम्परा' में पुनः लौट आती है, तब इस प्रक्रिया में उसमें कुछ सार्थक परिवर्तन होते हैं। यह स्मरण रहे कि अधिकांश महान् सभ्यताओं में अशिक्षित जनता की बहुत बड़ी संख्या रही है, जो छोटे-से शिक्षित वर्ग से प्रभावित होती रही है; इस शिक्षित वर्ग में से सांस्कृतिक निरन्तरता तथा परिवर्तन के मुख्य प्रवर्तकों और गति-निर्णायकों का प्रादुर्भाव होता रहा है। जिन समाजों में औद्योगीकरण और शहरीकरण अधिक हुआ हो वहाँ मौखिक परम्परा की शक्ति और उसकी पकड़ निश्चय ही कम हो जाती है परन्तु वह पूरी तरह समाप्त नहीं होती।[5]

उदाहरणस्वरूप सन्तोषी माता के उपासक केवल उत्तर-पश्चिम भारत के कुछ सीमित क्षेत्रों में थे। उसकी चमत्कारिक शक्तियों के सम्बन्ध में लेखों और पुस्तकों के प्रकाशन से उसके उपासकों की संख्या में बहुत बड़ी वृद्धि हुई। सन्तोषी माता के जीवन पर बननेवाली फिल्म को बॉक्स ऑफिस पर आश्चर्यजनक सफलता मिली और उसकी उपासना को मान्यता देनेवालों की संख्या में और अधिक वृद्धि हुई। इलेक्ट्रॉनिक जन-संचार माध्यमों, विशेषतया

रेडियो और फिल्मों का मौखिक परम्पराओं की पुनः स्थापना और उनके प्रसार में बहुत बड़ा योगदान है।

लोक-महाकाव्यों और आख्यानों के फिल्मी रूपान्तरणों को व्यापक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। लोक-साहित्य की शैलियों का प्रभाव रचनात्मक शैलियों पर भी पड़ा है। लोक-शैलियों में कविताएँ और गीत लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं। लोक-कथाओं के मूल तत्त्व और साथ ही उनकी वर्णन शैली को कहानीकारों और उपन्यासकारों ने अपनाया है। जब भारत पर अंग्रेजों का शासन था, देश-प्रेम के गाने लोक-गीतों के रूप में बनाये जाते थे। विकास के कार्यक्रमों में इन शैलियों का उपयोग बेहतर खेती, आधुनिक स्वास्थ्य और खान-पान, तथा जनसंख्या नियन्त्रण के सन्देश देने के लिए किया गया है। लोक-शैलियों जैसे- हरिकथा, नौटंकी, यशगान आदि का प्रयोग विकास-सम्बन्धी प्रचार के लिए किया गया है। लोक-धुनें और उनसे जुड़े संगीत-वाद्य फ़िल्में बनाने वालों ने अपना लिये हैं। उनमें से कुछ के रूप और शैली की शुद्धता कायम रखने का पूरा प्रयास किया है, कुछ ने शुद्धता की कोई चिन्ता नहीं की है। बड़ा विचित्र अनुभव होता है जब पश्चिमी वाद्य संगीत के साथ लोक-धुनें सुनाई पड़ती हैं। भारतीय फिल्मों में लोकनृत्य उनके मूल रूप में बहुत ही कम प्रस्तुत किये जाते हैं। फिल्मी रूपान्तरण उन्हें इतना बदल देता है कि उन्हें पहचानना असम्भव हो जाता है। दूसरी ओर रेडियों ने लोक-साहित्य के विभिन्न रूपों, विशेषतः लोकगीतों को लोकप्रिय बनाने में बहुत बड़ा योगदान दिया है। उसने देश में विभिन्न भागों के प्रामाणिक लोग-संगीत की रिकार्डिंग को प्रोत्साहित किया है और उसे व्यापक रूप से श्रोताओं के लिए प्रसारित किया है। इससे नगरीय जनता में भी लोकरूपों के बारे में रुचि और ज्ञान की वृद्धि हुई है।

यह सब-कुछ केवल एक ओर से ही नहीं हुआ है। गीतों और नृत्यों की शैलियों पर स्पष्ट और सुनिश्चित नगरीय प्रभाव दिखाई देता है। ग्रामीण क्षेत्रों में फिल्म संगीत अधिक लोकप्रिय हो रहा है। शुभ अवसरों पर परम्परागत लोक-गीतों के साथ फिल्मों के बहुत अधिक प्रचलित गीत भी गाये जाते हैं। यह स्थिति उत्साहवर्धक और साथ ही घबराहट उत्पन्न करने वाली दिखती है। फिर भी मौखिक परम्पराओं और लोक-विरासत के ज्ञान में नगरीय समूहों की रुचि बढ़ रही है; यह उत्साह वर्धक है।

कुछ महाकाव्यों के विषय में, जो किसी भी कसौटी पर परखें तो साहित्य की श्रेष्ठ कृतियाँ हैं, वे लोक-परम्परा के माध्यम से साहित्यिक परम्परा में आये और सांस्कृतिक संचार की प्रक्रियाओं से लोकभाषा की शैली के अंग बने। 'रामायण' और 'महाभारत' भारत के दो प्रसिद्ध महाकाव्य है। उनमें साहित्यिक वरीयता है, साथ ही गम्भीर दार्शनिक चिन्तन है और व्यावहारिक-सामाजिक सन्देश भी हैं। वेदव्यास को 'महाभारत' का और वाल्मीकि को 'रामायण' का रचयिता माना जाता है। इन मूल रचनाओं की प्रेरणा से क्षेत्रीय भाषाओं में इन कहानियों के अनेक रूपान्तरण हुए। क्षेत्रीय रूपान्तरणों के रचयिताओं ने अपने-अपने तरीके से कथा-वस्तु को विकसित किया; कभी-कभी मूल कथावस्तु में व्यापक परिवर्तन भी किये। कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। अनेक क्षेत्रीय और जनजातीय बोलियों में इन महाकाव्यों के लोक रूपान्तरण भी हैं। इन रूपान्तरणों में साहित्यिक परम्परा की कृतियों के नायक कभी-कभी गौण स्थान प्राप्त कर लेते हैं और मूलकथा के कम महत्त्वपूर्ण चरित्रों को प्रमुख स्थान दिया जाता है। धार्मिक विश्वासों से जुड़े अनेक मिथकों और आख्यानों में हिन्दू धर्म के महत्त्वपूर्ण देवी-देवता क्षेत्रीय बना दिये जाते हैं और उन्हें स्थानीय समुदाय का देवता बना दिया जाता है। इस प्रकार अलिखित परम्परा साहित्यिक परम्परा से उल्लेख रूप में भिन्न और अलग हो जाती है।[6]

अपने शुद्ध रूप में साहित्यिक परम्परा समाज के एक सीमित हिस्से तक ही सीमित रही लेकिन लौकिक साहित्य और लौकिक कलाओं के विकास में मौखिक और लोक-परम्पराओं का बहुत बड़ा योगदान है। यह सर्वमान्य है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत के कुछ तत्त्वों ने लोक-परम्परा से प्रेरणा प्राप्त की। भूपाली, भैरव (विशेष रूप से अहरि भैरव) और सारंग राग निश्चित रूपों के बारे में कही जा सकती है। चैती, होरी, कजरी, रसिया और ठुमरी का भी लोक-आधार है। अनेक स्थानीय तथा क्षेत्रीय नृत्य-शैलियों को शास्त्रीय नृत्यों का दर्जा मिल गया है और वे पूरे भारत में लोकप्रिय हैं। उदाहरणार्थ दक्षिण के कुचिपुडी और पूर्व के छाऊ और ओडिसी क्षेत्रीय नृत्यों को स्वतन्त्र शास्त्रीय मान्यता प्राप्त हो गयी है। चित्रकला की लोक-शैलियों से आधुनिक भारतीय चित्रकारों को प्रेरणा मिली है। उन्होंने इनको नये रूप और परिष्कार दिये हैं।

दिन-प्रतिदिन के जीवन के अनेक क्षेत्रों में मौखिक परम्परा की सहायता से समकालीन समयाओं के हल तलाश किये जा रहे हैं। लोक औषधियों में नयी रुचि पैदा हुई है। जड़ी-बूटियों में जो अनेक गुण बताये जा रहे हैं उनकी सच्चाई जानने के लिए परीक्षण किये जा रहे हैं। उनमें से कुछ को आधुनिक औषधि-संग्रहालय में सम्मिलित कर लिया गया है। यह आशा की जाती है कि सतत शोध से अनेक जड़ी-बूटियों के गुणों को स्वीकृति मिलेगी। यह स्पष्ट है कि मौखिक परम्परा को देहाती अन्धविश्वास और गँवारू साहित्य कहकर नकारा नहीं जा सकता। तीसरी दुनिया में इसकी पकड़ और शक्ति गहरी है। संस्कृति के एक महत्त्वपूर्ण पहलू के रूप में इसे भावी पीढ़ियों के लिए फिल्मा कर, टेप करके और लिपिबद्ध करके सुरक्षित रखना आवश्यक है। यह इसके अन्तर्निहित सांस्कृतिक मूल्य को स्वीकारते हुए करना होगा।

ऐतिहासिक महत्त्व :

इतिहास की पुनर्रचना के लिए मौखिक परम्परा बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। यह सत्य है कि सभी प्रकार की मौखिक परम्परा इतिहास की पुनर्रचना में सहायक नहीं होती। फिर भी अनेक आदिवासी समाजों में कुछ पीढ़ियों की स्मृति में बैठा इतिहास पौराणिक आख्यान बनने लगता है। सार्वभौम विस्तारवाली विषयवस्तु

पर बनी लोक-कथाएँ इतिहास-लेखन के दृष्टिकोण से सबसे कम विश्वसनीय होती हैं। फिर भी अनेक संस्कृतियों में ऐसे विशेषज्ञ होते हैं जो प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तियों की वंशावलियों और साथ ही उनके वीरता और साहस के कार्यों को याद रखते हैं। उनके अच्छे कार्य भी भुलाये नहीं जाते। वे उनकी उपलब्धियों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन कर सकते हैं और उनमें आधिभौतिक शक्तियाँ भी जोड़ देते हैं। फिर भी वे इतिहास-लेखन के लिए उपयोगी सामग्री है।[7]

यह माना जाता है कि परम्पराएँ समाज का दर्पण होती हैं। दूसरे शब्दों में, समाज परम्पराओं में प्रतिबिम्बित होता है। परम्पराओं और समाज में पाये जाने वाले गुणों में एकरूपता होती है। यदि सामाजिक संगठन अथवा उसकी रीति और प्रथाओं में परिवर्तन होता है तो सामाजिक संगठन उसकी रीति और प्रथाओं में परिवर्तन होता है और उसी के अनुरूप परम्परा में भी परिवर्तन हो जाता है। इस तरह परम्पराओं का कोष निरन्तर परिवर्तनशील होता रहता है और वह विगत यथार्थ को प्रतिबिम्बित नहीं कर सकती। फिर भी परम्परा में कुछ आद्य और पुरातन अवशिष्ट रह ही जाते हैं। परम्परा और संस्कृति में पूर्ण एकरूता नहीं होती; उनमें एक सीमा तक विसंगति सम्भव है। इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं, पूर्ण समस्थिति के नहीं। मूलतः मौखिक समाज भी पूरी तरह समांग नहीं होते; अनुभव, ज्ञान और अभिरुचियों की भिन्नता उनकी एकरूपता को प्रभावित करती है। परम्परा संस्कृति के आदर्श प्रारूपो और जीवन में प्रचलित उनके रूपों में अन्तर होता है, किन्तु आदर्श प्रारूप सन्दर्भ-मानक अवश्य प्रस्तुत करता है। परम्परा की जड़ें मिथकों में होती हैं, पर कोई भी समाज मिथकों में नहीं जीता। जनरीति (फोकवेज) और लोकनीति (मोरेज) के सम्प्रत्यय अब गत प्रयोग हो गये हैं, पर ये उपयोगी प्रत्यय थे। उनके स्थान पर आचार, प्रथा, रीति आदि का प्रयोग होने लगा है। इस श्रेणी के व्यवहार-प्रकार मिथकों के साँचे में नहीं ढाले जाते; मिथकों का अधिपत्र उन्हें स्वीकृति अवश्य देता है। इसका अर्थ यह नहीं कि मिथक ही परम्परा के एकामात्र स्रोत हैं। बल्कि मिथक परम्पराओं में सहायक होते है।[8]

परम्परा जीवन-दृष्टि, मूल्यों, विचार-प्रकारों, आचार, प्रथाओं और सम्बद्ध सामाजिक क्रियाओं की ऐसी समग्रता है जिसकी निरन्तरता पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनी रहती है। उसे इन तत्त्वों का संकलन मात्र मान लेना ग़लत होगा, क्योंकि एकीकरण और समाकलन की प्रक्रिया द्वारा वे संघटित होकर आन्तरिक संगति विकसित कर लेते हैं। इस तरह परम्परा की एक स्वतन्त्र छवि आकार लेती है। कालान्तर से उसमें एक रहस्यमयता आ जाती है और स्वायत्तता विकसित हो जाती है। हमारे सामने परम्परा का एक प्रतिरूप ही रहता है, परन्तु यह निष्क्रिय निर्देश मात्र नहीं और सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवहार के द्वारा प्रभावी ढंग से मानव मात्र का दिशा-निर्देशन भी करती है।[8]

मौखिक परम्परा की धाराएँ :

मौखिक परम्परा का एक पक्ष यदि ऐतिहासिक तथ्यात्मकता पर आधारित होता है तो दूसरा आस्था और विश्वास पर यह दूसरा पक्ष अत्यन्त संवेदनशील होता है। उसकी प्रकृति ही ऐसी होती है कि उसमें अति रहस्यात्मकता भरी जा सकती है। परम्परा की परिभाषा और व्याख्या ऐसी हो कि उससे समाज को सुदृढ़ आधार मिले और उसकी ऊर्जा का उपयोग मानव समुदाय अपने अभ्युदय के लिए कर सके। परम्परा को अतीत का बोझ बनाना उचित नहीं है, क्योंकि इससे समाज में निष्क्रियता और जड़ता आएगी। परम्परा को निर्मूल करना सम्भव नहीं है। उसे आज और आनेवाले कल की दृष्टि से नयी दिशा देना जरूरी है। क्योंकि मनुष्य ही तो अपनी परम्परा को परिभाषित करता है और समयानुसार परिवर्तित भी करता है।

मौखिक परम्परा की दो अन्य धाराएँ महत्त्वपूर्ण हैं- पहली, राष्ट्रीय नवजागरण और स्वाधीनता के युद्ध में उभरी परम्परा, और दूसरी, पश्चिमीकरण की परम्परा। उभरती राष्ट्रवादी परम्परा ने जनजातीय और क्षेत्रीय अस्मिताओं को स्वीकार तो किया पर उसने एक धरातल पर कम-से-कम राजनीति के क्षेत्र में, पूरे समाज को समरस करने का प्रयत्न भी किया। यह धारा सशक्त थी और उसके सांस्कृतिक परिणाम अत्यन्त प्रभावशाली थे। पश्चिम की धारा के कुछ तत्त्वों का अनुकरण हुआ। साथ ही उसने राष्ट्रीय विवेक को झकझोरा भी और भारतीय समाज (और उसके विभिन्न अंगो) को गम्भीर आत्म-परीक्षण के लिए प्रेरित भी किया। जैन, बौद्ध और सिख आदि भारतीय परम्पराएँ भारत में ही जन्मी थी और उनके आग्रहों के प्रभाव दूरगामी और व्यापक थे। संस्कृति के संश्लिष्ट चरित्र को और विविधतापूर्ण बनाया ईसाई, इस्लामी, यहूदी और पारसी परम्पराओं ने ये बाहर से आये थे नये परिवेश में इनका भी भारतीयकरण हुआ। ईसाई धर्म और इस्लाम जाति-व्यवस्था से मुक्ति नहीं पा सके दोनों में अस्पृश्यता भी अभी तक चली आ रही है। महाराष्ट्र के यहूदी तो स्वयं एक जाति बन गये थे और शनवार (शनिवार) लेली कहलाने लगे थे। पारसी लोगों की संख्या थोड़ी है। वे अधिकांशतः वाणिज्य/उद्योग से संलग्न हैं। वे अन्तधार्मिक विवाहों की अनुमति नहीं देते, क्योंकि उन्हें अपनी जातीय शुद्धता को बचाना है। उभरती राष्ट्रीय परम्परा ने सभी को प्रभावित किया और इन सभी समूहों पर पश्चिमीकरण का प्रभाव उनके कुछ वर्गो में देखा जा सकता है।[9]

चीन आदि देशों के साथ-साथ अफ्रीका में जनजातीय परम्पराएँ सदा ही सशक्त रही, जिसके कारण न तो एक अफ्रीका सांस्कृतिक व्यक्तित्व उभरा और न कोई महान् परम्परा ही बन सकी। इसका एक कारण शायद यह भी था कि भिन्न-भिन्न यूरोपीय साम्राज्यवादों ने अफ्रीका को आपस में बाँट लिया था और इसमें उनका हित था कि अफ्रीका जनजातीय धरातल से बहुत ऊँचा न उठ सके। अफ्रीकी एकीकरण के प्रयत्न भी उस दिशा में कोई उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं कर सके।

अमेरिका की स्थिति सर्वथा भिन्न है। यहाँ की जनसंख्या का प्राचीनतम भाग उन लोगों का है जो क्रिस्टाफर कोलम्बस की गलती के कारण इण्डियन के रूप में जाने जाते है। इनकी संस्कृतियों के अनेक धरातल थे, प्रत्येक की अपनी विशिष्ट पहचान थी।[10] अन्त में हम कह सकते हैं कि विश्व का कोई भी देश हो वहा की लोक परम्परा और लोक साहित्य में वहा के मूल निवासियों का हृदय उसमें बसता और बोलता है। लोक जीवन की जैसी सरलता और नैसर्गिक अनुभूति की अभिव्यंजना लोक परम्पराओं, लोग गीतों और लोक कथाओं में मिलता है, वैसा चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। लोक जीवन में पग-पग पर मौखिक सांस्कृतिक परम्पराओं का दर्शन होता है। मौखिक परम्पराएँ उतनी ही पुरानी है जितनी की मानवता इसीलिए उसमें जन-जीवन को प्रत्येक वर्ग प्रत्येक समय की ऐतिहासिक अनुभूति समाहित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. कविराज गोपीनाथ – भारतीय संस्कृति में लोक जीवन की अभिव्यक्ति- लोक संस्कृति अंग, पृ0 24, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग राज।
2. सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, सम्पादकीय से पृ0 7, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1973
3. श्यामाचरण दूबे, परम्परा और परिवर्तन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, लोदी रोड, नई दिल्ली, पृ0सं0 181
4. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, लोक संस्कृति की आत्मा सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति, अंक, पृ0 120, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1973
5. डॉ0 जगदीश त्यागी का लेख- बाल साहित्य का केन्द्र लोक साहित्य, कादम्बिनी मासिक पत्रिका, जून 1998, पृ0 80
6. लोकरंग के ब्लाग से सम्बन्धित (राष्ट्रीय लोकरंग 2019)
7. श्रीराम परिहार, लोक और लोकस्वर के पारखी www.abhivyakti.hindi.org.ramakatha
8. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारतीय प्रकाशन, प्रकाशित वर्ष 2009
9. श्यामाचरण दूबे, परम्परा और परिवर्तन के ब्लाग से सम्बन्धित, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, लोदी रोड, नई दिल्ली, पृ0 136 से 138
10. फस्कियधार, मौखिक परम्परा और इतिहास लेखन, अगस्त 13-14, हल्दवानी विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड, पोस्ट 24 अगस्त 2014

●

गुरुकुलशिक्षाप्रणाली एवम् आधुनिक भारत

*डॉ. चन्द्रकान्ता राय**

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली भारतवर्ष की आद्य शिक्षणपद्धति है। यह उतनी ही सहज, नैसर्गिक है जितना वेदों का आविर्भाव। सत्प्रेरणा और शिवसङ्कल्प के साथ विश्वमङ्गल के लिए ऋषियों के अन्तःकरण में उद्भूत विशुद्ध चेतना तथा बुद्धि में अवतरित लौकिक एवं लोकोत्तर ज्ञानराशि के शिष्यों के अन्तःकरण और बुद्धि तक सम्प्रेषण की अविकल परम्परा भारतीय गुरुकुलपद्धति है जिसमें विद्यादान के साथ ही शिष्यों में लोकव्यवहार के लिए मानवीय गुणों के आधान तथा व्यक्तित्व के परिष्कार का कार्य नियमित, अनवरत क्रम में सञ्चालित होता था। इस प्रणाली के विषय में एक विलक्षण वैशिष्ट्य इस आस्था में है कि एक दिव्य युग के अनन्तर दूसरे युग के आरम्भ में वेद के अध्यापक तथा अध्येता वेदाध्ययन की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं। महाप्रलय होने पर भी इस प्रक्रिया में कोई दोष नहीं आता। योगभाष्य में महर्षि व्यास का कथन है कि आत्मानुग्रह की अपेक्षा नहीं होने पर भी जीवों के प्रति अनुग्रह करने के प्रयोजन से परमेश्वर प्रलय के बाद पुनः ज्ञान और धर्म का उपदेश देते हैं।[1] न्यायवार्तिक की तात्पर्यटीका में वाचस्पतिमिश्र का विचार है — ''महाप्रलये तु ईश्वरेण वेदान् प्रणीय सृष्ट्यादौ स्वयमेव सम्प्रदायः प्रवर्त्यत्यत एवेति भावः।''

अपौरुषेय वेदों से सार को संगृहीत कर गुरुकुलसम्प्रदाय से पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, दर्शनसाहित्य इत्यादि विद्याओं का विशाल वैभव प्रकाशित हुआ है। वेद धर्म का मूल तथा समस्त ज्ञान-विज्ञान का आगार है। 'सर्वज्ञानमयो हि सः'[2] कहकर भगवान् मनु ने इसकी ज्ञानराशि की अपरिमितता का प्रशंसन किया है। वेद का प्रमुख सिद्धान्त आत्मवाद का है। वेद के मूलांशभूत ईशोपनिषद् के प्रथम मन्त्र में ही इसकी प्रस्तावना हुई है तथा अनन्तर आम्नात मन्त्रों में 'आत्मवाद' अर्थात् सर्वत्र आत्मा की और आत्मा में सर्वस्व की स्थिति का प्रकाशन हुआ है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।

सर्वभूतस्थमात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।[3]

सर्वस्व आत्मस्वरूप है, वेद का यह दर्शन समस्त द्वन्द्वों—रागद्वेष, हर्षशोकादि का निरसन कर देने वाला है। सर्वस्व को आत्मा में देखना ही अध्यात्म है। परमात्मा के अंशभूत जीवात्मा का जब इस भाव से योग होता है, तब वह परमतत्त्वस्वरूप होकर सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।[4] त्यागपूर्वक भोग और भोग करते हुए चरम अर्थ तक पहुँचने का उद्यम करना मनुष्य के लिए श्रेयस् की सिद्धि का सर्वोत्तम उपाय है। कठोपनिषद् में यम नचिकेता को उपदेश देते हुए शरीर को साधन बताते हैं तथा इन्द्रियनियमनपूर्वक मन से सुदृढ़ और बुद्धि से विज्ञानवान् होने की बात करते हैं —

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।[5]

एवम् –

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः।

सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।।[6]

गुरुकुल में ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए शरीर, मन और बुद्धि को इस लक्ष्य के लिए साधने का अवसर प्राप्त होता था। आत्मतत्त्व की साधना के लिए चित्त की एकाग्रता, बुद्धि के अध्यवसाय, मन के संयम और इन्द्रियों के नियमन की अपेक्षा होती है जिसके लिए योगदर्शन में अष्टाङ्ग मार्ग का अभ्यास करणीय बताया गया है। गुरुकुल इस अभ्यास के लिए पवित्र एवम् अनुकूल परिवेश रहा है। चराचर-समवाय के साथ स्वयं को तथा विश्व को स्वयं से जोड़ने की प्रक्रिया का आरम्भ गुरुकुल में होता था जहाँ अभ्यास करते-करते समस्त की अनुभूति से एकरस हो व्यक्ति विराट् बन जाता था, दया, करुणा, मैत्री, परोपकारादि गुण व्यक्तित्व में स्वतः समाहित होते जाते थे तथा अनिष्टकारी भावों का निरसन होता जाता था।

कठोपनिषद् के प्रारम्भ में गुरु-शिष्यपरम्परा के संरक्षण के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करते हुए शक्ति के अधिगम तथा अधीत विद्या को प्रभविष्णु बनाने की मङ्गलाशंसा की गयी है जिससे लोक के उभयविध प्रयोजनों अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्ध का मार्ग ढूँढा जा सके –

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। स वीर्यं करवावहै।

तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

याज्ञवल्क्य ने कृतज्ञ, द्रोहरहित, मेधावी, पवित्र, नीरोग, अनसूयक, सदाचारी, शास्त्र-श्रवण में समर्थ, आप्त (बन्धु), ज्ञान का प्रसार करने वाले तथा अर्थ (धन) देने वाले शिष्य को अध्यापन के योग्य बताया है।[7] बालक का गर्भाधान से प्रारम्भ कर उपनयनपर्यन्त संस्कारों का सम्पादन हो जाने पर गुरु उसे गुरुकुल में प्रवेश देकर वेदादि विद्याओं, पवित्रता तथा सदाचार की शिक्षा देते थे —

* एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृतविभाग, आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति।

उपनीय ददद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः॥[8]

उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्।

वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत्॥[9]

गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर बालक 'द्विज' अभिधान का अधिकारी होता था।[10] द्विज का द्विधा जन्म प्रोक्त है—

कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः।

सम्भूतिं तस्य तां विद्याद् यद्योनावभिजायते॥[11]

माता-पिता से प्राप्त जन्म को मनु ने 'सम्भूति' कहा है जिसकी व्याख्या करते हुए कुल्लूकभट्ट ने लिखा है — 'सम्भवमात्रं तत्तस्य पश्वादिसाधारणम्।' अपरत्र —

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः।

उत्पादयति सावित्र्या सा सत्याऽजरामरा॥[12]

आचार्य सावित्री को माता तथा स्वयं को पिता बनाकर माणवक के जिस द्वितीय जन्म को सम्पन्न करते हैं, वही अजर, अमर अर्थात् शाश्वत जन्म प्रोक्त है। मनु एवं याज्ञवल्क्य के अनुसार गर्भ से[13] आठवें वर्ष में ब्राह्मण बालक के, ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के तथा बारहवें वर्ष में वैश्य बालक के उपनयन संस्कार का विधान है।[14]

भारतीय वैदिक ज्ञानराशि 'श्रुति' एवम् 'अन्वध्याय' संज्ञा से व्यवहृत है क्योंकि इस विद्या का अभ्यास गुरुमुख से श्रवण कर हुआ है। यह गुरुकुलसम्प्रदाय देवलोक से पृथिवीलोक तक प्रथित है। मुण्डकोपनिषद् के आरम्भ में प्राच्य विद्याओं की शिक्षणपरम्परा के दिव्य एवम् आर्षस्वरूप की महिमा प्रतिपादित है। सर्वशक्तिमान् परब्रह्म से प्रथमतः ब्रह्मा उत्पन्न हुए जिन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। अथर्वा ने अङ्गी ऋषि को, अङ्गी ने भरद्वाजगोत्रीय सत्यवाह को, भारद्वाज ने अङ्गिरा ऋषि को परम्परा से चली आ रही, ब्रह्म के पर-अपर स्वरूपों का ज्ञान कराने वाली विद्या का प्रवचन किया। विशाल गुरुकुल के अधिष्ठाता शौनक महर्षि शास्त्रविधि के अनुसार समित्पाणि होकर महर्षि अङ्गिरा के पास आए और उनसे ब्रह्मविद्या के विषय में अपनी जिज्ञासा को निवेदित किया—

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ। कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।[15]

इसी प्रकार पिप्पलाद ऋषि समित्पाणि हो सम्मुख उपस्थित छः ऋषियों के छः प्रश्नों का उत्तर देकर उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हैं। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए पिप्पलाद ऋषि ने उन सुकेशा आदि ऋषियों से एक वर्ष तक अपने आश्रम में श्रद्धा के साथ ब्रह्मचर्य का पालन तथा तप करते हुए निवास करने को कहा था। केनोपनिषद् का आरम्भ व्यापक जगत् के व्यवहार की विविधता तथा उसके नियन्ता, परम ज्ञेय के विषय में पृच्छा के साथ हुआ है जहाँ प्रत्युत्तर में पूर्वाचार्यों के मुख से व्याख्यात होकर श्रुतिपरम्परा से प्राप्त ज्ञान के अनुसार समाधान किया गया है—

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।

केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।

चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

× × × ×

इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे॥[16]

तैत्तिरीयोपनिषद् की प्रथमवल्ली (शीक्षावल्ली) के नवम अनुवाक का आरम्भ वेद-शास्त्रों के स्वाध्याय और प्रवचन के उपदेश के साथ हुआ है। रथीतरपुत्र सत्यवचा ने लोक में सत्याचरण को श्रेष्ठ बताया है, पुरुशिष्टपुत्र ऋषि तपोनित्य ने तप को तथा मुद्गलपुत्र नाक मुनि ने स्वाध्याय और प्रवचन को श्रेष्ठ तथा तपःस्वरूप कहा है। मनुष्य के लिए लोक मे सदाचार, सत्याचरण का पालन करते हुए, इन्द्रियनियमन तथा मनोनिग्रह करते हुए, अग्निहोत्र- अतिथिसत्कार-गृहस्थधर्म का पालन एवं वंशक्रम की वृद्धि का धर्मनिर्वाह करते हुए स्वाध्याय और प्रवचन मे निरत रहना ही श्रेयस्कर है —

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च।

तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च।

शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च।

अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च।

मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च।

प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च।[17]

तैत्तिरीय उपनिषद् का एकादश अनुवाक मनुष्य के चारित्रिक विकास तथा लोक-परलोकसम्बन्धी व्यवहार के लिए अत्यन्त उपकारी भाग है जिसका अनुसरण लोक के सभी दुष्कृत्यों एवं विसङ्गतियों के निराकरण का सर्वोत्तम उपाय है। गुरुकुल में शिक्षाप्राप्ति के पश्चात् समावर्तनसंस्कार के समय शिष्य को गृहस्थाश्रम में आचरण के अनुकूल कर्म का उपदेश देते हुए गुरु सावधान होकर सत्य और धर्म के पालन, स्वाध्याय और प्रवचन के अभ्यास, वंशक्रम की अविच्छिन्नता हेतु पत्नी-समागम, देवकृत्य तथा पितृकृत्य के सम्यक् सम्पादन का उपदेश देते हैं।[18] आधुनिक समाज की भौतिक सुखापेक्षा ने मनुष्य में सर्वस्व के स्वयं उपभोग की उत्कण्ठा जाग्रत कर दी है जिससे शनैः शनैः माता-पिता, भ्राता-स्वसा, सुहद्-परिजन इत्यादि के प्रति स्वाभाविक सम्बन्धों का भाव विलुप्त होता जा रहा है। वैदेशिक समाज की तरह इन्द्रियसौख्य हेतु अस्थिर सम्बन्धों,

विकारपूर्ण वृत्तियों तथा अनुचित संसर्गों का प्रचलन मनुष्य को क्षीण, विवेकशून्य बना रहा है। इस प्रसङ्ग मे पुनः तैत्तिरीय उपनिषद् के माध्यम से प्राचीन गुरुकुलशिक्षण-प्रणाली का पावन दृश्य सम्मुख उपस्थित होता है जिसमें मनुष्य को मेधावी, ओजस्वी, चारित्र्यसम्पन्न, सम्पूर्ण मानव बनाने का मूलमन्त्र ध्वनित हो रहा है—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।

इसी क्रम में आगे गुरु का उपदेश है — 'यदि कभी कर्मविचिकित्सा अर्थात् कर्तव्य कर्म के विषय में संशय हो तो उत्कृष्टविचारसम्पन्न, सदाचार में सदा संलग्न, परामर्श देने में समर्थ, स्निग्ध स्वभाव वाले, धर्मप्राण ब्राह्मण जैसा बर्ताव करते हों, वैसा ही तुम भी करना। जो अभ्याखात अर्थात् किसी दोष से लाञ्छित हों, उनके साथ भी सदाचारी, धर्मकाम ब्राह्मण जैसा व्यवहार करें, वैसा ही तुम भी करना।

गृहस्थजीवन में प्रवेश के लिए प्रस्तुत अन्तेवासी के लिए इस उपदेश का समापन अत्यन्त दृढ़तापूर्वक अनुशासन और आदेश के स्वर में हुआ है —

एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्।

एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्।।[19]

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने ब्राह्मण के लिए सर्वज्ञान-स्वरूप तथा धर्म के विषय में प्रमाण वेद का षडङ्गों के साथ अध्ययन करना आवश्यक बताया है।[20] वेदवाङ्मय के महान् भाष्यकार आचार्य सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका के आरम्भ में गुरुकुलसम्प्रदाय से ऋग्वेदादि के अध्ययन का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए लिखा है —

एतस्मिन् प्रथमोऽध्यायः श्रोतव्यः सम्प्रदायतः।

व्युत्पन्नस्तावता सर्वं बोद्धुं शक्नोति बुद्धिमान्।।

इसी प्रकार विधि एवम् अर्थवाद के प्रामाण्य-निरूपण के प्रकरण में जैमिनिसूत्र ''तुल्यं च साम्प्रदायिकम्''[21] की व्याख्या करते हुए आचार्य लिखते हैं —

अनध्यायवर्जनादिनियमपुरःसरं गुरुसम्प्रदायादध्ययनं यत् तत् साम्प्रदायिकम्। तच्च विधीनामर्थवादानां च समानम्।

''स्वाध्यायोऽध्येतव्यः''[22] इस श्रौतनिर्देश के विषय में पुरुषार्थानुशासन के सूत्र को उद्धृत करते हुए आचार्य सायण का कथन है —

वेदस्याध्ययनं नित्यमनध्ययने पातात् इति। पातित्वं चैवमाम्नायते – अपहतपात्मा स्वाध्यायो देवपवित्रं वा एतत् तं योऽनूत्सृजत्यभागो वाचि भवत्यभागो नाके।

पुनः 'अभाग' पद के तात्पर्यार्थ को स्पष्ट करते हुए व्याख्या करते हैं —

ईदृशं सखिविदं वेदरूपं सखायं यः पुमानध्ययनमकृत्वा परित्यजति तस्य वाच्यपि भाग्यं नास्ति।[23]

ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्रों में नाना अभिप्राय व्यक्त हुए हैं। इन मन्त्रों के श्रवण, मनन और अभ्यास से मनुष्य की दृष्टि उदार, विश्वमङ्गल एवं सर्वात्मभाव से सम्पन्न हो जाती है। धर्म अर्थात् वैदिक कर्म के समुचित ज्ञान के लिए अपरा विद्या के अन्तर्गत परिगणित षडङ्गों सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम तथा अथर्ववेद एवं ब्रह्म के ज्ञान के लिए परा विद्या के रूप में उपनिषदों का अध्ययन गुरुकुलशिक्षासम्प्रदाय का महत्तम प्रयोजन है।[24] भगवान् मनु ने ब्राह्मण के लिए वेदाध्ययन को नित्य करणीय बताया है —

वेदमेव सदाभ्यसेत् तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः।

वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते।।[25]

धर्म को चराचर विश्व की प्रतिष्ठा कहा गया है[26] तथा ब्रह्मविद् को ब्रह्मस्वरूप घोषित किया गया है।[27] मीमांसा के पुरुषार्थानुशासन में ''धर्मब्रह्मणी वेदैकवेद्ये'' इस अनुशासन द्वारा श्रुति के शिक्षण का महत्त्व ख्यापित कर जैमिनिसूत्र ''चोदनैव धर्मे प्रमाणम्'' द्वारा धर्म अर्थात् कर्म में वेद के प्रामाण्य को घोषित किया गया है तथा ''नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्''[28]— इस श्रुति द्वारा ब्रह्मज्ञान के लिए भी वेद के अध्ययनाध्यापन की महती आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्मसूत्र की व्याख्या करते हुए आचार्य शङ्कर ने भी स्पष्ट किया है — ''शास्त्रादेव प्रमाणाज्जगतो जन्मादिकारणं ब्रह्माभिगम्यत इत्यभिप्रायः''।[29]

धर्म एवं ब्रह्म का जिज्ञासु त्रैवर्णिक पुरुष ही वेदाध्ययन का अधिकारी रहा है किन्तु विद्योपादान के लिए विद्यार्थी में विनय, संयम, गुरु के प्रति आदरभाव, अप्रमाद, अनसूया, मेधा तथा शिष्यभाव से उसकी उपस्थिति आवश्यक है। इसलिए यास्काचार्य ने– ''उपसन्नाय तु निर्ब्रूयाद्यो वाऽलं विज्ञातुं स्यान्मेधाविने तपस्विने वा'' — इस प्रकार अपना मत देकर निरुक्त (2/1) में इन मन्त्रों को उद्धृत किया है —

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।

असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्।।

यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्।

यस्ते न द्रुह्येत्कतमच्चनाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्।।[30]

गुरुकुलशिक्षाप्रणाली एक ऐसी आधारभूत व्यवस्था थी जिसमें विद्यार्थी को अन्तेवासी बनाकर गुरु उसे सम्पूर्ण मानव बनाने की प्रक्रिया का आरम्भ व्रतों के आचरण तथा वेदविद्या के उपदेश से करता था। दूषणकारक मधु, मांस, गन्ध, माल्य इत्यादि के उपभोग से पृथक् रहते हुए, द्यूत-परनिन्दा-अनृतभाषणादि वृत्तियों तथा कामक्रोधादि विकारों का परित्याग कर, इन्द्रियसंयम के साथ नित्य देव-ऋषि-पितरों का तर्पण करते हुए आश्रम के नियमों का पालन करना शिक्षार्थियों के लिए सामान्य शिक्षण क्रिया न होकर मानवीय गुणों के आधान का अनिवार्य विधान होता था। शिष्यों से यह अपेक्षा होती थी कि वे सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य का निरवद्य तथा सावधान होकर प्रतिक्षण अनुपालन करेंगे। अपरिग्रह के अभ्यास के लिए प्रतिदिन बटुओं के लिए करणीय कर्म का निर्देशक यह श्लोक ध्यातव्य है —

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान्।

आहरेद् यावदर्थानि भैक्षं चाहरहश्चरेत्॥[31]

मनुष्य के लिए सुकृत का मार्ग गुरुकुलवास की अवधि में अधीत एवम् अभ्यस्त विद्या का ही मार्ग है। उपनिषद् का स्पष्ट निर्देश है —

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि। तान्याचरथ सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके।[32]

गुरुशिष्यों के स्वर में सम्पूर्ण जगत् के हित की कामना ध्वनित होती है जब वे इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।

स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥[33]

गुरुकुल में शिष्यों का विद्यारम्भ वेदाध्ययन से होता था इसलिए उन्हें 'ब्रह्मचारी' – ''ब्रह्म वेदः तद्ग्रहणार्थं चरति'' (वाचस्पत्यम्) – यह नाम होता था। यथाकाल संस्कार नहीं होने पर ब्राह्मणादि सावित्रीपतित तथा आर्यजन-विगर्हित होकर 'व्रात्य' संज्ञा को प्राप्त करते थे।[34] चतुर्वर्ण में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यवर्णजों के लिए विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् प्रकार के वस्त्र, मेखला, यज्ञोपवीत, दण्डादि धारण करने का विधान धर्मशास्त्रों में वर्णित है। गुरुकुल के विद्याभ्यास तथा अनुशासन से संस्कारपूर्ण मनुष्य जीवन में पुरुषार्थचतुष्टय के साधन की योग्यता रखता था।[35] बालकों की भाँति बालिकाओं के भी शरीर-संस्कार के लिए यथासमय, यथाक्रम, बिना मन्त्रोच्चारण के संस्कार विहित होते थे —

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः।

बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।

संस्कारार्थे शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्॥[36]

भारतवर्ष के इतिहास में अनेकानेक विदुषी स्त्रियों की कथायें और आख्यानोपाख्यान प्राप्त होते हैं। स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल में न होकर पिता तथा पति के गृह में योग्य आचार्यों की सन्निधि में सम्पन्न होती थी। स्त्रियों के संस्कारों में केवल विवाह की विधि मन्त्रोच्चारण के साथ विहित होती थी। मनु ने स्त्रियों की विवाहविधि को ही उपनयन-विधि माना है।[37] इस प्रकार भारतीय आर्षव्यवस्था में समस्त स्त्रीपुरुषवर्ग को शिक्षित कर विश्वमण्डल को आर्य बनाना भारतभूमि के आचार्यों का उद्देश्य था।

आधुनिक शिक्षाव्यवस्था में ऐसी शिक्षा-दीक्षा अथवा लौकिक एवं लोकोत्तर प्रयोजनों के साधन के लिए न तो परिवेश उपलब्ध है न ही अनुकूल अवसर। आधुनिक शिक्षाव्यवस्था मनुष्य को धीर और संयमी होने के लिए प्रेरित नहीं करती। साहित्य, सङ्गीत, कला, समाजविज्ञान हो अथवा भौतिक विज्ञान के विविध पक्ष हों, अध्ययन एवं शोध का लक्ष्य भौतिक प्रगति करना मात्र है। गुरुकुल सामान्य मानव को उत्कृष्ट बनाने के लिए सङ्कल्पबद्ध थे, उत्कृष्ट अनुसन्धान के लिए मानव में जिज्ञासा एवम् उत्कण्ठा का सञ्चार करते थे। उस परिवेश में शिक्षार्जन करने के पश्चात् चतुर्वर्ण के सामरस्य में कोई अवरोध नहीं उत्पन्न होता था, चतुराश्रम के धर्म-नियम आचरणीय होते थे तथा पुरुषार्थचतुष्टय के अधिकारी अपनी साधना को सिद्धि में परिवर्तित कर देने का सामर्थ्य रखते थे। आज के युग में भोग-साधनों को प्राप्त करने की स्पर्धा और उन पर अधिकाधिक निर्भरता ने मनुष्य के चिन्तनक्रम को विच्छिन्न कर दिया है, उसकी एकाग्रता भग्न हुई है तथा आत्ममुग्धता एवम् आत्मप्रचार की प्रवृत्ति ने आत्मपरिष्कार के अभ्यास को निगीर्ण कर लिया है। इन्द्रियों को विधाता की बहिर्गामी सृष्टि बताया गया है इसलिए बाह्य आडम्बर में अनुरक्त सामान्य मनुष्य इन्द्रियों की तृप्ति को ही जीवन का साध्य समझ बैठा है —

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥[38]

सर्वत्र भय, कोलाहल, लक्ष्यहीन स्पर्धा, लोलुपता और भोग की पराकाष्ठा ने अन्तः-बाह्य प्रकृति को प्रदूषित कर दिया है। आत्मवञ्चना से ग्रस्त होकर मनुष्य – ''असतो मा सद्गमय'' (बृ० उप० 1/3/28) इत्यादि ऋषियों के निर्देश को विस्मृत कर गया है। विश्व को चारित्र्य की शिक्षा देने वाले, परमार्थ का मार्ग प्रशस्त करने वाले भारतवर्ष का आचार्यकुल स्तब्ध है। हिरण्यमय पात्र से आवृत सत्य के दर्शन की मानवीय अभिलाषा लुप्त हो रही है। जीवनोपयोगी तथा जीवन के लिए अपरिहार्य ज्ञान और अभ्यास

के लक्ष्य को मानव सुदूर अतीत में छोड़ आया है जहाँ से पुनरावर्तन की सम्भावना धूमिल प्रतीत हो रही है।

गम्भीरतापूर्वक दृष्टिपात करने पर स्पष्ट है कि गुरुकुल शिक्षाप्रणाली सर्वतोभद्रभाव, मानव के संस्कार तथा आत्मोद्धार की उत्कृष्ट सरणि रही है। किन्तु भौतिक विकास के आधुनिक परिवेश में श्रुतिपरम्परा से प्राप्त प्राच्य ज्ञान-विज्ञान का विशाल कोष प्रायोगिक पक्ष से विरहित होकर पाण्डुलिपियों तथा नाना प्रकार के ग्रन्थों के रूप में कीटकवलित हो रहा है। अद्यतन समाज में धनबल, आरक्षण अथवा अङ्कों के आधार पर संस्कारनिरपेक्ष तथा विषम व्यवस्थाओं वाले परिवेश में धनार्जन को भावी उद्देश्य बनाकर शिक्षार्जन हेतु प्रवेश दिलाना बालक-बालिकाओं के मनोमस्तिष्क को अस्थिर करने का ऐसा अपराध है जिसके प्रायश्चित्त का कोई उपाय नहीं। भारतीय विद्याओं तथा विद्यार्जन-अवधि के शकलीकरण से विद्वत्परम्परा को विच्छिन्न तथा भारतीय संस्कृति को खण्ड-खण्ड करने का कार्य प्रखरता से सञ्चालित हो रहा है। भौतिक विकासयात्रा में मनुष्य निसर्ग के सहचरों की अवहेलना कर अपने स्वत्व को विस्मृत कर बैठा है। जिस भौतिक तथा पारलौकिक अर्थ-काम का प्रत्याख्यान करते हुए नचिकेता ने उन्हें ''श्वोभाव''[39] घोषित कर ''न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः''[40] तथा ''तवैव वाहास्तव नृत्यगीते''[41] कहकर दृढ़सङ्कल्प के साथ परित्याग कर दिया था तथा ''अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन'' — याज्ञवल्क्य ऋषि से यह उत्तर पाकर मैत्रेयी ने ''येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्''[42] — इन दृढ़ शब्दों में अमृतत्व-साधना हेतु अपने सङ्कल्प को व्यक्त किया था, वही अर्थ-काम भोगलोलुप भारतीय समाज में सर्वविध विद्याओं का चरम साध्य बन गया है।

आचार्य चाणक्य ने आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता के योगक्षेम का साधन दण्ड को बताते हुए इसके प्रवर्तनशील नहीं होने पर लोक में मत्स्यन्याय की स्थिति उत्पन्न होने की घोषणा की थी।[43] आधुनिक विश्व में मनुष्यों द्वारा नानाप्रकार के अमानवीय व्यवहार की घटनाएँ उस आशङ्का को चरितार्थ कर रही हैं। मनुष्यवती भूमि को कौटिल्य ने 'अर्थ' कहा है क्योंकि वह मानव द्वारा अर्थ्यमान है अथवा मनुष्यों की वृत्ति, सुखजीविका है।[44] धर्म और काम को अर्थमूलक बताते हुए यद्यपि उन्होंने 'अर्थ' की प्रमुखता का कथन किया है किन्तु लौकिक एवं पारलौकिक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु वे अर्थशास्त्र के अन्तिम अधिकरण में धर्म, अर्थ और काम के मर्यादापूर्वक प्रवर्तन और संरक्षण का निर्देश देते हैं। 'इन्द्रियजय' प्रकरण के अन्तर्गत 'राजर्षिवृत्त' का ख्यापन करते हुए उन्होंने जो उपदेश दिया है, वह राजा ही नहीं, प्रायशः लोक में मानवमात्र के संस्कार के लिए अत्यन्त उपयोगी है —

तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत। वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां चारेण चक्षुः उत्थानेन योगक्षेमसाधनं कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापनं विनयं विद्योपदेशेन लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन हितेन वृत्तिम्।[45]

धर्मशास्त्रों की यह आचारसंहिता आधुनिक मानव के लिए आचरणीय नहीं रह गयी है। शिक्षाव्यवस्था की आधुनिक परिपाटी में कर्म के औचित्य-अनौचित्य की मीमांसा अपना अस्तित्व खोती जा रही है। यद्यपि राष्ट्रीय स्तर पर कुछ संस्थायें अपने पाठ्यक्रम और प्रणाली द्वारा प्राच्यज्ञानकोष को अविरल बनाये रखने के प्रयास में संलग्न हैं किन्तु आचार एवं प्रयोग-पक्ष की अक्षुण्णता पर्याप्त परिमाण में क्षीण हुई है जिसके परिणामस्वरूप जन-जन को चारित्रिक पतन से बचाने तथा परम उत्कर्ष का मार्ग दिखाने के लिए यह उद्यम नगण्य है। शास्त्र एवं प्राच्य ज्ञान के सम्पर्क से परे, संस्कारों के संस्पर्श से अछूते, मानवीय सम्बन्धों के माधुर्य से रिक्त, यान्त्रिक परिवेश में इन्द्रियजन्य सुख की अभिलाषा रखने वाला विद्यार्थिवृन्द परम आनन्द के पथ से भटक गया है। सृष्टि में सर्वाधिक उत्कृष्ट प्राणी का मान रखने वाले मनुष्य ने अपने कृत्य से चराचर की अवहेलना कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अस्थिर किया है जहाँ धर्म-कर्म के पाखण्ड से प्रदूषित होकर पर्यावरण जीवनाधायक तत्त्वों को धारण करने में अक्षम होता जा रहा है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विधिवत् शिक्षा और संस्कार के मार्ग से च्युत हो मनुष्य ने विकास, सौविध्य और सुखभोग की आकाङ्क्षा में विनाशकारी विकल्प का चयन कर लिया है जिसके सम्मुख चिरन्तन की उपलब्धि का लक्ष्य नहीं, अपितु अस्थिर भविष्य तथा प्राकृतिक एवं भौतिक आपदाओं का भय उपस्थित है।

सन्दर्भ

1. योगभाष्य 1/25
2. मनुस्मृति 2/7
3. ईशोपनिषद् 6
4. ईशोपनिषद् 7; कठोपनिषद् 1/2/12
5. कठोपनिषद् 1/3/3
6. कठोपनिषद् 1/3/9
7. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/28
8. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/34
9. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/15
10. याज्ञवल्क्यस्मृति 1/39
11. मनुस्मृति 2/147
12. मनुस्मृति 2/148
13. अथवा जन्म से – याज्ञवल्क्य ।
14. मनुस्मृति 2/36; याज्ञवल्क्यस्मृति 1/14
15. मुण्डकोपनिषद् 1/1/3
16. केनोपनिषद् 1/1-3
17. तैत्तिरीय उपनिषद् 1/9
18. तैत्तिरीय उपनिषद् 1/11

19. तैत्तिरीय उपनिषद् , उपर्युक्त 1/11
20. ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।
21. जै.सू. 1/2/8
22. श.ब्रा. 11/5/6/3; तै.आ. 2/15
23. ऋग्वेदभाष्यभूमिका, वेदाध्ययनप्रकरण
24. मुण्डकोपनिषद् 1/1/4-5
25. मनुस्मृति 2/166
26. धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति धर्मेण पापमपनुदति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति। तै.आ. 10/63
27. ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति। मुण्डकोपनिषद् 3/2/9
28. तै.ब्रा. 3/12/9/7
29. ब्रह्मसूत्र, शाङ्करभाष्य 1/1/3
30. द्रष्टव्य मनुस्मृति 2/114-115 भी।
31. मनुस्मृति 2/182
32. मुण्डकोपनिषद् 1/2/1
33. ऋग्वेद 1/89/8,6; यजुर्वेद 25/21,19
34. मनुस्मृति 2/39,40; याज्ञवल्क्यस्मृति 1/37,38
35. स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं कियते तनुः।। मनुस्मृति 2/28
36. मनुस्मृति 2/27,66 तथा द्रष्टव्य याज्ञवल्क्यस्मृति 1/11-13
37. विवाहविधिरेव स्त्रीणां वैदिकः संस्कार उपनयनाख्यो मन्वादिभिः स्मृतः। मन्वर्थमुक्तावली, मनुस्मृति 2/67
38. कठोपनिषद् 2/1/1
39. कठोपनिषद् 1/1/26
40. कठोपनिषद् 1/1/27
41. कठोपनिषद् 1/1/26
42. बृहदारण्यकोपनिषद् 4/5/3-4
43. अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति।
बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे।। अर्थशास्त्र 1/1/4
44. वृत्तिः सुखजीविका। तस्या एव मनुष्यसामान्येनार्थ्यमानत्वात्।
तादृशवृत्त्याधारभूता विश्वम्भरेयं भूमिरेवान्ततोऽर्थः इति भावः। अर्थशास्त्र 15/1 पर वृत्ति।
45. अर्थशास्त्र 1/3/6, वृत्तिः लोकयात्रा। चन्द्रिकाभाष्य।

●

बनारस और भारत छोड़ो आन्दोलन

*डॉ. अनुराधा सिंह**

काशी (बनारस) अनंतकाल से भारतीय उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक चेतना के निर्माण का पर्याय है। वैदिक परंपरा की समझ को संपूर्ण मानव जगत को बताने वाला यह शहर अपनी पारंपरिक व पौराणिक परंपरा से इतर आधुनिक भारत के राजनैतिक इतिहास के निर्माण केन्द्र के रूप मे भी प्रतिष्ठित है।[1] बनारस औपनिवेशिक काल से प्रांतीय प्रशासन व्यवस्था के एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में भी स्थापित है। संभवतः अपनी इन्हीं राजनैतिक व सामरिक उपलब्धियों के कारण यह शहर स्वतंत्रता आंदोलन के संदर्भों में राष्ट्रीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बना हुआ था।

सन् 1942 ई0 का भारत छोड़ो आंदोलन हमारे राष्ट्र के लिए इम्तिहान के नाजुक वक्त के समान था, जिसमें हमारा संपूर्ण राष्ट्र अपनी जनभागीदारी के निमित्त सफल भी हुआ। इस जन आन्दोलन में राष्ट्रीय नेतृत्व के आवाह्न पर संपूर्ण राष्ट्र के समान बनारस के लोगों ने भी औपनिवेशिक सरकार के खिलाफ अपना प्रतिरोध आंदोलनों के बहाने दर्ज करवाया। सन् 1942 ई0 के भारत छोड़ो आंदोलन में बनारस जनपद ने अत्यंत सक्रिय भूमिका निभाई और इस शहर ने प्रांतीय स्तर पर इस आंदोलन का महत्वपूर्ण नेतृत्व भी किया। राष्ट्रीय नेतृत्व के आवाह्न पर बनारस में अगस्त 1942 ई0 में आंदोलनकारियों की सक्रियता बढ़ गयी और विद्यार्थियों व गणमान्य तथा सामान्य जनों द्वारा लगातार शहर में जनसभाएँ की जा रही थीं। विरोध प्रदर्शन भी किये जा रहे थे। बनारस संभाग में बिहार प्रांत से भी भारी संख्या में आंदोलनकारी आने लगे थे परिणामतः यह आंदोलन और गतिमान होने लगा था।[2] बनारस शहर में हो रहे छात्र आंदोलनों का नेतृत्व यहां के विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों द्वारा होता था, इन नेतृत्वकर्ताओं में प्रमुख रूप से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक प्रो0 कौशलानन्द गैरोला, प्रो0 राधेश्याम शर्मा प्रमुख थे।

इन आन्दोलनकारी गतिविधियों के फलस्वरूप बनारस की जनता ने अपनी प्रथम प्रतिक्रिया के रूप में हड़ताल के माध्यम से आंदोलन को गति प्रदान की थी परिणामतः प्रशासन के द्वारा शहर बनारस के सभी कांग्रेस कार्यालयों पर अधिकार कर लिये गये और इसके बाद प्रशासन का अगला निशाना शहर के उच्च शिक्षण संस्थान बने। काशी विद्यापीठ व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय दोनों प्रमुख उच्च शिक्षण संस्थानों में अंग्रेजी सरकार ने भारी मात्रा में सुरक्षाकर्मी तैनात कर दिये थे। इस आंदोलन के समय जो प्रमुख लोग गिरफ्तार किये गये उनमें मुख्य रूप से आचार्य बीरबल सिंह, खेदन लाल, संपूर्णानंद, प्रो0 राजाराम शास्त्री प्रमुख थे।[3] इन गिरफ्तारियों के विरोध स्वरूप काशी विद्यापीठ व अन्य शिक्षण संस्थानों के विद्यार्थियों एवं अध्यापकों द्वारा नगर में जुलूस निकाल कर अपना विरोध दर्ज करवाया गया।

नगर प्रशासन द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के निकट स्थित कांग्रेस कार्यालय पर कब्जा करने के पश्चात् इस घटनाक्रम का छात्रों व अध्यापकों द्वारा जबरदस्त विरोध किया गया, प्रशासन द्वारा कड़ी मशक्कत किये जाने पर यह प्रतिरोध किसी प्रकार शांत हुआ था। डॉ0 कौशलानंद गैरोला को हिन्दू विश्वविद्यालय में कांग्रेस के द्वारा आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए चुना गया था।[4] बनारस शहर के श्री कमलापति त्रिपाठी, श्री प्रकाश जी, श्री रामसूरत मिश्र, श्री रामनरेश सिंह, श्री रघुनाथ सिंह सहित प्रमुख नेताओं को 9 अगस्त को प्रातःकाल गिरफ्तार कर लिया गया।[5] प्रो0 गैरोला के नेतृत्व में 10 अगस्त को विश्वविद्यालय के छात्रों, अध्यापकों, नागरिकों का जत्था जुलूस के रूप में दशाश्वमेध घाट पहुँचा और वहाँ पर उपस्थित सभी नागरिकजन एक बड़े समूह के रूप में टाउन हाल पहुँचे जहाँ सबने मिलकर एक वृहद स्तर पर जनसभा का आयोजन किया, इस जनसभा के माध्यम से 8 अगस्त को बम्बई अधिवेशन के प्रस्ताव को शपथपूर्ण तरीके से आम जनमानस के मध्य रखा गया और सबको आंदोलन के लिए आह्वाहनित किया गया।[6]

इस आंदोलन को शहर में गतिशील करने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका आज दैनिक अखबार ने निभाई थी। इस अखबार के माध्यम से गाँधी व अन्य स्थानीय आंदोलनकर्ताओं के गिरफ्तारी की जानकारी आम नागरिकों के मध्य पहुँचने के कारण शहर में जन आंदोलन की भावना का संचार होने लगा था। आंदोलन को प्रमुखता से जगह देने के लिए 'आज' अखबार ने 9 अगस्त को सुबह अपना अतिरिक्त अंक प्रकाशित किया था तथा शाम को पुनः साप्ताहिक अंक निकाल कर सूचनाओं के प्रसार में आन्दोलनकारियों की मदद की थी। 10 अगस्त का दिन शहर के लिए आंदोलन के संदर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण था क्योंकि इस दिन प्रो0 गोविंद मालवीय एवं प्रो0 उद्धव सिंह असरानी को गिरफ्तार किया गया था[7], जिनकी गिनती शहर के प्रमुख आंदोलनकारियों में होती थी। इनकी गिरफ्तारियों के पश्चात् नगर में जनआंदोलन की भावना का संचार तेजी से होने लगा और शहर के प्रमुख हिस्सों सोनारपुरा, चौक, नदेसर आदि क्षेत्रों में व्यापक रूप से नागरिकों द्वारा प्रदर्शन किये

* एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

गये और कार्यकर्ताओं के द्वारा जुलूस निकाले गये। शहर में सभी मुख्य स्थानों पर पुलिस व्यवस्था की चौकसी थी, चारो तरफ हथियारबंद व घुड़सवार पुलिसकर्मियों द्वारा भ्रमण किया जा रहा था।

शहर के तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट के रूप में डब्लू० डब्लू० फिनले की नियुक्ति थी। फिनले एक कुशल प्रशासक था जिसके नेतृत्व में प्रशासन को इस आंदोलन को दबाने में महत्वपूर्ण सफलता मिली। दूसरे दिन दोपहर के पश्चात् शहर के अन्य भागों से बड़ा जनसमूह नदेसर कोठी होते हुए शहर के इम्पीरियल बैंक के पास इकट्ठा हुआ जहाँ विशाल जनसभा आयोजित की गई। उस दिन पूरे शहर में हड़ताल रही। शहर व विश्वविद्यालयों से कई जगहों पर जुलूस निकाले गये और सब मिलकर साथ में स्थानीय कचहरी की ओर गये। फौजदारी कचहरी के पास जुलूस को प्रशासन द्वारा रोकने की कोशिश की गई और उस पर लाठीचार्ज भी किया गया। तीसरे दिन 11 अगस्त को "पुलिस हमारे भाई हैं", "हम आजाद हैं" का नारा लगाते हुए जुलूस निकाला गया, उस दिन कांग्रेस के एक कार्यकर्ता ने बड़ी चालाकी से कचहरी पर सिपाहियों के सामने अपना झण्डा फहराया था। एक कांग्रेसी कार्यकर्ता ने, लगभग हाथों के सहारे झूलते हुए कचहरी के भवन की पूरी ऊँचाई पर पहुँच कर झण्डा फहराया था।[8] उस कार्यकर्ता का कौशल आज के वृद्धजन बड़े ही जोश के साथ अब भी बताते हैं। पूरे शहर से ब्रिटिश शासन हट सा गया था और जगह-जगह से बिजली के तारों को काट डाला गया था और खंभे उखाड़ डाले गये। इन घटनाक्रमों में एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम यह है कि जब अहिंसक कार्यकर्ताओं का प्रदर्शन नहीं रूका तो मजिस्ट्रेट के आदेशानुसार मिस्टर टीजडेल के द्वारा जनता पर लाठीचार्ज करवाया गया था, परिणामस्वरूप जुलूस बँट गया।[9] इसके बाद भी इस लाठीचार्ज की घटना से बेखबर छात्रों द्वारा अलग-अलग क्षेत्रों में प्रतिरोध किया गया। कुछ स्थानों पर आवेशित जनता के सामने प्रशासन ने सूझबूझ से काम लिया जैसे कचहरी पर झण्डा फहराते समय कार्यकर्ताओं के आंदोलन की उग्रता को देखकर जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर फिनले ने काफी धैर्य दिखाया और आंदोलनकारियों को जाने दिया परिणामस्वरूप जुलूस के लोग झण्डा फहराकर वापस चले गये। आंदोलनकारियों द्वारा टेलीफोन तार भी काट डाले गये और कैण्ट स्टेशन के पहले अन्धरापुल नामक स्थान पर रेलवे सिग्नल को भी तोड़ डाला गया। इस घटना में सम्मिलित कुछ लोगों को प्रशासन के आदेशानुसार गिरफ्तार भी किया गया और अधिकारियों के द्वारा अगले दिन कचहरी के भवन से झण्डा उतार दिया गया।[10]

इन घटनाओं के पश्चात् प्रशासन ने अपनी चौकसी बढ़ाई और यह तय किया कि भविष्य में इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो फिर भी आंदोलन की गतिविधियाँ जारी रहीं। जहाँ तक आन्दोलन के विस्तार तथा सरकार द्वारा इसके दमन का प्रश्न है? तो इन घटनाओं के पश्चात् गोली चलने की घटनाएँ साधारण सी बात हो गयी थी। 12 अगस्त को पुलिस ने पूरे शहर में जमकर लाठीचार्ज किया तथा पूरे शहर में पाँच स्थानों पर गोलियाँ चलाई।[11] इन स्थानों में प्रमुख रूप से चेतगंज, तेलियाबाग, बनारस छावनी तथा हरिश्चन्द्र घाट के क्षेत्र सम्मिलित थे। चेतगंज की घटना में तीन कांग्रेसी कार्यकर्ता घायल हुए थे और हरिश्चन्द्र घाट की घटना में एक व्यक्ति मारा गया था और छः अन्य छात्र जख्मी हुए थे। प्रशासन द्वारा किया गया यह कुकृत्य अत्यंत ही निंदनीय था।

पूरे जनपद में लगभग पच्चीस स्थानों पर प्रशासन द्वारा गोलियाँ चलवाई गयीं थीं जिसमें कुल बीस लोग मारे गये थे। इन स्थानों में प्रमुख रूप से चेतगंज, तेलियाना, सोनारपुरा, हरिश्चन्द्र घाट, बनारस कैण्ट, दशाश्वमेध घाट, केशोपुर, धानापुर, चोलापुर, सकलडीहा, बाबतपुर, खालिसपुर, सैय्यदराजा, मुगलसराय आदि स्थान थे।[12] इस संदर्भ में एक तथ्य यह महत्वपूर्ण है कि इन घटनाओं के बाद भी कहीं पर जनता का मनोबल नहीं टूटा अपितु यह और दृढ़ होता गया। इस घटना से यह सिद्ध होता है कि आंदोलन अपनी नियति की तरफ गतिमान था और जनता अहिंसक बनी रही। एक स्थान धानापुर (वर्तमान समय में चन्दौली जनपद) में आंदोलनकारियों का व्यवहार जरूर हिंसक रहा। आन्दोलन को दबाने के लिए सरकार के द्वारा अन्तिम प्रयत्न किया गया और सैयदराजा (वर्तमान समय में चन्दौली जनपद) में औरतों पर भी गोली चलवाई गयी।[13] शहर के दयानंद महाविद्यालय व हरिश्चन्द्र महाविद्यालय के परिक्षेत्र में 13 अगस्त को छात्रों द्वारा जुलूस निकाले गये और उन पर प्रशासन द्वारा लाठीचार्ज किया गया तथा साथ में 12 अगस्त की घटना के निमित्त इन छात्रों पर गोली भी चलवाई गई। बाद के दिनों में यानी 14 अगस्त को आक्रोशित आंदोलनकारियों ने मंडुआडीह स्टेशन व शिवपुर स्टेशन पर कब्जा कर लिया तथा मालगोदाम में रखे हुए सामान को आग के हवाले कर दिया। इस तरह से यह आंदोलन पूरे बनारस शहर में फैल गया और काफी हद तक आन्दोलन अनियंत्रित भी हो गया।

बनारस शहर में भारत छोड़ो आन्दोलन के संदर्भ में जितनी भी हिंसक घटनाएँ हुई थीं उनमें दशाश्वमेध गोलीकाण्ड प्रमुख है। 13 अगस्त के दिन स्थानीय कांग्रेसी कार्यकर्ताओं व नेताओं ने टाउनहॉल में एक सभा का आयोजन तय किया जिसमें यह निश्चित था कि सभी नागरिक दशाश्वमेध घाट से जुलूस निकाल कर टाउन हॉल पहुँचेंगे और वहाँ पर अब तक के आंदोलन के घायलों व मृतकों के सम्मान में सभा की जायेगी। सरकार द्वारा इस यात्रा व सभा पर प्रतिबंध लगा दिया गया था फिर भी आंदोलनकारियों ने इस आयोजन को पूर्ण करने का मन बना लिया था। इस आयोजन का नेतृत्व प्रमुख कांग्रेसी नेता विन्देश्वरी पाठक द्वारा किया जा रहा था। संयोजक विन्देश्वरी पाठक को जिला प्रशासन ने गिरफ्तार करवा लिया। इस गिरफ्तारी से जनता उत्तेजित हो गई और प्रशासन व जनता में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई, पहले तो प्रशासन ने लाठीचार्ज का आदेश दिया परन्तु आंदोलन की उग्रता को देखते हुए जिला मजिस्ट्रेट ने गोली चलाने का आदेश दे दिया। इस संघर्ष में

मरने वाले लोगों में प्रमुख रूप से विश्वनाथ तथा बैजनाथ प्रसाद मल्होत्रा थे। जुलूस संयोजक विन्देश्वरी पाठक और रमाकान्त मिश्र समेत कई प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्ता घायल भी हुए थे।[14]

आंदोलन के संदर्भ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की घटनाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। विश्वविद्यालय की घटनाओं को समेकित रूप से देखने पर लगता है कि बनारस शहर में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र था। विश्वविद्यालय में आंदोलन का नेतृत्व करने वालों में प्राध्यापक प्रो0 राधेश्याम शर्मा, प्रो0 यू0 एस0 असरानी व प्रो0 कौशलानंद गैरोला प्रमुख थे। विश्वविद्यालय की प्रमुख आंदोलनकारी घटनाओं में से एक यह भी थी कि छात्रों ने विश्वविद्यालय में गाँधी चबूतरे के निकट 9 अगस्त को एक आम सभा की जिसमें प्रो0 राधेश्याम शर्मा, तारापद भट्टाचार्या, राजनारायण, भगवानदयाल शर्मा, प्रो0 असरानी इत्यादि सम्मिलित हुए और यह प्रस्ताव पारित किया कि हम सभी विश्वविद्यालय के छात्र, ब्रिटिश शासन व्यवस्था में अपनी आस्था खत्म मानते हैं और वैश्विक परिदृश्य में हमारे लिए यह आवश्यक है कि भारत स्वतंत्र हो जिससे हमारा व हमारे राष्ट्र का पूर्ण विकास हो। यहाँ पर लोगों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कमेटी के वर्धा प्रस्ताव का समर्थन किया तथा गाँधी के नेतृत्व में आंदोलन का सहयोग देने का वचन भी दिया। इस संदर्भ का संदेश तार के माध्यम से मौलाना आजाद को भी भेजा गया।[15] इस सभा के पश्चात् छात्र आन्दोलन में सक्रिय हो गये और यह विश्वविद्यालय पूर्वांचल में आंदोलन का मुख्य केन्द्र बन गया। प्रो0 गैरोला के नेतृत्व में छात्रों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर आंदोलन को गति देने का कार्य 8 अगस्त से 17 अगस्त तक निर्बाध गति से होता रहा। इस अवधि के पश्चात् विश्वविद्यालय में आंदोलन थोड़ा शिथिल सा हो गया। इन घटनाक्रमों के मद्देनजर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय 16 अगस्त से अनिश्चितकाल के लिए बंद कर दिया गया और छात्रों से छात्रावास जबरन खाली करा लिये गये और प्रो0 गैरोला पर सरकार ने 5000 रूपये का पुरस्कार भी घोषित कर दिया। इस घटना के पश्चात् विश्वविद्यालय बंद होने के कारण प्रो0 गैरोला पूर्वांचल के क्षेत्रों में जाकर आन्दोलन में सक्रिय हो गये और प्रो0 राधेश्याम शर्मा, इलाहाबाद, ग्वालियर के क्षेत्रों में सक्रिय होकर काम करने लगे।[16] प्रो0 गैरोला ने भूमिगत होकर छात्रों की मदद से सांगठनिक तौर पर ऐसी संरचना तैयार की कि लोग गोपनीय तरीके से संगठन बनाकर छात्रों की मदद से जुलूस निकालते रहे और सभाएँ करते रहे। इन सभी घटनाक्रमों के विवरण को छात्रों द्वारा जिला कांग्रेस कार्यालय तक पहुँचाया जाता था। इन गतिविधियों में प्रो0 राधेश्याम शर्मा द्वारा प्रचार-प्रसार विभाग संचालित होता था जिसमें विश्वसनीय जनसूचनाओं को आंदोलनकारियों तक पहुँचाते थे। इसके अतिरिक्त इन लोगों ने स्वयं के वित्त विभाग तथा गुप्तचर विभाग खोल दिए थे जो आंदोलन चलाने में मदद करते थे। विश्वविद्यालय में स्थित आयुर्वेदिक कॉलेज के छात्रों द्वारा घायल व बीमार आंदोलनकारियों का उपचार भी किया जाता था।

लगभग एक सप्ताह तक विश्वविद्यालय परिसर में छात्रों का कब्जा रहा। प्रवेशपत्र दिखाकर लोग आते-जाते थे, किसी भी सरकारी व्यक्ति को अन्दर आने की अनुमति नहीं थी अर्थात् एक प्रकार से यहाँ एक हफ्ते तक समानांतर सरकार संचालित होती रही। इन घटनाओं के क्रम में तत्कालीन समय के विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ0 राधाकृष्णन ने 9 अगस्त को छात्रों से अपील की और कहा कि छात्र पढ़ने-लिखने में मन लगायें और शिक्षक उनकी मदद करें। डॉ0 राधाकृष्णन ने इस आंदोलन को अपना नैतिक समर्थन देते हुए महात्मा गांधी की गिरफ्तारी की सार्वजनिक निंदा की और विश्वविद्यालय की कार्यकारी बैठक बुलाई और तत्कालीन समय में बनारस की परिस्थितियों पर विचार किया गया परन्तु इस बैठक में बहुत कम लोग उपस्थित हुए और जो लोग आये भी वे ज्यादातर स्थानीय लोग थे। 19 अगस्त को प्रातः 3 बजे जब सभी लोग सो रहे थे तब महामना मालवीय और डॉ0 राधाकृष्णन के न चाहते हुए भी एक बड़ी सशस्त्र फौज ने विश्वविद्यालय में छात्र-छात्राओं के छात्रावास खाली करवा दिये।[17] छात्र-छात्राओं को बर्बर तरीके से पीटा गया और उन्हें छात्रावास से बाहर भटकने के लिए छोड़ दिया गया। विश्वविद्यालय पर कब्जे की इस पूरी घटना की सूचना वायसरॉय को भी दी गई और बताया गया कि एक प्रकार से यह आंदोलनकारियों के ऊपर प्रशासन की विजय के समान है। इन घटनाओं के पश्चात् अधिकतर छात्र शहर के अन्य हिस्सों में भटकते रहे परन्तु शहर के व्यापारियों व अन्य लोगों ने दिलेरी दिखाई और मठों, धर्मशालाओं तथा पाठशालाओं में छात्रों के रूकने व भोजन की व्यवस्था करवाई गई। इस घटना संदर्भ की कुछ छात्राओं को हिन्दू-कन्या पाठशाला तथा आर्य कन्या-पाठशाला में रूकवाया गया और उनके लिए रहने व खाने की हर प्रकार की यथासंभव व्यवस्था की गई।[18]

इन घटनाओं के अतिरिक्त शहर से बाहर ग्रामीण क्षेत्रों में आंदोलन का विस्तार होने लगा था, जिसमें सैयदराजा क्षेत्र में कांग्रेस नेता जयनारायण दूबे के नेतृत्व में सरकारी इमारतों पर कब्जा कर लिया गया था और यहाँ पर प्रशासन द्वारा गोली चलाने का भी कार्य किया गया। इस क्षेत्र में आंदोलन का नेतृत्व करने वालों में जगनारायण दूबे, राजेन्द्र प्रसाद व चन्द्रिका प्रसाद प्रमुख थे।[19] इस पूरी घटना में घायलों की संख्या लगभग पचास के आस-पास रही। क्रुद्ध प्रशासन ने क्षेत्र में जबरदस्त छापामारी की और लोगों को अपने घर छोड़कर बाहर जाने के लिए मजबूर कर दिया। एक अन्य घटना जो प्रमुख हैं वह धानापुर तहसील (वर्तमान समय में चन्दौली जनपद) में हुई थी जहाँ कामता प्रसाद विद्यार्थी के नेतृत्व में 16 अगस्त को झण्डा फहराने के निर्णय पर प्रशासन द्वारा की गई गोलीबारी में घटनास्थल पर ही महँगू सिंह, रघुनाथ सिंह व हीरा सिंह नामक ग्रामीण मारे गये तथा चार अन्य लोग गंभीर रूप से

घायल हुए थे।[20] सरकारी जुल्म का आलम यह था कि स्थानीय चिकित्सकों द्वारा घायलों के इलाज से मना कर दिया गया। इसके अतिरिक्त मुगलसराय स्टेशन पर भी प्रशासन ने गोली चलवाई जिसमें बहुत से आंदोलनकारी घायल हुए थे। यह आंदोलन अब धीरे-धीरे ग्रामीण क्षेत्रों में फैलने लगा था और हिंसक भी होने लगा था। बाद के समय में चोलापुर, हरदत्तपुर, बाबतपुर, रजवाड़ी आदि स्थानों पर भी सरकार द्वारा गोली चलवाकर इस आंदोलन को दबाने का प्रयास किया गया। जनसूचना के माध्यम 'आज' अखबार को प्रतिबंधित कर दिया गया था और उसके संपादक (कमलापति त्रिपाठी) को गिरफ्तार कर लिया गया था।[21] भारत छोड़ो आन्दोलन के दिनों में यह शहर मुख्य क्रांतिकारियों का निवास-स्थान भी बना रहा, यहाँ रहकर आंदोलन चलाने वाले लोगों में प्रमुख रूप से जयप्रकाश नारायण, बाबा राघवदास, अरूणा आसफ अली तथा नेपाल के कोईराला बंधु प्रमुख थे।[22] अगस्त महीने के बाद भी नवंबर, दिसम्बर महीने में यहाँ आन्दोलन की छिटपुट गतिविधियाँ होती रहीं जैसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में उत्तर प्रदेश के गवर्नर आने वाले थे प्रशासन के न चाहने के बावजूद वहाँ शासन व्यवस्था के खिलाफ पर्चे बाँटे गये।

सहज रूप से बनारस और भारत छोड़ो आंदोलन के संदर्भ में छात्र, शिक्षक, नवयुवक, महिलाओं, मजदूर, किसान सबका सम्मिलित एका होने के कारण पूरा पूर्वांचल (उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग) 1942 ई0 के पूरे अगस्त महीने में आंदोलनमय रहा। अपनी परंपरा, संस्कृति तथा पारंपरिक मूल्यों वाला यह शहर बनारस इस काल में न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे नवागंतुक विचारों को स्थापित करने में संपूर्ण राष्ट्र के साथ भारत छोड़ो आन्दोलन में हिस्सेदार बन रहा था।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. ठाकुर प्रसाद सिंह, स्वतंत्रता आंदोलन और बनारस (वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1990), पृ0 8
2. सुमित सरकार, आधुनिक भारत (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2010), पृ0 420
3. द टाइम्स ऑफ इण्डिया (समाचार पत्र), 11 अगस्त 1942
4. ठाकुर प्रसाद सिंह, स्वतंत्रता आंदोलन और बनारस (वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1990), पृ0 57
5. ठाकुर प्रसाद सिंह, स्वतंत्रता-संग्राम में वाराणसी, सोच विचार, काशी, अंक-पाँच (2014) : पृ0 19
6. गोविन्द सहाय, सन बयालीस का विद्रोह (इन्दौर : नवयुग साहित्य सदन, 1946), पृ0 190
7. पायनियर, (समाचार पत्र), 11 अगस्त 1942
8. ठाकुर प्रसाद सिंह, स्वतंत्रता आंदोलन और बनारस (वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1990), पृ0 8
9. गोविन्द सहाय, सन बयालीस का विद्रोह (इन्दौर : नवयुग साहित्य सदन, 1946), पृ0 190
10. स्वतंत्रता संग्राम (विशेषांक), "आज" स्वर्ण जयंती के अवसर पर प्रकाशित, पृ0 203
11. ठाकुर प्रसाद सिंह, स्वतंत्रता आंदोलन और बनारस (वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1990), पृ0 57-58
12. उपरोक्त, पृ0 57-58
13. गोविन्द सहाय, सन बयालीस का विद्रोह (इन्दौर : नवयुग साहित्य सदन, 1946), पृ0 192
14. उपरोक्त, पृ0 191
15. आज, (समाचार पत्र), 10 अगस्त 1942
16. पी0एन0 चोपड़ा, क्विट इण्डिया मूवमेण्ट 'ब्रिटिश सीक्रेट रिपोर्ट (फरीदाबाद : थॉमसन प्रेस, 1976), पृ0 311
17. गोविन्द सहाय, सन बयालीस का विद्रोह (इन्दौर : नवयुग साहित्य सदन, 1946), पृ0 193
18. आज, (समाचार पत्र), 22 अगस्त 1942
19. गोविन्द सहाय, सन बयालीस का विद्रोह (इन्दौर : नवयुग साहित्य सदन, 1946), पृ0 192
20. ठाकुर प्रसाद सिंह, स्वतंत्रता आंदोलन और बनारस (वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1990), पृ0 60
21. उपरोक्त, पृ0 सं0 58
22. ठाकुर प्रसाद सिंह, स्वतंत्रता-संग्राम में वाराणसी, सोच विचार, काशी, अंक-पाँच (2014) : पृ0 19

हड़प्पीय वास्तुशिल्प की तकनीकी दक्षता

बिपिन चन्द सिंह[*] एवं डॉ. जी. के. लामा[**]

सैन्धव सभ्यता का विस्तार, अपने समकालीन दो अन्य सभ्यताओं मेसोपोटामिया एवं मिश्र के संयुक्त विस्तार से भी अधिक था। तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व सिन्धु एवं हकरा के तट पर इस सभ्यता का विकास हुआ। जहाँ मेसोपोटामिया और मिश्र अपने मकबरे और पिरामिड के लिए प्रसिद्ध हैं, वहीं सैन्धव सभ्यता को उसके विकसित तकनीकी ज्ञान के लिए जाना जाता है। हड़प्पावासियों ने सर्वप्रथम नगर नियोजन, सुनियोजित नालियों, नहर, सिंचाई की व्यवस्था एवं जल संग्रह तकनीकि का विकास किया। मोहनजोदड़ो में स्थित स्नानागार जल-रिसाव रोकने की उत्तम तकनीकि का उदाहरण प्रस्तुत करता है। धातु एवं धात्विक उपकरणों के क्षेत्र में भी यहाँ अभूतपूर्व प्रगति हुई। सूखाग्रस्त क्षेत्र में जल संरक्षण की तकनीकि उन्हीं की देन है। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, राखीगढ़ी, धौलावीरा जैसे वृहद् नगर पूर्णतः नियोजित थे।

प्रस्तुत शोधपत्र में हड़प्पा सभ्यता के लोगों द्वारा स्थापत्य के क्षेत्र में अपनाए गये उपकरणों की संक्षिप्त जानकारी देने का प्रयास किया गया है। किस तरह हड़प्पावासियों ने भारत-पाक उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में आवासीय योजना को उत्कृष्ट तकनीकि द्वारा विकसित किया, यह स्वयं में आश्चर्यजनक लगता है। इसके लिए अनुकूल पर्यावरण, नागर अभियांत्रिकी, रेखागणित, भवन निर्माण सामग्री, प्रशिक्षित श्रमिक आदि की आवश्यकता अपरिहार्य थी, जिनकी सहायता से वृहद् पैमाने पर स्मारकों का निर्माण हो सका। हड़प्पीय स्थापत्य यह प्रमाणित करते हैं कि उन्हें रेखा गणित एवं स्थापत्य कला का विशिष्ट ज्ञान था। उन्हें दशमलव प्रणाली का भी ज्ञान था। वृहद् क्षेत्र को मापने के लिए सम्भवतः वे रस्सियों का प्रयोग करते थे। सुरकोटदा से उत्खनन में रज्जु का एक छोटा अंश भी प्राप्त हुआ है। इस तरह के रज्जु का हड़प्पीय नगरों में स्थित स्नानागार, अन्नागार तथा मार्गों की माप के लिए प्रयोग किया जाता रहा होगा। मोहनजोदड़ों, हड़प्पा, लोथल एवं कालीबंगा में कुछ ऐसे भवन हैं, जिनमें सोपान भी बने हैं। इन सोपानों के निर्माण हेतु उनकी ऊँचाई एवं लम्बाई के समानुपाती विभाजन का परिज्ञान आवश्यक था। हड़प्पावासियों को वृत्त, चतुर्भुज एवं त्रिभुज की भी अच्छी जानकारी थी। एक मुहर पर चार चतुर्भुजों एवं एक सर्वतोभद्र योजना का अंकन द्रष्टव्य है[1]।

यह अंकन त्रिरथ मंदिर की योजना का स्मरण कराता है, जिसके चारों कोनों पर चतुष्कोणीय भवन का निर्माण होता था। कालान्तर में इसी से पंचायतन मंदिर की स्थापत्य का विकास हुआ। हिन्दू मंदिर स्थापत्य में इसे सर्वतोभद्र योजना का नाम दिया गया। हड़प्पीय लोगों को भवन निर्माण में अनुपात का भी ज्ञान था, यथा- 1:2, 4:5 इत्यादि। इन्हें कोण का भी ज्ञान था[2]

रेखागणितीय उपकरण :

मापक- रेखांकन हेतु मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, लोथल एवं कालीबंगा से उत्खनन में मापक (scale) प्राप्त हुये हैं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त मापक, सीपी (shell) निर्मित है। हड़प्पा का मापक काँस्य एवं लोथल से प्राप्त मापक हाथी दाँत (Ivory) का बना है, जबकि कालीबंगा का मापक मृण निर्मित है। मोहनजोदड़ो (चित्र सं. 1) का मापक 2.64 इंच (6.7 सेमी) के दस विभाजनों में विभक्त था, जो उनकी माप की इकाई रहीं होगी। मैके ने इन मापकों के बारें में लिखा है- ''जिन वस्तुओं से इन मापकों का निर्माण हुआ है यथा- सीपी, सम्भवतः सर्वोत्तम रहा होगा क्योंकि इसमें दरार पड़ने अथवा तापमान का प्रभाव पड़ने की सम्भावना नहीं थी।'' इन मापकों में अभी भी नौ विभाजन शेष हैं। यद्यपि हम यह नहीं कह सकते कि उनके टूटे हुये अंश पर और कितने विभाजन अंकित रहे होगें, ये विभाजन दशमलव प्रणाली पर आधारित पाँच के गुणक में विभाजित प्रतीत होते हैं। वृत्त को 10 दशमलवों के समूह से अंकित किया जाता था, जिसमें पाँच उपसमूह भी विद्यमान थे। मापक के निर्माण में सौन्दर्य, परिष्करण एवं परिशुद्धता का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया था। विभाजक रेखा को सावधानीपूर्वक एक छोटी आरी से काटा गया है, जिसकी चौड़ाई 0.02 मिमी रखी गयी है। यह सिद्ध करता है कि हड़प्पीय लोग माप-तौल के क्षेत्र में मानसिक तौर पर उन्नत दशा में पहुँच चुके थे, जो उनके कार्य में गणितीय दक्षता से परिलक्षित होता है[3]। हड़प्पा (चित्र सं. 2) से प्राप्त कांस्य मापक में प्रत्येक 9.34 मिमी के अन्तराल पर विभाजन रेखाएँ अंकित हैं।

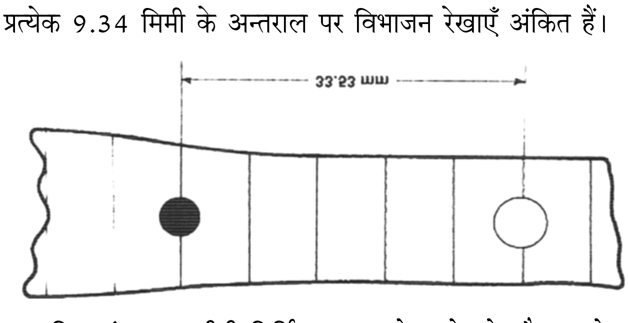

(चित्र सं0 1 : सीपी निर्मित मापक मोहनजोदड़ो सौजन्य से : ए0एस0आई0)

* शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

(चित्र सं0 2 : कॉंस्य निर्मित मापक हड़प्पा सौजन्य से : ए0एस0आई0

लोथल से प्राप्त (चित्र सं. 3) हाँथी दाँत का मापक 6 मिमी पतला और 15 मिमी लम्बा है। 46 मिमी लम्बाई में केवल 27 विभाजक रेखाएँ हैं जिनमें से प्रत्येक के बीच की दूरी 1.70मिमी है। 6 एवं 21 की विभाजन रेखाएँ अन्य रेखाओं से लम्बी हैं। दो विभाजक रेखाओं में 25.56 मिमी का अन्तर है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त सीपी निर्मित मापक की मोटाई 0.6 मिमी है, तथा प्रत्येक विभाजक रेखा के मध्य 6.7 मिमी का अन्तर है। कुल पाँच विभाजक रेखाओं की दूरी 33.52 मिमी है। सामान्यतः 67 मिमी लम्बाई को आधार माना गया है। कालीबंगा (चित्र सं. 4) से प्राप्त मृण का मापक सम्भवतः अपरिष्कृत (Rough) था और इसका उपयोग मापन के लिए न होकर रेखांकन के लिए होता था।

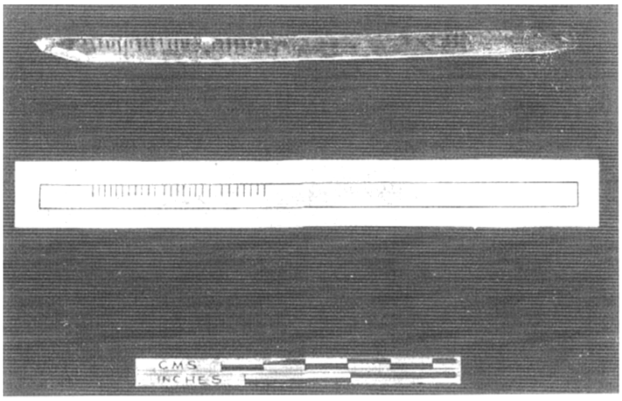

(चित्र सं0 3 : हाथी दाँत निर्मित मापक लोथलसौजन्य से : ए0एस0आई0)

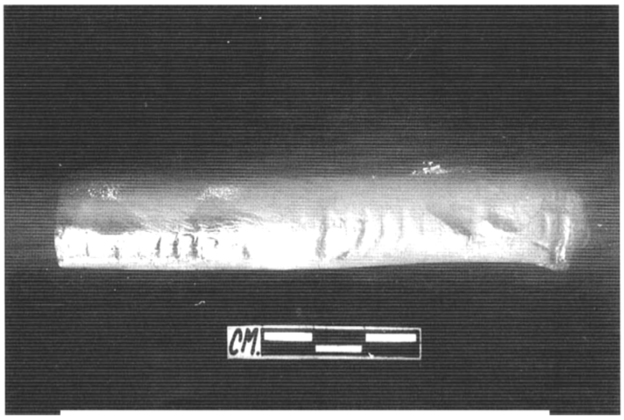

(चित्र सं0 4 : मृण निर्मित मापक कालीबंगा सौजन्य से : ए0एस0आई0)

लोथल और मोहनजोदडो के मापक निर्माण में परिशुद्धता का ध्यान रखा गया है। यह ध्यातव्य है कि लोथल के मापक पर अंकित 25.56 मिमी का विभाजन लगभग एक इंच के बराबर है। उपरोक्त संदर्भ में बृज भूषणविज का मत है कि ''सैन्धव सभ्यता के लोग π (पाई) के अनुपात के महत्व को जानते थे, इसीलिए पृथ्वी के व्यास का मापन उनकी तकनीकि क्षमता के अनुरूप था[4]।''

हड़प्पीय सभ्यता से प्राप्त अन्य मापक यन्त्रों का विवरण निम्नवत् दिया जा सकता है-

(i) कुछ ऐसी वस्तुएँ उत्खनन से प्राप्त हुई हैं, जिनके बारे में यह सम्भावना व्यक्त की गयी है कि उनका उपयोग सितारों की स्थिति जानने एवं तद्नुसार खगोलीय भविष्यवाणी करने में किया जाता रहा होगा।

(ii) मोहनजोदड़ो एवं लोथल की इकाई का अनुदैर्ध्य मापक में पाई जाने वाली 30 इकाई वर्तमान मापक के काफी करीब है। इस तरह के 10 मी. की लम्बाई ब्रिटिश माप के 32.81 फीट के बराबर है जो 33 फीट के मापक के बराबर हैं।

(iii) विशाल स्नानागर के निर्माण एवं उसके रेखागणितीय योजना की माप इस प्रकार हैः- आधार-46 फीट, चौड़ाई-23 फीट, गहराई-8 फीट, जिसे 100 वर्ग गज के क्षेत्र में तैयार किया गया था। विज का कथन है कि यह स्नानागार सम्भवतः परीक्षण के तौर पर निर्मित किया गया था, न कि जनसाधारण के स्नानागार के रूप में।

राजगीर के उपकरण –

दिक्सूचक (Compass)-

हड़प्पीय लोग कम्पास (दिक्सूचक) का उपयोग जानते थे जिसका उपयोग कोण के निर्माण में होता था। धौलावीरा एवं लोथल से इस तरह के कम्पास मिले है। लोथल से एक खोखला बेलनाकार सीप निर्मित वस्तु मिला है जिसमें ऊपर और नीचे चार-चार छिद्र बने हैं। इस उपकरण की सहायता से 45^0, 90^0, 180^0, 360^0 का मापन किया जा सकता है। इससे सीधी रेखाएँ भी खींची जा सकती हैं।

साहुल-(Plumb bob)-

हड़प्पीय लोगों के पास साहुल भी था। लोथल एवं कालीबंगा से इस तरह के साहुल मिले हैं। 7.2 सेमी. ऊँचा फियांस निर्मित एक विशिष्ट साहुल भी मिला है, जो कली के आकार का है जिसके मध्य में धागा बांधकर इसे ऊपर से नीचे की ओर लटकाया जाता था। इस तरह के उपकरणों का प्रयोग गलियों, नालियों एवं भवनों के निर्माण में किया जाता था।

समकोण (Right Angle)-

लोथल में हड़प्पीय लोगों की अभियांत्रिकी देन की विवेचना करते हुए एस.आर. राव लिखते हैं- ''सीपी निर्मित अंगूठी की तरह की एक वृत्ताकार वस्तु लोथल से प्राप्त हुई है जिसमें चार गहरे

रेखाछिद्र (Slits) ऊपर एवं नीचे कटे हुए हैं, इसी तरह का एक उपकरण मोहनजोदड़ो तथा धौलावीरा (चित्र सं. 5) से भी प्राप्त हुआ है जिन पर छः रेखाछिद्र अंकित है। संभवतः इनका उपयोग समतल भूमि पर कोण मापने के लिए होता था। लोथल से प्राप्त (चित्र सं. 6) उपकरण के रेखांकन से 45^0 का कोण बनता था जबकि धौलावीरा के उपकरण से 30^0 का। छः रेखाछिद्र वाले कम्पास का उपयोग 30^0 एवं उसके गुणक के निर्माण में होता था। इस तरह के उपकरणों का विवरण यूनानी साहित्य में भी मिलता है जिनका उपयोग प्राचीन काल में नाविक लोग किया करते थे। यह विचारणीय तथ्य है कि 2000 वर्ष पूर्व यूनानियों ने आकाश और क्षितिज का आठ अथवा बारह भागों में विभाजन किया था। हड़प्पीय लोगों को इसकी पूर्व में ही जानकारी थी तथा इसके लिए उन्होंने उपकरण भी बना लिए थे, जो सितारों की स्थिति जानने में भी सहायक थी। जल परिवहन हेतु सितारों की दशा एवं दिशा जानना अति आवश्यक था। सितारों के उदय का उपयोग वार्षिक कृत्यों यथा- बीजारोपण, फसलों को काटना इत्यादि का समय सुनिश्चित करने में भी प्रयुक्त होता था।''

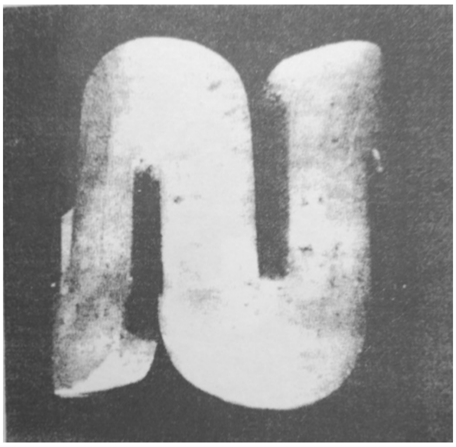

(चित्र सं0 5 : समकोण धौलावीरा)

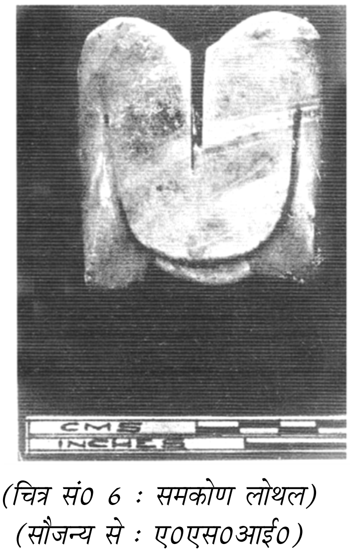

(चित्र सं0 6 : समकोण लोथल)
(सौजन्य से : ए0एस0आई0)

हड़प्पीय लोगों ने दशमलव प्रणाली का भी उपयोग किया था। आर.ए. हामी ने लिखा है ''मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा से प्राप्त भारमापक दशमलव प्रणाली को दर्शाते हैं।'' इनका अनुपात 1, 2, 4, 8, 16, 32, 64, 160, 320, 640, 1600, 3200, 6400, 8000, 12000 के क्रम में है। लोथल से प्राप्त भारमापकों का विश्लेषण करते हुए मणिकर ने इसे दो भागो में विभक्त किया है। पहले भाग में उन्होंने 27.584 ग्राम को सबसे छोटी इकाई माना है तथा दूसरे प्रकार में 18.1650 ग्राम को राव के अनुसार पहले प्रकार के भारमापकों का उपयोग आन्तरिक व्यापार हेतु एवं दूसरे प्रकार का उपयोग निर्यात हेतु किया जाता था किन्तु बाद में यह पाया गया कि दूसरे प्रकार की भार मापक ही भारतीय मूल की उत्पत्ति थे तथा इनका अनुपात 1, 2, 5, 10, 20, 50, 100, 200, 500 था[6]।

एक मृद्भाण्ड में स्वर्ण निर्मित भारमापक भी मिले हैं, जो दशमलव प्रणाली पर आधारित थे तथा जिसकी इकाई की शृंखला 100 मिली ग्राम तक जाती थी। राव के अनुसार इसका उपयोग लोथल के स्वर्णकार करते रहे होंगे।

सौर पंचांग-

एर्का मौला ने मोहनजोदड़ो से प्राप्त तथाकथित प्रस्तर निर्मित योनि के अध्ययन के क्रम में यह पाया कि इसके एक ओर दो छिद्र थे, जिनमें से वृहद् छिद्र को पंचांग प्रस्तर मानते हुए हड़प्पीय लोगों ने सौर पंचांग के अध्ययन का प्रयास किया गया।

मृण रेत घड़ी-

रेत घड़ी एक ऐसा यन्त्र है जिसमें रेत के गिरने से समय का मापन होता है। इस उपकरण का प्रयोग मध्यकाल में वृहद् पैमाने पर होता था किन्तु हड़प्पीय सन्दर्भों में इसका पाया जाना विशेष उल्लेखनीय है। कालीबंगा से प्राप्त मृण रेत घड़ी की ऊँचाई सात सेमी. है जिसमें ऊपर नीचे दो घुण्डियाँ (Bulbs) लगी हैं। दोनों घुण्डियाँ आधे सेमी. के छिद्र से एक दूसरे से जुड़ी हैं। ऊपर की घुण्डी का व्यास 6 सेमी. है जिसकी दीवारें 35^0 कोण पर बनी हैं तथा ऊँचाई 3 सेमी. है। निचली घुण्डी 4 सेमी. ऊँची तथा 7 सेमी. व्यास की है। परीक्षण में पाया गया है कि ऊपर की घुण्डी का रेत 10 से0 में समाप्त हो जाता है चूंकि यह दशमलव प्रणाली पर आधारित था। अतः इसका समीकरण वेदांग ज्योतिष के मुहूर्त से भी किया जा सकता है।

हड़प्पीय लोग तकनीकि विशिष्टता को इसलिए प्राप्त कर सके क्योंकि उन्होंने रेखागणित के क्षेत्र में उत्कृष्टता हासिल कर मापक, साहुल, कोण जैसे यन्त्रों का आविष्कार किया। इन उपकरणों की सहायता से वे विशाल भवन, अन्नागार, स्नानागार, गोदी आदि के निर्माण में सफल हुए। बाद की भारतीय संस्कृति को हड़प्पीय लोगों की ये महती देन है। सर्वप्रथम हड़प्पीय लोगों ने ही मजदूर वर्ग के हितों को ध्यान में रखते हुए उनके लिए अलग से

भवन बनाए जो आज भी एक प्रजाहितकारी राज्य का आवश्यक तत्व है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. मार्शल, जॉन. 1931. मोहनजोदड़ो एण्ड द इण्डज सिविलाइजेशन आर्थर प्रोबस्थेन : लन्दन पृ0सं0 37-39।
2. कुलकर्णी, आर.पी. 1978. 'जियोमेट्री ऐज नोन टू द पीपुल ऑफ इण्डज सिविलाइजेशन' द इण्डियन जर्नल ऑफ हिस्ट्री ऑफ साइंश 13 (2) पृ0सं0 112-117।
3. मैके, ई.जे.एच. 1938.फरदर एक्सकवेशन ऐट मोहनजोदड़ो एम.एस.आई. : नई दिल्ली, पृ0सं0 404-405।
4. विज. बृज भूषण. 1984. 'लीनियर स्टेयर लैण्ड इन द इण्डज सिविलाइजेशन' इन फ्रण्टियर्स ऑफ द इण्डज सिविलाइजेशन (सम्पा.) बी.बी. लाल एवं एस.पी. गुप्ता. बुक्स एण्ड बुक्स : नई दिल्ली, पृ0सं0 153-156।
5. राव, एस.आर. 1963. 'एक्सकवेशन ऐट रंगपुर एण्ड अदर एक्सप्लोरेशंस इन गुजरात' एन्शियण्ट इण्डिया 18-19, पृ0सं0 205-207।
6. मणिकर वी.बी. 1984. 'मेट्रोलॉजी इन द इण्डज सिविलाइजेशन' इन फ्रन्टियर्स ऑफ द इण्डज सिविलाइजेशन (सम्पा.) बी.बी. लाल एवं एस.पी. गुप्ता. बुक्स एण्ड बुक्स : नई दिल्ली, पृ0सं0 141।

इतिहास में लैंगिक भेद की वैचारिक अवधारणाएँ : रजस्वला के परिप्रेक्ष्य में

प्रतीक गुप्ता एवं डॉ. अनुराधा सिंह***

भारतीय सभ्यता के प्राचीन धार्मिक विचारकों ने जैवकीय संरचना के जिन मूलभूत कारणों के आधार पर स्त्री-पुरुष का भेद किया था उसमें स्त्रियों का रजस्वला होना भी था। मासिक धर्म चक्र प्रकृतिप्रदत्त वो जैव संरचनात्मक शारीरिक भेद है जो स्त्रियों और पुरुषों को शारीरिक के साथ आंतरिक संरचनात्मक रूप से भी भिन्न दिखाता है। प्राचीन धार्मिक विचारकों और विश्लेषकों ने इसे अपनी समझ के अनुसार विश्लेषित करते हुए इस विषय पर प्रचुर लेखन किया। अन्य विषयों की तरह मासिक धर्म को भी धर्म के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित कर उसे परालौकिकता से जोड़ने की प्रवृत्ति रही पर मासिक धर्म के लिये निर्धारित किये गये धार्मिक प्रावधानों और निषेधों की पृष्ठभूमि में समाज, परिवार, स्वहित और पर्यावरणीय (संरक्षण) चेतना का पुट भी सहज ही प्रतिबिम्बित होता है।

सभी धर्मों ने इसे न्यूनाधिक एक जैसा ही अपवित्र, अछूत और रजस्वला होने के दौरान परिवार, समाज, गृह, धार्मिक कार्यों से परित्यक्त विश्लेषित किया। हिन्दू धर्मग्रन्थों में इसके कारणों को रेखांकित करते हुए कहा गया कि ''देवताओं के गुरु वृहस्पति ने इंद्र के दम्भ से नाराज होकर देवलोक छोड़कर चले जाने से यज्ञादि के अभाव में देवता शक्तिहीन हो गये, तो असुरों के भय से और ब्रह्मा की सलाह से इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप से यज्ञ कराने का आग्रह किया, किन्तु विश्वरूप को असुरों के लिये आहुति देते देख क्रोधवश इन्द्र ने विश्वरूप का वध कर दिया, जिस कारण इन्द्र को ब्रह्म हत्या लगी और इसके पाप से मुक्त होने के लिये इन्द्र ने वृक्ष, नदी, धरती और स्त्री से अपने पाप को अंशों में ले लेने की प्रार्थना की, जिसे स्वीकार करने से स्त्रियाँ रजस्वला होने लगीं।''[1]

ये कथा तो लेखक की कल्पना है पर इससे उस समय के विचार प्रतिबिम्बित होते हैं। प्रकृति के परिप्रेक्ष्य से पर्यावरण की शुद्धता के लिये यज्ञों पर अत्यधिक बल देने की प्रवृत्ति जिसकी पुष्टि उस समय के प्रचलित ऐसे कई कथानक करते हैं। ब्राह्मणों के संरक्षण की प्रवृत्ति, जिसमें उनके द्वारा अनुचित कार्य किये जाने पर भी उन्हें दण्डित करने पर परालौकिक दण्ड का भय दिखाना। विश्वरूप ने इन्द्र को धोखा देकर असुरों को यज्ञ में भाग देने का प्रयत्न किया। विश्वरूप ने अनुचित किया फिर भी उसे प्राणदण्ड देने पर देवताओं के अधिपति होने पर भी उन्हें दण्ड भोगना पड़ा। इसमें ब्राह्मणों को दण्ड से बचाने की उत्कट आकांक्षा परिलक्षित होती है।

तीसरी और सबसे महत्वपूर्ण धारणा कि पर्यावरणीय घटकों के साथ स्त्रियों की त्याग भावना और परोपकार के लिये कष्ट सहने की क्षमता का महत्त्व रेखांकित करना। इसमें नदी, वृक्ष, भूमि को पर्यावरणीय घटकों के रूप में परालौकिक शक्तियों के भी पापों का भार स्वयं पर धारण करने वाले तत्व के रूप में विश्लेषित करते हुए उनकी महानता को रेखांकित किया गया।

इस्लाम में मासिक धर्म को 'अपवित्रता' कहा गया और इस समय महिलाओं से दूर रहने के लिए कहा गया। ''उनके पास तभी जाना चाहिए जब वो पूरी तरह पवित्र हो चुकी हों। मासिक धर्म के दौरान महिलाओं को कुरान छूने, मस्जिद जाने और रतिक्रिया का निषेध किया।''[2]

मासिक धर्म को अपवित्र कहा गया[3] पर मासिक धर्म के दौरान औरतों को न तो अपवित्र माना गया और न किसी परिप्रेक्ष्य (सामाजिक, धार्मिक) में उन्हें अस्पृश्य की तरह रहने की बात कही गई। बौद्ध धर्म में भी महिलाओं से सामान्य तरह से अन्य दिनों की भांति जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा की गई। बौद्ध धर्म में वर्णित है कि इस दौरान स्त्रियाँ अपनी कुछ शक्तियाँ खो देती है और उन्हें धार्मिक स्थलों पर इस समय नहीं जाना चाहिए।

सिक्ख धर्म में मान्यता है कि इस समय स्त्रियाँ और अधिक पवित्र तथा पूज्यनीय हो जाती हैं। गुरुनानक कहते थे कि एक माँ का रक्त (जीवनदायी है) जीवन देने के लिये बहुत जरूरी है। जीवनदायी होने के कारण ये पवित्र है। जिसके मूल में ये धारणा रही होगी कि गर्भधारण करने पर मासिक धर्म चक्र बाधित हो जाता है और गर्भधारण से बच्चे के प्रसव तक रक्त स्राव नहीं होता। इसलिये गुरुनानक ने रक्त को ही शिशु के जन्म का मूल कारण समझ इसे पवित्र और जीवनदायी कहा।

प्राचीन पुस्तकों में सुश्रुत संहिता और चरक संहिता में मासिक धर्म का तत्कालीन समय में प्रचलित शरीर विज्ञान के अनुसार गहन विश्लेषण कर उसके कारणों, प्रभावों, और आरोपित निषेधों का वर्णन किया गया।

मासेनोपचित काले धमनीभ्याँ तदार्तवम।

ईवत्कृष्णं विवर्थ च वायुर्योनिमुखं क्वेत।।[4]

शरीर में धमनियों द्वारा रक्त के प्रवाह को आधार बनाते हुए सुश्रुत ने विश्लेषित किया कि एक मास तक परिपक्व होकर कृष्ण और विकृतगंध वाला रक्त वायु द्वारा धमनियों के माध्यम से योनिमुख पर लाया जाता है।

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चरक ने सुश्रुत के विश्लेषण को पुष्ट करते हुए उद्धृत किया-

तृप्तिश्च बीज ग्रह हश्च योनयां गर्भसय सद्योनुगतस्य बिम्बम।[5]

कालान्तर में सुश्रुत के समकालीन लिये गये उपनिषदों में और परवर्ती उपनिषदों में सुश्रुत के विश्लेषणों को आधार बनाते हुए अपने समय और समाज की आवश्यकतानुकूल बहुत सारे निषेधों और प्रतिबंधों का प्रावधान किया गया जिन्हें वर्तमान की प्रासंगिकता की कसौटी पर कसते हुए रूढ़िवादी, दकियानूसी धर्मान्धता से ओत-प्रोत कहकर भर्त्सना की गई।

एक बार उन प्रतिषेधों पर दृष्टि डालना भी आवश्यक है जो धार्मिक ग्रन्थों में उल्लिखित है।

सुश्रुत ने सुश्रुत संहिता में लिखा कि साधारणतः 12 वर्ष की आयु से 50 वर्ष आयु तक स्त्रियाँ रजस्वला होती हैं। मासिक धर्म के चरणों को विश्लेषित करते हुए गर्भधारण विधि का उल्लेख किया। सुश्रुत ने बताया कि मासिक धर्म के आरम्भिक समय रतिक्रिया से गर्भधारण नहीं हो सकता जिसकी पुष्टि आधुनिक शरीर विज्ञान भी करता है। सुश्रुत ने मासिक धर्म का समय 4 से 7 दिन बताया और उसके बाद पुत्र प्राप्ति के लिये सम दिनों (अष्टमी, दशमी, द्वादशी) तथा पुत्री प्राप्ति के लिये विषम दिनों में रतिक्रिया करने को कहा।

सश्रुत लिखते हैं कि एकादशी, त्रयोदशी और पूर्णिमा के दिन रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए नहीं तो संतान की तेजस्विता प्रभावित होती है। मासिक धर्म के बाद जितने अधिक दिन तक पति-पत्नी रतिक्रिया नहीं करते हैं संतान उतनी अधिक तेजस्वी होगी। कालान्तर में ये धार्मिक मान्यताएँ लोकसाहित्य (आम जनमानस में प्रचलित कहानियाँ, गीत, मिथक, गल्प) में प्रचलित मिथक के रूप में परिणत हो गये। उदाहरणार्थ शीतला माता साप्ताहिक व्रत के दिन रतिक्रिया करने से संतान मंदबुद्धि पैदा होती है।[6] उस धर्मभीरू और पुत्राकांक्षी समाज में निश्चित ही इन कल्पनाओं और मिथकों ने जनसंख्या नियंत्रण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया होगा क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुसार गर्भधारण का सबसे उपयुक्त समय स्त्री के रजस्वला होने के तुरन्त बाद का होता है और तत्कालीन समय के लगभग सभी धार्मिक उपनिषदों और संहिताओं ने इस समय रतिक्रिया का निषेध किया।

वर्तमान में भी बहुत से हिन्दू परिवार इन मान्यताओं और मिथकों का पालन करते हैं जो तत्कालीन समाज में इन मान्यताओं की गहरी पैठ की पुष्टि करता है। दूसरा सबसे विवादित तथ्य रजस्वला होने पर स्त्रियों का तीन से चार दिनों तक सबसे पृथक, अस्पृश्य और कोई भी कार्य न करते हुए एकान्त में रहना है। तैत्तरीय संहिता तीन दिनों तक स्नान करने, शरीर पर तेल उबटन करने, कोई भी छोटे से छोटा गृह कार्य करने का निषेध करती है और न मानने पर पुत्र पर संकट आने का भय दिखाती है।

वृहदारण्यकोपनिषद् में किसी भी कार्य निषेध के साथ तीन रात्रि बाद स्नान करने का वर्णन है।

वशिष्ठ धर्म सूत्र दिन में शयन वर्जित करते हुए पृथ्वी पर सोने का विधान करता है।

वृद्ध हारीत विधवा रजस्वला के लिये तीन दिन और सुहागिनी रजस्वला के लिये उस काल में तीन दिनों तक एक बार भोजन का विधान करता है।

तैत्तरीय ब्राह्मण में रजस्वला का यज्ञ करना निषेध किया गया और करने पर यज्ञ फल का अर्धांश नष्ट हो जायेगा।

मनुसंहिता में रजस्वला को 'उदक्या' सम्बोधित करते हुए स्पर्श करने पर स्नान करने का विधान किया।

सांख्यायन गृह्यसूत्र ने रजस्वला के निकट बैठकर वेद पाठ करना वर्जित किया। आपस्तम्ब धर्म सूत्र और याज्ञवल्क्य संहिता रजस्वला को भोजन परोसने या स्पर्श करने का निषेध करती है।

अत्रि, रजस्वला को स्पर्श करने पर स्नान का विधान करते हैं।

इन वक्तव्यों ने धर्मसुधारकों और औपनिवेशिक शासकों को आलोचना का वो आधार दिया जिसके आधार पर उन्होंने हिन्दू धर्म को रूढ़िवादी, अनैतिक, पिछड़ा स्त्रियों के लिये शोषक, अन्यायी, बर्बर, आदिम विश्लेषित किया। औपनिवेशिक शासकों ने इस विश्लेषण के आधार पर शासितों पर अपनी नैतिक श्रेष्ठता सिद्ध कर अपने शासन के स्थायित्व की आवश्यकता धार्मिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बतायी। मिशनरियों ने धर्म प्रसार के अपने उद्देश्य में इसे साधन के रूप में प्रयोग किया और भारतीय धर्म सुधारकों ने आधुनिक तर्कों और प्राचीन धार्मिक साक्ष्यों के आधार पर इन मान्यताओं का खण्डन करते हुए इनके निर्मूलन पर बल दिया। यद्यपि उन्हीं प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों (यथा 'स्मृत्यर्थसार-रजस्वला होने के पूर्व पति की मृत्यु होने पर बालिका का पुनर्विवाह कर देना चाहिए') ने उन्हें वो साक्ष्य दिये जिनके आधार पर वो अपनी धारणाओं को शास्त्रों द्वारा अनुमोदित, प्रमाणित कर सके।

इन विधानों से पहली बात जो निकल कर आती है वो ये कि सभी ग्रन्थ उन तीन से चार दिनों तक जब स्त्री रजस्वला हो उन्हें कोई छोटे से छोटा काम करने, यहाँ तक कि रसोई के स्पर्श को, रस्सी बटने, सूत कातने तक का निषेध करता था। जो स्पष्ट रूप से उन्हें धार्मिकता की आड़ देते हुए 28 से 35 दिनों के मध्य एक बार 3 से 4 दिनों का विश्राम देने का प्रयत्न था क्योंकि तब भोजन बनाना भी बहुत श्रम और समय साध्य था। नित्य लकड़ी, जल लाकर, रसोई और चूल्हे की लिपाई पोताई कर भारी धातुओं, मिट्टी के बर्तनों में काफी समय में भोजन तैयार होता था। रजस्वला को पानी के बर्तनों को छूने तक का निषेध था कि कोई सम्बन्धित कार्य भी वो न करे। उन प्राचीन विचारकों ने मानवीय मूल्यों को

धार्मिकता का आवरण दिया था जिससे रक्त स्राव और शारीरिक पीड़ा के दिनों में स्त्रियों को शारीरिक विश्राम मिल सके। धर्म और कर्मकाण्ड से प्रभावित समाज में सबसे प्रभावी नियंत्रक धर्म और धार्मिक विधान ही होते हैं और इसका सहज स्वाभाविक बोध उन प्राचीन विचारकों को था जिसने उन्हें इसे धार्मिक विधान के रूप में परिणत करने की प्रेरणा दी। इन विधानों ने स्त्रियों को विश्राम के साथ मानवीय मूल्यों, पारिवारिक, सामाजिक समरसता और संयुक्त परिवार की अन्योन्याश्रितता बनाये रखने में निश्चित ही अप्रतिम योगदान दिया होगा। 3 से 4 दिन तक अस्पृश्यता के कारण घर की अन्य स्त्रियों यथा स्त्री की सास, ननद, जेठानी, पड़ोस की स्त्रियों पर भोजन और अन्य कार्यों को करने की आश्रितता के कारण संयुक्त परिवार के स्थायित्व की अवधारणा को बल मिला होगा। घर में वृद्ध स्त्रियों पर आश्रितता को भी इसने बल दिया होगा। जीवन निर्वाह के लिये अथवा आकस्मिक आपदाओं के कारण प्रवासन करने वाले परिवार जब नवीन स्थानों पर जाकर बसते थे तो वहाँ इसी कारण स्त्रियों के माध्यम से परिवारों की अन्योन्याश्रितता और समरसता में वृद्धि हुई होगी। इस कारण सामाजिक दायित्वों के बोध और समरसता में वृद्धि हुई होगी।

सुश्रुत संहिता के अनुसार काला, हानिकारक और दुर्गन्ध युक्त रक्त वायु द्वारा धमनियों के माध्यम से शरीर में परिसंचरण करते हुए योनिमुख तक आता है। आधुनिक शरीर विज्ञान के अनुसार स्त्री का गर्भाशय अण्डे (डिम्ब) के निषेचन के समायोजन के लिये रक्त मुक्त झिल्ली की एक पर्त (दीवार) बनाता है और अण्डोत्सर्ग के समय ये अण्डा अण्डाशय से गर्भाशय में जाता है यदि गर्भाशय में पहुँचने से पूर्व वो शुक्राणु से संयुक्त होकर निषेचित हो जाता है तो स्त्री गर्भवती हो जाती है और ऐसा न होने पर शरीर की अंतर्संरचनात्मक प्रक्रिया उपयोग न हुई उस रक्त युक्त झिल्ली को हटा देती है और वही योनि के मार्ग से स्रावित होते हुए बाहर आता है। यही प्रक्रिया मासिक धर्म है। जिसमें 3 से 7 दिनों तक 60 मिली लीटर तक रक्त स्रावित हो जाता है। सुश्रुत ने धमनियों द्वारा पूरे शरीर में रक्त प्रवाह को मासिक धर्म की कारणपरक व्याख्या के रूप में विश्लेषित किया जिसके मूल में ये अवधारणा थी कि जब शरीर में वायु प्रवाह के बल से धमनियों द्वारा ये विकृत रक्त गुजरता है तो शरीर के रोम छिद्रों से ये हानिकारक रक्त वायु तत्व के रूप में निर्झरित होता है जो उसके सम्पर्क में आने वाले पर हानिकारक प्रभाव डालता है। इस कारण रजस्वला स्त्री को सूर्य का प्रकाश और स्नान निषेध कर दिया क्योंकि सूर्य के प्रकाश से आये पसीने अथवा स्नान करने पर शरीर पर पड़े जल से वो क्रिया कर त्वचा को हानि पहुँचायेगा। इसी कारण वृद्ध हारीत और अंगिरा संहिता में स्त्रियों के जल संग्रह स्थानों (यथा तालाब, पोखर, नदी) में स्नान का निषेध किया जिससे अशुद्ध रक्त से जल दूषित न हो। मासिक धर्म के समय ही स्त्री की मृत्यु हो जाने पर उसे पंचगव्य से स्नान कराकर अन्य वस्त्रों से ढककर दाह संस्कार का विधान किया। अंगिरा संहिता में रजस्वला स्त्री की मृत्यु होने पर तीन दिन बाद उसके दाह संस्कार का विधान है।

इसके मूल में निश्चय ही वायु को प्रदूषित होने से बचाना था क्योंकि अग्नि की मान्यता किसी भी वस्तु को पुनः शुद्ध करने वाले कर्ता के रूप में थी फिर भी उन्होंने तीन दिन के बाद दाह संस्कार का विधान किया जिससे वातावरण प्रदूषित न हो और दूषित रक्त (वायु और राख के) परिवर्तित रूप में पर्यावरणीय घटकों के सम्पर्क में आकर उन पर नकारात्मक प्रभाव न डाले।

यद्यपि सापेक्षता और विविधता के इस भौतिकता केन्द्रित युग में, जिसमें जीवन नैसर्गिकता, प्राकृतिक सानिध्यता, मानवीय और पर्यावरणीय मूल्यों की परिधि पर रख तीव्र कृत्रिम विकास की अंधी दौड़ में दौड़ रहा है। उन प्राचीन मूल्यों और कर्तव्यपरक चेतनाओं की नवीन और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में आवश्यकताएँ पुनः प्रतीत हो रही हैं। पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक समरसता, जनसंख्या नियंत्रण और स्वयं को यन्त्रवत न कर स्व को समय देने के रूप में।

उत्तर आधुनिकतावादी प्रवृत्तियाँ और नारीवादी लेखन की नवीन प्रवृत्तियाँ मासिक धर्म को एक नवीन दृष्टिकोण से देखने का परिप्रेक्ष्य प्रदान कर रही है। मिराण्डा ग्रे ने अपनी कृति 'द आप्टिमाइज्ड वूमेन' में इस अवधारणा की नींव रखी। नाओ सिम्स, निकिआह सीड्स ने अपनी कृति 'मून मिस्टिरियस, लूसी पिअर्स ने 'मूल टाइम्स' और लॉरा ओवन ने हर ब्लड इज गोल्ड में इस नवीन अवधारणा का गहन विश्लेषण कर मासिक धर्म को स्त्री की एक विशिष्ट शक्ति के रूप में देखा। ऐसी शक्ति जो उसे औरों से विशिष्ट बनाती है। नाओ सिम्स लिखती हैं कि 'आप जन्मजात एक विशिष्ट शक्ति से सम्पन्न हैं।'[7] इस शक्ति को पहचानना है जो आपको पवित्र तथा औरों से शक्तिशाली सिद्ध करती है। अपने शक्तिशाली समय के माध्यम से आप अपने स्वयं के जीवन की दिशा का मार्गदर्शन करिये। इतिहास, व्यक्तिगत जीवन की कहानियों और कविताओं द्वारा सिम्स स्त्रियों को अपनी इस विशिष्ट शक्ति और इसके चक्र को नये दृष्टिकोण से देखने, परिभाषित करने और इसका ज्ञान प्राप्त करने को प्रेरित करती है। लूसी पिअर्स इसे सतत् परिवर्तनीय ऊर्जा के रूप में विश्लेषित करती हैं।[8] मेरी जेन, एमिली और जेनिश अपनी कृति 'द कर्स' में दिखाती हैं कि कैसे मिथक और वर्जनाएँ इतिहास की नयी व्याख्याएँ निर्मित कर रहे थे। निकिआह सीड्स लिखती हैं कि अधिकतर स्त्रियाँ मासिक धर्म को जीवन के नकारात्मक पक्ष के रूप में देखती हुई स्वयं को नकारात्मकता और हीनता की भावना से युक्त कर लेती हैं।

मासिक धर्म पर प्राचीनकाल से वर्तमान तक विश्लेषणों और व्याख्याओं का अनवरत क्रम वर्तमान तक प्रवाहमान है जो समय और समाज की परिस्थितियों, आवश्यकताओं और उद्देश्यों से अपना स्वरूप ग्रहण करता है। प्राचीनकाल में धार्मिक ग्रन्थों के लेखकों ने जो विधान निर्मित किये थे उनकी व्याख्याओं का स्वरूप उनके द्वारा आरोपित विधानों के साथ विकृत होते-होते आज पूरी तरह

अप्रासंगिक हो गया है और इसमें औपनिवेशिकता और ईसाईयत की छद्म नैतिकतापरक व्याख्याओं और उनकी प्रतिक्रियाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है पर उन प्राचीन वैचारिक अवधारणाओं ने जिन मानवीय, सामाजिक और पर्यावरणीय चेतना के स्थायी और संरक्षणात्मक मूल्यों को इसकी पृष्ठभूमि का आश्रय लेकर स्थापित करने का प्रयास किया था वो उत्कृष्ट भविष्यदर्शी दृष्टि थी और समय के साथ उनके उद्देश्यों की प्रासंगिकता सतत बढ़ती जा रही है।

सन्दर्भ-

1. कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता (समग्रमूलम) सं0 अनिल कश्यप, साक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 1 जून 2004.
2. पवित्र कुरान (हिन्दी) अनु. मौलाना वहीदुद्दीन खान, अल्डिवो क्रिएटिव प्रॉडक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 2001, सूरा-2, आयत 222
3. पवित्र बाइबिल, बाइबिल सोसाइटी ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 1 जनवरी 2002
4. सुश्रुत संहिता (प्राचीन भारतीय शल्य चिकित्सा) अनु. जी.डी. सिंघल, सी.एस.पी., वाराणसी, प्र. वर्ष 1 जनवरी 2015, अध्याय 3, श्लोक 10
5. चरक संहिता अनु. आचार्य विद्याधर शुक्ल और प्रो. रविदत्त, सी.एस.पी., वाराणसी, प्र. वर्ष 1 जनवरी 2015
6. माँ शीतला की अमर कथा, सं. महंत ओमनाथ शर्मा, राजा पाकेट बुक्स, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 2011
7. मून मिस्टीरियस ले. नाओ सिम्स और निकिआह सीड्स, रेड मूल पब्लिकेशन्स, कनाडा, प्र. वर्ष 1 सितम्बर 2011
8. मून टाइम ले. लूसी एच पिअर्स, वोमक्राफ्ट पब्लिकेशन, यूनाइटेड स्टेट्स, प्र. वर्ष 2015
9. द कर्स : ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मेन्सट्रुएशन, ले. जेनिस डेलाने, मेरी जेन लप्टन एमिली टोथ, इलिनोइस यूनिवर्सिटी प्रेस, यू.एस.ए., प्र. वर्ष 1988
10. इतिहास में स्त्री ले. सुमन राजे, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, प्र. वर्ष 2015
11. प्राचीन भारत में धर्म के सामाजिक आधार ले. रमेन्द्र नाथ नंदी, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. वर्ष 2008
12. भारतीयता की ओर : संस्कृति और अस्मिता की अधूरी क्रांति लेखक पवन कुमार वर्मा, पेंगुइन बुक्त इंडिया, यात्रा बुक्स, प्रकाशन वर्ष 2015

भाषेतर संप्रेषण की चरम उपलब्धि : 'आधे-अधूरे'

*डॉ. आभा गुप्ता ठाकुर**

आधे-अधूरे के हिन्दी नाट्य लेखन की महत्वपूर्ण उपलब्धि होने का एक प्रमुख कारण उसकी शिल्पगत विशिष्टता भी है। न केवल नाटक की विषयवस्तु स्वातंत्र्योतर भारत में मध्यवर्गीय परिवार के विघटन की पीड़ा को प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त करती है, बल्कि अपने यथार्थवादी शिल्प, बोलचाल की लय, नाटकीय क्रिया-व्यापार की विश्वसनीयता और भाषेतर संप्रेषण (Non Verbal Communication) की कुशल योजना के कारण भी यह भारतीय नाट्य लेखन का महत्वपूर्ण मील स्तंभ कहा जा सकता है। अधिकांश आलोचकों ने इस नाटक की भाषा की विशिष्टता को रेखांकित किया है, लेकिन भाषेतर संप्रेषण की सामर्थ्य ऐसा उपकरण है जिसका हिन्दी नाट्य लेखन में पहली बार राकेश ने बड़े पैमाने पर प्रयोग किया है, लेकिन आलोचकों ने इस रूप में इसका श्रेय नाटककार को नहीं दिया है। इब्राहिम अलकाजी को इसमें बोलचाल की भाषा की लय, सहज प्रवाह और स्वतः स्फूर्तता दिखायी देती है[1] तो ओमशिवपुरी को शब्दों का चयन, उनका क्रम, उनका संयोजन आकर्षित करता है। उनके अनुसार लिखित शब्द की शक्ति और उच्चरित ध्वनि समूह का बल आधे-अधूरे के सम्मोहन का मुख्य कारण हैः ''कहना न होगा कि इस नाटक की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन, उनका क्रम, उनका संयोजन-सब कुछ ऐसा है, जो बहुत संपूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता है। लिखित शब्द की यही शक्ति और उच्चरित ध्वनि समूह का यही बल है, जिसके कारण यह नाट्य रचना बंद और खुले, दोनों प्रकार के मंचों पर अपना सम्मोहन बनाए रख सकी।''[2]

प्रसिद्ध निर्देशक श्यामानन्द जालान इस नाटक में शब्दों के चुनाव और विन्यास द्वारा प्रभावकारी संप्रेषण को नाटक की उपलब्धि मानते हैं। उनके अनुसार 'अर्थ और ध्वनि दोनों के माध्यम से न सिर्फ विचार बल्कि भावावेग के संप्रेषण की 'आधे अधूरे' की प्रभावी भाषा उसी खोज की उपलब्धि है, जो 'लहरों के राजहंस' के प्रथम लेखन के बाद शुरू हुई थी और उस नाटक के संशोधित रूप में मौजूद है, और जो आधे-अधूरे में खिलकर आयी है। त्रिपुरारी शर्मा के अनुसार- 'आधे-अधूरे' नाटक का ढ़ाँचा बहुत सावधानी से बनाया गया है और बहुत ही बारीक विशिष्ट बुनावट है। नाटक के हर वाक्य, हर शब्द में दर्द, क्षोभ और विडम्बना संवादों से झाँकती हैं।'[3] सत्यदेव दुबे की मान्यता है कि इस नाटक की भाषा इतनी झुलसा देने वाली है कि 'वर्जीनिया वुल्फ़ से कौन डरता है' के लेखक को ईर्ष्या हो। आगे वह कहते हैं कि इस नाटक में एक भी विवादी स्वर नहीं है। उनके अनुसार- 'शब्दों से राकेश का लगाव एक शानदार मनोग्रन्थि की हद तक था। यद्यपि अन्य भारतीय भाषाओं में दूसरे समकालीन लेखकों ने भी नये मुहावरे का समावेश किया है, पर कोई भी इस समस्या से राकेश की तरह गहराई से नहीं जूझा।'[4]

प्रसिद्ध नाट्य समीक्षकों और आलोचकों की उपर्युक्त मान्यताओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकांश नाट्य समीक्षकों ने 'आधे-अधूरे' की सफलता का श्रेय उसकी भाषा और शब्दों के चयन और संयोजन को दिया है। इसके साथ ही कुछ समीक्षकों ने यह पहचाना कि 'आधे अधूरे' के आकर्षण का कारण केवल लिखित शब्द नहीं है, बल्कि इससे इतर भी है, जिसे उच्चरित ध्वनि समूह' का बल कहा गया। लेकिन मैं विनम्रता के साथ कहना चाहती हूँ कि 'आधे-अधूरे' की शिल्पगत विशिष्टता केवल भाषा और ध्वनि के कुशल नियोजन तक सीमित नहीं है, बल्कि वे उपकरण भी हैं, जो मूलतः भाषा के उपकरण नहीं हैं और जिन्हें सामूहिक रूप से भाषेतर संप्रेषण कहा जाता है। इनमें वाचिक शब्द से इतर रंगकर्म के सभी उपकरण शामिल हो जाते हैं। जैसे चेहरे के हाव-भाव, अंग संचालन, हस्त मुद्राएँ, भ्रू संचालन, पद गतियाँ, मौन, विराम, स्पर्श, वेशभूषा, स्थान का नियोजन इत्यादि। इन्हें भाषा के उपकरण मानना समुचित नहीं है क्योंकि इनमें अक्षर या शब्द नहीं हैं, जो किसी भी भाषा के अनिवार्य उपकरण कहे जा सकते हैं। अतः मेरी मान्यता है कि आधे-अधूरे में भाषा एवं भाषेतर उपकरणों का अत्यंत कुशलता के साथ नियोजन किया गया है, जो इसकी सफलता की कुंजी है। ऐसा नहीं है कि भारतीय नाट्यालोचन में भाषेतर उपकरणों की चर्चा बिलकुल नयी बात है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाटक के जिन चार तत्वों- आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य का उल्लेख किया है उनमें 'वाचिक' को छोड़कर अन्य तीनों भाषा के उपकरण नहीं हैं। इन तीनों को सम्मिलित रूप से भाषेतर उपकरण कहा जा सकता है। दुखद बात यह है कि भाषेतर संप्रेषण के संबंध में इतना विस्तृत विश्लेषण उपलब्ध होने के बावजूद भरतमुनि की परम्परा सार्थक ढंग से आगे नहीं बढ़ पायी और भारतीय नाट्यालोचन खासकर हिन्दी नाट्य समीक्षा बहुत हद तक भाषा केंद्रित ही रही और कई सारे रंगमंचीय उपकरण भाषा की सीमा में समाहित न होने के कारण 'रंगभाषा' नामक शब्द गढ़कर इसे अर्थविस्तार दिया गया। लेकिन

* सह-आचार्य, हिन्दी विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि 'भाषिक' और 'भाषेतर संप्रेषण' अलग-अलग अवधारणाएँ हैं एवं इनकी अपनी सामर्थ्य एवं सीमाएँ हैं, जो देश काल के हिसाब से परिवर्तित होती रहती हैं। भाषा आधारित संप्रेषण शब्द आश्रित होते हैं अतः वे उतना ही संप्रेषण कर पाते हैं, जितना अर्थ किसी खास देश और संस्कृति ने उन शब्दों को दिया है। एक अर्थ में भाषागत संप्रेषण का प्रभाव सीमित होता है। जबकि भाषेतर संप्रेषण कहीं अधिक व्यापक और लचीला होता है। उदाहरण के तौर पर यदि किसी व्यक्ति से उसका हाल-चाल पूछा जाए और जवाब मिले कि 'वह अच्छा है' तो भाषागत संप्रेषण के आधार पर माना जाएगा कि वह अच्छी मानसिक स्थिति में हैं। लेकिन यही बात काँपती आवाज, भर्राए हुए गले एवं अश्रुपूर्ण आँखों के साथ कही जाए, तो भाषेतर संप्रेषण के आधार पर माना जाएगा कि उस व्यक्ति की स्थिति अच्छी नहीं है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि भाषागत संप्रेषण जहाँ सीमित अर्थ का वहन करता है और वाचक की अन्य स्थितियों से कोई नाता नहीं रखता है, भाषेतर संप्रेषण अधिक लचीला एवं व्यापक होने के कारण आनुषंगिक गतिविधियों का अर्थ भी समेटकर वास्तविक संप्रेषण को संभव बनाता है।

'आधे-अधूरे' के संबंध में उसकी भाषागत विशिष्टताओं की विशद चर्चा हिन्दी नाट्य समीक्षा में उपलब्ध है अतः उसकी पुनरावृत्ति न करते हुए इस लेख में 'भाषेतर उपकरणों के नियोजन पर संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा।'

'आधे-अधूरे' में चेहरे की भाव भंगिमा और नेत्र भंगिमा की अनूठी योजना की गई है। जो बात शब्द पूरी तरह संप्रेषित नहीं कर पाते, उन्हें चेहरे की भंगिमा आसानी से व्यक्त कर देती है। ये भंगिमाएँ न केवल पात्रों की स्वयं की मनोदशा का वास्तविक चित्र हमारे सामने रख देते हैं, बल्कि दो व्यक्तियों के आपसी संबंध विधान को भी प्रामाणिकता के साथ उद्घाटित करते हैं। व्यवसाय में लम्बे समय से पूँजी गँवाकर बेकार बैठे पति महेन्द्रनाथ के प्रति अवज्ञा और बेरूखी का भाव और प्रत्युत्तर में महेन्द्रनाथ का सावित्री के प्रति तल्खी और उदासीनता का भाव नाटककार ने उनके चेहरे और नेत्रों की भंगिमा से अत्यंत कुशलता के साथ व्यक्त किया है। जब सावित्री घर की कुरसियों और सोफों को झाड़ने के क्रम में महेन्द्रनाथ को एक जगह से हटकर दूसरी जगह जाने को कहती हैं तो महेन्द्रनाथ की प्रतिक्रिया शब्दों की अपेक्षा भाव भंगिमा से अधिक समझ में आती है।

''स्त्री : यहाँ से उठ जाओ। मुझे झाड़ लेने दो जरा।

पुरुष एक उठकर फिर बैठने की प्रतीक्षा में खड़ा रहता है।

उस कुरसी पर चले जाओ, वह साफ हो गयी है।

पुरूष एक गाली देती नजर से उसे देखकर उसी कुरसी पर जा बैठता है।''[5]

उपर्युक्त संवाद में 'गाली देती नजर से देखने' में पत्नी के प्रति जिस अवज्ञा और तिरस्कार का भाव सामने आता है, वह बहुत सारे शब्दों के माध्यम से भी उतने समर्थ रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

इसी प्रकार तनावपूर्ण दांपत्य संबंध का कारण खोजने आयी बड़ी लड़की को लेकर जहाँ उसकी माँ सावित्री का व्यवहार संवेदनापूर्ण है, वहीं पिता महेन्द्रनाथ का व्यवहार उदासीनता का है। वह बड़ी बेटी के घर वापस आने के कारण की जाँच पड़ताल तो करना चाहता है लेकिन उसके साथ वैसी भावनात्मक साझेदारी का भाव नहीं रखता, जैसा सावित्री रखती है। नाटककार ने अंग संचालन, आँखों की गति और क्रिया व्यापार के माध्यम से इनके आपसी संबंध को बहुत विश्वसनीय रूप से सामने रखा हैः

''कुछ देर बड़ी लड़की के हाथ स्त्री की बाँहों पर रूके रहते हैं

और दोनों की आँखें मिली रहती है। धीरे-धीरे पुरूष एक की

गरदन उनकी तरफ मुड़ती है। तभी स्त्री आहिस्ता से बड़ी लड़की

के हाथ अपनी बाँहों से हटा देती है। उसकी आँखें पुरूष एक

से मिलती हैं और वह जैसे उससे कुछ कहने के लिए कुछ कदम

उसकी तरफ बढ़ाती है। बड़ी लड़की जैसे अब भी अपने सवाल का जवाब

चाहती, अपनी जगह पर रूकी उन दोनों को देखती रहती है।

पुरूष एक स्त्री को अपनी तरफ आते देख आँखें उधर से हटा लेता है

और दो-एक पल असमंजस में रहने के बाद अनजाने में ही अखबार

को गोलकर उसकी रस्सी बटने लगता है। स्त्री आधे रास्ते में ही

कुछ कहने का विचार छोड़कर पल भर अपने को सहेजती है। फिर

बड़ी लड़की के पास वापस जाकर उसके कंधे को छूती है। बड़ी

लड़की पल भर आँखे मूँदे रहकर अपने आवेश को दबाने का प्रयत्न

करती है, फिर स्त्री का हाथ कंधे से हटाकर एक कुरसी का सहारा

लिए उसपर बैठ जाती है। स्त्री यह समझ में न आने से कि अब उसे

क्या करना चाहिए, पल भर दुविधा में हाथ उलझाए रहती है।

उसकी आँखे फिर एक बार पुरूष से मिल जाती है और वह जैसे आँखों

से ही तिरस्कार कर अपने को एक मोढ़े की स्थिति बदलने में व्यस्त

कर लेती है। पुरूष एक अपनी जगह से उठ पड़ता है। अखबार की

रस्सी अपने हाथों में देखकर कुछ अटपटा महसूस करता है

और कुछ देर अनिश्चित खड़ा रहने के बाद फिर से बैठकर

उस रस्सी के टुकड़े करने लगता है।''[6]

पूरे उद्धरण में न तो संवाद हैं, न ही शब्द। केवल अंग संचालन, स्पर्श और आँखों के माध्यम से परिवार के लोगों के बीच का आपसी संबंध पूरी तरह मुखर हो जाता है। सावित्री और उसकी बड़ी बेटी के बीच भावानात्मक लगाव बाँहों पर हाथ रखने, कंधे छूने और आपस में आँखे मिली रहने से स्पष्ट हो जाता है। सावित्री अपनी बड़ी बेटी के दांपत्य जीवन में आने वाली समस्याओं को गंभीरता से समझने का प्रयास कर रही है, दूसरी ओर बड़ी बेटी भी सावित्री के प्रति संवेदनशील है और परिवार के उसके द्वारा घर और बाहर दोनों स्तरों पर किए जाने वाले प्रयासों से अवगत है। महेन्द्रनाथ और सावित्री एक-दूसरे का सामना करने से कतराते हैं और दोनों के बीच संबंध समन्वय और साहचर्य का नहीं बल्कि बेरूखी और तिरस्कार का है। अतः पूरे उद्धरण में उनके बीच eye contact अनायास है और वह भी बहुत थोड़ी देर के लिए। महेन्द्रनाथ द्वारा अखबार को गोलकर उसकी रस्सी बनाना और फिर रस्सी के टुकड़े करना उसकी अव्यवस्थित मानसिकता का संकेत करता है जो लंबी बेकारी के कारण पैदा हुई है। इस प्रकार नाटककार ने भाषेतर उपकरणों के माध्यम से परिवार के सदस्यों के आपसी संबंध विधान को अत्यंत प्रभावपूर्ण तरीके से अभिव्यक्त किया है। भाषिक उपकरणों के माध्यम से ऐसी प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति अत्यंत कठिन है।

एक अन्य भाषेतर उपकरण 'स्थान' (space) का भी नाटककार ने अत्यंत कुशलतापूर्वक उपयोग किया है। दो व्यक्तियों के बीच की कम दूरी उनकी आपस में निकटता और लगाव की ओर संकेत करता है जबकि उनके बीच अधिक दूरी उदासीनता या बेरूखी को दर्शाता है। बड़ी लड़की के घर वापस आने पर एक ओर सावित्री पूरी संवेदना के साथ उसके दांपत्य जीवन में आ रही कड़वाहट को जानने का प्रयास करती हैं, वहीं महेन्द्रनाथ इस पूरे प्रकरण से अपने को अलग रखना चाहता है ताकि उसके ऊपर कोई दायित्व न आ जाए। इस स्थिति को रचनाकार ने स्थान (space) के नियोजन द्वारा अभिव्यक्त किया हैः

पुरूष एकः ''वह आ गयी है, खुद ही बता देगी तुझे।

जैसे अपने को स्थिति से बाहर रखने के लिए थोड़ा परे चला जाता है।''[7]

यह 'परे चले जाना' महेन्द्रनाथ की असंबद्धता और उदासीनता को पूरी सफलता के साथ दर्शाता है। पिता होने के नाते अपनी बेटी से वह उसकी पारिवारिक स्थिति के बारे में पूछ सकता था, लेकिन वह पूरे प्रकरण से अपने को अलग रखना चाहता है, जिसकी अभिव्यक्ति स्थान की दूरी के माध्यम से की गयी है। इसी तरह सावित्री, महेन्द्रनाथ और बड़ी लड़की के बीच संवाद के क्रम में बड़ी लड़की का सावित्री के पास आना उन दोनो के संबंधो में लगाव और निकटता को दर्शाता है।

विभिन्न स्वरों और उनके उतार-चढ़ाव का कुशल नियोजन नाटकीय प्रभाव को सघन बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ''कहीं थकान निकलने का स्वर है, कहीं रूलाई का, कहीं हँसी और रूलाई के बीच का स्वर है तो कहीं औघड़ खामोशी। दफ्तर से लौटकर घर समेटती हुई सावित्री के स्वर में थकान की अभिव्यक्ति है जो घर और बाहर के कामों के दोहरे दबाव से पैदा हुई है। निराशा और हताशा के क्षणों में रूलाई लिए स्वर है। सारे प्रयासों के बावजूद जब परिवार के सदस्य न तो उससे भावनात्मक लगाव रखते है और न हीं उसके प्रयासों की गम्भीरता को समझने का प्रयास करते हैं, तो सावित्री टूटने लगती है। मानवीय भावों और परिस्थितियों को व्यक्त करने के लिए पूरे नाटक में स्वरों के विविध रूपों का सहारा लिया गया है। इस निराशा और बिखराव की स्थिति को नाटककार ने प्रभावपूर्ण तरीके से स्वरों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है'':

'स्त्री (रूलाई लिए स्वर में): अब मुझसे नही होता, बिन्नी ! अब मुझसे नहीं सँभलता।'[8]

यहाँ संवाद के माध्यम से भी बात कही जा सकती है। लेकिन 'रूलाई लिए स्वर' सावित्री की मानसिक स्थिति को अधिक समर्थ ढंग से व्यक्त करता है और संवाद के प्रभाव को सघन बनाने का कार्य करता है। जब महेन्द्रनाथ का दोस्त और उसका भूतपूर्व व्यापारिक साझीदार जुनेजा नाटक के अंतिम दृश्य में सावित्री की आकांक्षाओं, भ्रांतियों एवं सपनों को बेरहमी से उधाड़कर रख देता है तो सावित्री की मानसिक स्थिति को दर्शाने के लिए नाटककार ने हँसी और रूलाई के बीच के स्वर का नियोजन किया है। यहाँ शब्दों से ज्यादा दमदार वह स्वर है, जो उसकी हताशा और बिखराव को एक साथ आकार देता है। इसी प्रकार नाटककार ने स्थिति के अनुरूप 'खामोशी' का उपयोग भी नाटकीय प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए किया है। आर्थिक विपन्नता से जूझ रहे परिवार में छोटी लड़की जब स्कूल के लिए तीन नए किट तथा क्लिप और मोजे की माँग करती है तो एकमात्र कामकाजी स्त्री पहले इस प्रकरण से बचने की कोशिश करती है। वास्तविक स्थिति का सामना न करने की इस मनोदशा को अभिव्यक्त करने के लिए रचनाकार ने खामोशी का सहारा लिया हैः

''छोटी लड़कीः तीन-तीन। सब लड़कियों को बनवाने हैं। और तुमने

कहा था क्लिप और

मोजे इस हफ्ते जरूर आ जाएँगे, आ गये? कितनी

शरम आती है मुझे फटे

मोजे पहन कर स्कूल जाते।

पल-भर की औधड़ खामोशी।

स्त्रीः (जैसे अपने को उस प्रकरण से बचाने की कोशिश में।)
अच्छा देख .... स्कूल से आकर तू अपना बैग यहाँ
खुला छोड़ गयी थी। मैंने आकर बंद किया है। पहले
इसे अन्दर रख कर आ''[9]

इसी प्रकार घर में व्याप्त अंतर्कलह और बिखराव को कैंची की चक-चक ध्वनि से मूर्तरूप दिया गया है। स्वरों के विभिन्न रूपों और उनके उतार-चढ़ाव के अलावा हँसी के विभिन्न रूपों को भी नाटककार ने स्थिति के अनुरूप विन्यस्त किया है। तिरस्कार या उपेक्षा के प्रसंग में व्यंग्यपूर्ण हँसी है तो पराजय और हताशा के क्षणों में रूलाई लिए हँसी। विभिन्न प्रकार के संगीत का भी नाटक में कई बार उपयोग किया गया हैः परिस्थिति की माँग के अनुसार। परिवार की टूटन को व्यक्त करने के लिए 'खँडहर की आत्मा को व्यक्त करता हल्का संगीत' का सहारा लिया गया है तो नाटक के अंत में 'हल्का मातमी संगीत' उभरता है जो एक मध्यवर्गीय परिवार के पूरी तरह टूट कर बिखर जाने का संकेत करता है। यहाँ यद्यपि संगीत के माध्यम से कुशलता पूर्वक परिवार के विघटन को अभिव्यक्त किया गया है, लेकिन 'खँडहर की आत्मा को व्यक्त करता हल्का संगीत' और 'हल्का मातमी संगीत' किस प्रकार अलग-अलग प्रभाव पैदा करेगा, इसमे थोड़ी अनिश्चितता है। यही भाषेतर उपकरणों की एक बहुत बड़ी सीमा भी है। जहाँ भाषेतर उपकरण शब्दों की अपेक्षा अधिक व्यापक और लचीले होते हैं, वहीं ठीक तरह से प्रयोग न किये जाने पर कई बार उनमें अर्थ और प्रभाव की अनिश्चितता बनी रहती है। यह खतरा शब्दों के साथ नहीं होता है क्योंकि शब्दों द्वारा वहन किए जाने वाला अर्थ निश्चित एवं ठोस होता है, विशिष्ट प्रयोगों को छोड़कर। अतः नाटक में प्रयुक्त दोनों स्थलों पर 'हल्का संगीत' के प्रभाव में अंतर दर्शाने के लिए किसी मर्मज्ञ संगीतज्ञ की आवश्यकता होगी। इसके साथ ही संगीत के रुकने पर 'कैंची की चक-चक-चक' से ध्वनि प्रभाव की योजना की गयी है। इस ध्वनि प्रयोग पर की गई पसिद्ध रंगकमी रामगोपाल बजाज की टिप्पणी द्रष्टव्य हैः ''पहले अंक के लिए पात्रों के परस्पर अलगाव और उनके संबंधो के कट-कटकर बिखरने को अभिव्यक्त करने के लिए ......'कैंची की चक चक से बेहतर और कोई ध्वनि प्रभाव संभव नही है।''[10]

इसी तरह सावित्री द्वारा दो तरह की साड़ियों को मनःस्थिति के अनुसार धारण करने से संबंधित राकेश का रंगनिर्देश एवं एक ही अभिनेता द्वारा पाँच भूमिकाओं के निर्वाह को अपने थीसिस प्ले के लिए कारगर रंगयुक्ति के रुप में नियोजित करने का नाटककार का आग्रह भाषेतर संप्रेषण के प्रति उनकी सचेत रंगदृष्टि के उदाहरण हैं।

संदर्भ-सूची :

1. राकेश, मोहनः 'आधे अधूरे' मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, संपादकः नेमिचन्द्र जैन राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0-341
2. उपर्युक्त पृ0- 331
3. उपर्युक्त पृ0- 329
4. उपर्युक्त पृ0- 337
5. राकेश मोहनः आधे अधूरे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 1990, पृष्ठ- 18
6. उपर्युक्त पृ- 30-31
7. उपर्युक्त पृ- 23
8. जैन नेमिचन्द्र (सं) मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, राजपाल एंड संस कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण 1999, पृष्ठ-267.
9. उपर्युक्त पृ0- 266
10. राकेश स्मृति दिवस पर रामगोपाल बजाज के वक्तव्य से (मोहन राकेशः रंगशिल्प और प्रदर्शन-डॉ. जयदेव तनेजा, पृष्ठ-235)

अज्ञेय के काव्य में सौंदर्य दृष्टि

श्रेयसी सिंह[*] एवं डॉ. सत्यपाल शर्मा[**]

हिन्दी कविता के क्षेत्र में द्विवेदी युगीन उपदेश प्रधान एवं नैतिकता सम्बन्धी इतिवृत्तात्मक काव्य के विरुद्ध जो आन्दोलन प्रारंभ हुआ था उसमें कल्पना की कोमल वृत्ति, मधुमयी भावना की प्रवृत्ति, चित्रमयी भाषा का प्रयोग, स्वानुभूति एवं संवेदनात्मक अभिव्यक्ति, ध्वन्यात्मकता आदि का प्राधान्य था। इस कविता धारा में मानव के भाव पक्ष की अभिव्यक्ति का समर्थन दृढ़ता के साथ किया गया था, यह काव्य शास्त्रीय वर्णन के स्थान पर नवीन स्वच्छन्दतावादी पद्धति को अपनाता है जिसमें शब्द, छन्द, अलंकार आदि सभी कुछ नूतन एवं नवीन थे। इस नूतन काव्य धारा को, 'छायावाद' नाम दिया गया। आगे चलकर इस छायावादी काव्य का विरोध प्रारंभ हो गया। इसकी अनुभूति की प्रबलता एवं व्यक्तिवादिता के विरुद्ध समष्टिवाद का प्रचार-प्रसार प्रारंभ हुआ, कल्पना की कोमलता के स्थान पर यथार्थ चित्रण को महत्व दिया गया, अभिव्यक्ति की गम्भीरता के स्थान पर अभिव्यक्ति की सरलता एवं स्पष्टता पर अधिक बल दिया गया। कविता में मजदूरों, कृषकों, शोषितों, दलितों एवं सर्वहारा वर्ग के पीड़ित मानवों के चित्रण को सर्वाधिक महत्व दिया गया। छायावाद के विरुद्ध उत्पन्न इस नयी कविता धारा को 'प्रगतिवाद' नाम से अभिहित किया गया। लेकिन जिस तरह छायावादी कविता का विरोध उसकी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण हुआ उसी तरह प्रगतिवादी कविता का विरोध उसकी अतिशय बहिर्मुखी प्रवृत्ति के कारण होने लगा।

सन् 1940-41 के आस-पास का भारतीय समाज तमाम संभावनाओं एवं विरुद्धों का समाज था। राष्ट्रीय संघर्ष के साथ-साथ महँगाई, भ्रष्टाचार, दमनकारी नीतियों ने समाज के प्रत्येक वर्ग को विक्षुब्ध कर रखा था संवेदनशील मनुष्य बेचैन हो उठा, ऐसी विरोधाभासी परिस्थितियों में जिस नूतन काव्यधारा का निर्माण हुआ उसमें न तो छायावादी कविता की सी मधुरता थी और न ही प्रगतिवादी कविता की तरह शुष्कता एवं रूक्षता अपितु इसमें एक नवीन काव्य सौन्दर्य के प्रति ललक थी, कविता की नयी राहों के अन्वेषण की प्रवृत्ति थी। संवेदना को नई सौन्दर्य-दृष्टि प्रदान करने की उत्कण्ठा थी, व्यक्तिगत इकाई तथा सामाजिक व्यवस्था के बीच संबंधों को शुभ बनाने की लालसा थी। काव्य की सामाजिक स्वीकृति का आग्रह था। काव्यगत प्रतीकों एवं बिम्बों को सजाकर एवं संवारकर रखने की प्रवृत्ति पर जोर था। इस नूतन काव्यधारा का नाम 'प्रयोगवाद' दिया गया तथा 'तार सप्तक' के प्रकाशन की तिथि से इसका शुभारम्भ माना गया। हिन्दी साहित्य जगत में तार सप्तक का प्रकाशन एक अभूतपूर्व घटना मानी जाती है। तार सप्तक 1943 ई0 में प्रकाशित हुआ था जिसमें निम्न सात कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुई थी-गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय। इसके प्रधान संपादक अज्ञेय थे। उन्होंने इस सप्तक की भूमिका में अपनी कविता विषयक नवीन मान्यताओं की ओर संकेत किया है। इस प्रयोगवादी नवीन कविता धारा में प्रयोग को ही एकमात्र साध्य माना गया है। कविता विषयक पुरानी मान्यताओं का खण्डन करते हुए कविता को जन-जीवन से उत्पन्न मानकर नगर के वातावरण अथवा शहरी परिवेश से उद्भव स्वीकार किया गया है। कविता में साधारण के स्थान पर विशिष्ट की स्थापना स्वीकार की गई है।

नये प्रतीकों एवं बिम्बों के माध्यम से तुच्छ से तुच्छ वस्तु को भी कविता के उपादान के रूप में ग्रहण किया गया है। इस नूतन काव्यधारा को ऊर्जा प्रदान करने का श्रेय अज्ञेय को जाता है क्योंकि अज्ञेय ने ही इस कविता की प्रवृत्ति पर सर्वाधिक चिन्तन एवं विवेचन किया है। अज्ञेय के मतानुसार- ''वे सब किसी एक स्कूल के नही हैं, किसी एक मंजिल पर पहुँचे नहीं हैं, अभी राही हैं- राही नहीं, राहों के अन्वेषी। उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है- जीवन के विषय में, समाज, धर्म और रणनीति के विषय में उनका आपस में मतभेद है। यहाँ तक कि सत्यों को भी वे समस्त रूप से स्वीकार नहीं करते, जैसे लोकतंत्र की आवश्यकता, उद्योगों का सामाजीकरण, यांत्रिक युद्ध की उपयोगिता, वनस्पति घी की बुराई अथवा काननवाला और सहगल के गानों की उत्कृष्टता इत्यादि''[1] तथापि इतनी विपरीतता के होते हुए भी काव्य के एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र मे बांधता है।''[2] अज्ञेय ने प्रयोगवादी कविता के माध्यम से उन अभेद्य क्षेत्रों का अन्वेषण किया है, जहाँ तक पहले का कवि नहीं पहुँच पाया था। इस तरह अज्ञेय नवीन विचारधारा के कवि ही नहीं, कवि-नेता भी हैं। सप्तक के मध्यम से अन्वेषी कवियों को प्रकाश में लाने का कार्य अज्ञेय ने किया है। अज्ञेय ने स्पष्ट लिखा है- ''स्मरण रहे कि मूल योजना यही थी कि 'सप्तक' ऐसे कवियों को सामने लायेगा, जिनके स्वतंत्र संग्रह प्रकाशित नहीं हुए हैं जो इस प्रकार भी 'नये' हैं। यदि प्रस्तुत संकलन के भी दो-एक कवियों के स्वतंत्र संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, तो वह इसी बात का द्योतक है कि 'तीसरा सप्तक' की पांडुलिपि बनने और उनके प्रकाशन में एक

---

* शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

लम्बा अन्तराल रहा है। यों हम तो चाहते हैं कि सभी कवियों के स्वतंत्र संग्रह छपें, 'सप्तक' में उन्हें लाने का कारण यह विश्वास है कि उनके अपने-अपने संग्रह छपने चाहिए।[3]

अज्ञेय इस नूतन काव्यधारा के यशस्वी कवि तथा बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति हैं। अज्ञेय ने जीवन एवं जगत से तरह-तरह की अनुभूतियों को ग्रहण किया और उसे अपने सृजन का विषय बनाया। उनकी रचनाएँ संस्कृति एवं संसृति के मध्य विचरण करती हैं, उनकी रचनागत स्त्रोतवासिनी अनेक रेत के कगारों को तोड़ती बही है, हिमालय से सागर, सागर से मरूस्थल स्वदेश-विदेश, प्रेम गीत से घृणा गान, संयोग से वियोग, आकाशीय पिण्डों से पृथ्वी, बसंत से पतझड़, व्यक्ति (दीप) से समाज (पंक्ति), प्रकृति एवं नारी प्रेम, सौन्दर्य, देश प्रेम, शोषित के प्रति सहानुभूति, यथार्थ चित्रण आदि अनेकानेक क्षितिजों को उनके 'हारिल मन' ने एक अकेली तृण कलम के सहारे नापा है। सौन्दर्य की दृष्टि से उनका काव्य अप्रतिम है। सौन्दर्य कविता एवं कला का आवश्यक एवं अनिवार्य तत्व है। अनंत काल से समस्त कलाएँ 'सुन्दरम्' की साधना एवं खोज करती रही हैं किन्तु यह शब्द उस अव्यक्त सत्ता (परम सत्य) की तरह आज भी अव्याख्येय एवं रहस्यमय बना हुआ है। अनेक लोगों द्वारा इसे परिभाषित करने का प्रयास हुआ है फिर भी कुछ ऐसा है जो परिभाषा की सीमा में बँध नहीं पाता। यह सौन्दर्य प्रकृति के हर रूप में अलग-अलग तरीके से बिखरा पड़ा है। सौन्दर्य मानव मन के भीतर है और बाहर भी। ''वस्तुतः सौन्दर्य क्या है यह न बता पाकर भी सुन्दर क्या है जानते हैं, पहचानते हैं और सुन्दर क्या है यह बता सकने का अर्थ यह है कि हम कुछ ऐसे गुणों को पृथक कर सकते हैं जिनके कारण सुन्दर-सुन्दर होता है, जिनकी उपस्थिति की पड़ताल करके हम कहते हैं कि सुन्दर-सुन्दर है।''[4] सौन्दर्य शब्द की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की जाती है- ''सु + उन्द + अरन = सुन्दर तथा अच्छी तरह आर्द्र करने वाला अर्थात् सुख देने वाला।'' सुन्दर वस्तुओं के सामान्य धर्म को ही सौन्दर्य कहते हैं।[5] सौन्दर्य का लक्ष्यार्थ है : मन को आकर्षित करने की सामर्थ्य और जिस वस्तु में यह सामर्थ्य हो वही सुन्दर है। यद्यपि सौन्दर्य की असंख्य परिभाषाएं भारतीय एवं पाश्चात्य जगत में मिलती है तथापि सौन्दर्य की सर्वसम्मत परिभाषा दे पाना संभव नहीं है। अज्ञेय मानते हैं कि ''शर्म आँखों की होती है, तो उघड़ापन भी आँखों में होता है।[6] उनके अनुसार प्रेम तथा सौन्दर्य की अवस्थिति ग्रामीण तथा नागरिक की अलग-अलग रूप में होती है। उसी प्रकार उसके सौन्दर्य बोध की संभावनाएं भी अलग-अलग होती हैं, क्योंकि सौन्दर्य का आनंद के साथ घनिष्ट संबंध होता है।[7]

''अज्ञेय का सौन्दर्य बोध उच्च स्तर का है। उन्होंने हिन्दी काव्य में सौन्दर्य बोध के नए-नए आयाम खोले, उसमें विशदता तथा गंभीरता आई। अज्ञेय का सौन्दर्य बोध जिस स्तर का है वह किसी तरह के हल्केपन को बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह इतना विराट है कि उसकी पूर्ण परिणति अध्यात्म में ही संभव है।[8]

''अज्ञेय ने सौन्दर्यबोध के साथ-साथ उसके सुबोध होने को भी आवश्यक माना है। सुबोध भी सौन्दर्य का ही एक अंग है या होना चाहिए। ऐसा जरूर हो सकता है कि वस्तु के अनुकूल रूप विधान में इस अनुकूलता में ही सौन्दर्य है। सुबोधता इसलिए कम हो कि वह वस्तु भी वैसी ही हो।''[9] वस्तुतः अज्ञेय हर एक पर एक सीमा निर्धारित मानते थे। उन्होंने अपने कार्य तथा व्यक्तिगत जीवन के संबंध में जितना लिखा है उससे तो यही स्पष्ट होता है कि ''एक अनुशासित व्यक्ति के रूप में उन्होंने कार्य किया। सदानीरा काव्य संग्रह के प्रकाशन पर, जिसमें कि प्रत्येक कविता तिथि के साथ छपी है, उसके संबंध में अज्ञेय का कथन है-

''साधारणतः मैं व्यवस्थित ढंग से रहता हूँ।''[10] सौन्दर्य चेतनाओं के संबंध में भी उनकी ये बातें पूर्णतः लागू होती हैं। यद्यपि उनकी कविताओं में कहीं-कहीं अकुण्ठ सौन्दर्य की झलक भी है जिस पर प्रायः आलोचकों का ध्यान गया है परन्तु उनका सौन्दर्य चित्रण कुण्ठा रहित होने के साथ-साथ भव्य और विराट भी है। सौन्दर्य को परिभाषित करते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा का कथन है, ''प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनंददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।''[11]

वस्तुतः सौन्दर्य के प्रति दृष्टि अलग-अलग हो सकती है परन्तु ये बात सत्य है कि सौन्दर्य के प्रति हर मनुष्य आकर्षित होता है। कवि इसी सौन्दर्य को अपनी कविता में बांधता है, इस कथन की पुष्टि के लिए रामचन्द्र शुक्ल की निम्न पंक्ति द्रष्टव्य है- ''कवि की दृष्टि तो सौन्दर्य की ओर जाती है चाहे वह जहाँ हो- वस्तुओं के रूप-रंग में अथवा मनुष्यों के मन में, वचन और कर्म में। उत्कर्ष-साधन के लिए, प्रभाव की वृद्धि के लिए, कवि लोग कई प्रकार के सौन्दर्य का मेल भी किया करते हैं। राम की रूप माधुरी और रावण की विकरालता भीतर का प्रतिबिंब सी जान पड़ती है। मनुष्य के भीतरी-बाहरी सौन्दर्य के साथ चारों ओर की प्रकृति के सौन्दर्य को भी मिला देने से वर्णन का प्रभाव कभी-कभी बहुत बढ़ जाता है। चित्रकूट ऐसे रम्य स्थान में राम और भरत ऐसे रूपवानों की रम्य में अंतः प्रकृति की छटा का क्या कहना है।''[12]

अज्ञेय ऐसे कवियों में से एक हैं, जिनके विचार एवं दृष्टि का सौन्दर्य उनकी कविता में दिखाई देता है। अज्ञेय की कविताओं में सौन्दर्य का एक पुष्ट रूप दिखाई देता है। इस संबंध में रामदेव शुक्ल का यह कथन विचारणीय है- ''परिपक्व दृष्टि सम्पन्न कलापारखी का सौन्दर्य बोध हिन्दी कविता को अज्ञेय के पास आकर ही मिला, छायावाद की अप्सरा को यथार्थ की धरती पर उतारकर उसका पार्थिव श्रृंगार करने और उसे पारखी दृष्टि के नैवेद्य का दान करने का काम अज्ञेय ने ही किया।''[13] शुक्ल जी का यह कथन अज्ञेय के सौन्दर्यबोध दृष्टि को प्रकट करता है। अज्ञेय की यही सौन्दर्य दृष्टि उनकी कविताओं में भी दिखाई देती है। उनकी कविताओं में सौन्दर्य के विविध रूप दिखाई देते हैं।

प्रकृति मानव जीवन का आधार है। प्रकृति के सौन्दर्य की तरफ हर कोई आकर्षित होता है। प्रकृति अज्ञेय की सहचर थी, उनके जीवन के कितने ही क्षण प्रकृति के सानिध्य में बीते हैं, उनकी कविताओं में इन रूपों की विविधता को देखा जा सकता है। अपने बारे में अज्ञेय लिखते हैं- ''एकांत में बहुत रहा, जंगलों में, छोटी जगहों में, जहाँ पर्यवेक्षण की अपार सुविधा मिली। इसलिए बहुत-सी चीजों को, खासकर प्राकृतिक परिवेश में, मैंने ज्यादा बारीकी से देखा और अनुभव किया।''[14] व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है उससे प्रभावित अवश्य होता है, अज्ञेय के संबंध में भी ये सत्य है।

प्रकृति और साहित्य का सदा साथ रहा है। वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास आदि अनेक कवियों ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया है। अज्ञेय का महत्व प्रकृति को नई अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करने में है। अज्ञेय ने विविध वस्तुओं का प्रयोग अपने काव्य में किया है।

घास-फूस, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी, सागर, रात-दिन और ऐसे अनेक प्राकृतिक उपादानों को न केवल उपमा के रूप में प्रयोग किया बल्कि उसके माध्यम से संवेदनात्मक अनुभूतियों का भी चित्रण किया। उनकी रचनाओं में प्रकृति के प्रति आत्मीयता का भाव दिखाई देता है। प्रकृति से वे सुख-दुःख बांटते हैं

''बंधु है नदियां : प्रकृति भी बंधु है
और क्या जाने कदाचित
बंधु
मानव भी।''[15]

अज्ञेय की आरंभिक कविता में छायावादी प्रवृत्ति का भी प्रभाव दिखाई देता है। प्रकृति के मानवीकरण सम्बन्धी छायावादी प्रवृत्तियों का अज्ञेय की कविताओं पर भी प्रभाव है-

''संध्या की किरण परी ने उठ अरुण पंख दे खोले
कंपित-कर गिरि शिखरों के उर-छिपे रहस्य टटोले
देखी उस अरुण किरण ने कुल पर्वत-माला श्यामल
बस एक श्रृंग पर हिम का था कंपित कंचन
झलमल।''[16]

'इत्यलम' और 'हरी घास पर क्षणभर' संग्रह से उनकी कविता में नये भाव-बोध को देखा जा सकता है। 'इत्यलम' की कविता 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' कविता जीवन से जुड़ती है, यहाँ संवेदनाओं को प्रकृति के साथ तादात्म्य करते हुए एक नये आस्वाद बोध का निर्माण किया गया है-

''घन आकास में दिखा
× × ×
वह आएगी-
मेरी ढांप लेगी नंगी अपनी देह से बहते स्नेह से
अभी रेत है पर हो जाऊँगा हरा, गीत-जीवित, भरा,
बालू धारा बन जाएगी- धारा आनी जानी है
पर मेरी तो वह नस-नस की पहचानी है-
वह आएगी :
खिंच जाएगी हिमगिरि से आसमुद्र
बाकी किन्तु एक अचूक जीवन की रेखा-
जीवन बहता पानी है-
इन टूटे हुए कगारों में फिर जीती इन धारों की लंबी
अंत कहानी है।''[17]

हिन्दी में नारी विषयक दृष्टि भिन्न-भिन्न रही है। प्रत्येक काल में नारी छवि बदली है परन्तु नारी सौन्दर्य से सभी प्रभावित रहे हैं। अज्ञेय की प्रारंभिक कविता में नारी सौन्दर्य के आकर्षण से उत्पन्न प्रेम दिखाई देता है।

''आओ एक खेल खेलें!
मैं आदिम पुरुष बनूँगा
तुम पहली मानव-वधूका!
पहला पातक अपना ही।
हो परिणय, यौवन-मधु का!''[18]

अज्ञेय की दृष्टि आधुनिक है, वे नर-नारी संबंध को एक नयी दृष्टि से देखते हैं। इस संबंध में अनन्त मिश्र का कथन है कि- ''नारी के प्रति कवि की यह यथार्थ दृष्टि उसे छायावादी कवियों से बिल्कुल अलग करती है। छायावादी कवि के लिए नारी या तो विवेचन की विषय थी या कोई अतिरिक्त रूप से कल्पित रागात्मक प्रतिमा। उसे कोई श्रद्धा नाम दे या अंतः सलिला। पर कवि अज्ञेय के लिए नारी केवल वही है जो एक नर नारी के विषय में सोचता है। कोई आग्रह जो रहस्य या दर्शन की ओर ले जाए, अज्ञेय का, नारी के विषय में नहीं है।''[19]

''हरी बिछली घास।
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।
अगर मैं तुमको ललाती सांझ के नभ की अकेली
तारिका

अब नहीं कहता,

या शरद के भोर की नीहार न्हाई हुई

टटकी कली चंपे की

तो नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला कि सूना है

या कि मेरा प्यार मैला है।''[20]

अज्ञेय स्त्री पुरूष संबंधों को आधुनिक रूप में देखते हैं। वे प्रेम की पीड़ा को भी व्यक्त करते हैं-

''चेतना की नदी

बहती जाए तेरी ओर

मौन तेरे ध्यान में

मैं रहूँ विभोर

अलग हूँ, पर विरह की धमनी

तड़पती लिए स्पंदित स्नेह

और मेरे प्यार में ओ हृदय के आलोक मेरे

वेदना की ओर।''[21]

अज्ञेय के काव्य में लोकजीवन के प्रति गहरी संवेदना एवं सौन्दर्य है। यह उनकी व्यंजना और कथ्य के आधार पर देखा जा सकता है। इन रचनाओं में उस तरह से लोकतत्व नहीं मिलते जैसे सूर, तुलसी, कबीर आदि भक्ति कवियों में मिलते हैं परन्तु अज्ञेय का काव्य लोक तत्व से रहित नहीं कहा जा सकता है। उनकी निम्न कविताओं में लोक जीवन की अभिव्यक्ति को देखा जा सकता है-

''सुनो कवि! भावनाएं नहीं सोती, भावनाएं खाद हैं

केवल

जरा उनको दबा रखो

जरा-सा और पकने दो, ताने और लचने दो

अंधेरी तहों की पुट में पिघलने और पचने दो

रिसने और रचने दो-

कि उन का सार बनकर चेतना की धरा को कुछ

उर्वर कर दे

भावनाएं तभी फलती हैं कि उन से लोक कल्याण का

अंकुर कहीं फूटे।''[22]

लोक को समझने में प्रकृति की भूमिका अहम होती है। अज्ञेय ने प्रकृति के उपादानों में लोक जीवन को देखा है-

''सखि! आ गए नीम को बौर

हुआ चित्र कर्मा वसंत अवनी - तल पर सिरमौर

आज नीम की कटुता से भी लगा टपकने मादक मधु-रस!

क्यों फड़क फिर उठे तड़पती विह्वलता से मेरी नस-नस।''[23]

अज्ञेय के काव्य में दर्शन से संबंधित अनेक कविताओं का सौन्दर्य देखा जा सकता है। उनकी कविताओं पर दर्शन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। भारतीय दर्शन के चिंतन का प्रमुख केन्द आत्म तत्व है। आत्म तत्व दर्शन का मुख्य विषय है जिसे स्वतः सिद्ध और स्वप्रकाश माना गया है। वह अजर, अमर, नित्य सनातन है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद, गीता आदि ग्रंथों में आत्मा की सत्ता स्वीकार की गयी है। गीता का दूसरा अध्याय आत्म तत्व का ही निरूपण करता है। आत्मा के इस रूप की अभिव्यक्ति अज्ञेय की कविताओं में भी दिखाई देती है।

''मैं सोने के साथ बहता हूँ, पक्षी के साथ गाता हूँ

वृक्ष के कोंपलों के साथ थरथराता है।

और उसी अदृश्य क्रम में, भीतर ही भीतर

झरे पत्तों के साथ गलता और जीर्ण होता

रहता हूँ

नए प्राण पाता हूँ।''[24]

'असाध्य वीणा' कविता की निम्न पंक्तियों में 'महाशून्य' और 'महामौन' का वर्णन परमतत्व का संकेत करता है-

''यह महाशून्य का शिविर

असीम छा रहा ऊपर

नीचे यह महामौन की सरिता

दिग्विहीन बहती है''[25]

अज्ञेय मानते हैं कि व्यक्ति की सामाजिक अनुपयोगिता से उसके मन में जो संघर्ष होता है वही उसे जीवन के सौन्दर्य का ज्ञान भी कराता है। अनुपयोगिता के विद्रोह से उत्पन्न यही सौन्दर्य बोध उसकी कला के रूप में आकार लेता है।

''यों सब जान गए हैं

कृतिकार आज दिन क्या रचने वाला है

पर वह? बैठा है सने हाथ अनमना

सामने ताकता

कहीं, कभी, पहचान सके वह अपना

भोर का सुंदर सपना।[26]

कला के साथ शिल्प का गहरा संबंध है, शिल्प से कला की संरचना का बोध होता है। शिल्प से कवि की अनुभूतियों को आकार मिलता है। कवि की कला उसकी अनुभूतियों का परिणाम है और कलाकार की इन अनुभूतियों का परिधान शिल्प है। अज्ञेय की कविताओं में बिम्ब विधान से उनकी भाषा का सशक्त रूप दिखाई देता है। जीवन और जगत की अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए बिंब का प्रयोग होता है। कविता में इनका प्रयोग संवेदना को मुखर बनाने के लिए किया जाता है। अज्ञेय बिंबवाद से प्रभावित भी थे।

निम्न कविता में अज्ञेय सूर्य के लिए नए बिम्ब का विधान करते हैं-

''भोर का बावरा अहेरी

पहले बिछाता है आलोक की

लाल-लाल कनियां

पर जब खींचता है जाल को बांध

बांध लेता है सभी को साथ।''[27]

साहित्य में मिथक प्रयोग काव्यानुभूति को संप्रेष्य बनाने के लिए किया जाता है। अज्ञेय की कविता में विचारों को संप्रेष्य बनाने की दृष्टि से मिथकों का प्रयोग मिलता है।

''द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अंगूठा मांग लिया था

अभिनव द्रोण किंतु कहता है

'वत्स वीर'

धरो चाप, साधो तीर, धरती को विद्ध करो-

अमृत- सा कूप-जाल यहीं फूट निकले''[28]

वस्तुतः अज्ञेय के काव्य का सौन्दर्य बहुपक्षीय है। उन्होंने साहित्य को वही दिया जो सौन्दर्य से परिपूर्ण था अर्थात् आनंददायक। उनके काव्य में प्रकृति, नारी, लोकजीवन और दर्शन का सौन्दर्य अपने विभिन्न रूपों में स्पंदित हुआ है। उनकी सौन्दर्य दृष्टि के विषय में लक्ष्मीकांत वर्मा का कथन उचित है- ''अज्ञेय सौन्दर्यवादी थे, लेकिन वह सौन्दर्य जिसमें जीवन का सब कुछ हो हर्ष हो, उल्लास हो और साथ ही वह तिक्त कटु भी हो, जो क्षार होता है। अज्ञेय जो देते थे वह सुरुचि-सम्पन्न होता था- संयत, अनुशासित और प्रामाणिक लेकिन जो लेते थे वह तिक्त कटु, कसैला था। हर रचना का माध्यम वे स्वयं थे, लेकिन उनका 'स्वयं' एक छन्नी था, जो हर अनुभव को छानकर बाहर जाने देता था और इस छानने में जो भी कटु और तिक्त होता था, वह उनके स्वयं का भाग था।''[29]

अतः अज्ञेय की कविताएँ उनकी बौद्धिक परिपक्वता, वैयक्तिक गरिमा, रागदीप्त संवेदना, काव्य के सौन्दर्य को प्रकाशित करती हैं। उनकी कविता का सत्य अलौकिक न होकर मानवीय सत्य पर आधारित होता है।

संदर्भ सूची-

1. अज्ञेय, तार सप्तक की भूमिका, पृ0 5
2. अज्ञेय, तार सप्तक की भूमिका, पृ0 5
3. अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृ0 22-23
4. अज्ञेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ0 10
5. मंजू गुप्ता, नयी कविता का सौन्दर्य शास्त्र, पृ0 29
6. रामेश्वर खण्डेलवाल, समीक्षा के वातायन, पृ0 231
7. केदारनाथ सिंह, तीसरा सप्तक, पृ0 115
8. विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय, पृ0 5
9. अज्ञेय, आत्मनेपद, पृ0 61
10. अज्ञेय, सदानीरा, पृ0 7
11. डा0 रामविलास शर्मा, आस्था और सौन्दर्य, पृ0 27
12. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, पृ0 97
13. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अज्ञेय, पृ0 278
14. कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, पृ0 141
15. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, पृ0 245
16. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, पृ0 148
17. अज्ञेय, सदानीरा, भाग-1, पृ0 148
18. अज्ञेय, चिन्ता, पृ0 36
19. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अज्ञेय, पृ0 290
20. अज्ञेय, सदानीरा, पृ0 249
21. अज्ञेय, सदानीरा, पृ0 142
22. अज्ञेय, सदानीरा, पृ0 142
23. अज्ञेय, चिन्ता, पृ0 97
24. अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, पृ0 36
25. अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, पृ0 34
26. अज्ञेय, सदानीरा, पृ0 36
27. अज्ञेय, बावरा अहेरी, पृ0 16
28. अज्ञेय, सदानीरा, पृ0 276
29. डॉ0 नीलम ऋषिकल्प, अज्ञेय : स्मृतियों के झरोखे से, पृ0 49

योग के परिप्रेक्ष्य में ज्ञान तथा अभ्यास एवं वैराग्य

*डॉ. श्रुति मिश्रा**

भारतीय मनीषा ने प्रज्ञाचक्षुत्व से युक्त को 'ऋषि' पद से अभिहित किया है और मन्त्रद्रष्टा ऋषि के वचनों को 'शब्द प्रमाण' के रूप में स्थापित किया तथा उसके क्रान्त-द्रष्टत्व की ही कवि में संसृति मानी गयी है। यद्यपि काव्य को भले ही भामहादि कुछ आचार्यों ने मात्र नैसर्गिक ही प्रतिभाश्रित मान लिया हो-

'काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः।[1]'

किन्तु, आचार्य दण्डी ने शक्ति, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास में, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास पर अधिक बल देते हुए कहा है-

'न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबन्धिप्रतिभानमद्भुतम् ।

श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम ।।[2]'

अर्थात् प्रतिभा की न्यूनता में भी यदि प्रभूतशास्त्रों का अध्ययन और तज्जन्य अभ्यास किया जाये तो निश्चितरूप से ज्ञान के प्रकर्ष से युक्त हो सकेगा। पुनः अभ्यास पर बल देते हुए उन्होंने कहा है कि-

'तदस्ततन्द्रैरनिशं सरस्वती श्रमादुपास्या खलु कीर्तिमीप्सुभिः।'[3]

यहाँ 'श्रमादुपास्या' के माध्यम से अभ्यास पर बल दिया गया है। इसे ही योग में 'योगारूढ़' 'आरुरुक्षु' की संज्ञा दी गयी है। कोई भी आध्यात्मिक साधना शम-दम के नियमन के बिना पूर्ण नहीं हो सकती। 'शम' जिसे परिभाषित करते हुए कहा जाता है-

'शमस्तावच्छ्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनसो निग्रहः।[4]'

मनोनिग्रह का अर्थ है मन को विषयों से बलपूर्वक हटाना ध्यातव्य है कि श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन भी मन के ही विषय हैं किन्तु, श्रवणादि ज्ञान में उपयोगी होते हैं यदि इनसे भी मन को हटा लें तो यह तो अनर्थपूर्ण है, इसी की निवृत्ति हेतु यहाँ 'श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यः' कहा गया है। मन का निग्रह अत्यन्त दुष्कर है तथापि अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा मन का निग्रह सम्भव है। अभ्यास एवं वैराग्य दोनों का एक साथ सिद्ध होना चित्तवृत्ति निरोध हेतु अपेक्षित है, दोनों में से मात्र एक के अनुष्ठान से विशेष लाभ नहीं होता। प्रश्न उठता है कि 'चित्तवृत्तिनिरोध' को क्या किसी प्रकार संज्ञित करना सम्भव है? इसे ही योगदर्शन के 'समाधिपाद' के अंतर्गत 'योग' पद से अभिहित किया गया है।[5] चित्त की वृत्तियों, चेष्टाओं को बहिर्मुखी होने से संसार के विषयों में भटकने से रोककर अन्तर्मुखी बनाना, अध्यात्म विषयों में लगाना ही निरोध है, इसी को योग कहते हैं। पुनः प्रश्न है कि समस्त वृत्तियों का निरोध योग है या कुछ वृत्तियों का ही? यदि समस्त वृत्तियों के निरोध का नाम ही योग है तो सूत्रकार ने मात्र 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' ऐसा क्यों कहा? अतः कुछ वृत्तियों का निरोध भी योग के अंतर्गत ही आता है। व्यास में अपने भाष्य में कहा है कि 'योग समाधि है।'[6]

पुनः 'चित्तवृत्तिनिरोध' का अर्थ वस्तुतः चित्त की उस स्थिति से है जिसमें कोई वृत्ति नहीं रहती पुनः चित्त के निरोध की विधि या साधना का नाम भी योग है। तात्पर्य यह है कि यहाँ साधना तथा चित्त की निरुद्धावस्था दोनों ही अर्थ समुचित है। किन्तु, मुख्यतया चित्त की निरुद्धावस्था का नाम ही योग है क्योंकि सूत्रकार का कहना है कि चित्त की वृत्तियों के निरुद्ध हो जाने पर द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।[7]

श्रीमद्भग्वद्गीता में योग को अपेक्षाकृत भिन्न रूप में परिभाषित किया गया है और कहा गया है कि सिद्धि-असिद्धि में सम रहना ही योग है।[8] सिद्धि-असिद्धि में सम रहने का तात्पर्य यह है कि सफलता मिलने पर समान भाव से रहना अर्थात् सफलता मिलने पर सुखी और असफलता मिलने पर दुःखी न होने का नाम ही योग है। किन्तु, ऐसा साधक के 'युक्त' या 'सिद्ध' हो जाने पर ही सम्भव है। गीता में युक्त होने का तात्पर्य ब्राह्मी चेतना से युक्त होना बताया गया है। पुनः कर्मयोग का विवेचन करते हुए योग की परिभाषा निम्नलिखित रूप में दी जाती है कि- 'कर्मों में कुशलता ही योग है।'[9] कर्मों में कुशलता से तात्पर्य कर्मों को निष्काम भाव से करना है। इस प्रकार के कर्म बन्धनकारक न होकर मोक्षदायक हो जाते हैं।

इस प्रकार यहाँ योग का अर्थ साधना से है। साधक फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करता है। इच्छा से रहित हो कर किये गये कर्म से ही वह सिद्धि-असिद्धि में समानभाव से रह सकता है।

गीता में पुनः योग को परिभाषित किया गया है-

'हमारे जीवन में जो दुःख का संयोग है उसका वियोग ही योग है अर्थात् दुःख के संयोग का वियोग ही योग है।'[10]

पातञ्जलयोगसूत्र की परिभाषानुसार जब चित्त की समस्त वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं तो साधक को प्रकृति तथा पुरुष के भेद का ज्ञान हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप पुरुष का समस्त दुःखों

* सहायक आचार्य, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

से वियोग हो जाता है। यह भी कहना सम्भव है कि जब साधक युक्त हो जाता है तभी दुःखों से उसका वियोग हो पाना सम्भव होता है।

योग का सामान्य अर्थ 'युक्त' होना है इसी अर्थ के अनुसार याज्ञवल्क्य ने योग की परिभाषा दी है। उनके अनुसार योग जीवात्मा तथा परमात्मा का समान रूपात्मक संयोग है।[11]

मनुष्य का चित्त जल में उठती तरङ्गों के समान राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोहादि से बदलता रहता है। निरंतर उत्पन्न होने वाली चित्त की ये वृत्तियाँ अनंत होती हैं। वायु-वेग के शांत हो जाने पर तरङ्गें भी नष्ट हो अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाती हैं उसी प्रकार चित्त योगाभ्यास से बाह्य-आभ्यन्तर परिणामों का परित्याग कर अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है, इसे ही चित्तवृत्तिनिरोध कहते हैं। चित्त की पाँच (5) अवस्थायें होती हैं जिन्हें चित्तभूमियाँ भी कहते हैं-

(1) मूढ़ (2) क्षिप्त (3) विक्षिप्त
(4) एकाग्र और (5) निरुद्ध।[12]

मूढ़ चित्त तमोगुण की प्रधानता के कारण विवेकशून्य रहता है, यह कृत्याकृत्य का विवेचन नहीं करता और क्रोधादि के द्वारा विरुद्ध कार्यों में ही प्रवृत्त रहता है। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक सामर्थ्य इस स्थिति में नहीं रहता। अज्ञान, अधर्म, राग और अनैश्वर्य इस चित्त के मनुष्यों में बहुधा प्राप्त होते हैं।

(2) क्षिप्तावस्था में चित्त रजोगुण की अधिकता के कारण अस्थिर एवं चञ्चल बना रहता है और बहिर्मुखिता के कारण संसार के सुखदुःखादि विषयों की ओर स्वतः प्रवृत्ति रहती है। इस अवस्था में मनुष्य की प्रवृत्ति धर्म-अधर्म, राग-वैराग्य, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य आदि में होती है। इसका कारण वस्तुतः यह बताया जाता है कि रजस् के अतिरिक्त शेष दो गुण सत्त्व और तमस् में से कभी सत्त्व तमस् को दबा देता है कभी तमस् सत्त्व को। जब सत्त्व तमस् को दबाता है तब धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि में प्रवृत्ति होती है। यहाँ चित्त शब्दादि बाह्य विषयों में भटकता रहता है।[13]

(3) विक्षिप्तावस्था में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है, रजस् व तमस् गौणावस्था में होते हैं। ऐसी अवस्था योग जिज्ञासुओं और श्रेष्ठ मनुष्यों की मानी जाती है। क्षिप्तावस्था में रजोगुण की प्रधानता के कारण चित्त कभी भी स्थिर नहीं रहता अपितु सदा चञ्चल बना रहता है किंतु, विक्षिप्त दशा में वह सत्त्व की अधिकता के कारण कभी-कभी स्थिरता को प्राप्त कर लेता है। इसी विशिष्टता के सूचित करने के लिए 'क्षिप्त' से पूर्व 'वि' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

(4) एकाग्र- 'एकाग्र' का अर्थ है एक ही विषय का चिन्तन करने वाला। स्वाभाविक रूप से चित्त के सत्त्व प्रधान होने के कारण यह उसकी स्वाभाविक अवस्था है। यह सत्त्वगुण की प्रधानता की अवस्था है। इस अवस्था में चित्त निर्मल होता है तथा परमाणुओं से लेकर महत् तत्त्व पर्यन्त ग्राह्य, ग्रहण और ग्रहीत विषयों का यथार्थ साक्षात् हो सकता है अर्थात् प्रकृति के सर्वकार्यों का साक्षात् हो सकता है। यह अवस्था सम्प्रज्ञात समाधि में होती है जिसकी अंतिम अवस्था विवेकख्याति है।

(5) निरुद्धावस्था में सभी वृत्तियों और संस्कारों का लय हो जाता है। विवेकख्याति द्वारा चित्त और पुरुष का भेद साक्षात् हो जाने पर उस ख्याति से भी वैराग्य हो जाता है क्योंकि विवेकख्याति भी चित्त की ही एक वृत्ति है परिणामस्वरूप इस वृत्ति का भी निरोध हो जाता है। इसके निरुद्ध होने पर सर्ववृत्तियों का निरोध हो जाता है और चित्त की निरुद्धावस्था हो जाती है, इस अवस्था को असम्प्रज्ञात समाधि भी कहते हैं, इस समय चित्त मात्र संस्काररूप रहता है।[14] इस अंतिम अवस्था में पुरुष को कैवल्य की प्राप्ति होती है। इन सभी अवस्थाओं में अंतिम दो को ही योग के उपयुक्त माना गया है।

पुरुष के संयोग में रहने वाला चित्त इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण कर उन्हीं के आकार का हो जाता है। 'निश्चय करना' ही चित्त का धर्म है। इसके निश्चय करने की प्रक्रिया निम्नलिखित रूप से है-

इन्द्रियाँ बाह्य विषयों का प्रत्यक्ष कर मन को, मन सङ्कल्प कर अहङ्कार को और अहङ्कार अभिमान कर सभी करणों में श्रेष्ठ चित्त को विषयों का समर्पण कर देता है। यह ही सब करणों में प्रधान है। चित्त को समर्पण इसलिए किया जाता है कि यह पुरुष के भोग का साक्षात् साधन है क्योंकि इसी के निश्चयानुसार पुरुष का भोग होता है।[15]

योगदर्शन में व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकता और अनवस्थितता- ये नौ चित्त के अन्तराय (विक्षेप) माने गये है[16] तथा दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास तथा प्रश्वास- ये विक्षेप के साथ उत्पन्न होते हैं।[17] विक्षिप्त चित्त में ही ये होते हैं, समाहित चित्त में नहीं। पुनः चित्तवृत्तियों के संदर्भ में कहा जाता है कि यद्यपि ये असंख्य होती हैं, किन्तु प्रकार की दृष्टि से इनके पाँच प्रकार बताये गये हैं और क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट रूप से इनको विभाजित किया गया है। क्लेश संस्कारों से बनने वाली वृत्तियां कर्माशय नामक संस्कारों के प्रचय अर्थात् समूह के लिये क्षेत्र बनने वाली अर्थात् उनको उत्पन्न करने वाली वृत्तियां क्लिष्ट कही जाती हैं।

'क्लेशाः अस्मितादयो हेतवः प्रवृत्तिकारणं यासां वृत्तीनां तास्तथोक्ताः।'[18]

'क्लेशैर्वक्ष्यमाणलक्षणैराक्रान्ताः क्लिष्टाः तद्विपरीता अक्लिष्टा'[19]

इस प्रकार से क्लेशकारणक अतएव क्लेशयुक्त वृत्तियाँ 'क्लिष्टाः' कही गयी है। इनसे कर्माशय संस्कारों के समूह उत्पन्न होते हैं इसलिए इन्हें 'कर्माशयप्रचयक्षेत्रीभूताः' कहा गया है।

कर्मसंस्कार समूहों को उत्पन्न करने वाली वृत्तियाँ क्लिष्ट वृत्तियाँ तथा विवेकख्याति को विषय बनाने वाली अर्थात् गुणों के कार्य को रोकने वाली वृत्तियाँ अक्लिष्ट कही जाती हैं।

'कार्यारम्भणं हि गुणानामधिकारो विवेकख्यातिपर्यवसानं च तदिति चरिताधिकाराणां गुणानामधिकारं निरुन्धन्तीत्यतस्ता अक्लिष्टाः प्रमाणप्रभृतयो वृत्तयः।'[20]

तात्पर्य है कि क्लिष्टवृत्तियों के प्रवाह में पड़ने पर भी ये अक्लिष्टवृत्तियाँ अक्लिष्ट ही रहती हैं, क्लिष्ट नहीं हो जाती अर्थात् विरुद्धधारा में पड़ने पर भी अक्लिष्टवृत्तियाँ विरुद्ध संघर्ष से प्रभावित नहीं होती और अपनी अक्लिष्टरूपता को अक्षुण्ण रखती हैं। वस्तुतः एकमात्र अभ्यास के माध्यम से मन को निग्रहीत किया जा सकता है। अनभ्यस्तता के कारण ही मोक्षपद दुर्गम कहा गया है-

''उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

क्षुरस्यधारानिशितादुरत्यया दुर्गं पथस्तद् कवयोः वदन्ति।।''[21]

अभ्यास से ही व्यक्ति का स्वभाव बनता है और स्वभावानुसार हमारे कर्म प्रवर्तित होते हैं। यही कारण है कि कठोपनिषद् के ऋषि ने कहा है कि हमारी इन्द्रियों का स्वभाव ही है कि वे बाहर की ओर ही देखती हैं-

''पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयम्भू

तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् ।''[22]

अभिप्राय यह है कि मनोनिग्रह हेतु अभ्यास तथा वैराग्य इन उभयविध साधनों का एक साथ होना आवश्यक है क्योंकि मनुष्य की विषयों की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति है उसे वैराग्य के द्वारा निरुद्ध किया जाता है और विवेकदर्शन के अभ्यास से विवेक स्रोत को उद्घाटित किया जाता है। पतञ्जलि ने भी स्थिति के निमित्त किये गये यत्न को अभ्यास कहा है-

'तत्र स्थितौ यत्नोभ्यासः।'[23]

तात्पर्य है कि चित्त की स्थिरता हेतु प्रयत्न करना अभ्यास है। चित्त का शान्तिपूर्वक राजस्, तामस् वृत्तियों की चञ्चलता से रहित होकर आत्मदिशा में चलना 'स्थिति' कहलाता है। इस अवस्था हेतु सम्पूर्ण यत्न तथा शक्ति के साथ प्रयत्न करना चाहिए। अभ्यास तथा वैराग्य सम्मिलितिरूप से चित्तनिरोध के हेतु है। वैराग्य द्वारा विषयों की ओर से विरक्त किया गया चित्त अभ्यास के द्वारा प्रकृति-पुरुष विवेक की ओर प्रवृत्त किया जाता है अर्थात् इन दोनों (अभ्यास तथा वैराग्य) चित्तवृत्तियों के निरोध में हेतु हैं। यही भाव श्रीमद्भगवद्गीता में भी अभिव्यक्त हैं-

'असंशयं महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलम् ।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।'[24]

प्रस्तुत श्लोक में भी 'चकार' के द्वारा अभ्यास तथा वैराग्य का समुच्चय द्योतित किया गया है। मनुष्य के चिरसञ्चित बहिर्मुखी संस्कार 'यमादि...' अष्टाङ्गों के साधन में बाधक होते हैं तथापि दृढ़तापूर्वक अभ्यास करते रहने से उनका भी शमन हो जाता है और समाधि तक की सिद्धि सम्भव हो जाती है। योगदर्शन में इस हेतु ही 'तत्र स्थितौ यत्नोभ्यासः' कहा गया है। 'यत्न' पद से अभ्यास का स्वरूप, 'स्थिति' पद से अभ्यास का प्रयोजन तथा इन समस्त पदों के सम्मिलित रूप से अभ्यास का लक्षण किया गया है। पुनः, यह अभ्यास दीर्घकाल तथा निरंतर होने पर दृढ़ अवस्था वाला होता है। बहिर्मुखस विषयोन्मुख वृत्तियों को रोककर उन्हें अन्तर्मुख कर निरुद्ध किया जा सकता है, किन्तु यह प्रक्रिया क्षणिक नहीं, यह एक लम्बी प्रक्रिया है जिसके लिए एक दीर्घकालीन अभ्यास की आवश्यकता होती है। इस दीर्घकालीन अवधि तक चलने वाले अभ्यास द्वारा साधक बहिर्मुख वृत्तियों को रोककर अन्तःप्रवाहित कर क्रमशः आत्मसाक्षात्कार की ओर प्रवृत्त होता है।

चित्त राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि प्रपञ्चों में पड़कर बदलता रहता है और इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों से आकृष्ट होकर उन जैसे आकार में ही परिवर्तित होता रहता है। ये सब चित्त की वृत्तियाँ कही जाती हैं और अनन्त हैं और प्रतिक्षण उत्पन्न होती हैं और उनके अनादि जन्मों के संस्कार बीजरूप से चित्त में पड़े चले आ रहे हैं। किन्तु, अल्पसमय में इन्हें निरुद्ध करना दुष्कर है क्योंकि अल्प असावधानी से ही विषय-वासना पुनः मनुष्य को अपनी ओर खींच लेती है। पतञ्जलि कहते हैं-

'स तु दीर्घकालनैरन्तर्य्य सत्कारासेवितो दृढ़ भूमिः।'[25]

यहाँ पतञ्जलि ने तीन विशेषणों 'दीर्घकाल', 'नैरन्तर्य' तथा 'सत्कारासेवित' शब्द का प्रयोग किया है अर्थात् बहुत काल तक चित्तवृत्तियों को अभ्यास द्वारा निरुद्ध करके दृढ़ करना अपेक्षित है। अभ्यास में नैरन्तर्य का अत्यन्त महत्व है क्योंकि इसी से दृढ़ता आती है। श्रद्धा, भक्ति, अत्यन्त मनोयोग के साथ किया गया अभ्यास दृढ़ अवस्था वाला होता है।

आत्मतत्त्व की अवाप्ति हेतु श्रवण, मनन तथा निदिध्यासनरूप साधनों को आवश्यक माना गया है। यहाँ श्रवण तदनन्तर निदिध्यासन की बात की गयी है वस्तुतः यह निदिध्यासन अभ्यास ही तो है। कुछ आधुनिक चिन्तक अभ्यास से ज्ञान की व्युत्पत्ति मानते हैं। यह उल्लेख करना यहाँ अपेक्षित होगा कि भारतीय मनीषा 'व्युत्पत्ति' तदनन्तर 'अभ्यास' की बात करती है। पुनः,

'अभ्यासवैराग्याभ्यामतन्निरोधः।'[26]

व्यासदेव ने भी चित्त की उपमा दो धाराओं वाली नदी से की है जिसकी एक धारा कल्याण दूसरी पाप हेतु बहती है-

'चित्तनदी नामोभयतो वाहिनी। वहति कल्याणाय वहति पापाय च।'[27]

यहाँ कल्याण से तात्पर्य मोक्ष से है तथा दूसरी धारा संसारप्रदायिनी है। यहाँ अभिप्राय यह है कि हमें सर्वप्रथम ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है तब हमें अभ्यास की ओर निरत होना होगा। मात्र अभ्यास तो साकांक्ष पद है जो कि 'किसका अभ्यास' यह प्रश्न सामने रखता है। ज्ञान से अभ्यास का मार्ग जो भारतीय मनीषा ने हमारे समक्ष रखा है वह भी यहाँ ध्यातव्य है।

सन्दर्भ-

1. भामहकृत काव्यालङ्कार, 1/4
2. दण्डीकृत काव्यादर्श, 1/104
3. दण्डीकृत काव्यादर्श, 1/105
4. श्री सदान्दप्रणीत वेदान्तसार, हिन्दीव्याख्या आचार्य बदरीनाथ शुक्ल, पृ0 60
5. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, 1/2, पातञ्जलयोगसूत्र
6. योगः समाधिः। व्यासभाष्य, योगसूत्र 1/1
7. तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम्। पात्जल योगसूत्र, 1/3
8. सिद्धसिद्धियोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते। श्रीमद्भगवद्गीता, 2/48
9. योगः कर्मसु कौशलम् । वही, 2/50
10. तं विद्याद्दुःखयोग वियोग योगसंज्ञितम्। श्रीमद्भगवद्गीता, 6/23
11. संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मा परमात्मनो। याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/8
12. चित्तस्य भूमयश्चित्तस्यावस्थाविशेषाः। ताश्च क्षिप्तमूढ़विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धामिति-भोजवृत्तिः, योगसूत्र 1/2
13. तत्र सदैव रजसा तेषु तेषु विषयेषु क्षिप्यमाणमत्यन्तमस्थिरं क्षिप्रम् । योगप्रदीपिका, पृ0 3
14. निरुद्धं निरुद्धसकलवृत्तिसंस्कारमात्रशेषम् । अत्र सर्ववृत्तिनिरोधेऽसम्प्रज्ञातः नागेशभट्टीयलघुयोगसूत्रवृत्तिः, पृ0 3
15. सर्व प्रत्युपभोगं यस्मात् पुरुषस्य साधयति बुद्धिः। सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम् ।। सांख्यकारिका, 37
16. दर्शनालव्यभूमिकत्वनवस्थितत्त्व नि चित्तविक्षेपास्तेन्तरायाः योगसूत्र, 1/30
17. दुःखदौर्मनस्यङ्गमेजत्वश्वासप्रश्वास विक्षेपसहभुवः- योगसूत्र, 1/31
18. तत्त्ववैशारदी, पृ0 25
19. राजमार्त्तण्डवृत्तिः, पृ0 5
20. तत्त्ववैशारदी, पृ0 25
21. कठोपनिषद्, 1/3/14
22. वही, 2/1/1
23. योगसूत्र, 1/13
24, श्रीमद्भगवद्गीता, 6/35
25. पातञ्जलयोगसूत्र, 1/14
26. पातञ्जलयोगसूत्र, 1/12
27. व्यासभाष्य, पृ0 46

●

जम्बू-कश्मीर का ऐतिहासिक, भौगोलिक तथ्य

अर्चना[*] एवं डॉ. शिल्पा सिंह[**]

जम्बू-कश्मीर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य, सुरम्य भौगोलिक स्थिति, सभ्य जन, झील झरनों के कारण देश-विदेश में सदैव चर्चा का विषय रहा है। कालान्तर में हिंसा और आतंकवाद का कारण बना। पूर्व में जब कश्मीर घाटी पहुंचना, देश-विदेश के पर्यटकों, अध्येताओं का सुन्दर स्वप्न होता था। पहलगांम, सोनमर्ग, गुलमर्ग और श्रीनगर ग्रीष्मकाल में पर्यटकों से पूर्ण हो जाते थे। लेकिन 1988-89 के पश्चात् परिस्थितियों में परिवर्तन आया श्री नगर के हाउस बोट और होटल ग्रीष्म ऋतु में भी रिक्त रहने लगे।

जम्बू-कश्मीर का क्षेत्रफल लगभग सवा दो लाख वर्ग किमी0 है इसका एक भाग पाकिस्तान के अधिकार में है। पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर या पाक-प्रशासित कश्मीर कहे जाने वाले इस हिस्से का क्षेत्रफल 78,114 वर्ग कि0मी0 बताया जाता है। इसका मुख्य शहर मुजफ्फराबाद है। सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रतिम प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण ही इसे ''पृथ्वी का स्वर्ग'' कहा जाता है। चहुओर हिमाच्छादित उत्तुंग शिखरों से घिरी झेलम नदी की सुन्दर घाटी कश्मीर की आत्मा है।

दिव्या वितस्ता रमते प्रशस्ता तस्यैव कीर्तिं दधती समन्तात्।
यस्यास्तटे श्री नगरं प्रसन्नं कश्मीर लक्ष्मीः सततं पुनाति।।[1]

राजधानी श्रीनगर एक प्राचीन और प्रख्यात नगर है जिसके मध्य भाग से झेलम नदी बहती है। कश्मीर को झेलम घाटी भी कहा जाता है। झेलम और कश्मीर एक-दूसरे का पर्याय रूप बन गये हैं। कश्मीर के लिए झेलम मात्र एक नदी है। यह उसके सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक और आर्थिक जीवन की सबसे सुन्दर और प्रवाहमान धरोहर भी है। प्राचीन-काल में हिदास्पस कहा जाता था। हिन्दू शासन काल में इसका नाम वेदस्ता था। कश्मीरियों के मध्य यह वेथू नाम से लोकप्रिय रही। वारामूला के बाद इसे काशूर दरिया कहते रहे हैं। जब किशन गंगा से मिश्रित होकर आगे प्रवाहित हुई तो इसका नाम झेलम पड़ा।

कश्मीर घाटी के कुछ क्षेत्र में केसर की खेती व्यापक स्तर पर होती है। पम्पोर इसका मुख्य केन्द्र है। झीलों, झरनों और नदियों की अप्रतिम घाटी के समान ही कश्मीरी जन भी अत्यन्त काव्यात्मक, सुन्दर, सभ्य-शालीन और सहिष्णु रहे हैं। प्राचीनकाल से ही यहाँ के मतावलम्बी एक साथ रहते हैं।

जम्बू संभाग में पहाड़, मैदान और कंकरीली, पथरीली पठार प्रत्येक ओर हैं। जम्बू शहर और आस-पास के क्षेत्रों में हिन्दू शासकीय केन्द्र रहा है। जनश्रुति के अनुसार प्राचीनकाल में इसका नाम जम्बू था और बाद में जम्मू पड़ा।

'जम्बू मंदिरों का शहर' कहा जाता है किला बाहू और रघुनाथ मंदिर जैसे-प्राचीन मंदिरों को नगर कहा जाता है।

अविजित-रण-कीर्ति डोंगरा-सैनिकानाम्
रघुपति-गृह-जम्बूं भूषयन्ती प्रशस्ता।
हिम-गिरि-चरणान्त प्रासरत् सा सशस्त्रम्
कृत शिविर-सनाथाऽभूद् वितस्ता-तटस्था।।[2]

वैष्णव देवी मंदिर जम्मू कटरा की पहाड़ियों पर बना है। अपने प्राकृतिक सौन्दर्य चीड़, देवदार के घने जंगल, नदियों और झरनों के कारण इस इलाकें को ''मिनी कश्मीर'' कहा जाता है।

जम्बू-कश्मीर अपने अप्रतिम सौन्दर्य और भौगोलिक सामरिक महत्त्व के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। इसकी एक सीमा चीन दूसरी पाकिस्तान को स्पर्श करती है। ऊँची और हिमाच्छादित पर्वत शृंखलाओं, दुर्गम दर्रों और बहुरंगी संस्कृति के कारण यह क्षेत्र देशी-विदेशी-पर्यटकों, शोधार्थियों और पर्वतारोहियों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र हैं।

नीलमत-पुराण में जम्मू-कश्मीर का विवरण प्राप्त होता है। कश्मीर के इतिहास में प्राप्त ऐतिहासिक भौगोलिक जीवन एवं इतिहास की विस्तृत जानकारी देने वाला पहला प्राचीन ग्रन्थ कल्हण की राजतरंगिणी है। ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव वश पुराने ग्रन्थकारों को 52 राजाओं का इतिहास ज्ञात ही नहीं था। उनमें से गोनन्द इत्यादि चार राजाओं का इतिवृत्त हमें नीलमत पुराण से ज्ञात हुआ-

द्वापञ्चाशतमाम्नायभ्रंशाद्यान्नास्मरन्नृपान्।
तेभ्यो नीलमतादृष्टं गोनन्दादिचतुष्टयम्।।[3]

कालान्तर में अशोक ने इसे मौर्य साम्राज्य में विलय कर लिया। इसके पश्चात् अशोक ने श्रीनगर का निर्माण करवाया और अशोक कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध बन गया। तत्पश्चात् उसने देश-भर में बौद्ध-धर्म और दर्शन का प्रचार किया उसने अनेक बौद्ध विहार और शिक्षण संस्थान निर्मित किये परन्तु कश्मीर में बौद्धधर्म और दर्शन का प्रचार-प्रसार बाद में हुआ। कुषाण राजाओं विशेष रूप से

* शोधच्छात्रा, संस्कृत-विभाग, कला-संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत-विभाग, कला-संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

कनिष्क के समय में अफगानिस्तान, कश्मीर और मध्य एशिया में अनेक बौद्ध बिहार और दार्शनिक संस्थान अस्तित्व में आये।

सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग की भारत यात्रा के समय कश्मीर में कारकोटा वंश का शासन चल रहा था। ललितादित्य इस वंश का प्रमुख राजा स्वीकृत हुआ। उसने लगभग 35 वर्ष कश्मीर पर शासन किया, वह विष्णु का भक्त था। करकोटा वंश का शासनकाल नौवीं शताब्दी में ही समाप्त हो गया। तत्पश्चात् अवन्तिवर्मन नामक एक तेजस्वी राजा ने उप्तला वंश की नींव रखी अवंतिवर्मन के काल में कश्मीर अत्यधिक उन्नत और शान्तमुक्त था। उसने किसी क्षेत्र पर युद्ध भी नहीं किया। उसने निर्माण और विकास के कार्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया इस वंश की स्थापना जयादेवी नामक एक महिला ने अपने सहयोगियों के साथ की थी। लेकिन अवंतिवर्मन के बाद यह राजवंश अधिक समय तक स्थायी न रह सका। दशवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही यह नष्ट हो गया।[4]

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में महमूद गजनवी ने यहां दो बार आक्रमण किया, परन्तु यह जम्बू-कश्मीर की सत्ता को अधिकृत नहीं कर सका। संभवतः पीर पंजाल के चारों ओर विस्तृत बर्फ ने उसे सफल नहीं होने दिया।

कुछ इतिहासकारों का मन्तव्य भ्रमपूर्वक है कि शकारि ही विक्रमादित्य थे कश्मीर में आपसी वैमनस्य के कारण राजा प्रतापादित्य के राज्यकाल तक बना रहा, हर्ष आदि राजाओं का कुछ समय तक यहां आधिपत्य रहा है। यद्यपि कश्मीर उसका परम्परा प्राप्त राज्य नहीं था। तथापि जैसे कोई पति अपनी दुलहिन का लालन-पालन करता है। उसी प्रकार राजा प्रतापादित्य ने बड़ी तत्परता के साथ किया, बत्तीस वर्षों तक पृथ्वी का शासन करके चन्द्रमा सदृश चमकता रहा उस राजा ने अपने पिता का राज्य प्राप्त करके प्रजा का कल्याण करते हुए 32 वर्ष तक सुचारु रूप से शासन किया, उसके बाद उसका पुत्र तुंजीन अपनी दिव्य प्रभावशाली रानी वाक्पुष्टा के साथ शासन करता हुआ प्रजाजनों को आनन्द करने लगा जैसे चन्द्रमा की कला, गंगा की धारा शंकर जी के जटाजूट की शोभा बढ़ाती है, वैसे ही राजा तुंजीन और महारानी वाक्पुष्टा से उन दिनों कश्मीर की शोभा बढ़ रही थी। जिस तरह बिजली और बादल के संयोग से नाना प्रकार के रंगों वाला इन्द्र धनुष प्रस्तुत होता है, वैसे ही राजा जलौक और रानी वाक्पुष्टा से समस्त कश्मीर मण्डल को अनोखा सौन्दर्य प्राप्त हो रहा था, महान भाग्यशाली उस दम्पती ने धरती के आभूषण भगवान् तुंगेश्वर जी का मंदिर बनवाकर कटिका नाम की नगरी बसायी।

शकारिर्विक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः।

अन्यैरत्रान्यथाऽलेखि विसंवादि कदर्थितम्॥

इदं स्वभेदविधुरं हर्षादीनां धराभुजाम्।

कंचित्कालमभूद्भोज्यं ततः प्रभृति मण्डलम्॥

असपूर्वापि तेनोर्वी सपूर्वेव महीभुजा।

लालिता हृदयज्ञेन पत्या नववधूरिव॥

भुक्त्वा द्वात्रिंशतं वर्षान्भुवं तस्मिन्दिवं गते।

जलौकास्तत्सुतो भूमेर्भूषणं समपद्यत॥

पितुरेव समं कालं वृद्धिहेतोः स विद्युते।

विषुवत्पूर्णशीतांशुरिव शीतेतरार्चिषः॥

अथ वाक्पुष्टया सार्धं देव्या दिव्यप्रभावया।

भुवं तत्प्रभुवो भुञ्जंस्तुञ्जीनोऽरञ्जयत्प्रजाः॥

दंपतिभ्यामियं ताभ्यामभूष्यत वसुंधरा।

गङ्गामृगाङ्क खण्डाभ्यां जटाभूरिव धूर्जटेः॥

मण्डलं साध्वधत्तां तौ नानावर्णमनोरमम्।

शतहृदापयोवाहौ माहेन्द्रमिव कार्मुकम् ।।

चक्राते च महाभागौ विभ्रमाभरणं भुवः।

तुंगेश्वरं हरावासं कतिकाख्यं च पत्तनम् ॥[5]

जम्बू कश्मीर के ऐतिहासिक तथ्य में हूणों की प्रबलता ने इस राज्य की व्यवस्था को तहस-नहस कर दिया। हूणों का राजा मिहिरकुल इस प्रान्त का स्वेच्छाचारी शासक बना। सम्राट विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त और समुद्रगुप्त ने शक और हूणों को पराजित करके उनका प्रभुत्व समाप्त कर दिया विक्रमादित्य के प्रतिनिधि प्रतापादित्य और मातृगुप्त ने इस राज्य की व्यवस्था को सुन्दर और गतिमान बनाया विश्व प्रसिद्ध महाकवि कालिदास का गहरा भावात्मक संबंध इतिहासकार इस धरा से मानते हैं। महाकवि ने हिमालय के सौन्दर्य का जो वर्णन अपनी रचनाओं में किया है उनके समूचे सौन्दर्य की समीक्षा करते समय पता चलता है कि उनके यहां प्रकृति सौंदर्य बोध से गहरा सम्बन्ध था। कश्मीर के इतिहास में जिन शासकों का वर्णन आता है उनमें महाराज प्रवरसेन, चन्द्रापीड और ललितादित्य जैसे- लोकप्रिय शासक हुए, जिन्होंने भारत के विभिन्न प्रान्तों से विद्वानों को बुलाकर उनका समुचित सम्मान किया जिससे दर्शन, कला, धर्म ज्ञान, विज्ञान, वास्तुकला, शिल्प, तथा चिकित्सा आदि का विकास और विस्तार हुआ तथा कश्मीर बौद्धिक, सांस्कृतिक मनीषा को प्रतिष्ठा और गौरव प्राप्त हुआ। इसी काल में सुन्दर साहित्य के रचनाकार, भाषाविद्, शिक्षाविद् कवि दार्शनिक और व्याकरणाचार्य हुए।

पतंजलि मुनि जैसे व्याकरण के महाभाष्यकार कैयट, मम्मट और जैयट इसी धारा में जन्में विश्वप्रसिद्ध राजतरंगिणी के महान् लेखक कल्हण, कवि विल्हण जिन्होंने विक्रमांकदेवचरित की रचना की, कश्मीर से चलकर कन्याकुमारी पधारे, जहाँ दक्षिण भारत में उस समय चालुक्य वंश के यशस्वी सम्राट त्रिभुवन ने उन्हें अपने

दरबार में राजकवि के पद से सुशोभित किया और यथोचित उनका सम्मान किया जल्हण भी कश्मीर के प्रसिद्ध रचनाकार और कवि रहे। महाकवि क्षेमेन्द्र ने दशावतारचरित, समान मातृका जातकमात्रा तथा रामायण मंजरी जैसी सुंदर रचनाओं से साहित्य समृद्ध किया। मम्मट का काव्यप्रकाश, साहित्य में आज भी उनका उत्कृष्ट मानक ग्रन्थ माना जाता है।

साहित्य, दर्शन और कला क्षेत्र के विकास में शंकराचार्य के अद्वैत के स्थान पर शैव दर्शन का सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव रहा है। कश्मीर का शैव दर्शन प्रत्यभिज्ञावाद का समर्थक है, जो बौद्धों के शून्यवाद और शंकराचार्य के अद्वैतवाद से अधिक सरल, सहज प्रेरणाग्राही है।[6]

कश्मीर का इतिहास कश्यप ऋषि से सम्बन्धित है। कश्यप मेरु का अपभ्रंश होता हुआ कश्मीर हो गया कथा रतिसर तथा नीलमत पुराण में भी कश्मीर का व्यापक वर्णन उपलब्ध है। कल्हण ने अपनी राजतंरगिणी में कल्प के आरम्भ से छः मन्वन्तर तक हिमालय के मध्य में अगाध जल से परिपूर्ण सतीसर नाम का एक महान सरोवर था। उसके बाद वैवस्वत नाम के सप्तम मन्वन्तर में महर्षि कश्यप ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं द्वारा उस सरोवर में रहने वाले जलोद्भव नाम के असुर को मरवाकर सरोवर भूमि पर कश्मीर मण्डल की स्थापना की-

पुरा सतीसरः कल्पारम्भात्प्रभृति भूरभूत्।

कुक्षौ हिमाद्रेरर्णोभिः पूर्णा मन्वन्तराणि षट्।।

अथ वैवस्वतीयेऽस्मिन्प्राप्ते मन्वन्तरे सुरान्।

द्रुहिणोपेन्द्ररुद्रादीनवतार्य प्रजासृजा।।

कश्यपेन तदन्तःस्थं घातयित्वा जलोद्भवम्।

निर्ममे तत्सरो भूमौ कश्मीरा इति मण्डलम्।।[7]

बारहवीं शताब्दी में कश्मीरी से पंडित जयरथ उत्पन्न हुए थे। पृथ्वीराज विजय का उल्लेख किया है उसने रचनाकार का नाम नहीं दिया है, पृथ्वीराज विजय में काश्मीरी कवि जयानक की उपस्थिति दिखायी गयी है। आधुनिक विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि रचना जयानक की है, ग्रन्थ में रचनाकार अपना केवल इतना ही परिचय देता है कि वह उपमन्यु के वंश में उत्पन्न हुआ था। शारदा ने मातृवत् लालन-पालन किया। शारदा कश्मीर का प्राचीन नाम है। कश्मीर को ''**शारदा क्षेत्र**'' तथा ''**शास्त्रपीठ**'' भी कहते हैं। शारदा देवी का मन्दिर इस समय पाकिस्तान में अनाधिकृत रूप से है।

राजाओं के समय में भारत आगमन करने वाले विदेशियों का स्वागत किया जाता था। धार्मिक स्वतंत्रता देने वाले उस समय उत्तर पश्चिम में केवल जम्बू-कश्मीर स्वतन्त्र हिन्दू राज्य बच गया था, कश्मीर की सीमा पर त्रस्त नौकरी के लिए इच्छुक पारस्परिक कलह से भयभीत अन्य जातियां कश्मीर की तरफ आने लगी। कश्मीर साहसी व्यक्तियों के लिए आदर्श स्थान माना गया उनके प्रवेश को रोका नहीं गया राजा ने अपने शरणार्थियों के लिए आश्रय एवं जीविका दी।

राजा की इस मुक्त आश्रय नीति के लिए काश्मीर की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था बिगड़ती गयी विदेशियों का एक समूह बन गया उन्हें काश्मीर की सामाजिक, संस्कृति-सभ्यता और इतिहास से प्रेम नहीं था। वह जीविका के अन्वेषण से आये थे, उनका एक मात्र पेशा था कश्मीर से अधिक से अधिक लाभ उठाना। ऐसी नीति ने कश्मीर का सर्वनाश कर दिया। कश्मीर की स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती गयी। उनमें से एक शाहमीर भी था जिसके वंश का वर्णन जोनराज द्वारा किया जाता है।[8]

जम्बू कश्मीर के कैलास पर्वत में भौगोलिक छटा दर्शनीय है। चारों ओर-फैली हुई हिमाच्छादित पर्वत श्रृखंलाएं, श्वेत शिलाओं के आसन पर कल-कल नाद करते हुए पवित्र जल से परिपूर्ण सैकड़ों झरनों से मुक्त, अधिक सर्दी होने के कारण सूर्य की किरणों अत्यधिक सुशोभित करने वाली स्वयं ऋतुराज जिसका उपभोग करता है। ऐसे मुग्ध मनोहर पवन मन्द-मन्द प्रवाहित होने वाली शीतलता को प्राप्त करती है।

पुष्पैरनन्तैः परिभूषितांऽगः स्वयं बसन्तः परिसेवते यम्।

तत्रैव मुग्धः पवनोऽपि मन्दं मन्दं वहन् शीतलतामुपैति।।[9]

रामायण और महाभारत के अनुसार भी भौगोलिक वर्णन प्राप्त होता है। विन्ध्य-पर्वत के दक्षिण का पूरा क्षेत्र आर्येत्तर जातियों और वनों से भरा पड़ा है। महाभारत से पता चलता है कि दक्षिण भारत में उच्च संस्कृति भी, आर्य राजाओं का शासन भी था। दक्षिण में तीर्थों का उल्लेख भी उपलब्ध है। इसी प्रकार गोदावरी, भीमरथी इत्यादि नदियों तथा तीर्थों का वर्णन है। ऐसा कहा गया है कि विन्ध्य पर्वत के मध्य में स्थित यह प्रदेश अत्यधिक सुख-शान्ति से युक्त तथा देवताओं से रमणीय है। जहां पर शक्ति सम्पन्न देवमूर्ति अपने निवास स्थल को धन्य करती है।

अयं स देशः सुखदः सुराणां सदाऽस्ति रम्यो नगविन्ध्यमध्यः।

शक्तिः स्वयं यत्र निवासधन्या विराजते मूर्तिमती प्रसन्ना।।[10]

भारत के विभिन्न भू-भागों का, नदियों, पर्वतों, झीलों, वनों, मरुस्थलों, नगरों, प्रदेशों और जातियों का भी अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ विवरण प्रस्तुत है। पुराणों की सूचनाओं के आधार पर भारत विभिन्न क्षेत्रों के भौगोलिक अध्ययन से आज भी लोकप्रिय है। जो भौगोलिक महत्त्व का परिचायक है।

सन्दर्भ सूची :-

1. जम्बू कश्मीर सुषमा रत्नम्, 1/70, लेखक- पं0 श्री हरिकान्त (झॉ बख्शी) शर्मा, प्रकाशन, वाराणसी भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, संवत् 2044

2. जम्बू कश्मीर सुषमा रत्नम्, 1/15, लेखक- पं0 श्री हरिकान्त (झॉ बख्शी) शर्मा, प्रकाशन, वाराणसी भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, संवत् 2044

3. राजतरंगिणी, 1/16, लेखक, श्री कल्हण, प्रकाशन, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, सन्/ संस्करण 2015

4. कश्मीर विरासत और सियासत, पृ0 15, लेखक-उर्मिलेश, प्रथम संस्करण, 2006

5. राजतरंगिणी 2/6-14, लेखक, श्री कल्हण, प्रकाशन, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, सन्/ संस्करण 2015

6. खोया हुआ कश्मीर (इतिहास के दर्पण में) पृ0 33, लेखक-विजय गुप्त, प्रथम संस्करण, 2008

7. राजतरंगिणी, 1/25-27 लेखक, श्री कल्हण, प्रकाशन, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, सन्/ संस्करण 2015

8. राजतरंगिणी, पृ0 76, लेखक- जोनराज, प्रकाशन, संस्कृत सीरीज आफिस, संस्करण-प्रथम, वि0 संवत्, 2028

9. जम्बू कश्मीर सुषमा रत्नम् 1/69, लेखक- पं0 श्री0 हरिकान्त (झॉ ''बख्शी'') शर्मा, प्रकाशन, वाराणसी भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, संवत् 2044

10. जम्बू कश्मीर सुषमा रत्नम् 1/19, लेखक- पं0 श्री0 हरिकान्त (झॉ ''बख्शी'') शर्मा, प्रकाशन, वाराणसी भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, संवत् 2044

●

विद्यार्थी जीवन के परिप्रेक्ष्य में, आयुर्वेद में उल्लिखित स्वास्थ्य विषयक निर्देशों की उपादेयता

विशाल गुप्ता एवं डॉ. वन्दना वर्मा***

वर्तमान समय में विद्यार्थियों की स्वास्थ्य से सम्बन्धित दैनिक क्रियाकलाप एक गम्भीर चिंता का विषय बनती जा रही है। आधुनिकता से जुड़ी विद्यार्थियों की आज की जीवनशैली उनके असन्तुलित शारीरिक-मानसिक विकास को बढ़ावा दे रही है। शरीर का ये कुसमायोजन मोटापा, मानसिक अस्थिरता, कुपोषण, एकाग्रता का अभाव आदि रूपों में भली-भाँति दिखलाई भी पड़ता है, जिनसे हमारे आज के विद्यार्थी पीड़ित है। दूसरी ओर भारतीय चिकित्सा पद्धति अर्थात् आयुर्वेद में एक स्वस्थ जीवनशैली के विविध आयाम यथा-दिनचर्या, ऋतुचर्या, रात्रिचर्या, सदवृत्त आदि पर विस्तार पूर्वक वर्णन प्राप्त होता है। अब यदि इन जीवनशैली विषयक निर्देशों की विषयवस्तु को विद्यालय शिक्षा पाठ्यक्रम के अंग के रूप में जोड़ दिया जाय तो निश्चित रूप से विद्यार्थी जीवन से ही एक स्वस्थ व्यक्ति के रूप में स्वस्थ एंव सुखी समाज की नीव डाली जा सकती है। इसी सुखी एवं स्वस्थ समाज की संकल्पना हमारे आयुर्वेद में आज से हजारों साल पहले से ही निहित है। प्रस्तुत लेख इन्हीं स्वास्थ्य विषयक निर्देशों को आयु अर्थात् जीवन, आहार अर्थात खान-पान विहार अर्थात रहन-सहन, निद्रा अर्थात् विश्राम एवं सदवृत्त आचरण के उपस्तम्भों में वर्गीकृत कर उनके भावार्थ को स्पष्ट करने का प्रयास है। आयुर्वेद में उल्लिखित है-ः

''त्रयः उपस्तम्भाः। आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्य च सति।''[1]

अर्थात स्वस्थ शरीर को धारण करने वाले तीन स्तम्भ हैः आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य। इसी वर्गीकरण को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत लेख भी तीन उपस्तम्भो में वर्गीकृत है

(क) आहार सम्बन्धित

(ख) निद्रा सम्बन्धित

(ग) ब्रह्मचर्य सम्बन्धित

उल्लिखित सूक्ति एवं श्लोक महर्षि चरक द्वारा प्रतिसंस्कारित चरक संहिता एवं महर्षि सुश्रुत द्वारा विरचित सुश्रुत संहिता से उद्धृत है जिन्हें मनुष्य के स्वास्थ्य के परिरक्षण हेतु निर्देशित किया गया हैं इन निर्देशों का पालन कर हम स्वयं अपने जीवन में एवं अपने आगामी पीढ़ियों के जीवनशैली में एक सकारात्मक परिमार्जन लाकर स्वास्थ्य सम्बन्धि समस्याओं के निदान में सहजता महसूस कर सकेंगे ऐसा इस लेख का विश्वास है। इससे पहले की हम इन श्लोको का अध्ययन करे हम यह जान लेते है कि आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ कौन है? आयुर्वेद ने स्वास्थ्य के सन्दर्भ में एक सर्वागीण विचारधारा प्रस्तुत की है जोकि इस प्रकार है-

1. **समदोषः सामाग्निश्च समधातु मलः क्रियाः।**

   प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थइति अभिधीयते।।[2]

सुश्रुत संहिता से संकलित यह श्लोक स्वस्थ व्यक्ति के मूल लक्ष्णों का उल्लेख करता है। स्वस्थ व्यक्ति वह है जिसके दोष, अग्नि, धातु एवं मल अपने सम्यक् क्रियात्मक अवस्था में हो व जिसकी आत्मा, इन्द्रियां, मन सभी अपने सन्तुलन की अवस्था में हो। इस प्रकार एक स्वस्थ व्यक्ति अपने शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक सभी आयामों से सन्तुलित होता है। इन्ही चारो आयामों को विश्व स्वास्थ्य संगठन W.H.O. ने भी स्वीकार कर स्वास्थ्य की सर्वागींण Wholistic approach की परिभाषा दी जो इस प्रकार है-

"Health is not merely absence of disease it is a state of Complete Physical, Mental & Social wellbeing."[3]

2. **सममांसप्रमाणस्तु समसंहननो नरः।**

   दृढेन्द्रियो विकाराणां न बलेनाभिभूयते।

   क्षुत्पिपासातपसहः शीतव्यायामसंसहः।

   समपक्ता समजरः सममांसचयो मतः।।[4]

प्रस्तुत श्लोक में एक स्वस्थ मनुष्य के शारीरिक संगठन एवं सम्यक् क्रियात्मक पक्ष का वर्णन किया गया है श्लोक में कहा गया है कि ऐसे व्यक्ति जिनके शरीर का संगठन सम्यक् हो,इन्द्रियाँ दृढ़ हो ऐसे मनुष्य को शारीरिक रोगों से कष्ट कम मिलता है। शरीर के संगठन के सम होने का आशय यह है कि न तो शरीर दुबला हो और न ही मोटा हो। और ऐसे सन्तुलित संगठन वाले शरीर को धारण करने वाले व्यक्ति भूख, प्यास के वेंगो को तथा धूप को सहन कर सकने वाले होते है। वे शीत (जाड़ा) व्यायाम (अधिक परिश्रम) को सहने वाले होते इनकी जठाराग्नि सम रहती है।

(क) आहार सम्बन्धितः

आगे की पंक्तियों में जीवनशैली से जुड़ी कुछ एक महत्वपूर्ण श्लोको का उनके हिन्दी अर्थ के साथ उल्लेख प्रस्तुत है-

* शोध छात्र, (शिक्षाशास्त्र) क्रियाशारीर विभाग, आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** असिस्टेंट प्रोफेसर, क्रियाशारीर विभाग, आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

1. मात्राशी स्यात्।

आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी॥[5]

प्रत्येक व्यक्ति को अपने अग्निबल (पाचन शक्ति) के अनुसार आहार द्रव्यों के सेवन का निर्देश दिया गया है। मनुष्य को सदैव मात्रापूर्वक भोजन करना चाहिए क्योंकि आहार की मात्रा हमारे पाचन शक्ति के अनुसार ही हितकर है।

2. यावद्धयस्याशनमशितमनुपहत्य प्रकृति

यथाकालं जरां गच्छति तावदस्य मात्राप्रमाणं वेदितव्य भवति॥[6]

इस श्लोक में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि आहार की जो मात्रा भोजन करने वाले की प्रकृति अर्थात-सामान्य शारीरिक क्रियाओं में बिना बाधा पहुँचाएं यथा समय पच जाए वही उस व्यक्ति के लिए आहार की एक सन्तुलित एवं प्रमाणिक मात्रा है।

3. मात्रावद्धयशनमशिमनुपहत्यप्रकृति बलवर्णसुखायुषा

यौजयत्युपयोक्तारमवश्यमिति॥[7]

यह श्लोक मात्रानुकूल ग्रहण किए गए आहार से प्राप्त लाभ पर प्रकाश डालता है श्लोक से स्पष्ट है कि मात्रापूर्वक भोजन से मनुष्य निश्चय ही बल, वर्ण, सुख और पूर्ण आयु प्राप्त करता है। अर्थात बिना प्रकृति को आक्षेपित किए ग्रहण किया गया भोजन पूर्ण आयु को प्रदान करने वाला होता है।

4. च्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं नेयानुवर्तते।

अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्।[8]

यह श्लोक आहार द्रव्यों के प्रयोग के व्यापक सिद्धान्तों का सारांश प्रस्तुत करता है। ऐसे आहार-द्रव्यों का नित्य सेवन करना चाहिए जिससे स्वास्थ्य का अनुरक्षण (Maintenance) होता रहे अर्थात उत्तम स्वास्थ्य बना रहे और जो रोग उत्पन्न नहीं हुए है उनकी उत्पत्ति भी न हो सकें।

5. पवित्रं वृष्यमायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम्।

शरीरबलसन्धानं स्नानमोजस्करं परम्॥[9]

प्रस्तुत श्लोक हमारे जीवन में स्नान के महत्त्व को प्रकट करता है श्लोक से स्पष्ट है कि स्नान करने से शरीर में पवित्रता आती है। इससे जीववर्धक शक्तियों में वृद्धि होती है। आयु के लिए हितकर होता है, श्रम (थकावट) स्वेद (पसीना) तथा मल को दूर करता है तथा शरीर में बल और ओज को बढ़ाता है।

6. उदमन्थं दिवास्वप्रमवश्यायं नदीजलम्॥

व्यायाममातपं चैव व्यावयं चात्र वर्जयेत्।

पानभोजनसंस्कारान् प्रायः क्षौद्रान्वितान् भजेत्॥[10]

उपरोक्त श्लोक वर्षा ऋतु में अहितकर आहार-विहार की व्याख्या पर आधारित है। श्लोक में निहित है कि वर्षाऋतु में मनुष्य को जल में घुला सत्तु के सेवन से दिन में आलस्य करने से, नदी के जल को पीने से व्ययाम एवं धूप में बैठने से बचना चाहिए। वर्षाऋतु में खाने पीने की सभी चीजे बनाते समय उनमें मधु अवश्य मिला लेना चाहिए।

7. सततं व्याधितावेतावतिस्थलकशौ नरौ।

सततं चोपचर्यौ हि कर्शनैर्बृंहणैरपि॥

स्थौल्यकार्श्ये वरं कार्श्यं समोपकरणौ हि तौ।

यद्युभौ व्याधिरागच्छेत् स्थूलमेवातिपीडयेत्॥[11]

उद्धृत श्लोक शरीर के मोटापाग्रस्त एवं दुर्बलता जनित होने की निन्दा करता है। श्लोक के अनुसार मोटापा व दुर्बलता दोनों ही स्थितियाँ हानिकारक है लेकिन फिर भी मोटापा, अधिक हानिप्रद है। यद्यपि अत्यधिक मोटे एवं अत्यधिक दुबले दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों के शरीर में शारीरिक व्याधियों के होने की सम्भावना प्रबल होती है लेकिन इन दोनों ही स्थितियों में मोटे व्यक्तियों की अधिक हानि होती है अतः मोटापे से बचना चाहिए।

(ख) निद्रा सम्बन्धित-

1. यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।

विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥[12]

इस श्लोक में निद्रा की आवश्यकता एवं इसके महत्व की चर्चा की गयी है। मन और इन्द्रियों का निरन्तर विषय संयोग चलता रहता है। इसलिए उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है कि जब कार्य करते-करते शरीर थक जाता है तब इन्द्रियों के विश्रामर्थ मनुष्य सोता है। मन और इन्द्रियों की थकान काल, स्वभाव तथा परिश्रम, से हो सकती है। इस प्रकार मनोयुक्त इन्द्रियों का विषयों से मुक्त होना ही निद्रा की स्थिति है।

2. रात्रौ जागरणं रूक्षं स्निग्धं प्रस्वपनं दिवा।

अरूक्षमनभिष्यन्दि त्वासीनप्रचायितम्॥[13]

उपरोक्त लिखित श्लोक इस बात की व्याख्या करता है कि अनुचित रात्रि जागरण से शरीर में वात की वृद्धि होती है जिससे शरीर रूक्ष हो जाता है। दिन में शयन से कफ की वृद्धि होती है परन्तु बैठे-बैठे थोड़ा सोना अर्थात झपकी ले लेना न ही वात को बढ़ाता है और न ही कफ को बढ़ाता है।

3. तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च
मनः शरीरश्रमसम्भवा च।

आगन्तुकी व्याध्यनुवर्तिनी

च रात्रिस्वभावप्रभवा च निद्रा॥[14]

प्रस्तुत श्लोक में निद्रा का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। शरीर में तमोगुण के प्रधान से जो निद्रा उत्पन्न होती है उसे तमोभवा कहते है प्रायः यह निद्रा मृत्यु के समय में आती है। कफ की अधिकता से आने वाली निद्रा का नाम श्लेष्मसमुद्भवा है। जब दैनिक थकान से निद्रा आए उसे मन शरीर श्रमसम्भवा कहते है। और चौथी निद्रा आगन्तुकी, यह निद्रा अरिष्ट रुप में आती है यद्यपि तमोभवा निद्रा भी अरिष्ट रुप में ही आती है। पर यह निद्रा सकारण है इसमें तमोगुण की अधिकता होकर सारे स्रोत अवरुद्ध हो जाते है तब यह निद्रा आती है, यही भिन्नता है।

इस प्रकार उपरोक्त श्लोकों के माध्यम से हमे ज्ञात होता है कि भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद में स्वास्थ्य-विषयक निर्देश आज के आधुनिक जीवनशैली में भी अति प्रसांगिक है। संयुक्त राष्ट्र संघ United Nation Organization ने भी अपने हाल ही के घोषणापत्र Declaration[15] में भी विश्व के अनेक देशों में प्राचीन समय से ही प्रचलित Contemporary traditional medical practices के प्रोत्साहन, परिरक्षण एवं संवर्धन की जोरदार वकालत की ही जिससे एक क्षेत्र विशेष के रहने वाले निवासी (Habitant) अपने शारीरिक व्याधियों का निराकरण उस क्षेत्र विशेष में उपलब्ध पारम्परिक चिकित्सा पद्धति से कर एक स्वस्थ समाज की नीव डाल सकें।

(ग) ब्रह्मचर्य सम्बन्धितः-

1. **ब्रह्मचर्यशब्देन इन्द्रियसंयमसौमनस्यप्रभृतयों ब्रह्माज्ञानानुगुणा गृहान्ते।[16]**

ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है ब्रम्ह+चर्य। ब्रह्म से आशय सत्य ज्ञान से है एवं चर्य अर्थात आचरण। इसप्रकार ब्रह्मचर्य से तात्पर्य सत्य ज्ञान की प्राप्ति हेतु किया गया आचरण है। चक्रपाणि के मतानुसार ब्रह्मचर्य का आशय इन्द्रिय एवं मन के संयम से है जिससे सत्य ज्ञान की उत्पत्ति होती है। आयुर्वेदाचार्यों के मतानुसार ब्रह्मचर्य व सदवृत्त के पालन से व्यक्ति आरोग्य एवं सभी इन्द्रियों पर विजय दोनों प्राप्त कर सकता है।

2. **न वेगान धारयेद्धीमाज्जातान मूत्रपुरीषयोः।**
   न रेतसो न वात्स्य न च्छर्द्याः क्षवथोर्न च॥
   नोदारस्य न जृम्भाया न वे गान- त्पिपासयोः
   न वाष्पस्य न निद्राया निःश्वासस्य श्रमेणच॥[17]

महर्षि चरक कहते है कि शरीर के दैनिक-क्रिया संचालन में कुछ ऐसे वेग होते है जिन्हे बुद्धिमान व्यक्तियों को धारित नहीं करना चाहिए। ये वेग है मूत्र, पुरीष, शुक्र, वात, वमन, क्षवथु (छीक) डकार, जम्भाई, भूख, प्यास, आँसू, निद्रा एवं परिश्रम से उत्पन्न श्वास का वेग।

3. **विद्या बृंहणानाम्, इन्द्रियजयो नन्दनानां**
   तत्वावबोधोहर्षणाना ब्रह्मचर्यमयना नामिति
   एवमायुर्वेदविदो मन्यन्ते॥[18]

श्लोक में निर्देशित किया गया है कि बृहण करने योग्य अर्थात ग्रहण करने योग्य विद्या है। विद्या जो हमें सत्य ज्ञान ग्रहण करने योग्य बनाती है। विद्या ही हमे इस बात का ज्ञान देती है कि हमारे लिए क्या हितकर है और क्या अहितकर है। विद्या प्राप्ति का हमें सदैव प्रयास करते रहना चाहिए क्योंकि सत्य ज्ञान की प्राप्ति से मन को आनन्द की प्राप्ति होती है। इन्द्रियों का नियमन अर्थात अपनी अहितकर इच्छाओं का नियन्त्रण परम सुखदायी है।

4. **इमास्तु धारयेद्वेगान हितार्थी प्रेत्य चेह च।**
   साहसा नामशास्तानां मनोवाकाय कर्मणाम॥
   लोभ शोक भय क्रोध मान वेगान विधारयेत।
   नैर्लज्ज्येर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाँश्च बुद्धिमान॥[19]

आयुर्वेद में यह भी वर्णित है कि कुछ ऐसे भी वेग है जिन्हें धारित किए रहने मे ही अपना और समाज का हित है। धारणीय वेगो को रोकने का सैद्धान्तिक आधार मन, वचन एवं शरीर के निन्दित कर्मो के वेग को रोकना है। बुरे मानसिक धारणीय वेग- लोभ, शोक, भय, क्रोध अहंकार, निर्लज्जता, ईर्ष्या, अतिराग (प्रेम) अभिध्या (दूसरे का धन लेने की इच्छा) आदि मानस वेगो को रोकने में ही बुद्धिमानी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प0 काशीनाथ एवं डॉ0 गोरखनाथ चतुर्वेदी द्वारा व्याख्यायित चरक संहिता, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी संस्करण 2009, चरक संहिता सूत्रस्थान 11/35, पृ0सं0 227
2. सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थान 15/48, पृ0सं0 305, चौखम्बा ओरीयन्टटिला, वाराणसी
3. Alma Ata Declaration 6/12/1978, Basic Document Supplement Published 2006 Oct.
4. प0 काशीनाथ एवं डॉ0 गोरखनाथ चतुर्वेदी द्वारा व्याख्यायित चरक संहिता, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी संस्करण 2009, चरक संहिता सूत्रस्थान 11/35, पृ0सं0 413,414 चरक संहिता सूत्रस्थान 21/18,19
5. वहीं, चरक संहिता सूत्रस्थान 5/3 पृ0सं0 102
6. वहीं, चरक संहिता सूत्रस्थान 5/4, पृ0सं0 103
7. वहीं, चरक संहिता सूत्रस्थान 5/8, पृ0सं0 105
8. वहीं, चरक संहिता सूत्रस्थान 5/13, पृ0सं0 107
9. वहीं, चरक संहिता सूत्रस्थान 5/94, पृ0सं0 130
10. वहीं, चरक संहिता सूत्रस्थान 6/35, 36, पृ0सं0 143

11. वहीं, चरक संहिता सूत्रस्थान 21/17, पृ0सं0 412,413
12. वहीं, चरक संहिता सूत्रस्थान 21/35, पृ0सं0 416
13. वहीं, चरक संहिता सूत्रस्थान 21/50, पृ0सं0 420
14. वहीं, चरक संहिता सूत्रस्थान 21/58, पृ0सं0 422
15. Global Report on tradition & Complementary medicine ISBN 978-92-4-151543-6 WHO 2019
16. चक्रपाणि कृत आयुर्वेद दीपिका रक सूत्र पर चक्रपाणि की टीका चक्रपाणि की व्याख्या अध्याय 11, श्लोक संख्या 35, चौखम्भा भारती अकादमी वाराणसी
17. प0 काशीनाथ एवं डॉ0 गोरखनाथ चतुर्वेदी द्वारा व्याख्यायित चरक संहिता, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी संस्करण 2009, पृ0सं0 150, चरक संहिता सूत्रस्थान 7/3,4
18. वहीं, चरक संहिता सुत्र स्थान 30/15, पृ0सं0 584
19. वहीं, चरक संहिता सूत्रस्थान 7/26,27, पृ0सं0 16
20. कुशवाहा एच0सी0, चरक संहिता, चौखम्बा ओरीयन्टटिला, वाराणसी
21. त्रिपाठी बी0, चरक संहिता चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी
22. अनुवाद हेतु डॉ0 पृथ्वी नाथ पाण्डेय द्वारा विरचित नालन्दा सामान्य हिन्दी नालन्दा पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।
23. सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थान 15/48, पृ0 305, चौखम्बा ओरीयन्टटिला, वाराणसी
24. प0 काशीनाथ एवं डॉ0 गोरखनाथ चतुर्वेदी द्वारा व्याख्यायित चरक संहिता, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी संस्करण 2009

●

निदान में नाड़ी-विज्ञान की उपयोगिता

डॉ. राजेश कुमार मौर्य डॉ. नरेन्द्र शंकर त्रिपाठी ** एवं डॉ.सुशील कुमार दूबे ****

नाड़ी-विज्ञान एक ऐसी विद्या है, जो आयुर्वेदीय अष्टांग चिकित्सा-पद्धति का अभिन्न, अतिमहत्त्वपूर्ण तथा विशिष्ट अंग है। यह आयुर्वेद के मनीषियों द्वारा आविष्कृत तथा विकसित ऐसा विज्ञान है, जिसका स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य तथा व्याधियों के निदान में प्रामाणिक रूप से अप्रतिम तथा अद्भुत योगदान है। यह एक ऐसी विद्या है, जो विशुद्ध प्रायोगिक तथा रहस्यात्मक भी है। इसमें प्राचीन भारतीय ऋषियों की उत्कृष्टततम विज्ञान, मेधाशक्ति तथा अनुभव के दर्शन होते हैं। आज का जनमानस एवं प्रबुद्ध वर्ग का आकर्षण, पुनः 'नाड़ी-विज्ञान' की ओर बढ़ रहा है, जो आने वाले समय के लिये 'नाड़ी-विज्ञान' के लिए एक शुभ संकेत है। यह सरल एवं व्यवहारिक भी है।

शरीर का सुख-दुःख हृदय की परीक्षा से ज्ञात हो सकता है। नाड़ी-परीक्षा के द्वारा हृदय की गति का भी परीक्षण किया जाता है। शरीर का स्वास्थ्य तथा अस्वास्थ्य का प्रभाव हृदय पर पड़ता है, जिससे उसका स्फुरण प्रभावित होता है। यद्यपि हृदय का स्पंदन स्वयं हृदय के ऊपर निर्भर करता है। यदि हृदय सामान्य रूप से स्पंदित हो रहा हो तो हृदय सहित समस्त शरीर स्वस्थ होता है, किन्तु हृदयगति में यदि असामान्यता होती है तो शरीर में कोई न कोई असामान्यता हो सकता है। हृदय के कारण ही धमनियाँ तथा सिरायें स्पंदित होती हैं। इस प्रकार धमनियों के स्फुरण से शरीर के सुख-दुःख का ज्ञान हो जाता है।

देहिनां हृदयं देहं सुखदुःखप्रकाशकम्।

तत्संकोचविकासं च स्वतः कुर्यात् पुनः पुनः॥

संकोचने बहिर्याति वायुरन्तर्विकासतः।

ततो नाडयश्चलन्त्यसृग्धरायाः स्फुरणं ततः॥

(नाडीज्ञानम्1)

अतः नाड़ी-विज्ञान का अध्ययन आयुर्वेदीय निदान में अनिवार्यता होती है। इसी को ध्यान में रखते हुए आचार्य योगरत्नाकर द्वारा अष्टविध नाड़ी परीक्षा का वर्णन करते समय नाड़ी परीक्षा को प्रधानता दिया गया है।

रोगाक्रान्तशरीरस्य स्थानान्यष्टौ निरीक्षयेत।

नाड़ी मूत्रं मलं जिह्वां शब्दं स्पर्शं दृगाकृती॥

(योगरत्नाकर 1/35)

1. नाड़ी (Pulse)
2. मूत्र (Urine)
3. मल (Stool)
4. जिह्वा (Tongue)
5. शब्द (Voice)
6. स्पर्श (Touch)
7. दृक् (Eyes)
8. आकृति (Face)

बाह्य हेतुओं के द्वारा हृदय की गतियों में परिवर्तन आ सकता है जिससे धमनियों के स्पंदन में भी अंतर आ जाता है। हृदयगति अर्थात् नाड़ी की गति को प्रभावित करने वाले हेतु मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। ज्वरादि के कारण रक्त की उष्णता में वृद्धि होना अथवा अधिक व्यायाम या अतिपरिश्रम करने से हृदय के अलिन्द में रक्ताधिक्य होने के कारण हो जाता है। जिसके फलस्वरूप हृदय के स्पंदन पर प्रभाव पड़ता है, जो हृदय की गति को ज्यादा उत्तेजित कर देते हैं। जिसकी शुद्धि हेतु हृदय को अधिक कार्य करना पड़ता है, जिससे उसकी गति में वृद्धि होती है।

यदि हृदय स्वस्थ है और नाड़ी की गति तीव्र है, तो नाड़ी की गति में वृद्धि का कारण ज्वर हो सकता है। मानसिक चेष्टायें एवं विचार भी हृदय की गति को घटाती एवं बढ़ाती हैं। हृदय की गति एवं नाड़ी की गति का नियंत्रण वातनाड़ी के द्वारा भी होता है। तंत्रिका-तंत्र में, रक्तवाहिनियों की गति, संकोच तथा विकास के पृथक्-पृथक् केंद्र बताये गये हैं। इन गतिकेन्द्रों का त्वचा की संज्ञावहा नाड़ियों से विशेष सम्बन्ध होता है। वहीं से निरंतर प्रेरणा मिलती रहती है। इसलिए जीव नाड़ी को शरीर के सुख-दुःख का सूचक भी कहा गया है। हृदय में निरन्तर संकोच एवं प्रसार होता रहता है, जिसके कारण रुधिर शरीर की धमनियों की दीवालों पर भीतर से दबाव डालता रहता है, जिसके फलस्वरूप रुधिर शरीर में ज्यों-ज्यों हृदय से शरीर के दूसरे अंगों की ओर बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों यह रुधिर का दबाव घटता जाता है और अन्त में विकसित दक्षिण अलिन्द में जाकर शून्य हो जाता है। इस प्रकार से यह स्वस्थ व्यक्ति के हृदय में स्वाभाविक रूप से रहने वाला दबाव होता है, किन्तु जब यह दबाव सामान्य से अधिक घट जाता है या बढ़ जाता है, तो शरीर में अस्वस्थता का अनुभव होने लगता है जिसे

* जूनियर रेजीडेन्ट, क्रिया शारीर विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** सहायक आचार्य, क्रिया शारीर विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

*** सहायक आचार्य, क्रिया शारीर विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

न्यून रक्तचाप तथा अधिक रक्तचाप कहा जाता है। इस प्रकार कुशल वैद्य नाड़ी-विज्ञान के अध्ययन के द्वारा शरीर में रोग के कारण का निश्चय कर सकता है, जिसके कारण नाड़ी-विज्ञान को रोग के निदान में सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है।

प्रातः कृतसमाचारः कृताचारपरिग्रहम्।

सुखासीनः सुखासीनं परीक्षार्थमुपाचरेत्॥ (नाड़ी विज्ञान 12)

नाड़ी परीक्षा का समय एवं विधि

नाड़ी परीक्षा का मुख्य समय प्रातःकाल होता है, अतः चिकित्सक को प्रातःकालीन शौच, स्नान से निवृत्त होकर नाड़ी परीक्षा करनी चाहिए। स्वयं चिकित्सक को सुखासन पर बैठकर तथा रोगी को भी सुखपूर्ण स्थिति में बैठाकर नाड़ी परीक्षा करें।

सामान्य रूप से रोगों में प्रातःकाल नाड़ी परीक्षा करने का विधान है, किन्तु यदि रोग तीव्र हो तो किसी भी समय नाड़ी परीक्षा किया जा सकता है। यह तो एक स्वाभाविक बात है कि प्रातःकाल विश्राम के उपरान्त व्यक्ति की नाड़ी की गति भी अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहती है और उस समय किये गये नाड़ी परीक्षण के द्वारा रोग का ज्ञान अधिक सटीक हो जाता है।

चिकित्सक के द्वारा किया जा रहा रोगी का उपचार अगर कई दिनों के लिये हो तो प्रतिदिन प्रातःकाल रोगी की नाड़ी की परीक्षा करके रोग की ह्रास-वृद्धि का निर्णय करना चाहिए। इसके अतिरिक्त नाड़ी परीक्षा में निम्न नियमों का पालन करना चाहिए-

वारत्रयं परीक्षेत धृत्वा-धृत्वा विमोचयेत्।

विमृश्य बहुधा बुद्धया रोगव्यक्तिम विनिर्दिशेत्॥
(योगरत्नाकर 1/46)

- चिकित्सक को तीन बार नाड़ी की परीक्षा करनी चाहिए। एक बार परीक्षा कर फिर कुछ क्षणों के लिये रोगी का हाथ छोड़कर पुनः परीक्षा करनी चाहिए और बुद्धि से विचार कर रोग का निश्चय करना चाहिए।
- नाड़ी-परीक्षा करते समय यदि रोगी से अधिक धन लेने की कामना रहेगी तो चिकित्सक की बुद्धि नाड़ी परीक्षा द्वारा रोगनिदान में असफल रहेगी, क्योंकि उसका लक्ष्य उस स्थिति में रोगी को ठीक करने के स्थान पर अर्थोपार्जन में होगा।
- जिस समय भिषक् रोगी की नाड़ी परीक्षा कर रहा हो, उस समय उसे मल-मूत्र का वेग नहीं होना चाहिए, अन्यथा वह एकाग्रचित होकर परीक्षा नहीं कर सकेगा।
- अंगूठे की बगल वाली प्रथम अंगुली तर्जनी होती है। उसके पश्चात् मध्यमा, तत्पश्चात् अनामिका होती है। अपने दक्षिण हस्त की इन्हीं तीन अंगुलियों से नाड़ी परीक्षा करनी चाहिए।

अन्गुलिभिस्तु तिसृभिर्नाडीमवहितः स्पृशेत्।

(भावप्रकाश 7/12)

- रोगी के हाथ को कोहनी पर से थोड़ा मोड़कर तथा उसकी अंगुलियों को थोड़ा सा फैलाकर अंगूठे की जड़ में नाड़ी का स्पर्श करना चाहिए। सूर्योदय से एक प्रहर तक का समय नाड़ी परीक्षा के लिए उत्तम होता है।

ईषद्विनम्रकृतकूर्परवामभागे हस्ते प्रसारिततदंगुलिसंधिके च।

अंगुष्ठमूलपरिपश्चिमभागमध्ये नाड़ी प्रभातसमये प्रहरं परीक्ष्य॥

(योगरत्नाकर 1/45)

- यदि रोगी लेटा हुआ हो तो उसके दोनों पार्श्वों में उसके दोनों हाथों को शिथिल स्थिति में रखकर तथा पैरों को थोड़ा मोड़कर नाड़ी परीक्षा करना उत्तम होता है।
- यदि रोगी बैठा हुआ है तो उसके हाथ की कोहनी से आगे का भाग चिकित्सक को अपने वाम हस्त पर रखकर परीक्षा करनी चाहिए। अंगुष्ठमूल से एक अंगुल नीचे अपनी तीन अंगुलियाँ रखकर परीक्षा करनी चाहिए।
- जब रोगी खड़ा हो, सोया हो या उसने तत्काल भोजन किया हो, थका हुआ हो, रोया हो, मैथुन से निवृत्त हुआ हो, तत्काल नहाया हो, धूप में से आया हो, बहुत भूखा हो या मद्यपानादि कर चुका हो, बीड़ी-सिगरेट पीने के तुरन्त बाद की स्थिति हो तो इस स्थिति में नाड़ी परीक्षा नहीं करना चाहिए।

सद्यःस्नातस्य भुक्तस्य क्षुत्त तृष्णातपशिलिनः।

व्यायामश्रान्तदेहस्य सम्यग् नाड़ी न बुध्यते॥
(भावप्रकाश 7/13)

- स्त्रियों के वाम हस्त की तथा पुरुष के दक्षिण हस्त की नाड़ी की परीक्षा करनी चाहिए।

पुंसो दक्षिणहस्तस्य स्त्रियो वामकरस्य तु।

अंगुष्ठमूलगां नाड़ी परीक्षेत भिषग्वरः॥
(भावप्रकाश 7/11)

तैलाभ्यंगादि में नाड़ी परीक्षा का निषेध

जब रोगी के शरीर में तैल की मालिश हुई हो या उसने तुरन्त भोजन किया हो अथवा वह सो रहा हो या सोकर तुरन्त ही जगा हो, इस स्थिति में नाड़ी परीक्षा करने से रोग का ज्ञान पूर्णरूप से नहीं हो पाता। यह ठीक वैसा ही है, जैसे बाढ़ के समय किसी नदी की थाह लेना असंभव होता है, क्योंकि उस समय नदी की गति तीव्र होती है।

तैलाभ्यंगे च सुप्ते च तथा भोजनान्तरे।

तथा न ज्ञायते नाड़ी यथा दुर्गतमा नदी॥ (नाड़ी विज्ञान 13)

तीन अंगुलियों से त्रिदोष का ज्ञान

हस्त के अंगुष्ठमूल में एक अंगुल छोड़कर प्रथम (तर्जनी) के नीचे वात सूचक नाड़ी, द्वितीय (मध्यमा) के नीचे पित्त नाड़ी तथा तृतीय अंगुली (अनामिका) के नीचे कफसूचक नाड़ी बहती है। ये तीनों दोषों की पृथक्-पृथक् नाड़ी के सूचक लक्षण हैं।

वायु दोष की नाड़ी चंचल होने के कारण सर्वप्रथम व्यक्त होती है। पित्त दोष उष्ण होने से उसकी नाड़ी मध्य में स्फुरित होती है। श्लेष्मा दोष की नाड़ी मन्द, स्थिर तथा पिच्छिल होने से उसकी नाड़ी सबसे अन्त में स्फुरित होती है।

आदौ च वहते वातो मध्ये पित्तं तथैव च।

अन्ते च वहते श्लेष्मा नाडिकात्रयलक्षणं॥

(नाड़ी विज्ञान 16)

स्वस्थ नाडी

जो पुरुष स्वस्थ है, उसकी नाड़ी ऐसे चलती है, जैसे कि धरती पर केंचुए की गति होती है। अथवा स्वस्थ पुरुष की नाड़ी मन्द गति के सर्प के समान स्पष्ट रूप से चलती है। उसमें स्थिरता रहती है, चंचलता प्रकट नहीं होती तथा उसमें सबलता होती हैं।

भूलता भुजगप्राया स्वच्छा स्वास्थ्यमयी सिरा।

सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता॥

(नाड़ी विज्ञान19)

दिनचर्या अनुसार स्वस्थ नाड़ी

पूर्णतः स्वस्थ व्यक्ति की नाड़ी प्रातःकाल में स्निग्ध होने से किंचित् मन्द रहती है। वही मध्यान्ह में उष्ण होकर कुछ अधिक गति से चलती है तथा सांयकाल में तीव्र वेग से चलती है।

सर्पजलौकादिगतिं वदन्ति विबुधाः प्रभंजनेन नाडीम्।

पित्तेन काकलावकभेकादिगतिं विदुः सुधियः॥

राजहंसमयूराणाम् पारावतकपोतयोः।

कुक्कुटस्य गतिं धत्ते धमनी कफसंवृत्तः॥

(नाड़ीप्रकाश 6-7)

वातादि गति का विशेष वर्णन

कुपित वायु की गति सर्प, जोक तथा बिच्छू की गति के समान वक्र होती है। कुपित पित्त की गति काक, लावपक्षी तथा मेढ़क की गति के समान उछल-उछल कर चलती है तथा कुपित कफ की गति राजहंस, मयूर, पारावत, कपोत तथा कुक्कुट की गति के समान होती है।

असाध्य नाड़ी का लक्षण

अतिसूक्ष्मा पृथक् शीघ्रा सवेगा भरिताऽद्रिका।

भूत्वा-भूत्वा म्रियेतैव तदा विद्यादसाध्यताम्॥

(नाड़ीप्रकाश 86)

जब रोगी की नाड़ी अत्यन्त सूक्ष्म, अलग-अलग एवं शीघ्र गति वाली, वेग युक्त, नमी युक्त, भार से युक्त एवं इन अवस्थाओं में ही रहकर नष्ट हो जाती है।

निष्कर्ष

नाड़ी परीक्षा चिकित्सा विज्ञान का उत्कृष्ट एवं महत्वपूर्ण अंग है जिसका उपयोग सदैव से स्वस्थ एवं रोगी व्यक्तियों में दोषों की स्थिति,हृदय गति एवं उसकी तारतम्यता का निर्धारण करने में किया जा रहा है। आधुनिक समय में भी नाड़ी परीक्षा के द्वारा शरीर में रोगों का निर्धारण किया जा सकता है, जिसका मुख्य उद्देश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना एवं रोगी व्यक्तियों में रोगों की स्थिति का पता लगाकर उसका निवारण करना है। रोगी व्यक्तियों में नाड़ी परीक्षा के उपरान्त औषधियों का उपयोग दोषों की अवस्था के अनुसार किये जाने से अच्छे परिणाम की सम्भावना अधिक रहती है, इसके साथ-साथ रोगों की साध्यासाध्यता का भी ज्ञान हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Ravana Krita 'Vidya Prabha' Nadi Pariksha by Prof. Gannath V. Dwivedi, Chaukhambha Orientalia, Varanasi.*
2. *Kanad Krita Nadi Vigyanam by Dr. Indra Deva Tripathi, Chaukhambha Orientalia, Varanasi.*
3. *Sharangdhar Samhita by Dr. P. Himasagara Chandra Murthy, Chaukhambha Sanskrit Series Office, Varanasi.*
4. *Yogaratnakara Volume. 1 by Dr. Asha Kumari & Dr. Premvati Tewari, Chaukhambha Visvabharati, Varanasi.*
5. *Nadi Vijnana (Ancient Pulse Science) by Dr. Sarva Dev Upadhyay, ChaukhambhaSanskrit Pratishthan Delhi.*
6. *Bhavaprakasha Volume-1 by Dr. Bulusu Sitaram, Chaukhambha Orientalia, Varanasi.*
7. *Nadi Prakasha Volume-1 by Dr. Amit Vaibhav, Chaukhambha Surbharti Prakashan, Varanasi.*

●

काशी के प्राचीन कुण्ड एवं तालाब : संरक्षण की आवश्यकता

डॉ. क्षितिज मोहन एवं डॉ. अजय श्रीवास्तव***

काशी अर्थात् वाराणसी विश्व के प्राचीनतम जीवंत नगरों में से एक है। वस्तुतः यह मिलेनिआ ओल्ड सिटी है। काशी के बारे में प्रसिद्ध लेखक एवं विश्वभ्रमणकर्ता मार्कट्वेन की यह युक्ति ''काशी इज ओल्डर दैन हिस्ट्री, ओल्डर दैन ट्रेडिशन, ओल्डर इवन दैन लीजेंड एण्ड लुक्स ट्वाइस ऐज ओल्ड ऐज ऑल ऑफ देम पुट टूगेदर'' पूर्णतया समीचीन है। प्राचीन काल में काशी में भूगर्भीय जल पर्याप्त मात्रा में बना रहता था। स्पष्टतया भूगर्भीय जल के पुनर्भरण में गंगा के प्रवाह भाग में जल का पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता एवं कुण्डों, तालाबों की स्थिति विशेष थी। इन कुण्डों तालाबों के जल का महत्व गंगा नदी के जल के तुल्य रहा है। ये कुण्ड असंख्य श्रद्धालुओं के श्रद्धा के केन्द्र हैं। इनकी प्रतिष्ठा पुराणोक्त है, सनातन धर्मावलम्बी हिन्दुओं के समस्त धार्मिक कार्य, मांगलिक आयोजन, मेला आदि इन्हीं कुण्डों के समीप संपन्न होते रहे हैं। भाद्रमास में लोलार्क कुण्ड पर संतान की कामना वाले दम्पतियों की भीड़ और श्रावण मास में जैतपुरा स्थित नागकूप पर श्रद्धालुओं का जमावड़ा इन कुण्डों के महत्व को रेखांकित करने के लिए पर्याप्त हैं, लगभग सभी तालाब और कुण्ड जीवित-पुत्रिका व्रतधारण करने वाली महिलाओं से गुंजायमान रहता है। लेकिन मनुष्य का भौतिकवादी लिप्सा ने पवित्र कुण्डों और तालाबों के अस्तित्व के समक्ष प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया है।

इन कुण्डों और तालाबों की वर्तमान दुखद स्थिति पर दृष्टिपात् करने के पूर्व अतीत की गहराइयों में झांकें तो ज्ञात होता है की शहर के पुराने वासिन्दों, धनाढ्य और सम्पन्न वर्ग जल संरक्षण की महत्ता से भली भांति परिचित थे। शहर की पारिस्थितिक तंत्र में भूगर्भीय जल के अहम् योगदान को इन पुराने वासिन्दों की अंतर्दृष्टि भली भांति परखने में सक्षम थी। इसी अंतर्दृष्टि और वैज्ञानिक उन्मेष के परिणाम स्वरूप शहर के लगभग समस्त भागों में कुण्ड और तालाब का निर्माण हुआ था। रानी अहिल्याबाई होल्कर ने प्रसिद्ध दुर्गाकुण्ड और रानी भवानी ने कुरूक्षेत्र तालाब का निर्माण करवाया। ऋग्वेद (6500-3100 ईसा पूर्व) की सूक्तियो 1.12.18, 1.23.18, 5.3.2 में वर्षा, नदी, तालाब और कुण्ड आदि से प्राप्त जल का बुद्धिमतापूर्ण तरीके से सदुपयोग करने की सलाह दी गयी है। अथर्ववेद (2000-1500) ईसा पूर्व की ऋचाओं (2.23.1, 6.100.2, 7.11.1) में उपलब्ध जल-संसाधनों का जलाभाव वाले समय में सदुपयोग करने को रेखांकित किया गया है। इन कुण्डों के निर्माण का उद्देश्य हीं यह था कि बरसात के दिनों में होने वाली झमाझम बारिस का पानी नालों से होता हुआ नदी में न जावे बल्कि इन्हीं कुण्डों में संरक्षित रहे। ऐसा होने से दो फायदे रहे, प्रथम तो शनैः शनैः भूगर्भीय जल का स्तर बना रहता था जिसे वैज्ञानिक भाषा में 'ग्राउण्ड वाटर रिचार्जिंग' (भूगर्भीय जल पुनर्भरण) कहते हैं। दूसरा गर्मियों के समय में स्थानीय नागरिक कम से कम अपने दैनिक आवश्यकतों कि पूर्ति इन्हीं कुण्डों से कर लेता था। निःसंदेह इन कुण्डों कि सीढ़ियों पर संपन्न होने वाले विविध धार्मिक आयोजन और महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले मंगलगीत नैसर्गिक सुख की अनुभूति कराते हैं। इन कुण्डों और तालाबों कि महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए शीर्षस्थ अदालत (सर्वोच्य न्यायालय) ने सम्पूर्ण देश में कुण्डों और तालाबों को संरक्षित करने के बावत राज्य सरकारों को सुस्पष्ट निर्देश जारी किये थे।

कुण्डों की शोचनीय स्थितिः-दुःख इस बात का है कि कुण्डों को संरक्षित रखने के दिशा में राज्य सरकारें असफल रही हैं। कम से कम इस शहर में दर्जनों कुण्डों को पाटकर बड़े-बड़े आवासीय प्रतिष्ठान एवं व्यवसायिक काम्प्लेक्स का निर्माण करा दिया गया, ऐसा जिला प्रशासन, नगर निगम और सत्ता पक्ष के लोगों, भूमाफियाओं के दुरभिसंधि से हीं सम्भव हो सका है। यह भी सच है कि पौराणिक महत्व के इन कुण्डों कि दुर्गति के पीछे स्थानीय नागरिकों कि उदासीनता और स्वार्थलोलुपता भी कम जिम्मेदार नहीं है। ऐसा माना जाता है कि इस शहर में 118 कुण्ड और तालाब थे लेकिन नगर निगम के राजस्व अभिलेख में 39 कुण्डों का कोई विवरण अंकित हीं नहीं है। इसके अलावा 18 कुण्ड और तालाब अपना अस्तित्व पूर्णरूपेण खों चुके हैं। पर्यावरणविदों और जागरूक नागरिकों कि पहल पर प्रशासन ने 54 कुण्डों और तालाबों कि सूचि उपलब्ध करायी है जिनके पुनरूद्धार कि तत्काल आवश्यकता है। इन 54 कुण्डों और तालाबों कि स्थिति अत्यंत शोचनीय है। अगर इनके जीर्णोद्धार के संदर्भ में कोई ठोस कदम नही उठाये जाते हैं तो इनका भी अस्तित्व समाप्त हीं हो जावेगा और ये कुण्ड इतिहास के पन्नों पर हीं नजर आयेगें। सर्वोच्च न्यायालय की सख्ती के चलते प्रशासन द्वारा इन कुण्डों को संरक्षित करने के दिशा में पहल की गयी है। पुष्कर तालाब और कुरुक्षेत्र तालाब के संरक्षण की दिशा में पहल की गयी है, लेकिन प्रशासन कि यह चुस्ती तो विश्व बैंक और यूनेस्कों टीम के द्वारा की गई सार्थक पहल के बाद हीं हो सकी है। विगत् दिनों विश्व बैंक कि टीम ने काशी आकर पौराणिक महत्व के कुण्डों और तालाबों का जायजा लिया और उपर्युक्त

* तकनीकी सहायक, भूगोल विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** पूर्व पूल वैज्ञानिक (सी.एस.आई.आर.), वाराणसी

दिशानिर्देश जारी किये। टीम ने पुष्कर तालाब, सोनभद्र व रामभट्ट तालाब एंव साथ ही पांचों-पंडवा तालाब कि दुखद स्थिति पर अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की थी। एतद् नगर निगम अब कुण्डों और तालाबों का सीमांकन व चिन्हनांकन कराएगा। जिन 54 कुण्डों के पुनुरूद्धार की आवश्यकता है उसमें से आधा दर्जन कुण्डों में हीं पानी है यथा रामकुण्ड, पिशाचमोचन कुण्ड, शंकुलधारा कुण्ड, दुर्गाकुण्ड और पुष्कर तालाब। उल्लेखनीय है की कभी मोतीझील (महमूरगंज) जो वैभवशाली स्थिति में था, आज अपना आकर्षण हीं खो चुका है। अधिकांश कुण्ड और तालाब मवेशियों के स्नान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थल बन चुके हैं। उपरोक्त वर्णित मोतीझील के कुछ भागों में निर्माण कार्य सम्पन्न हुए हैं तो कुछ भागों में प्लाटिंग भी हुई है। इसी प्रकार संत कबीर नगर की जन्मस्थली में स्थित लहरतारा तालाब की वर्तमान स्थिति भी अत्यन्त शोचनीय है। इस ऐतिहासिक महत्व के तालाब को स्थानीय नागरिकों ने कूड़ा डंपिंग ग्राउण्ड बना रखा है, ऐसा ही दृश्य कपिलधारा कुण्ड का भी है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की जन्मस्थली लमही में स्थित लमही तालाब भी अतिक्रमण का शिकार हो गया है। गोवा-बाई तालाब (2.2 एकड़ क्षेत्रफल) तो अब कूड़े-कचरों और मिट्टी से पट चुका है। तहसील के अभिलेख में इस स्थल को आवासीय भूमि के रूप में दर्ज किया जा चुका है। इसका अधिकांश भाग गोबर के कूड़े से भरा पड़ा है। पिशाचमोचन और लक्ष्मी कुण्डों की स्थिति भी अत्यंत शोचनीय है। ये कुण्ड राज्य सरकार के स्वामित्य में (फ्री-होल्ड होने के कारण) आ गयी है। वाराणसी विकास प्राधिकरण ने तो सुप्रसिद्ध ओंकारलेश्वर मंदिर के समीपस्थ तालाब को पाटकर एक कॉलोनी ही बना दी। वाराणसी विकास प्राधिकरण ने हीं 1977 में हरतीरथ तालाब को फ्री होल्ड घोषित कर आवासीय फ्लैट का निर्माण कराया था। यहां पर दूरसंचार विभाग भारत सरकार का सरकारी भवन निर्मित हो चुका है। नगर निगम के अंतिम छोर पर स्थित एक छोटा सा तालाब (बासी तालाब) अपने जीवन के दो चार दिन देख रहा है। यह तालाब लगभग 150 वर्ष पूर्व 1.5 एकड़ क्षेत्रफल में निर्मित था। शास्त्री नगर कॉलोनी, सिगरा के समीपस्थ सगरा तालाब कुण्डों और बिल्डिंग के मलवा से पटा है। द्रौपदी कुण्ड का अस्तित्व भी खत्म हो चुका है। इसी प्रकार मानसरोवर तालाब, कमल गढंहा तालाब और बकरिया कुण्ड का अस्तित्व भी खत्म हो चुका है। बकरिया कुण्ड में से हीं पुरातत्वविदों ने 10 फीट ऊँची भगवान श्री कृष्ण की प्रतिमा प्राप्त की थी। कैंटोनमेंट क्षेत्र में लगभग 160 एकड़ एरिया में पांच तालाबों का समूह था। कोई 25-30 वर्ष पूर्व तक इन तालाबों का अस्तित्व बरकरार था। शनैः-शनैः इसके आस-पास लोगों ने अतिक्रमण करना शुरू कर दिया। फलतः 5 तालाबों में से 3 तालाब तो पूर्ण रूपेण खत्म हो गए। शेष बचे 2 तालाबों की स्थिति भी शोचनीय है। आसपास बसे लोगों का अतिक्रमण बढ़ता जा रहा है। कुछ दिनों में इन दो तालाबों का अस्तित्व भी खत्म हो जायेगा। खजुरी क्षेत्र में कुल 8 में से 2 का ही अस्तित्व बचा है। चितईपुर में कालांतर में स्थित एक कुण्ड को पाटकर बड़ी बिल्डिंग निर्मित की जा चुकी है। सरायनंदन और सरायसुरजन में कभी अस्तित्व में रहे तालाब का अस्तित्व खत्म हो चुका है। तुलसीपुर तालाब भी अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। जोल्हा में 3 तालाबों को कूड़े कचरों से पाटा जा चुका है। शिवदासपुर में भी एक तालाब को पाटकर स्कूल भवन बना दिया गया। यहीं स्थिति रमरेपुर, पहाड़पुर, लालपुर अनौला क्षेत्रों की है। बड़ी गैबी में संत बाबा गैबीनाथ की साधनास्थली है। महायोगी गोरखनाथ के शिष्य बाबा गैबीनाथ की साधनास्थली होने के कारण यह स्थान श्रद्धा का केन्द्र रहा है। वर्ष 2013 के मई माह में सारनाथ थाना क्षेत्र में सारंग तालाब, पंचकोसी मार्ग पर कुछ राजनेताओं के द्वारा शराब का ठेका खोले जाने के विरोध में इलाकाई लोग उत्तेजित हो उठे थे। यहाँ वर्णित करना समीचीन है कि अधिकांश कुण्ड और तालाब एक दूसरे से जुड़े थे यथा रामकुण्ड, सीताकुण्ड और लक्ष्मीकुण्ड। इन तालाबों में जल हमेशा बना रहता था। इन कुण्डों का सम्बन्ध गंगा से भी था, इनके भरने के बाद अधिक जल गंगा में जा मिलता था। इन कुण्डों के निर्माणकाल के बारे में कोई सुस्पष्ट आंकड़े और तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। इतने महत्वपूर्ण और मानवोपयोगी कुण्डों और तालाबों कि स्थिति दिन प्रतिदिन शोचनीय होती जा रही है। स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र में इन जल स्रोतों कि उपादेयता के बारे में स्थानीय नागरिक उदासीन हैं। वे अपना स्वार्थ सिद्ध करने कि जुगत में लगे रहते हैं। धार्मिक कार्य और मेले का आयोजन आदि भी यही सम्पन्न होता है। प्रशासन, राजनेताओं और भू-माफियायों कि तिकड़ी ने इनके अस्तित्व को खत्म करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। समय-समय पर नगर निगम को इनके रखरखाव के लिए शासन से पर्याप्त धनराशि मिलती रहती है। वर्ष 2013 के मार्च माह में 4 करोड़ कि धनराशि स्वीकृत हुई थी। इन दिनों विकास प्राधिकरण अपनी महत्वाकांक्षी योजना 2031 को लेकर खुशफहमी में है, लेकिन प्राधिकरण कि इस परियोजना में पौराणिक महत्व के कुण्डों और तालाबों के संरक्षण के लिए कुछ भी नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त पिछले दो दशक से रह रहकर इस शहर को हेरिटेज सिटी घोषित करवाने कि चाह पर्यावरणविदों के एक वर्ग में बढ़ी है। कोई दो दशक पूर्व यूनेस्को के निदेशक काशी आये थे। उन्होंने भी इस शहर को हेरिटेज सिटी घोषित करने कि अपनी अच्छा जाहिर की। उन्होंने यूनेस्को द्वारा स्थापित दिशा निर्देश (गाइडलाइन्स) को पूर्ण करने कि बाध्यता रखी। वस्तुतः ऐतिहासिक, पुरातात्विक और पौराणिक महत्व के स्थलों के संरक्षण और संवर्धन के बिना दुनिया का सर्वाधिक पूरातन शहर 'हेरिटेज सिटी' की उपाधि से महिमा मंडित नही हो सकता। वर्ष 1990 में इस सन्दर्भ में प्रस्ताव तैयार करने कि जिम्मेदारी विकास प्राधिकरण को सौंपी गई थी लेकिन प्राधिकरण ने इसे संज्ञान में हीं नहीं लिया।

कुण्डों का संरक्षण : पर्यावरण संरक्षण कि दिशा में सार्थक पहलः-वस्तुतः कुण्डों के संरक्षण के द्वारा पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक सार्थक पहल हो सकती है। कुण्डों और तालाबों का

जल शैनः-शैनः रिस-रिसकर भूमिगत जल का पुनर्भरण (रिचार्ज) करता है। पिछले दशक में भूमिगत जल के अत्याधिक दोहन से भू-जल का स्तर तीव्र गति से गिरा है। भूगर्भ जल विभाग कि रिपोर्ट के अनुसार पिछले 3 वर्षों में बनारस के भूमिगत जल का स्तर एक मीटर प्रति वर्ष के दर से गिर रहा है। यह शहर कुण्डों और तालाबों के लिए जाना जाता है। उनके पाटे जाने से भूजल स्तर में गिरावट और सड़कों का बारिस के मौसम में धसांव साफ तौर पर परिलक्षित होता है। वर्ष 1986 में शहर के व्यस्ततम भाग गोदौलिया में 12 टन भार का एक ट्रक धसावं के कारण जमींदोज को गया था। इसी प्रकार छोटे-छोटे धसांव तो शहर के हर भाग में देखने को मिल रहे हैं। कुण्डों और तालाबों कि सूची सारणी-1 में कुण्डों व तालाबों की सूची एवम् उनकी वर्तमान स्थिति को दर्शाया गया है। चित्र संख्या-1 में जो जेम्स प्रिसेप (1822) के आधार पर बना है, भी पुरातन जल स्रोत/निकायों यथा कुण्डों, तालाबों, नदी व नालों की पूर्व स्थिति को दर्शाता है, जिन्हें पाटकर व्यावसायिक प्रतिष्ठान अथवा आवासीय क्षेत्र बना दिए गए। इनमें से कुछ कि स्थिति अत्यंत शोचनीय है।

सारणी-1

क्रमांक	पुराने कुण्ड व तालाब	इनकी वर्तमान स्थिति
1.	कर्ण घण्टा कुण्ड	वर्तमान में कर्ण घण्टा क्षेत्र
2.	रेवा सरोवर	वर्तमान में रेवड़ी तालाब मोहल्ला
3.	गणेश ताल (तब के नगर महापालिका के रिकार्ड में वर्णित, यह 1911 तक गणेश राढही के नाम से जाना जाता था।)	वर्तमान में बड़ा गणेश क्षेत्र में निर्मित एक स्कूल
4.	सप्त सागर तीर्थ	वर्तमान में सप्त सागर मोहल्ला
5.	अगस्त्य कुण्ड	वर्तमान में अगस्त्य कुण्ड मोहल्ला
6.	पुष्करिणी तीर्थ	वर्तमान में मिश्रपोखरा मोहल्ला
7.	मोती झील	वर्तमान में एक हिस्से में प्लांटिंग, दूसरे हिस्से को भी पाटा जा रहा है।
8.	रामकटोरा कुण्ड	ठोस अपशिष्ट मलवे से पाटा जा रहा है।
9.	लहतारा तालाब (संत कबीर का प्राकटय स्थल)	अत्यंत शोचनीत स्थिति
10.	कपिल धारा कुण्ड	यहँ कूड़े का ढ़ेर लगा है।
11.	लमही तालाब (मुंशी प्रेमचंद की जन्मस्थली से सम्बंधित)	स्थानीय नागरिकों द्वारा अतिक्रमित
12.	गोवा बाई तालाब	शहरी गंदगी व कूड़े कचरों से पूर्णतया पटा हुआ है
13.	पुष्कर तालाब	स्थानीय नागरिकों द्वारा अतिक्रमित
14.	कुरूक्षेत्र तालाब	स्थानीय नागरिकों द्वारा अतिक्रमित
15.	ईश्वरगंगी तालाब	मनवेशियों के बांधने/रहने की जगह
16.	हस्तीरथ तालाब	दूरसंचार विभाग का बहुत बड़ा भवन यहाँ है।
17.	तार कुण्ड (रानी भवानी कुण्ड)	वर्तमान में अनियोजित तरीके से स्थापित बुनकर बस्ती
18.	ब्रह्मनाल (लिंग पुराण में वर्णित)	वर्तमान में इसी नाम से स्थान
19.	मन्दाकिनी तीर्थ (लिंग पुराण में वर्णित)	वर्तमान में मैदागिन क्षेत्र
20.	ओंकालेश्वर मंदिर के समीप का एक कुण्ड	यहाँ एक कालोनी हीं बन गई
21.	चकरा ताला	शास्त्रीनगर, सिगरा के कूड़े से पटा है
22.	बकरिया कुण्ड	अस्तित्व हीं खत्म हो गया है।
23.	कमल गढ़हा तालाब	इसी नाम से आवासीय क्षेत्र
24.	मानसरोवर तालाब	मवेशियों के बांधने/रहने की जगह
25.	सारंगनाथ तालाब	कूड़े से पाटा जा रहा है।
26.	हाशिमपुरा तालाब	कूड़े से पाटा जा रहा है।
27.	धूपचंडी तालाब	कूड़े से पाटा जा रहा है।
28.	सूरज कुण्ड	कूड़े से पाटा जा रहा है।
29.	धुप सरोवर	कूड़े से पाटा जा रहा है।
30.	संकटमोचन मंदिर के समीप एक तालाब	लगभग पट चुका है।
31.	सोनिया तालाब	मलवो से पाटा जा रहा है।
32.	भिखारीपुर कला तालाब	कूड़े से पाटा जा रहा है।
33.	नया बाबा तालाब	कूड़े से पाटा जा रहा है।
34.	रानीपुर तालाब (उत्तरी)	कूड़े से पाटा जा रहा है।
35.	रानीपुर तालाब (दक्षिणी)	कूड़े से पाटा जा रहा है।

36.	चन्द्रकला तालाब	कूड़े से पाटा जा रहा है।
37.	मत्स्योदरी तीर्थ (जेम्स प्रिन्सेप के वाराणसी नक्शे में यह 1922 तक अस्तित्व में था)	वर्तमान में मछोदरी क्षेत्र यद्यापि यहां एक छोटा सा तालाब वर्तमान में अस्तित्व में है।

नोट- जिस तीव्र गति से भूमाफियायों द्वारा कुण्डों और तालाबों को पाटा जा रहा है, उससे उपरोक्त सूची में वृद्धि संभव है।

यहाँ यह उल्लेख करना समचीन है कि 330 एम0एल0डी0 पानी कि आपूर्ति जलकल विभाग द्वारा कि जाती है, जिसमें से 125 एम0एल0डी0 गंगा नदी से और शेष 205 एम0एल0डी0 नलकूप से निकाला जाता है। इस प्रयास के बाद भी शहरी आबादी का पांचवा भाग पेय जल आपूर्ति से वंचित है। वर्तमान परिस्थितियों में कुण्डों और तालाबों के संरक्षण के द्वारा इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। लेकिन यह भी सच है कि बिना जन सहभागिता के कण्डों और तालाबों का संरक्षण नहीं हो सकता। स्थानीय नागरिकों को इस दिशा में जागरूक होना पड़ेगा। जब सरकारी तंत्र अपने सामाजिक एंव पर्यावरणीय सरोकारों से विमुख हो गया हो, तो ऐसी परिस्थिति में आम जनमानस में अपने कर्तव्यों के प्रति समर्पण एंव संवेदनशीलता की भावना हीं विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

संदर्भ ग्रथ सूचीः-

1. चौधरी, जी0सी0 (2005) रिचाजिंग ऑफ ग्राउण्ड वाटर एण्ड सबसिडेंस ऑफ लैंड
2. ए केस हिस्ट्री फ्रॉम वाराणसी सिटी, प्रोसिडिंग्स ऑफ ट्रेनिंग ऑन आर्टिफिशियल रिचार्ज टू ग्राउण्ड वाटर. सेन्ट्रल ग्राउण्ड वाटर बोर्ड, स्टेट यूनिट ऑफिस, इलाहाबाद, इण्डिया, अक्टूबर 20-21, पृ0सं0 74-92
3. श्रीवास्तव, अजय 2007 वाराणसी : सिटी ऑफ पॉण्डस एण्ड वाटर बाडिज, द टाईम्स ऑफ इण्डिया, लखनऊ ऐडिशन, पृ0सं0 3, अक्टूबर 13

●

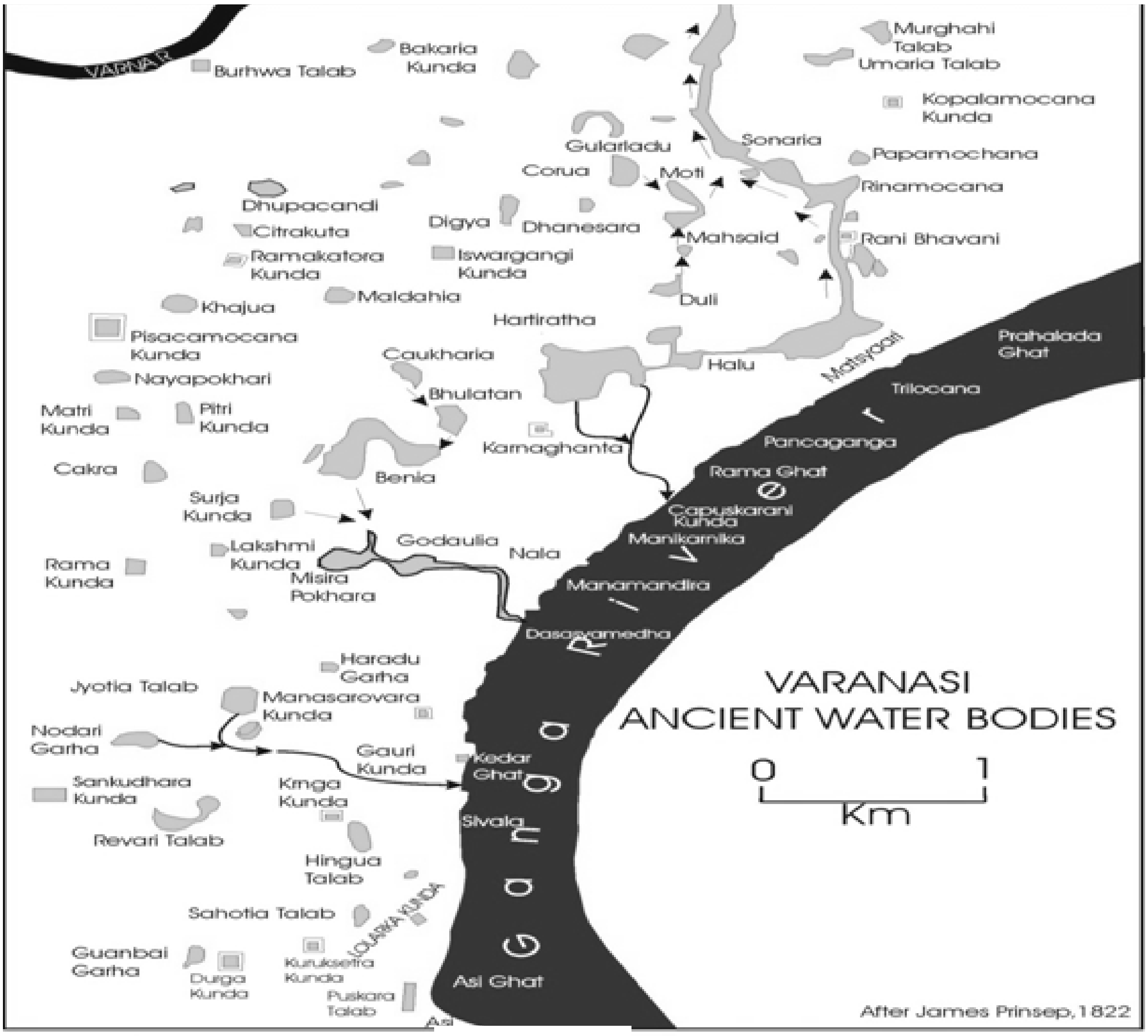

चित्र संख्या-1

कालोपासना विमर्श (मैत्रायणीय आरण्यक के विशेष सन्दर्भ में)

नेहा मौर्या[*] एवं डॉ. शिल्पा सिंह[**]

''**ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्**''[1] अर्थात् सूर्यादि ग्रह और काल का बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहते हैं। काल क्या है? इसका स्वरूप कैसा है? काल की गणना किस प्रकार की जाती है? इन प्रश्नों का उत्तर हमें वैदिक ग्रन्थों से प्राप्त होता है।

अमरकोष में काल शब्द 'कल् शंखने' धातु से निष्पन्न हुआ है। इस ग्रन्थ के अनुसार काल के चार नाम हैं- (1) काल, (2) दिष्ट, (3) अहनेस्, (4) समय।

''**कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समयोऽपि।**''[2]

अथर्ववेद के 19वें काण्ड के 53वाँ और 54वाँ सूक्त, कालसूक्त है। इसके अनुसार काल गतिशीलता का वाचक है, जो सबको अपने साथ लेकर चलता है। बुद्धिमान् व्यक्ति ही काल पर आरूढ़ होकर चलते हैं। जिस प्रकार रथ पर बैठा रथी अश्व को नियन्त्रित कर लेता है उसी प्रकार काल को भी समझना चाहिए। यह काल सात किरणों और सहस्र आँखों वाला है। वह जरारहित एवं पराक्रम से परिपूर्ण है, समस्त लोक उसके चक्र हैं –

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।

तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥[3]

काल से ही इस सृष्टि की उत्पत्ति हुयी है एवं सृष्टि की आधारभूता भूमि भी काल से उत्पन्न हुयी है। भूत, भविष्य एवं वर्तमानकाल, काल के आश्रित होकर विविध पदार्थों को देखते हैं। काल की प्रेरणा से ही सूर्य इस संसार को प्रकाशित करता है। काल में ही मन, प्राण और सभी नाम समाहित हैं, जो समयानुसार प्रकट होते रहते हैं। काल की अनुकूलता से ही समस्त प्रजाजन आनन्दित होते हैं –

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्।

कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः॥[4]

काल को **स्वयम्भूः** कहा गया है, क्योंकि काल स्वयं उत्पन्न हुआ है। काल से ही ऋग्वेद की ऋचाएँ एवं यजुर्वेद के मन्त्र भी प्रकट हुए हैं –

कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत।[5]

इहलोक, परलोक एवं पुण्यलोक तथा पवित्र मर्यादाओं को जीतकर वह कालदेव ब्रह्मज्ञान से युक्त होकर सर्वत्र व्याप्त है –

इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः।

सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कलः स ईयते परमो नु देवः॥[6]

षड् वेदाङ्गों में **ज्योतिष वेदाङ्ग** में काल का वर्णन मुख्यरूप से प्राप्त होता है। सम्पूर्ण ज्योतिष ग्रन्थ काल पर ही आधारित है। ज्योतिष वेदाङ्ग का प्रमुख शास्त्र '**सूर्य सिद्धान्त**' में काल का वर्णन विस्तृत रूप से प्राप्त होता है। इस शास्त्र में काल के दो भेद बताये गये हैं। **प्रथम-** काल, प्राणियों अर्थात् सृष्टि का संहार करने वाला एवं **द्वितीय-** कलनात्मक काल अर्थात् गणनात्मक काल। जिसे क्रम से सूक्ष्म एवं स्थूल, अमूर्त एवं मूर्त तथा अव्यक्त एवं व्यक्त कहा गया है। त्रुटि अर्थात् कमलपत्र को सुई से भेदने में लगा समय त्रुटि कहलाता है। ''**सहस्रपद्मपदसूच्याभेदनकालः त्रुटिः**'' जो सूक्ष्म काल के अन्तर्गत आता है, जिसकी गणना नहीं कि जा सकती। दूसरा प्राणादि जो स्थूल काल के अन्तर्गत आता है, जिसका प्रयोग हम व्यवहारिक जीवन में देखते हैं –

लोकानामन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।

स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते॥[7]

काल का मान गणनात्मक रूप में -

1 प्राण	=	10 दीर्घाक्षरोच्चारणकाल = 10 विपल = 4 सेकेण्ड
1 त्रुटि	=	$\frac{1}{32,40,000}$ सेकेण्ड
60 त्रुटि	=	1 रेणु
60 रेणु	=	1 लव
60 लव	=	1 लीक्षक
60 लीक्षक	=	1 प्राण

प्राण को '**असु**' भी कहते हैं।

6 प्राण	=	1 विपल (प्रति सेकेण्ड)
60 विपल	=	1 पल (सेकेण्ड)
60 पल	=	1 घटी
60 घटी	=	1 अहोरात्र

* शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्राणादि कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञकः।

षड्भि प्राणैर्विनाडीस्यात्तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता॥[8]

नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम्।

तत् त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तथा॥[9]

ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत् संक्रान्त्या सौर उच्यते।

मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते॥[10]

निरुक्त में काल के विषय में कहा गया है कि '**कालः कालयतेः इति-कर्मणः**'[11] काल शब्द गत्यर्थक काल धातु से बना है, क्योंकि यह काल सब प्राणियों को कालयति अर्थात् नष्ट करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के 11वें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण काल का वर्णन करते हुये कहते हैं कि हे अर्जुन! मैं ही सम्पूर्ण सृष्टि का नाश करने वाला महाकाल हूँ। तेरे युद्ध करने या न करने से कुछ नहीं होगा। काल के अनुसार इन सब की मृत्यु निश्चित है। भगवान् के इस वक्तव्य से काल की सर्वव्यापकता स्पष्ट होती है–

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो

लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृतः॥

ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे

येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥[12]

ऋग्वेद में समय के लिए काल शब्द का सर्वप्रथम उद्धरण प्राप्त हुआ है-

''उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं नश्वघ्नी विचिनोति काले।

यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान्।''[13]

यहाँ केवल एक ही बार इस शब्द का प्रयोग हुआ है वह भी दशम मण्डल में।

वैशेषिक दर्शन में काल की गणना नौ द्रव्यों में की गयी है -

तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजो-वाय्वाकाश-काल दिगात्म-मनांसि नवैव।[14]

न्याय एवं वैशेषिक दर्शन का प्रमुख ग्रन्थ **तर्क-संग्रह** में काल को विभु, एक तथा नित्य कहा गया है। काल अतीत, वर्तमान एवं भविष्य का निमित्त कारण है। काल एक है, उपाधि भेद से वह क्षण, दिन, मास, संवत्सर आदि व्यवहार को प्राप्त करता है -

अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः। स चैको विभुर्नित्यश्च॥[15]

अधोलिखित विवरण द्वारा युग अथवा काल को देखा जा सकता है –

कृतयुग/सतयुग	-	17 लाख 28 हजार वर्ष
त्रेतायुग	-	12 लाख 96 हजार वर्ष
द्वापरयुग	-	8 लाख 64 हजार वर्ष
कलयुग	-	4 लाख 32 हजार वर्ष
	=	43 लाख 20 हजार वर्ष
71 युग	=	1 मनु
1000 महायुग	=	ब्रह्मा का एक दिन
ब्रह्मा की रात्रि	=	प्रलय
ब्रह्मा का दिन	=	सृष्टि
43,20,000 वर्ष	=	1 महायुग
1 महायुग	=	4 युग

कालमान नव प्रकार के कहे गये हैं –

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।

सौरं च सावनं चान्द्रंमार्क्षं मानानि वै नव।[16]

सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन इन चार मानों का व्यवहार होता है। 60 संवत्सर की बार्हस्पत्य मान से गणना होती है। शेष चार मानों की आवश्यकता व्यवहारिक जीवन में प्रयोग नहीं होता है।

महाभारत के आदिपर्व, स्त्रीपर्व, शान्तिपर्व, आश्वमेधिकपर्व में काल के बारे में वर्णन प्राप्त होता है। आदिपर्व में आया है काल प्राणियों की सर्जना करता है, काल प्रजाओं का नाश एवं संहार करता है। काल शुभ एवं अशुभ स्थितियाँ उत्पन्न करता है, काल सबको समाप्त करता है और पुनः सबकी सृष्टि करता है, काल अजेय है।

मैत्रायणीय आरण्यक में काल -

मैत्रायणीय आरण्यक में काल की उपासना ब्रह्म, सूर्य, सविता, संवत्सर एवं आदित्य रूप में की गयी है। इस आरण्यक के षष्ठ-प्रपाठक में काल के दो रूपों पर चर्चा की गयी है- प्रथम मूर्तरूप एवं द्वितीय अमूर्तरूप। काल आदित्य रूप से मूर्त है एवं संवत्सर रूप से अमूर्त है -

''काले चास्तं नियच्छन्ति कालो मूर्तिरमूर्तिमान्।''[17]

मूर्त एवं अमूर्त रूप के पश्चात् काल को ब्रह्म का ही एक रूप बताया गया है। काल एवं अकाल से ब्रह्म के दो रूप हैं- आदित्य से पहले का जो रूप है वह अकाल है, जो कला रहित है, और जो

आदित्य से प्रवर्तित रूप काल कला से युक्त है। कलायुक्त से तात्पर्य यहाँ उस काल से है, जो सृष्टि करता है। इसे संवत्सर भी कहते हैं। इसी संवत्सर से प्रजायें जन्म लेती हैं, वृद्धि को प्राप्त होती है एवं अन्ततः इसी संवत्सर में विलीन हो जाती हैं, इसलिए संवत्सर को काल कहा गया है। यही काल ही प्रजापति, अन्न, ब्रह्म का आलम्बन एवं आत्मा है।

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे कालश्चाकालश्चाथ यः प्रागादित्यात्सोऽकालोऽकलोऽथ यऽआदित्याद्यः स कालः सकलः सकलस्य वाऽएतद्रूपंयत्संवत्सरः संवत्सरात्खल्वेवेमाः प्रजाः प्रजायन्ते संवत्सरेणेह वै जाता विवर्द्धन्ते संवत्सरे प्रत्यस्तंयन्ति तस्मात्संवत्सरो वै प्रजापतिः कालोऽन्नं ब्रह्मनीडमात्मा चेत्येवंह्याह॥[18]

जब तक काल की कला (सृष्टि) है। तब तक यह काल अपनी कलाओं में संचरण करता है। काल से भिन्न इस जगत् में कुछ भी नहीं है, इसलिए काल की उपासना ब्रह्मरूप रूप में की गयी है। इस आरण्यक में कहा गया है कि जो उपासक काल की उपासना ब्रह्म रूप में करता है, काल उससे दूर हट जाता है अर्थात् जो व्यक्ति समय के अनुसार कार्य करता है एवं समय की महत्ता को जानता है वह सदैव अनिष्ट आशंकाओं से दूर रहता है –

यावत्यो वै कालस्य कलास्तावतीषु चरत्यसौ यः कालं ब्रह्मेत्युपासीत कालस्तस्यातिदूरमपसरतीत्येवंह्याह।[19]

काल की उत्पत्ति एवं गणना के सम्बन्ध में मैत्रायणीय आरण्यक में कहा गया है कि काल की उत्पत्ति सूर्य से हुयी है। सूर्य का ही रूप काल है। काल से अन्न की उत्पत्ति हुयी है अन्न से जगत् की उत्पत्ति छड़भर (निमेष) में हुयी है –

जगत् ⟶ अन्न ⟶ काल ⟶ सूर्य

काल गणना के सम्बन्ध में मैत्रायणीय आरण्यक में कहा गया है कि निमेष (पलक झपकाने में लगा समय) से लेकर संवत्सर (12 मासों का एक संवत्सर) के रूप में काल गणना की गयी है –

अथान्यत्राप्युक्तमन्नंवाऽअस्य सर्वस्य योनिः॥ कालश्चान्नस्य सूर्यो योनिर्वै कालस्य तस्यैतद्रुपंयन्निमेषादिकालात्सम्भृतं।[20]

मैत्रायणीय आरण्यक में निमेष से लेकर संवत्सर तक की काल गणना के बारे में बताया गया है लेकिन अन्य वैदिक ग्रन्थों, ज्योतिष ग्रन्थ, पुराण, धर्मशास्त्र इत्यादि ग्रन्थों में चतुर्युगी तक काल की गणना का प्रमाण प्राप्त होता है।

एक संवत्सर अर्थात् 12 मास का आधा भाग उत्तरायण जो अग्निस्वरूप है, अवशिष्ट आधा भाग दक्षिणायन जो वरुणदेव स्वरूप है। मघा नक्षत्र से लेकर आधे श्रविष्ठा नक्षत्र के भोग काल तक का समय अग्निदेव का है, क्योंकि उस समय शीत (शरद्, हेमन्त, शिशिर) ऋतु से पीड़ित प्राणी अग्नि की उपासना करता है, तथा सर्पो से सम्बन्धित आश्लेषा नक्षत्र से लेकर श्रविष्ठा के उत्तरार्द्ध तक जब सूर्य ऊर्ध्व मार्ग में सञ्चरण करता है। वह समय सोमदेव अर्थात् चन्द्रदेव का है, क्योंकि उस समय प्राणी गर्मी (वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा) से पीड़ित चन्द्रदेव की उपासना करता है। इस प्रकार 27 नक्षत्रों में अग्नि, वरुण और चन्द्रमा अपने नवाँश (नौ-नौ नक्षत्रों का समूह) क्रम से सञ्चार करता है। एक राशि में सामान्यतः सवा दो नक्षत्र होते हैं। नक्षत्रों के नौ पादों पर सूर्य एक मास रहता है। सूक्ष्म होने के कारण काल का यही मान उत्कृष्ट है। इसी प्रकार से काल की गणना की जाती है और काल प्रमाण रूप में भी प्राप्त होता है।

द्वादशात्मकंवत्सरमेतस्याग्नेयमर्द्धमर्द्धंवारुणं मघाद्यंश्रविष्ठार्द्धमाग्नेयं क्रमेणोत्क्रमेण सार्पार्द्यंश्रविष्ठार्द्धान्तंसौम्यं तत्रैकैकमात्मनो नवांशकंसचारकविधंसौक्ष्म्यत्वादेतत्प्रमाणमनेनैव प्रमीयते हि कालो न विना प्रमाणयेत्प्रमाणेन प्रमेयस्योपलब्धिः प्रमेयोऽपि प्रमाणतां पृथक्त्वादुपैत्यात्मसम्बोधनार्थमित्येवंह्याह॥[21]

इस प्रकार कहा गया है कि सभी प्राणी काल से उत्पन्न होते है, काल से ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं और अन्ततः काल में ही विलिन हो जाते हैं –

''कालात्स्रवन्ति भूतानि कालाद्वृद्धिं प्रयान्ति च।''[22]

मैत्रायणीय आरण्यक कहता है कि काल समुद्र के समान अपरिमित है, जिस प्रकार समुद्र से छोटी-छोटी नदियों का निर्माण होता है उसी प्रकार इस अपरिमित काल से प्रजायें उत्पन्न होती हैं। इस काल को सविता नाम से जाना जाता है, जो उस काल में स्थित है। इसी सविता से चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, संवत्सर इत्यादि उत्पन्न होते हैं और इनसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। जो भी शुभ और अशुभ कार्य है वह सब काल में ही निहित है। इस जगत् में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है वह सब काल से उत्पन्न हुये हैं। इसलिए इस रहस्य को जानकर काल संज्ञक आदित्य की उपासना करनी चाहिए -

विग्रहवानेष कालः सिन्धुराजः प्रजानाम्। एष तत्स्थः सविताख्यो यस्मादेवेमेचन्द्रर्क्षग्रहसंवत्सरादयः सूयन्तेऽथैभ्यः सर्वमिदमत्र वा यत्किञ्चिच्छुभाशुभम्॥ दृश्यते ह लोके तदेतेभ्यस्तस्मादादित्यात्मा ब्रह्माथ कालसंज्ञमादित्यमुपासीतादित्यो ब्रह्मेत्येकेऽथऽएवंह्याह॥[23]

उपसंहार -

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मैत्रायणीय आरण्यक में काल के मूर्त एवं अमूर्त दोनों रूपों का प्रतिपादन किया गया है। काल का जो रूप मैत्रायणीय आरण्यक में प्राप्त होता है उसी से साम्य रखता हुआ काल के गणनात्मक स्वरूप का पुराणों एवं स्मृति ग्रन्थों में उपवृंहण प्राप्त होता है। मत्स्य एवं अग्निपुराण में निमेष से

लेकर कल्प पर्यन्त, काल का स्वरूप प्राप्त होता है। आर्ष काव्य रामायण एवं महाभारत में काल का स्वरूप समय एवं अवधि के रूप में उपवृंहित है। ब्राह्मण एवं उपनिषद् ग्रन्थों में भी काल के विषय में विस्तृत तथ्य प्राप्त होते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्द शास्त्री, प्रथम अध्याय, पृ0 17
2. अमरकोष (भाषा टिका) – अमर सिंह, पृ0 17
3. अथर्ववेद संहिता – 19/53/1
4. अथर्ववेद संहिता – 19/53/7
5. अथर्ववेद संहिता – 19/54/3
6. अथर्ववेद संहिता – 19/54/5
7. सूर्यसिद्धान्त संहिता – श्रीरङ्गनाथविरचित, 1/10
8. सूर्यसिद्धान्त – श्रीरङ्गनाथविरचित, 1/11
9. सूर्यसिद्धान्त – श्रीरङ्गनाथविरचित, 1/12
10. सूर्यसिद्धान्त – श्रीरङ्गनाथविरचित, 1/13
11. निरुक्तम् – श्रीछज्जूराम शास्त्री – द्वितीय अध्याय, सप्तम पाठ, पृ0 108
12. श्रीमद्भगवद्गीता – 11/32
13. ऋग्वेद – 10/33/42/9
14. तर्कसंग्रह - (डॉ0 शिवशंकर गुप्त – व्याख्याकार), पृ0 2
15. तर्कसंग्रह - (डॉ0 शिवशंकर गुप्त – व्याख्याकार), पृ0 15
16. सूर्यसिद्धान्त – श्रीरङ्गनाथविरचित – 14/1
17. मैत्रायणीय आरण्यक – पं0 श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर – 6/14
18. मैत्रायणीय आरण्यक – पं0 श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर – 6/15
19. मैत्रायणीय आरण्यक – पं0 श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर – 6/14
20. मैत्रायणीय आरण्यक – पं0 श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर – 6/14
21. मैत्रायणीय आरण्यक – पं0 श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर – 6/14
22. मैत्रायणीय आरण्यक – पं0 श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर – 6/14
23. मैत्रायणीय आरण्यक – पं0 श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर – 6/16

●

मीरा के काव्य में स्त्री मुक्ति की अवधारणा

डॉ. अनुकूलचंद राय[*]

मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन की आध्यात्मिक प्रेरणा के फलस्वरूप हिन्दी में अनेक महान संत एवं भक्त कवियों का उदय हुआ। मध्यकाल में पुरुष भक्त कवियों के उदय के बीच नारी कृष्ण भक्त मीरा का उदित होना एक अद्‌भुत घटना है। वैसे परवर्ती काल में नारियों का भक्त कवयित्री रूप में लोप ही दिखाई देता है। जो आयीं, वे प्रायः पुरुष समाज के विद्रोह स्वरूप ही आयीं। मध्यकाल में संत कवियित्रियों में सहजोबाई, दयाबाई आदि तथा कृष्ण भक्तों में आण्डाल और मीराबाई प्रायः सभीको अपने कवि कर्म के कारण ही परिवार त्यागना पड़ा। उनका भक्त होना और कविकर्म में लिप्त होना उनका पुरुष वर्चस्वी समाज के विद्रोह स्वरूप ही था। कृष्ण भक्त कवयित्री मीरा का विद्रोह इन सभी नारी कवियित्रियों में सर्वाधिक प्रबल रहा। उनको अपने इस विद्रोह कर्म का जितना मूल्य चुकाना पड़ा, प्रायः उतना किसी अन्य को नहीं, अस्तु। संभवतः इसके पूर्व ऐसी घटना भक्ति आन्दोलन में नहीं हुई थी। कृष्ण भक्त मीरा द्वारा रचित पदावली की रचना में उनके भावपूर्ण समर्पण की अनगूंज इतनी गहरी, मार्मिक और हृदयस्पर्शी थी कि उसका चलन राजस्थान से लेकर पूरे पश्चिमोत्तर भारत तक व्याप्त हुई। यह उस काल की आश्चर्यजनक घटना थी। 'मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई' जैसी मन-भावन पंक्तियों ने लोगों को भाव विभोर होकर नृत्य करने एवं गायन करने के लिए बाध्य कर दिया, लेकिन इसके साथ ही हमें उन परिस्थितियों को देखना पड़ेगा जिन परिस्थितियों में मीरा का बचपन और यौवनकाल गुजरा। 15वीं शती में नारी का जन्म लेना तथा राज घराने से उसका संबंध होना एक बिम्ब बनाता है। पुनः ऐसी नारी का भरे यौवन में विधवा हो जाना हमारे मनः जगत में एक दर्द से भरा उस नारी का चित्र खींचता है जो पुरुष के पद तले कुचलीजाकर समाप्त हो जाने के लिए विवश है। ऐसी नारी चहारदीवारी में कैद, तिरस्कार एवं सामाजिक बेड़ियों में जकड़ी हुई दीखती है। मीराबाई ने इन सारे मिथकों को अपने भक्ति, साहस, नवचेतना एवं अदम्य जीजीविषा शक्ति से तोड़कर छिन्न-भिन्न कर दिया। डॉ0 नीलिमा सिंह ने एक स्थल पर इसी विशेषता का जिक्र किया है-''परम्परा के पालन की अनिवार्यता को मीरा ने कभी स्वीकार नहीं किया, न स्त्री के रूप में और न ही कृष्ण भक्ति के रूप में। उन्हें श्रीकृष्ण से प्रेम था और वह उसे सहज भाव से अपने पदों में प्रकट करती रहीं। किसी संप्रदाय विशेष के ढाँचे में बंधकर अपने प्रेम को अभिव्यक्त करने की बात, उनके समकालीन अन्य भक्त कवियों को भले ही स्वाभाविक न लगी हो, किन्तु मीरा इसे स्वीकार न सकीं। भक्ति की स्वतन्त्रता पाने के लिए मीरा ने तो गृह त्याग कर दिया।''[1]

मीरा बाई ने समाज एवं धर्म दोनों ही क्षेत्रों में नारी की नई चेतना एवं निज अस्तित्व का जो बिगुल फूँका था वह अपने आप में स्त्री मुक्ति की अवधारणा को पुष्ट करता है। मीरा बाई की स्त्री मुक्ति अवधारणा का विवेचन करने से पूर्व हमें मीरा के पूर्व की नारी और मीरा के समय की नारी की स्थिति के विषय पर जान लेना अपेक्षित है। नीति नियामक मनु से लेकर वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथों में नारी विषयक दृष्टिकोण संकीर्ण एवं भेद भरा दिखाई देता है। हर स्तर पर नारी को पुरुष के मुकाबले हीन दिखाया गया है। इन ग्रंथों में कहीं नारी के अधिकारों पर कुठाराघात किया गया है, कहीं उसे ऐसे पुरुष (पति) को भी देवता के समान पूजने का निर्देश हुआ है जो गुणहीन, शीलरहित और कामी हो। इसी प्रकार मध्ययुगीन समाज भी नारी के लिए किसी भी प्रकार सहिष्णु नहीं था। समाज पर पुरुषों का एकाधिकार था। परिवार, समाज, राजनीति, राजधर्म एवं भक्तिपथ सभी क्षेत्र में पुरुष का दबदबा था। ऐसे ही काल में कृष्ण भक्त मीरा की उत्पत्ति हुई थी। मीरा के समय का मध्यकाल समाज, राजनीति एवं धर्म के दृष्टि से संक्रमण का काल था। जहाँ हिन्दू प्रत्येक स्तर पर हतोत्साहित एवं पराजित हो रहा था वहीं मुस्लिम प्रत्येक क्षेत्र में अपना उत्थान कर रहा था। परिणामस्वरूप इस संक्रमण का प्रभाव निम्नवर्ग के साथ स्त्रियों पर भी पड़ा। पुरुष प्रधान समाज पर्दा प्रथा एवं धार्मिक बाह्याडंबरों के संकीर्ण दृष्टिकोण से भर कर नारी पर नाना प्रकार के अत्याचार कर रहा था। वह नारी निम्न वर्ग से जुड़ी हो या उच्च वर्ग से। 'राजस्थान भारती' में भी ऐसा कथन मिलता है- ''राजघरानों और अमीरों के यहाँ नारी का स्थान निरंतर प्रभुत्वहीन होता जा रहा था और वह सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक स्तर पर पुरुष वर्ग की इच्छा के पूर्ण अधीन हो गई थी।''[2] ऐसे पुरुषसत्ता वाले समाज से संघर्ष के साथ-साथ मीरा के सामने राजसत्ता और सामंती परिवेश की विभीषिकाओं के बीच अभिनव मुक्ति मार्ग की तलाश अहम् काम था, क्योंकि ऐसे दम घोंटू समाज की वह अभ्यस्त नहीं थीं। यही कारण था कि मीरा की अंतरात्मा की मुक्ति की छटपटाहट उनके पदों में मुक्त स्वर में फूट पड़े थे।

ऊपर तत्कालीन पुरुष प्रधान समाज की जिन परिस्थितियों का वर्णन किया गया है; मीरा का व्यक्तित्व उसके प्रतिरोधी के रूप में

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रारंभ से ही रहा है और उसी की अभिव्यक्ति या यो कहें मार्गान्तीकरण उनके कृष्ण के प्रति भक्तिमय अनुराग के रूप में उभरकर सामने आता है। यह उस निरंकुश राजतन्त्र के खिलाफ नारी का साहसिक और दुर्दम्य प्रथम अभियान था। उन्होंने आजीवन ऐसे ही वर्चस्व प्रधान पुरुष समाज से टकराहट का रास्ता अख्तियार किया और अपनी परिवर्तित नवीन चेतना की चमक से समाज को आलोकित करती रहीं। मीरा में यह प्रतिरोधी चेतना बाल्यावस्था से ही दृष्टिगोचर होती है। इसकी प्रामाणिक झलक अपनी माँ से संवाद करते हुए दिखायी पड़ती है। एक बार बालिका मीरा ने माता के सामने यह प्रश्न उठाया कि उनका दूल्हा कौन है? उत्तर में माँ द्वारा गिरधर की मूर्ति की ओर संकेत करते हुए कहा कि तुम्हारा दूल्हा वे हैं। स्वतन्त्रबोध से सिक्त मीरा के लिए वह संकेत अमिट हो गया। गिरधर आजीवन पति स्वरूप हो गये और वे मीरा के सुख-दुःख एवं संघर्ष में सदा सहयोगी एवं अदम्य जीजिविषा प्रदान करते रहे। इसी संदर्भ में एक और घटना का जिक्र आता है। राजपूत राजघराना सदा से ही साधु एवं संतों को सम्मान देता आया है। मीरा बाई के महल में भी एक बार एक कृष्ण भक्त सन्यासी आया था। उसके पास गिरिधर की एक अद्‌भुत मूर्ति थी। उस मूर्ति को देखकर बालिका मीरा के मन में उसे पाने की अदम्य इच्छा जाग उठी। बालिका के हठ करने के बावजूद सन्यासी ने इसे बाल हठ समझकर एवं मूर्ति के प्रति स्वयं आस्था रखने के कारण वह मूर्ति नहीं दे सका। सन्यासी वहॉं से चला गया किन्तु दूसरे ही दिन प्रातः राजमहल में लौटकर आया और उस मूर्ति को बालिका मीरा को सौंप दिया। कारण यह था कि रात्रिकाल में सन्यासी को स्वप्न में स्वयं गिरिधर द्वारा यह आदेश प्राप्त हुआ था कि वह उस मूर्ति को मीरा को सौंप दे। यह घटना मीरा के निष्ठापूर्ण भक्ति एवं उनकी संघर्ष क्षमता का प्रमाणिक दस्तावेज है।

मीराबाई ने गिरधर गोपाल को अपना तन और मन दोनों न्यौछावर कर दिया था। वे कृष्ण की भक्ति में पूरी तरह समर्पित हो गयीं थीं। यही कारण रहा कि वे वैवाहिक बंधन के प्रेम को कभी भी मानसिक रूप से स्वीकार नहीं कर पायीं। वे लौकिक वैवाहिक बंधन का समाज के सामने प्रत्यक्ष प्रतिकार न कर सकीं किन्तु उन्होंने अपनी स्वतन्त्र चेतना एवं अपने विरोध को माँ के सामने स्पष्ट अवश्य कर दिया। उन्होंने अपने प्रखर शब्दों द्वारा अपनी चेतना को इन शब्दों में अभिव्यक्ति दी है-

''भाई म्हारे सुपणा माँ परण्याँ दीना नाथ
छप्पण कोटाँ जणाँ पधारयाँ दुल्हो सिरी ब्रजनाथ''[3]

क्योंकि किसी दूसरे पूरुष से विवाह करना उन्हें सांसारिक जंजाल प्रतीत होता था- ''काँई और को बरूँ माई री, म्हाँ को जग जंजाल''[4] लौकिक विवाह के बाद भी उन्होंने गिरधर को नहीं छोड़ा। माँगा भी तो अपनी माँ से मणि-माणिक्य नहीं बल्कि गिरधर की मूर्ति माँगी। ''दे दो माई अब म्हा को गिरधर लाल, प्यारे चरण को आन करति हौं, और न दे मणिमाल।''[5]

यहाँ मीरा की स्त्रीमुक्ति की चेतना की अवधारणा का स्वरूप अप्रत्यक्ष रूप में उजागर हुआ है। वे अपनी इस चेतना की अभिव्यक्ति माता के सम्मुख ही करतीं हैं। विवाह के बाद उनका समाज से खुला संघर्ष सामने तब आता है, जब उन्हें स्वच्छन्द वातावरण नहीं मिलता और न भक्ति के अनुकूल परिस्थितियाँ। ससुराल आगमन के प्रथम दिन से ही मीरा का संघर्ष प्रारंभ हो जाता है। सास के द्वारा कुलदेवी की पूजा का आदेश मीरा अनुनय-विनय करके इनकार कर देती हैं। इस बात से कुपित सास इसकी शिकायत अपने पति राणा सांगा से करती हैं- 'गई पति पास यह वधू नहीं काम की'[6] शिकायत सुनकर राणा ने मीरा पर अपना कोप प्रकट किया- 'राणा सुनि कोप धरयो, हिये मारिबोय करयो।''[7]। मीरा के स्वतंत्र विचारों का ससुराल के लोगों द्वारा निरंतर विरोध होता रहा। मीरा के पति भोजराज भी इन स्थितियों से अवश्य ही प्रभावित रहे होंगे, किन्तु उनका स्वरूप विरोध एवं अत्याचार वाला नहीं बल्कि विचारों से सामंजस्य स्थापना करने वाला रहा होगा। यदि भोजराज मीरा को सताने वाले एवं अत्याचार करने वाले रहते तो मीरा इसका उल्लेख अपने काव्य में अवश्य करतीं, क्योंकि वे सच्चे अर्थो में स्त्री मुक्ति अवधारणा की मानसिकता से युक्त स्वतन्त्र चिंतन एवं प्रखर चेतना से जुड़ी हुई थीं। 'राणा' ने उन पर अत्याचार किये, विरोध जताया एवं नाना भाँति से प्रताड़ित किया तो वे स्थितियाँ मीरा की पदावली में अवश्य अभिव्यंजित हुई हैं। वह राणा भोजराज नहीं हो सकते और न राणासांगा। ऐसा इसलिए कि राणा सांगा मीरा बाई के श्वसुर थे और अंतिम संरक्षण दाता थे। भोजराज इसलिए नहीं कि उनकी मृत्यु अल्पकाल में राणा सांगा के ही जीवन काल में हो गयी थी। तब उनके राणा होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वस्तुतः जिस अत्याचारी राणा की चर्चा मीरा अपनी पदावली में बार-बार करती हैं वह या तो रतन सिंह के लिए हो सकता है या विक्रमादित्य या उदय सिंह के लिए, अस्तु। मीरा के स्वतन्त्र चिंतन में उनका लौकिक विवाह मात्र मिथ्या था-

''जग सुहाग मिथ्या री सजगी'' और गिरिधर प्रीति वास्तविक ''गिरधर म्हारा साँचा प्रीतम।'' अपने इस मुखर स्वरूप में उन्होंने पुरुष सत्तात्मक समाज को चुनौती ही नहीं दी, बल्कि पारिवारिक, सामाजिक मान्यताओं को संकीण जाल को भी तार-तार कर दिया है। उनका लौकिक विवाह का समय बड़ा अल्प था। भोजराज की मृत्यु ने मीरा का ऐहिक शृंगार छिन लिया। मीरा का भौतिक संसार तो सूना हो गया, पर आध्यात्मिक संसार सर्वदा जगमगाता रहा। वे गिरधर के अखंड और अचल सुहाग की छाया में सामाजिक रूढ़ियों, कुप्रथाओं एवं पुरुष सत्ता के कुचक्रों को अपने अदम्य साहस से झेलती रहीं और संघर्ष करती रहीं। अंततः सभी बाधाओं की चिंता त्यागकर वे मुक्त कंठ से श्री कृष्ण के प्रेम का गान और साधु-समागम करने लगीं। विधवा मीरा का यह साहसिक कदम सामंती समाज को नागवार लगा और उसने उससे मुक्ति मार्ग खोज निकाला। वह मुक्ति का मार्ग था मीरा का सती हो जाना। यह प्रस्ताव मीरा ने एक सिरे से खारिज कर दिया। 'गिरधर गास्या सती

न होस्यां'। उस जमाने में सामंती व्यवस्था के अधीन एक विधवा स्त्री का ऐसा कथन कम साहस की बात नहीं थी। मीरा के अंतिम संरक्षक राणा सांगा ने मीरा के सती होने की अस्वीकृति को स्वीकार कर लिया। पति की मृत्यु के बाद अल्प समय तक राणा-सांगा का संरक्षण उन्हें प्राप्त होता रहा। शम्भू सिंह मनोहर अपने ग्रन्थ में इसकी पुष्टि करते हुए कहते हैं- "भोजराज के निधनोपरान्त मीरा का जीवन एक ओर कृष्ण प्रेम तथा दूसरी ओर भौतिक कष्ट व संघर्ष के युगल उपकूलों में, टकराती हुई प्रवाहित होती दिखायी देती हैं। उनके ससुर राणा सांगा चरम उदार एवं स्नेही व्यक्ति थे। अतः उनके जीवित रहते मीरा को कोई कष्ट नहीं हुआ।"[8]

यही वह समय था जब मीरा सम्पूर्ण समर्पण भाव से अपने आराध्य की भक्ति में लीन होने के साथ, साधु संतों के साथ बैठक भक्ति चर्चा और भजन-कीर्तन में अपनी भक्ति भावना को परिपुष्ट करती रहीं। परिवार के सदस्यों को उनका साधु-समागम कभी अच्छा नहीं लगा, किन्तु राणा सांगा के संरक्षण प्राप्त होने से वे उनका खुलकर विरोध भी न कर सके। उदार चित्त राणा सांगा की मृत्यु के उपरांत मीरा के ऊपर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। उनके स्वतन्त्र विचारों एवं चेतना पर कुठाराघात होने लगा। मीरा का जीवन पीड़ा एवं तिरस्कार से भर गया। दैहिक और मानसिक कष्टों की घड़ी में उन्होंने अन्तरात्मा में बैठे गिरिधर के एकान्त अनुराग में स्वयं को डूबो दिया। सब कुछ भुला देना चाहा। इसी ओर संकेत करते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं- "उनका चित्त अब से भगवद् भक्ति एवं साधु संगति में प्रतिदिन अधिकाधिक लगने लगा। वे भगवद् भजन में सदा निरत रहा करतीं और साधु सन्तों के पहुँचने पर लोक लज्जा का परित्याग कर, उनका आदर, सत्कार वे बड़ी श्रद्धा से करने लग जातीं।"[9] इस प्रकार वे साधु-सन्तों के बीच अपनी मनोनुकूल भगवत् चर्चा द्वारा अपने दुखी और विषादग्रस्त मन को शांति देने लगीं।

राणासांगा के पश्चात् मीरा की भगवत् भक्ति एवं संत-समागम में अनेक अवरोध आने लगे। उनको अनेक विपत्तियों, कष्टों का सामना करना पड़ा। मीरा ने बहुविध कष्ट देने वाले 'राणा' को अपनी पदावली में बार-बार उल्लिखित किया है। अब प्रश्न उठता है कि वह 'राणा' कौन है? वह राणासांगा के प्रथम उत्तराधिकारी राणा रतन सिंह हैं या कोई और? इतिहास में प्रथम उत्तराधिकारी राणा रतन सिंह व्यवहार कुशल एवं गुणी के रूप में ख्यात हैं। शम्भू सिंह मनोहर ने भी इसी बात को स्वीकार किया है-"... अपने पिता राणा सांगा के समान ये भी (रतन सिंह) विरोचित गुणों तथा सौहार्द्र व सदाशयता से पूर्ण थे। अतः इनके द्वारा मीरा को कष्ट दिया जाना अशक्य ही प्रतीत होता है। रतन सिंह ने अल्प काल तक ही मेवाड़ पर राज्य किया।"[10] संभव है, राजकुलोचित मर्यादा का ध्यान रखकर, रतन सिंह ने मीरा पर अत्याचार भले न किया हो, किन्तु उन्हें साधु-सन्तों से न मिलने देने हेतु अन्य उपाय जरूर किये होंगे। मीरा ने राणा द्वारा साधु समागम रोकने के सारे व्यवधानों को छिन्न-भिन्न कर दिया होगा। राणा रतन सिंह के अल्पकालीन शासन के बाद उनके उत्तराधिकारी राणा विक्रमादित्य हुए। यही राणा इतिहास में अपनी क्रूरता, अहंकार एवं छिछोरी प्रवृत्ति के लिए प्रसिद्ध रहा है। उसके शासन और स्वभाव पर पद्मावती शबनम् ने कहा है, 'इनकी उदण्डता के कारण सामंत जन इनसे रुष्ट रहते थे। अतः अपनी रक्षार्थ ये अपने विश्वासपात्र सात सौ पहलवानों को सदा साथ रखते थे। इस कारण सामन्त गण और अधिक चिढ़ गए। ... प्रचलित मान्यतानुसार राणा विक्रमादित्य द्वारा ही मीरा को त्रास दिया जाना मान्य है। ... ये अत्यधिक विलासी एवं विषयी थे। इनमें शौर्य, नीति, निपुणता, गांभीर्य आदि राजोचित गुणों का सर्वथा अभाव था। यहाँ तक कि अवसर उपस्थित होने पर भी ये शत्रु से सामना नहीं करना चाहते थे।"[11] स्पष्ट है कि मीरा को अथाह कष्ट देने वाला राणा विक्रमादित्य ही था। उसी के शासन काल में मीरा का पुरुष सत्ता से संघर्ष सबसे अधिका भीषण था। मीरा ने अपने ऊपर राणा द्वारा किये गये अत्याचारों को बेबाक ढंग से समाज के सामने अभिव्यक्ति दी है-

"सजनियाँ दुसमन होय बैठ्या सबने लागू कड़ी"[12]

वस्तुतः राणा के मीरा से संघर्ष का मुख्य कारण उनका लोक लाज और कुल मर्यादा से बेपरवाह मुक्त भाव से साधु संतों के बीच बैठकर गिरधर की चर्चा करना तथा गायन और नर्तन रहा था। ऐसा लगता है कि राणा के साथ पूरा राजघराना भी मीरा के खिलाफ है। राणा की बहन ऊदाँ, मीरा को भाई के द्वारा किये गये अत्याचारों की वजह बताती हैं-

"थाने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी
राणा रोस किया था पर, साधों में मत जारी
कुल को दाग लगे है, भाभी निंदा हो रही भारी
साधो रे संग बन-बन भटको, लाज गवाई सारी
बड़े घर में जनम लियो है, नाचो दे दे तारी।"[13]

मीरा इन वर्जनाओं को एक सिरे से नकार देती हैं और प्रत्युत्तर में कहती है-

"राणा ने समझाओ जाओ, मैं तो बात न मानी।"[14]

मीरा लोक लाज के सारे कृत्रिम आवरणों को तोड़ देना चाहती हैं। वे उस लोक लाज का मान नहीं रखना चाहती है, क्योंकि उन्हें श्याम 'प्रीत' का मान रखना है-

"स्याम प्रीत री बाँध घूँघरयाँ मोहण म्हारो साँच्या री
लोक-लाज कुलराँ मरजाहा जगमाँ नेक णा राख्या री।"[15]

सच्चे अर्थों में मीरा सारे भौतिक बंधनों से मुक्त हैं। वे नारी-पुरुष के संकीर्ण बंधन से ऊपर उठकर मात्र एक भक्त रह गई हैं। वे एक संसार मुक्त भक्त होकर उल्लसित भाव से श्याम के नाम के कीर्तन की झाँझ बजाते हुए राणा को ललकार कर कहती हैं-

हरी मंदिर में निरत कराँवाँ घूँघरयाँ तम कास्याँ

स्याम नाम रो झाँझ चलास्याँ, भो सागर तर जास्याँ।''[16]

सभी वर्जनाओं को दरकिनार करते हुए मीरा ने न साधु समागम छोड़ा, न हरि मंदिर में जाना छोड़ा और न भावावेश में नृत्य ही छोड़ा जिसके कारण राणा ने उनपर पहरा बैठा दिया और नजरबंद कर दिया। मीरा के पदों में इसकी गवाही है- ''पहरो भी राख्यो चौकी बिठार्यो, ताला दियो जड़ाय।''[17] मध्य युग का पुरुष प्रधान समाज नारी को सदा पर्दानशीन देखना चाहता है। ऐसे युग में निर्भयमना मीरा का नारी नवचेतना से भर कर उदित होना अपने आप में चमत्कार है। मीरा के ऊपर समाज का दाब तो था ही साथ ही राजघराने के मिथ्या आडंबर का दबाव भी था। इन दाबों में मीरा दबकर समाप्त नहीं हुई बल्कि यह दाब उन्हें और अधिक निखारने वाला बन गया। वे चमचमाते हीरे की भाँति पुरुष सत्ता और आभिजात्य वर्ग को जहाँ अपने चमक से चौधियाने के लिए विवश कर दिया वहीं नारी समाज के लिए नवीन चेतना का रास्ता बना गईं। भयहीन होकर उन्होंने महल अटारी छोड़ दी, अपने साँवरिया के लिए 'भगवी' चादर धारण कर लिया-

''महल अटारी हम सब त्यागे, त्याग्यो थारो बसन सहर

काजल टीकी हम सब त्याग्या, भगवी चादर पहर''[18]

उन्होंने राजमहल एवं वैभव का ही त्याग नहीं किया, बल्कि मध्ययुगीन पुरुष समाज, राजसत्ता के लिए भी उनके विद्रोही तेवर एवं तीक्ष्ण व्यंग्य सचमुच में अविस्मरणीय है-

'मूरख जण सिंहासन न राजा, पंडित फिरताँ द्वारा

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, राणा भगत संहारा''[19]

मीरा की प्रखर चेतना ने राणा के हर चाल को शिकस्त दी। राणा द्वारा बदनामी का भय दिखाना, प्रताड़ित करना, नीचा दिखाना मीरा में नई शक्ति भरने वाला बन गया। अब तो यह बदनामी भी मीरा को मीठी लगने लगी। मीरा अपनी ही अनूठी चाल से चलती रहीं-

''राणा म्हाने या बदनामी लागे मीठी

कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं चलूँगी चाल अनूठी''[20]

राणा ने मीरा की बुलंद आवाज को समाप्त करने के लिए 'ताला-चौकी, 'पिटारा', 'सूल-सेज' आदि का जो स्वांग रचा वह उनके अस्तित्व की विराटता में ध्वस्त हो गया। अंततः राणा ने 'गिरधर का चरणामृत' कहकर विष से भरा प्याला भेजा जो मीरा के अधर को छूकर सचमुच अमृत हो गया। अनेक पद इस घटना की पुष्टि करते हैं-

'बिखरो प्याला राणा भेज्या, पीवाँ मीराँ हाँसीरी'[21]

'राणा भेज्या बिखरो प्याला, चरणामृत पी जाणा'[22]

राणा का अत्याचार मीरा को हृदय से अविजित-सा बना दिया। अब वह किसी प्रकार से दीन हीन होकर अत्याचारसहने के लिए राजी न थी। उन्होंने सारी वर्जनाओं को दरकिनार कर राजमहल से अपने पैरों को बाहर निकाल दिया वह भी चुनौती के साथ-

''राणा जी हूँ अब न रहूँगी तोरी हट की।

मारो चाहे छोड़ों राणा, नहिं रहूँ मैं बरजी।''[23]

मीरा ने प्रखर चेतना से पुरुष सत्ता एवं राजतन्त्र के ढकोसले को रौंद डाला है। भगीरथ बडोले ने ठीक ही कहा है ''सामन्तवादी पुरुष-प्रधान युग की यह नारी समस्त नारी समुदाय का प्रधान बनकर अत्याचारों, रूढ़ियों और परम्पराओं से लड़ने के लिए कटिबद्ध हुई तथा इस राह पर मीरा को पूरी-पूरी सफलता मिली है।''[24]

मीरा के युग का धार्मिक परिवेश भी बाह्यआडंबर से पूर्ण होकर कंटकाकीर्ण हो गया था। उस समय धार्मिक सामन्तवाद का बोलबाला था। विविध धर्मावलंबी अपने-अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानकर मिथ्या गर्व के नशे में चूर थे। हिन्दू, बौद्ध, जैन, कापालिक, योगी आदि अनेक धर्म सम्प्रदाय परस्पर विरोधी एवं एक-दूसरे से ईर्ष्या भाव रखने वाले थे। ऐसी स्थिति में नवागत मुसलमानों ने पूरे भारतीय धर्म पर अपनी स्थिति मजबूत की। उपेक्षित एक विशाल संख्या जो गरीब थी, सामाजिक स्तर से निम्न थी, मुसलमान हो गई अथवा इस्लाम धर्म के नजदीक आ गई। इस प्रकार मध्ययुग धार्मिक परिवेश की दृष्टि से घोर संक्रमण का काल था। धर्म से इस टकराव में नारी का अस्तित्व नगण्य था। मध्यकाल के संतकवि एवं रामभक्त कवि भी नारी की स्थिति को भक्ति मार्ग का अवरोध ही मानकर चले। कृष्ण भक्तों की स्थिति इससे कुछ अलग थी। वे जहाँ राधाकृष्ण को एक मानकर ईश भक्ति के माध्यम से नारी की महत्ता को सिद्ध कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर बाह्य जगत में नारी के अस्तित्व को नकार रहे थे। इस संदर्भ में चैतन्य सम्प्रदाय के जीव गोस्वामी की मानसिकता एवं मीरा के संघर्ष को आचार्य परशुराम चतुर्वेदी एक घटना के माध्यम से जिक्र करते हैं- ''प्रसिद्ध है कि मीराबाई वृन्दावन यात्रा के अवसर पर श्री जीव गोस्वामी के मठ पर गई थीं। इनके यह कहला भेजने पर कि मैं स्त्रियों से कभी नहीं मिलता, उन्होंने उत्तर दिया था, ''मैं तो अब तक समझती थी कि वृन्दावन में भगवान श्री कृष्ण ही एक मात्र पुरुष हैं और अन्य सभी लोग केवल स्त्री और गोपी रूप हैं। मुझे आज ज्ञात हुआ कि भगवान् के अतिरिक्त अपने को पुरुष समझने वाले, यहाँ अन्य व्यक्ति भी विद्यमान हैं, ''इस बात से प्रभावित होकर श्री जीव गोस्वामी उनसे बाहर आकर मिले थे। इस घटना के अनन्तर मीराँबाई का वृन्दावन में उक्त गोस्वामी के निकट कुछ काल तक ठहर जाना तथा सत्संग करना भी बतलाया जाता है।''[25] इस घटना का उल्लेख प्रियादास कृत 'भक्तिरस प्रबोधिनी' में भी प्राप्त होता है-

''वृन्दावन आई जीव गुसाई जू सो मिली झाला,

तिय मुख देखिबो के पन ले छुटायौ है।''[26]

इस प्रकार मीरा की भक्तिसिद्ध निर्भीक वाणी ने पुरुष सत्तात्मक समाज, धार्मिक बाह्याडंबर के पीछे नारी को नीचा दिखाने वाले मान्यताओं पर गहरी चोट की है। नारी अस्मिता को नयी पहचान दिलाने के लिए ही मीरा ने किसी भी सम्प्रदाय से जुड़कर न उसमें विलीन हुई और न अपनी चेतना को भूलीं। वे स्वतन्त्र चेतना के बल पर सतत् संघर्ष करते हुए निरंतर नयी नारी चेतना की वाहक बनी रहीं। मीरा के स्वतन्त्र चेतना से संबंधित चौरासी वैष्णवन की वार्ता में एक प्रसंग आता है बल्लभ मतानुयायी श्री रामदास जी मीरा पर इसीलिए कुपित हो गये कि मीरा ने उनसे महाप्रभु के अतिरिक्त किसी अन्य का पद गाने का आग्रह किया था। कुपित होकर रामदास ने उन्हें अपशब्द भी कहे और वहाँ से चले गये थे। यह प्रसंग इस रूप में प्राप्त होता है- ''सो एक दिन मीराबाई के श्री ठाकुर जी के आगे रामदास जी कीर्तन करते हुते। श्री रामदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून के पद गावत हुते। तब मीरा बाई बोली जो दूसरों पद श्री ठाकुर जी को गावो। तब रामदास जी ने कह्यो मीराँबाईसो जो अरे दारी राँड यह कौन को पद है। यह कहा तेरे खसम का मूंड है जा आज से तेरौ मुहड़ों कबहूँ न देखूंगो।''[27] इस घटना से पता चलता है कि मीरा जहाँ निर्भीक मना हैं वहीं दूसरी ओर पुरुष समाज है जो किसी भी तरह नारी की स्वतन्त्र चेतना को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है। यहाँ मीरा का अपमान केवल इसीलिए हुआ कि उन्होंने 'महाप्रभु के प्रति आस्था को नहीं दर्शाया।

इसी प्रकार कृष्णदास ने भी मीरा का अपमान किया था। मीरा ने धार्मिक संप्रदायों द्वारा किये गये अपमान का एक-एक घूँट सहर्ष पिया, क्योंकि उन्हें साधु संगति में 'हरि सुख' मिलता था। उन्होंने किसी सम्प्रदाय से स्वयं को नहीं बांधा। वास्तव में वे तो स्वतन्त्र चेतना से जुड़कर गिरधर गोपाल में निमग्न हो चुकी थीं जो नारी और पुरुष की संकुचित सीमा में नहीं समा सकता। यही कारण था कि रामदास पुरोहित और कृष्णदास अधिकारी जैसे भक्तों के पुरुषत्व जनित अहं पर मीरा की आस्था ने करारी चोट की है। यह चोट मीरा ने शालीनता के दायरे में रहकर की। कहना यह है कि विभिन्न धार्मिक संप्रदायों से जुड़े लोगों नेअपने अपमान जनक शब्दों और आचरणों से उन्हें जो भी ठेस पहुँचायी उसका मीरा ने कोई प्रतिकार नहीं किया, वरन् ऐसे लोगों के साथ भी विनयपूर्ण व्यवहार किया। उनके प्रस्तावों को अस्वीकार भी किया तो शिष्टता और शालीनता से। सब मिलकर मीरा ने धार्मिक सम्प्रदायों की बहुलता के कारण वर्चस्व और प्रतिष्ठा के संघर्ष से अपने को दूर रखा। अपनी चेतना के अनुरूप अपनी पृथक भक्ति पद्धति को स्थापित किया तथा धार्मिक क्षेत्र में पुरुष वर्चस्व के बीच अपनी अलग राह तैयार की। उन्होंने अपने अलौकिक प्रेम साधना द्वारा पुरुष वर्चस्व से बद्ध साम्प्रदायिक अहं को विखंडित किया और नारियों को भक्ति क्षेत्र में समान प्रतिष्ठा के योग्य बनाकर चेतना को एक नया आयाम दिया।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ0 नीलिमा सिंह-मीरा : एक अंतरंग परिचय, पृ0 29
2. राजस्थान भारती-भाग 15, अंक 2, मार्च 1963, पृ0 62
3. आ0 परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, पद 27
4. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ0 32
5. वही, पृ0 32
6. प्रियादास, मीराबाई का चरित्र, पद 92
7. वही, पद संख्या 92
8. शम्भू सिंह मनोहर, मीरा पदावली, पृ0 11
9. आ0 परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, पृ0 21
10. शम्भू सिंह मनोहर, मीरा पदावली, पृ0 11
11. पद्मावती शबनम्-मीरा व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व, पृ0 100-101
12. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, पद 118
13. पद्मावती शबनम-मीरा व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ0 202
14. वही, पृ0 202
15. आ0 परशुराम चतुर्वेदी, मीरा की पदावली, पद 17
16. वही, पद 31
17. वही, पद 42
18. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ0 38
19. आ0 परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, पद 190
20. वही, पद 33
21. वही, पद 36
22. वही, पद 39
23. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ0 61
24. मीरा स्मृति ग्रंथ, पृ0 57
25. आ0 परशुराम चतुर्वेदी-मध्यकालीन प्रेम साधना, पृ0 48
26. प्रियादास, भक्ति रस प्रबोधिनी, ना0प्र0 सभा, वाराणसी।
27. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, प्रसंग 1, पृ0 131-132

स्वाधीन भारत का लोकतंत्र और रघुवीर सहाय की कविता

प्रेम लता राय[*] एवं डॉ. सत्यपाल शर्मा[**]

सन् 1947 में 15 अगस्त को भारत आजाद हुआ। भारत की आजादी इसकी जनता के लिए नए युग की शुरूआत थी। 14 अगस्त को आजादी की पूर्व संध्या पर भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप मे पंडित जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा को संबोधित करते हुए अपने ऐतिहासिक उद्बोधन में भारतीय जनता की भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहा था : ''बरसों पहले हमने नियति के साथ एक करार किया था और अब वह समय आ गया है जब हम अपना वादा पूरा करेंगे.......... आधी रात ठीक बारह के घंटे के साथ, जब दुनिया सोती है भारत जिंदगी और आजादी के लिए जगेगा। कभी ऐसे पल भी आते हैं, जब हम पुराने युग से नए में कदम रखते हैं, जब एक युग समाप्त हो जाता है और जब एक राष्ट्र की लंबे समय से कुचली हुई आत्मा अभिव्यक्ति प्राप्त करती है। उचित यह है कि इस शुभ अवसर पर, भारत, उसकी जनता और संपूर्ण मानवता की सेवा में समर्पित होने की कसम खाएँ........... आज दुर्भाग्य के एक युग का हमने अंत कर दिया है और भारत ने फिर से अपनी पहचान हासिल कर ली है।''[1]

भारत की आजादी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी परन्तु इसके बावजूद एक लंबी यात्रा की यह मात्र शुरूआत थी। भारत को आजादी तो मिली थी पर साथ ही सदियों का पिछड़ापन, भयंकर गरीबी, निरक्षरता, व्यापक तौर पर फैली हुई महामारी तथा भीषण सामाजिक विषमता भी अंग्रेजों से विरासत में मिली थी। देश के बँटवारे के साथ हिंसा और विस्थापन की त्रासदी भी अंग्रेज जाते-जाते भारत को दे गए थे। जिस समय भारत को आजादी मिली थी, भारत में पंडित जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में गठित अंतरिम मंत्रिमण्डल ही परोक्ष रूप से शासन कर रहा था उसे ही संविधान का निर्माण करना था। संविधान विशेषज्ञों की नजर में 'लोकतंत्र' भारत के लिए केवल एक शासन पद्धति नहीं था, वह कोई लक्ष्य मात्र नहीं था, वह लक्ष्यों को पूरा करने का माध्यम था, भारतीय जनता के समक्ष उपस्थित समस्याओं के समाधान का मार्ग था। एक शासन प्रणाली के रूप में लोकतंत्र को अपनाने का अर्थ स्वराज के सपने को पूरा करना-समता, स्वतंत्रता, न्याय, बंधुत्व और एकता की भावना को अपनाकर आगे बढ़ना था। अपने इन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति के उद्देश्य के कारण नेहरू आदि नेताओं ने लोकतंत्र को केवल राजनीतिक लोकतंत्र तक ही सीमित नहीं रखा उसे सामाजिक लोकतंत्र के रूप में विकसित करने का प्रयास किया। नेहरू जी का व्यक्तव्य है- ''व्यक्तिगत रूप से मैं राजनीतिक लोकतंत्र को केवल इस आशा से स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ कि उसका परिणाम सामाजिक लोकतंत्र होगा। राजनीतिक लोकतंत्र उस साध्य की सिद्धि का साधन मात्र है, अंतिम लक्ष्य नहीं।''[2]

भारत का राजनीतिक नेतृत्व एक आशावादी मनोदशा की ओर आगे बढ़ा और विश्वास और उल्लास के साथ अपनी प्राथमिकताओं को पूरा करने के लिए जुटा। अप्रैल 1953 में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति और कर्तव्यनिष्ठता का परिचय देते हुए कहा कि ''मैं तब तक आराम से बैठ नहीं सकता जब तक कि इस देश के प्रत्येक व्यक्ति, स्त्री और बच्चे को एक उचित व्यवहार और न्यूनतम जीवन स्तर की सुविधा प्राप्त नहीं हो जाती।........... एक राष्ट्र को जाँचने के लिए पाँच-छह वर्ष की अवधि बहुत छोटी होती है। आप दस साल और इंतजार कीजिए और आप पाएँगे कि हमारी योजनाएँ इस देश का नजारा ऐसे बदल देगीं कि दुनिया भौचक्की रह जायेगी।''[3]

लोकतान्त्रिक व्यवस्था से देश की जनता जो उम्मीद लगाए थी वह उम्मीद पूरी होती हुई नहीं दिखाई देती जिससे लोकतान्त्रिक व्यवस्था और उसके प्रतिनिधियों से मोहभंग का स्वर गहराता ही गया। मोहभंग का स्वर साहित्य में भी दिखाई देता है। साहित्य जगत में कवि व लेखक अपनी रचनाओं के माध्यम से तात्कालिक समय की स्थिति को दर्शाते हैं। इसी खाके में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के कवि रघुवीर सहाय की कविताओं को केन्द्र में रखकर उस पर विचार किया जा सकता है। रघुवीर सहाय आजादी के बाद अस्तित्व में आये यथार्थ के जटिल स्वरूप और उसके प्रभाव को समग्रता में रचनात्मकता के साथ अभिव्यक्त करने वाले रचनाकार हैं। रघुवीर सहाय की कविताओं में समकालीन जीवन और जगत की अमानवीयता, हिंसा, परपीड़न, संवेदनहीनता, संताप, भय, आतंक, आशंका आदि संदर्भों की पहचान है, वहीं दूसरी तरफ इन स्थितियों के समकक्ष सहज मानवीय जिजीविषा, करुणा, कोमलता, संघर्षशीलता, सामाजिकता की इतनी रचनात्मकता छवियाँ भी मौजूद हैं जिससे समूचा काव्य बोध बहुआयामी और द्वन्द्वात्मक बन गया है। रघुवीर सहाय की कविताएँ स्वतंत्रता के बाद में दशकों के समूचे भारतीय परिवेश की, उसमें आर्थिक, राजनैतिक विकास के अन्तर्विरोधों से ग्रस्त मानव जीवन की समस्याओं की व्याख्या करती हैं।

रघुवीर सहाय के कविता संग्रह हैं- 'सीढ़ियों पर धूप में' (1960), 'आत्महत्या के विरूद्ध' (1967), 'हँसो जल्दी हँसो'

* शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

(1974), 'कुछ पत्ते कुछ चिट्ठियाँ', 'एक समय था', 'लोग भूल गए हैं'। 'लोग भूल गए हैं' रचना पर उन्हें 1984 का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है।

रघुवीर सहाय समकालीन हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं। उनके साहित्य पर पत्रकारिता का गहरा प्रभाव रहा है। कवि की कविताएँ मुख्य रूप से सन् 1960 के बाद के भारत की तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। उनकी कविताएँ देश में स्वतंत्रता, समानता व विश्वबंधुत्व से परिपूर्ण एक व्यवस्थित लोकतांत्रिक व्यवस्था की पक्षधर हैं। जिन उम्मीदों से आजादी की लड़ाई लड़ी गई थी वह उम्मीद पूरी नहीं होती है, जिससे सामान्य जनता का मोहभंग होता है और वह विरोध करती है। रघुवीर सहाय एक कवि होने के नाते अपनी कविताओं में विरोध दर्ज करते हैं। एक कवि के रूप में उनकी साहित्य जगत में प्रतिष्ठा 'दूसरा सप्तक' (1951 ई0) के प्रकाशन के साथ होती है जिसे 'नई कविता' आंदोलन का प्रस्थान बिन्दु कहा जाता है। रघुवीर सहाय 'सप्तक' से जुड़े होने के बावजूद अज्ञेय की अस्तित्ववादी धारणा से पूर्णतः जुड़े हुए नहीं थे बल्कि आजादी के बाद अस्तित्व में आयी जटिलताओं को समग्र रूप में अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त किये। उन्होंने कर्म को अनुभवों से जोड़कर जीवन के करीब लाने का कार्य किया। उनकी कविताओं में ठोस भौतिक संदर्भ और घटनाएँ हैं, जिससे वे वायवीय न होकर यथार्थ के ठोस धरातल पर है। रघुवीर सहाय की कविताओं पर विचार करें तो उनकी प्रारम्भिक कविताओं में आजादी का उत्साह और भविष्य के प्रति आस्था दिखाई देती है। सुरेश शर्मा को दिए साक्षात्कार में वे आजादी को एक नए स्वप्न और निर्माण के दायित्व से जोड़ने वाली प्रेरणा के रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं- ''जब मैंने लिखना शुरू किया था तब उन्हीं दिनों देश को आजादी मिली थी और एक तरह की आशा और स्वप्न से मैं जुड़ा था....... हमें एक ऐतिहासिक सत्य की प्रतीति हुई कि अब हमारे बहुत से जो सत्ता और शक्ति के अधिकार हैं वे भारत के लोगों के ही हाथ में आ गए हैं। इससे आगे के लिए एक तरह की उम्मीद तथा बहुत-सी सामाजिक इच्छाओं की पूर्ति करने की आशा बँधती थी।''[2]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की यह नई मनःस्थिति रघुवीर सहाय की तत्कालीन रचनाओं में अभिव्यक्त हुई-

''संसार जगा था सोए थे हम मुर्दा बन/फिर एक दिवस हमने पाया था सजीवन/जिस दिन हमने/लोहू की श्रम की बूँदों से/इतिहास-कलुषगत कर डाला था परिष्कार।''[5]

आजादी की पहली वर्षगाँठ तक आते-आते एक नए युग में प्रदेश के कवि का स्वाभाविक उत्साह कम हो गया। देश विभाजन के परिणामस्वरूप हुए सामूहिक कत्ल और बलात्कार की त्रासद घटनाएँ कवि की आस्था और विश्वास को खंडित करती हैं फलतः आजादी की नयी सुबह के आगमन पर मंगल गीत गाने वाला कवि निराशा भरे स्वर में कहने के लिए विवश होता है-

'कोलाहल कर एक वर्ष भर गया बीत
रह गया कंठ स्वर अस्त-व्यस्त, वह नया गीत
हम गा न सके,
जिसके मंगल-मधु-गुंजन से,
हमको नवजीवन को करना था नमस्कार।'[6]

स्वप्न और यथार्थ का अंतर्द्वन्द्व न केवल रघुवीर सहाय को एक नई दृष्टि देता है अपितु चीजों को उसके वास्तविक नाम से पुकारने की ताकत भी देता है, कवि देखता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जीवन में राजनीतिक हस्तक्षेप बढ़ गया है, राजनीति मनुष्य की नियति को संचालित करने वाली व्यवस्था बन गयी है, राजनीति व व्यवस्था के प्रति आस्था और विश्वास का जो भार उसके मन में था वह टूट जाता है। कवि कहता है-

''बीस बरस बीत गए
लालसा मनुष्य की तिलमिल कर मिट गई।''[7]

जब यह कविता प्रकाशित हुए थी, तब तक देश को आजाद हुए बीस वर्ष हो गए थे। इन बीस वर्षों में सुविधाभोगी सत्ताधारियों ने आम जनता को केवल खोखले नारों और कभी पूरे न होने वाले आश्वासनों से ठगा और लूटा। नेहरू युग की राजनीति आशावाद से ग्रस्त एक ऐसी राजनीति थी जिसके पैर यथार्थ पर कम स्वर्णिम मानव-भविष्य के स्वप्न पर अधिक टिके थे। फलतः ऐसी आदर्शवादी राजनीति का अंत मोहभंग से हुआ। रघुवीर सहाय की कविताएँ इस लोकतांत्रिक व्यवस्था और उसके प्रतिनिधियों से मोहभंग को स्वर देती कविताएँ हैं।

'आत्महत्या के विरुद्ध' काव्य संग्रह के वक्तव्य में अपनी मनःस्थिति अभिव्यक्त करते हुए वे कहते हैं कि ''लोकतंत्र मोटे, बहुत मोटे तौर पर लोकतंत्र ने हमें इंसान की शानदार जिन्दगी और कुत्ते की मौत के बीच चाँप लिया है।''[8] यह स्थिति परिवेश के प्रति गहरे और तीखे तनाव को सूचित करती है। सातवें दशक का राजनीतिक मोहभंग बहुत ही त्रासद और तीक्ष्ण रूप उनकी कविताओं में अभिव्यक्त होता है। संसद लोकतंत्र की सबसे महत्वपूर्ण और सर्वाधिक शक्तिशाली संस्था है। भारतीय संसद विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की व्यवस्थापिका है। वह स्वतंत्रता, समानता तथा न्याय दिलाने वाली तथा लोकतांत्रिक मूल्यों एवं आदर्शों की रक्षक संस्था है। परन्तु उसकी वास्तविक स्थिति क्या है? इसका साक्षात्कार 'मेरा प्रतिनिधि' शीर्षक कविता में आसानी से किया जा सकता है।

''सिंहासन ऊँचा है सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के / एक परिवार के/
मुँह बाए बैठे हैं लड़के सरकार के
लूले काने बहरे विविध प्रकार के
हल्की-सी दुर्गन्ध से भर गया है। सभाकक्ष।''[9]

यहाँ कवि ने लूले, काने और बहरे का प्रयोग कर्मण्य आधा सत्य देखने वाले और सत्य की आवाज न सुनने वाले शासकों के लिए किया है। न्याय, समानता व बंधुत्व की भावना को बहुत ही सूक्ष्म स्तर पर रघुवीर सहाय ने अपनी चेतना में आत्मसात किया है। यही कारण है कि जहाँ कहीं भी गरीबी, लाचारी, शोषण उन्हें दिखाई देता है वे उसका प्रतिकार करते हैं उन्होंने 'सीढ़ियों पर धूप में' के एक लेख में स्पष्ट किया है- 'गरीबी और बेकारी, युद्ध और गुलामी लेखक के दुश्मन हैं और मनुष्य के जानी दुश्मन हैं। उनसे ऐसा ही व्यवहार कीजिए जैसा दुश्मन-दुश्मन के साथ करता है।'[10]

रघुवीर सहाय अपने समय और समाज का गहरे रूप में साक्षात्कार करते हुए यह देख रहे थे कि लोकतंत्र में भी मनुष्य और मनुष्य के बीच असमानता और सामाजिक अन्याय का बोलबाला है, जनता रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जरूरतों से त्रस्त है। ऐसे हर अमानवीय और क्रूर हरकत के खिलाफ वे आवाज उठाते थे। अपने काव्य-संग्रह 'कुछ पत्ते कुछ चिट्ठियाँ' के प्रारम्भिक निवेदन में उन्होंने लिखा है कि ''जिस तरह रचनात्मकता और आजादी एक ही मानवीय आकांक्षा के पर्याय हैं उसी तरह समता की लड़ाई और कविता की एक ही मानवीय उत्कर्ष के पर्याय हैं।[11]

उनकी कविता का यही वैचारिक आधार था जिस पर खड़े होकर वे शासक वर्ग के खिलाफ मोर्चा लेते थे और साधारण जनता के प्रति अपनी सद्भावना और करुणा प्रकट करते थे। सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, वर्गवाद आदि हर विकृति जो मनुष्य को बाँटती हो, विभेद पैदा करती हो, वे उसके विरोधी थे।

सत्ता में बैठे हमारे प्रतिनिधियों ने अपनी नीतियों द्वारा गुलामों का ऐसा पिरामिड तैयार किया है जिसमें सबसे नीचे वह जनता है जो शोषित, पीड़ित और निरीह है और जिसे अपने ऊपर लदे हुए बोझ को सिर्फ इसलिए ढ़ोना है कि उसे एक जून की रोटी की जरूरत है दूसरी तरफ दिल्ली है जहाँ 'दूब हल्दी अच्छत'- सब इफरात है, और न खाने वाले बच्चों के लिए छपता हुआ मक्खन का विज्ञापन है-

''कितनी दूर कितनी दूर राजधानी से अकाल
मक्खन लो रोटी लो
चलो वहाँ हो आएँ
संस्कृति की गुदगुदी, करुणा की झुरझुरी बहस की भुखमरी
ले आएँ, बहस-बहस-तहस-नहस दूब हल्दी अच्छत
देख आएँ देवी-देउता का ठाँव।''[12]

जब बाकी देश भयानक अकाल की चपेट में हो- कितनी दूर राजधानी से अकाल और राजधानी के प्रभु वर्ग रोटी और मक्खन खा रहे हों तो हमें फ्रांस की क्रूर महारानी 'मेरी एन्टोनिएट' की याद आना स्वाभाविक है जिसने अकाल में रोटी न मिलने की शिकायत करने पर लोगों को सलाह देते हुए कहा था कि 'रोटी नहीं है तो केक खाइए', जहाँ संस्कृति, करुणा, बहस सब कुछ प्रायोजित और जनविरोधी हो, ऐसे शासक वर्ग को देखकर रघुवीर सहाय को संदेह होता है कि कहीं यह 'राजतंत्र' की वापसी तो नहीं है? राजतंत्र से लोकतंत्र हो जाने के बावजूद यहाँ 'राजा' है 'दरबार' है प्रजा और राजा के बीच असंवाद की स्थिति है। ऐसे में लोकतंत्र पर खतरा मँडरा रहा है। रघुवीर सहाय ने 1 दिसम्बर 1974 ई0 को प्रकाशित अपनी कविता 'आने वाला खतरा' में लिखा था-

''एक दिन इसी तरह आएगा- रमेश
कि किसी की कोई राय न रह जाएगी-रमेश
क्रोध होगा पर विरोध नहीं होगा
अर्जियों के सिवाय- रमेश
खतरा होगा खतरे की घंटी होगी
और उसे बादशाह बजाएगा - रमेश।''[13]

'हँसो-हँसो जल्दी हँसो' संग्रह की भूमिका में कवि लिखता हैः ''1975 में प्रकाशित होने के संयोग से यदि किसी को भ्रम हो कि इस संग्रह की कविताएँ आपातकालीन स्थिति के दौरान लिखी गयी थी तो वह दूर हो जाना चाहिए। आपातकालीन स्थिति घोषित होने से पूर्व ही जो लोग एक लंबे दौर में लोकतंत्र के क्षय के प्रमाण और आने वाले संकट को पहचानते रहे थे उनमें से यह कवि भी एक था और उसने जो पहचाना वह तभी लिखा था, वह पहले की तरह आने वाले संकट को पहचानने में लगा रहा और अब भी लगा हुआ है।''[14]

एक लंबे समय से भारतीय सत्तातंत्र के चरित्र की पड़ताल करते हुए रघुवीर सहाय ने पाया था कि शासक वर्ग धीरे-धीरे इतना निरंकुश होता जा रहा है कि उससे तानाशाही का खतरा उत्पन्न हो गया है। यह व्यवस्था आहिस्ता-आहिस्ता मनुष्य विरोधी प्रवृत्तियाँ अख्तियार कर आतंक और दहशत का पर्याय होती जा रही है। स्थिति इतनी भयावह होती जा रही है कि साधारण जनता के हँसने पर भी नजर रखी जा रही है-

''हँसो तुम पर नजर रखी जा रही है/हँसो अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कड़वाहट/पकड़ ली जाएगी और तुम मारे जाओगे/ऐसे हँसो कि बहुत खुश न मालूम हो/ वरना शक होगा यह शख्स शर्म में शामिल नहीं/और मारे जाओगे।''[15]

यहाँ हँसने मात्र से किसी व्यक्ति को मौत इसलिए मिलती है क्योंकि वह हँसी बहुत कुछ कहती है। भारत की जनता स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से अपने तथाकथित लोकतांत्रिक सरकार और उसके प्रतिनिधियों से बार-बार हारती आ रही हैं, लोकतंत्र जनता को बदलाव के लिए मतदान का अधिकार तो दिया है परन्तु हर बार उसे निरंकुश शासन का ही सामना करना पड़ रहा है फलतः जनता

में तटस्थता और निरपेक्षता भाव विद्यमान हो गया है, रघुवीर सहाय के यहाँ जनता के इस मनोभाव के प्रति नफरत का भाव है। वे कहते हैं-

''एक मेरी मुश्किल है जनता

जिससे मुझे नफरत है सच्ची और निस्संग

जिस पर कि मेरा क्रोध बार-बार-न्योछावर होता है।''[16]

रघुवीर सहाय लोकतंत्र के सबसे मजबूत स्तम्भ 'लोक' अर्थात् जनता की उपेक्षा से त्रस्त हैं और जनता को प्राणवान शक्ति के रूप में विकसित करना चाहते हैं। उनकी इच्छा न्याय, समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व से युक्त एक ऐसी सामाजिक दुनिया बनाने की रही है। जिसमें जनता गरिमामय जीवन जी सके। वह सिर्फ 'मतदाता' बनकर न जिए बल्कि देश में जनसम्बद्ध लोकतंत्र की स्थापना करे-

''इस जीवन में/मैं प्रधानमंत्री नहीं हुआ/इस जीवन में मैं प्रधानमंत्री के पद का/उम्मीदवार भी शायद हरगिज नहीं बनूँ/पर होने का अधिकार हमारा है/भारत का भावी प्रधानमंत्री होने का/अधिकार हमारा है/तुम हँस सकते हो हँसो कि हाँ हाँ/हो जाओ अधिकार तुम्हारा है/तो सुनो कि हाँ अधिकार हमारा है।''[17]

रघुवीर सहाय हिन्दी कविता के उन महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों में से हैं जिन्होंने साहित्य और समाज को एक-दूसरे के समक्ष रखकर स्वातंत्र्योत्तर भारत में आदमी की विडंबनात्मक स्थिति, उसकी समस्याओं और इस विरोधी व्यवस्था में राजनीति तथा जीवन के परस्पर सम्बन्ध को बचाये रखने का प्रयास किया। रघुवीर सहाय की चिंता कला ही नहीं, अपितु मनुष्य और मनुष्य निर्मित समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विषमता है। वह विषमता जिस आक्रोश, उत्तेजना, बेचैनी और संघर्ष को जन्म देती है, वह कवि की कविता का आधार बनता है। रघुवीर सहाय सामान्य से सामान्य व्यक्ति की स्थिति और उसकी नियति को स्वर देने वाले रचनाकार हैं उनकी काव्य चेतना नयी कविता के अन्य समकालीन कवियों की तुलना में कहीं अधिक सामाजिक है। रघुवीर सहाय वास्तविक अर्थों में जनता के सही प्रतिनिधित्व वाले लोकतंत्र के समर्थक हैं।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. आजादी के बाद का भारत, विपिन चन्द्र, पृ0 89-90
2. राजनीति चिन्तन की रूपरेखा, ओ0पी0 गाबा, पृ0 334
3. आजादी के बाद का भारत, विपिन चन्द्र, पृ0 184
4. रघुवीर सहाय का रचना कर्म, पृ0 138
5. रघुवीर सहाय रचनावली-1, पृ0 456
6. रघुवीर सहाय रचनावली, पृ0 456
7. वही, पृ0 139
8. रघुवीर सहाय रचनावली, पृ0 110
9. रघुवीर सहाय रचनावली, भाग-1, पृ0 110
10. सीढ़ियों पर धूप में, पृ0 220
11. रघुवीर सहाय रचनावली-1, पृ0 262
12. रघुवीर सहाय रचनावली-1, पृ0 113
13. रघुवीर सहाय रचनावली, भाग-1, पृ0 160-161
14. रघुवीर सहाय रचनावली, भाग-1, पृ0 154
15. रघुवीर सहाय रचनावली-1, पृ0 168
16. रघुवीर सहाय रचनावली-1, पृ0 124
17. रघुवीर सहाय रचनावली, भाग-1, पृ0 173

हिमतुगों के सौन्दर्य के सुधी रचनाकार रणवीर सिंह विष्ट

*डॉ. प्रियंका गुप्ता**

प्रकृति के अद्भुत दृश्य सौंदर्य को ईश्वर रूपी कलाकार ने स्वयं सृजन किया है। कभी इसे स्वर्ण के समान सुनहरा, रजत के समान धवल, हरा, नीला, पीला आदि सतरंगी रंगों से भी सजाया है। जिसका अपना अलग ही सौन्दर्य है, इस अनुपम सौन्दर्य से कोई भी आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। प्रकृति के इसी सौन्दर्य से प्रभावित उत्तराखण्ड के कलाकार रणवीर सिंह विष्ट जी थे, जो प्रकृति के गोद में जन्में पले और बढ़े। रणवीर सिंह विष्ट ने हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य को अपने अन्दर इतना रचा-बसा लिया कि यह सौन्दर्य उनके साथ रहा और कलाकर्म का आधार बन गया। अपने इन्हीं एहसासों को कभी कल्पना में रचते तो कभी रंग व तूलिका से उसे चित्र रूप प्रदान कर देते। रणवीर सिंह विष्ट हिमालय की पहाड़ियों व उस पर प्रकृति के पड़ने वाले बदलते प्रभाव को अपनी चित्र शृंखला (Blue Series) नीली शृंखला के रूप में आत्मसात कर लिया है।

रणवीर सिंह विष्ट उन चित्रकारों में से है जिन्होंने सैरा चित्रकार के रूप में अपना कला जीवन प्रारम्भ किया। अपनी कला यात्रा के विभिन्न पड़ावों के बाद भी वे उसी रास्ते पर आगे बढ़े। ऐसा नहीं कि प्रकृति चित्रण (सैरा) के अतिरिक्त, उन्होंने अन्य विषयों पर चित्र रचना नहीं की ज्यादा माटी की महक ने ही उन्हें अभिभूत किया है। यह महक बचपन से ही उनमें रची बसी थी जिसे झुठला देना असम्भव था, शायद यही कारण है कि जिसने उनकी पहचान प्रमुख रूप से प्रकृति (सैरा) चित्रकार के रूप में कराया।

पद्म श्री प्राप्त रणवीर सिंह विष्ट का जन्म 4 अक्टूबर 1928 ई0 में गढ़वाल के लुभावने रंगीन पर्वतीय अंचल में बसे लैंसडाउन नामक स्थान में हुआ था, यह मध्यम वर्गीय परिवार के सदस्य थे। इनके पिता कल्याण सिंह सेना में थे। इनकी पत्नी विमला विष्ट जी थी जो कि एक पाटरी चित्रकार के साथ ही कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ की प्रधानाध्यापिका भी रही। इनके चार बच्चे हैं तीन लड़कियाँ – रोमीला, बरीला, पुष्पीला और एक पुत्र लाबीर। इनके बच्चे आज भी लखनऊ ईन्दरानगर में स्थित अपने आवास में रहते हैं। रणवीर सिंह विष्ट जी का मन पढ़ाई में न लगने के कारण इनके पिता जी चाहते थे कि ये सेना में भर्ती हो जाए। किन्तु रणवीर सिंह विष्ट जी बचपन से ही हिमालय की वादियाँ, चोटियों के टुकड़े – टुकड़े उड़ते बादल, झर – झर करते झरने, हवाएं खूबसूरत मौसम की सुबह शाम, मौसम के अपने रंग, प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य वाला वातारण को देखते – देखते उनके बालमन में भा गया था। उनकी चेतना का केन्द्र प्रकृति ही था। हिमालय के सौन्दर्य के साथ ही वे लैंसडाउन में रह रहे आला परिवार के कुछ महिलाएँ – पुरूषों से भी प्रभावित थे क्योंकि वे वहाँ बैठकर चित्रांकन किया करते थे। बालक रणवीर सिंह विष्ट जी बहुत ही ध्यान मग्न होकर उन्हें चित्रांकन करते हुए देखा करते थे, और यही से उनके अन्दर भी चित्रांकन करने की इच्छा प्रबल होने लगी। स्कूल आते – जाते पहाड़ों की चट्टानें इनके लिए फलक का काम करने लगा।

1948ई0 हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद अपनी सृजनात्मक प्रवृत्ति के विकास के लिए कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ में विद्यार्थी के रूप में प्रवेश लिए, क्योंकि उस समय उत्तर प्रदेश में कला शिक्षा का केन्द्र लखनऊ, बनारस और इलाहाबाद में ही था। रणवीर सिंह विष्ट जी ने 1950 ई0 में ड्राइंग टीचर्स ट्रेनिंग के पाठयक्रम को किया, किन्तु उन्हें सन्तुष्टि नहीं मिली इसलिए पुनः उन्होंने 1954 ई0 में इसी महाविद्यालय से पाँच वर्षीय डिप्लोमा इन फाइन आर्ट्स किया। उनकी कला शिक्षा में चित्रकार विरेश्वर सेन, ललित मोहन सेन और फ्रैंक वैज्ली का महत्वपूर्ण योगदान था क्योंकि ये इन चित्रकारों के प्रिय विद्यार्थी में से थे। इनका प्रभाव भी कुछ समय तक इन पर रहा। 1956 ई0 में उत्तर प्रदेश सूचना विभाग में कलाकार (आर्टिस्ट) के पद पर कार्य किया। 1956 ई0 में सुधीर रंजन खास्तागीर के आग्रह पर आये व कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ में ही प्राध्यापक, प्रधानाचार्य, प्रोफेसर के साथ ही कला संकाय के डीन पद को भी सुशोभित करते हुए 1989 ई0 तक कला शिक्षा देते रहे। कला शिक्षण के साथ ही प्रशासनिक कार्यों में भी इनका योगदान रहा। उन्होंने राज्य ललित कला अकादमी लखनऊ उत्तर प्रदेश के कार्य वाहक अध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया।

रणवीर सिंह विष्ट जी शिक्षण और प्रशासनिक कार्यों के साथ ही एक प्रमुख प्रकृति चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हैं जैसा कि उपर्युक्त कथन (वाक्यों) में बताया जा चुका है, इनका जन्म ही सुन्दर मनोरम पर्वतीय क्षेत्र गढ़वाल में हुआ और बचपन से ही यह यहाँ के वातावरण से प्रभावित होते रहे। सौन्दर्य को अपना गुरू मानकर चित्रण कार्य करते। पहाड़ी जन जीवन, जिसमें वे जीते थे, परिवार व मित्रगण जिसके साथ वे उठते-बैठते थे उनकी मुखाकृतियों को कागज पर चित्रित किया करते थे। उस समय विष्ट की आत्मा ने जिसे स्वीकारा उसकी कृपा पूरी जिन्दगी उनकी कलाकृतियों पर होना संस्कारी वातावरण जैसी बात उनके लिए बन गया। उसे रणवीर सिंह विष्ट जी के कला का पहला चरण कह सकते हैं। सुन्दर

* अतिथि अध्यापिका, दृश्य कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पर्वतीय क्षेत्र में रहने के बाद जब वे लखनऊ आए तो अपने चित्र अभ्यास कार्य को हमेशा किया करते। शिक्षा ग्रहण करते समय जब वे छात्रावास में रहते तो अपने गुरूजनों के साथ – साथ लगे रहते और उनसे चित्रकला की बारीकियों को सीखते। शिक्षा ग्रहण करते समय भी लैंसडाउन का प्राकृतिक विषय संयोजन व रंगों के लिए पहले का माहौल उन्हें अपनी तरफ आकर्षित करता रहता था, साथ ही सन्दर्भों की ओर भी इनका झुकाव, आधुनिक कला के लिए अग्रसारित करता रहा।

कलाकार को कला का वातावरण मिल जाए तो वह उस पौधे की तरह बढ़ने लगता है जिसे हमेशा उचित खाद पानी मिलता रहता है बस फिर क्या था, ऐसा ही माहौल रणवीर सिंह विष्ट को भी मिला। वे विद्यालय में अध्ययन करने के पश्चात् घर पर अध्ययन का कार्य करते थे। विष्ट जी ने लखनऊ में हुसैनगंज में दो कमरे का मकान किराए पर लिया। खाने पीने की पूरी व्यवस्था के साथ रहने लगे व एक नौकर भी रख लिया था। बस अब स्वतन्त्र जीवन व काम करने की धुन, विद्यालय से लौटने के बाद जलरंगों से तीन या चार घंटे काम करते रहते व शाम होते ही घूमने निकल जाते। रात के समय हजरतगंज के रूमानी बुद्धिवाद के तरफ भी आकर्षित होते रहते थे। शहर में उनकी मुलाकात प्रसिद्ध साहित्यकारों, पत्रकारों, विद्वान, प्राध्यापकों, खानाबदोशों एवं अनगिनत महान शक्सियतों से होती। घूमते-घूमते बहुत रात हो जाती तो कभी सुबह। लैंसडाउन के विभिन्न प्रहरों को और दूसरी तरफ लखनऊ शहर के दृश्य बिम्ब को जो धीरे-धीरे रणवीर सिंह विष्ट जी के चित्रों में साकार रूप से दिखने लगे।

औपचारिक शिक्षा के दिनों में ही विष्ट जी ने यथार्थवादी प्राकृतिक दृश्यों, आकृति मूलक वाश पद्धति के चित्रों तथा मुखाकृति चित्रण से अपनी एक अलग पहचान बनायी। उन्होंने अपने बचपन के समय के पहाड़ी धरती पर विभिन्न मौसम के प्रभाव को अपने चित्रों के माध्यम से कैनवास पर चित्रित किया। तकनीकी माध्यम में पहले जलरंग, व क्रेयान को अपनाया, फिर लखनऊ आने के बाद तैल रंग में काम करने लगे। काली स्याही से रेखांकन करना इनका दैनिक अभ्यास हो गया। कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ को वे अपने लिए ऊर्जा श्रोत का वरदान मानते थे। घुम्मकड़ स्वभाव के कारण इन्हें जब भी समय मिलता ये नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत निकल जाते व दृश्यांकन, रेखांकन का कार्य करते रहते। 1953 ई0 में इन्होंने सैरा 1, सैरा-2, पहाड़ी सैरा, बरफखाना, मुसलाधार बारिश, केदारनाथ, कवियित्री आदि चित्रों का निर्माण किए। 1955 ई0 में दक्ष घाट, 1956 ई0 में मन्दिर के सामने, 1957 ई0 में सैरा, संयोजन 1, श्री नगर का रेलवे प्लेट फार्म, 1956 ई0 में निष्क्रमण, 1965 में रूपाकार, डलिया लिए महिला व ब्लैक नाइट शृंखला जैसे चित्रों को चित्रित किया।

1963 ई0 रणवीर सिंह विष्ट जी के कला जीवन का दूसरा चरण था। जिसमें उन्होंने नए आयामों को शामिल किया। 1960 ई0 तक के उनके चित्र विषयों का दायरा प्रकृति सौन्दर्य व मध्यम वर्गीय दैनिक जीवन जैसे मन्दिर व पुजारिन, साधु व रिक्शा वाला, अग्नि-प्रलय व रात्रि भोज इत्यादि से ज्यादा जुड़ा रहा किन्तु 1960 ई0 के बाद उनके चित्रकला में जो परिवर्तन आया वह मूल रूप से ज्यामितीय आकारों मे बनाए गए थे। संयोजनों से उनके लैण्ड स्केप (प्रकृति चित्रण) की भाषा बदल गयी। वे उभरी व कोलाजनुमा स्तर के बालू कंक्रीट, मौरंग, ग्लू (गोंद) इत्यादि का प्रयोग करने लगे। कलर प्लेट पर जहां एक ओर रंगों की कोमलता बिखरती थी वही दूसरी तरफ शुद्ध व आकर्षक रंगों को भी अपनाने लगे। उन्हें प्रकृति की संवेदनाओं का अन्वेषक कहा जा सकता है लेकिन आत्म बोध जिसकी वे रचना करते थे कभी पुर्ववत पक्ष नहीं रहता था। उनका विचार था कि ‘प्रकृति’ हर पल बदलती है। उसी तरह उनके दृष्टिकोणों में भी बदलाव आते रहते थे। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था कि कैनवास पर प्रकृति की नज़दीकी तो हो सकती है हूबहू नकल और प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता। प्रकृति मेरे लिए वह चेहरा है जिसे जितना पेन्ट करता हूँ उतना ही व्यापक होता जाता है।’’ विष्ट जी ने पहले प्रकृति को यथार्थ में देखा फिर प्रभावों में पेन्ट किया, उसके बाद आकारों की दृष्टि पर आये और उसी क्रम में सांकेतिक भाषा प्रतीक उनके कैनवास चित्रों का मूल रचना कृतियों का माध्यम बना।

1980 ई0 तक आते – आते रणवीर सिंह विष्ट सामाजिक सरोकार वाले चित्रकार बन गए। राजनीति भी जैसे- धरना प्रदर्शन, बहस करना इत्यादि भी उनके जीवन का हिस्सा बनने लगा। वे भूख, तृष्णा, वासना, लोलुपता, क्रान्ति जैसे विषयों पर कार्य करने लगे उन्होंने नग्न नारी के साथ कुत्तों की प्रतीकात्मक शृंखला का चित्रण किया। वे समाज में नारी के साथ कामुकता या पाशविकता जैसे व्यवहार के प्रति समाज में घृणा व चेतना के भाव जगाना चाहते थे। विष्ट के चित्रों में अच्छाई बुराई के कथन स्पष्ट रूप से विदित दिखाई देता है। समाज की कुरीतियाँ, अन्याय, निर्धनता, भूख की व्याकुलता जैसे – रणवीर सिहं विष्ट जी की आत्म अनुभूतियों ने भी उन्हें चित्रांकन करने के लिए अग्रसर किया। उन्हीं दिनों उन्होंने लोकतन्त्र के काले धब्बे करीब पचास से भी ज्यादा शृंखलाबद्ध चित्रों का निर्माण किया। रणवीर सिंह विष्ट कई तरह के अनुभवों को जीते थे जो उनके कैनवास के परिवर्तन में दिखाई देता है। वे न तो एक बन्द कमरे के कलाकार थे और न सीमित दायरे के इन्सान ही थे। रणवीर सिंह विष्ट कला, रंगमंच व सामाजिक संस्थाओं के साथ संक्रिय रूप से जुड़कर कार्य करते रहते थे।

1980 ई0 के शुरू होते ही रणवीर सिंह विष्ट का मन सांसारिक चंचलता से हटकर एकान्त की ओर आकर्षित होने लगा ओैर पुनः उनका मन हिमालय की ओर आकर्षित हो गया। वो 1980 ई0 मे यथार्थ के आकारों से लौटकर हिमालय की सौन्दर्यता के प्रतिरूप में ब्लू सीरीज कृतियों की रचना की, जो कि इनकी कलाकृतियों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। रणवीर सिंह विष्ट प्रकृति चित्रकार के साथ-साथ एक समकालीन चित्रकार व कलाकार थे।

1990 ई0 का समय रणवीर सिंह विष्ट के जीवन का सफरनामे का था, वह चित्र सृजन के साथ-साथ रेखांकनों के प्रिंट्स (छाप) सिरेमिक, मूर्तिकला तथा पापुलर आर्ट के बहाने बेकार की टूटी फूटी सामग्री का प्रयोग मूर्तिकला को बनाने में किया करते थे। रणवीर सिंह विष्ट जी कला के कितने ही परिवर्तनों या उपलब्धियों का जीवन क्यों न जिए हो परन्तु प्रकृति की ओर उनका आकर्षण व मनुष्य की मानवीय संवेदनाएं हमेशा उनके साथ ही रहती थी।

रणवीर सिंह विष्ट के प्रमुख चित्रों में जो प्रकृति से सम्बन्धित है वे मुख्यतः 1. मिट्टी के रंग, 2. शहर के अद्भुत सौन्दर्य के यादों का दृश्य, 3. भारतीय शहरी दृश्य चित्रों की शृंखला, 4. प्रकृति का आकर्षक सौन्दर्य 5. ग्रामीण दृश्य शृंखला, 6. विविधता (अमूर्त), 7. अभिव्यक्ति, 8. ब्लू सीरीज व हिमालय आदि हैं जो आज भी प्रसिद्ध चित्रों में हैं।

1. **मिट्टी के रंग** – इस शृंखला के अन्तर्गत उन्होंने पृथ्वी के भिन्न– भिन्न भाग जैसे- पहाड़ी, मैदानी, रेतीले धरातल को चित्रित किए हैं।

रणवीर सिंह विष्ट, मिट्टी के रंग, जल रंग, 36×26 सेमी0,1942, प्राइवेट संग्रह

रणवीर सिंह विष्ट, मिट्टी के रंग, जल रंग, 36×26 सेमी0,1953, प्राइवेट संग्रह

2. **शहर के अद्भुत सौन्दर्य के यादों का दृश्य –** इस चित्र शृंखला के अन्तर्गत 1950 ई0 से 1965 ई0 तक दृश्य चित्र को ले सकते हैं। रणवीर सिंह विष्ट कला अध्यापन के समय कभी - कभी अवकाश मिलने पर बाहर घूमने के लिए हरिद्वार, केदारनाथ, बद्रीनाथ, खजुराहों, नैनीताल, रानीखेत, केदारनाथ एवं हिमालय के क्षेत्रों में जाते थे तो वहाँ पर दृश्यांकन कार्य भी करते थे। यह उन्हीं दिनों के दृश्य चित्र हैं। इन शृंखला के चित्रों में दक्षघाट, केदार घाट, गंगा, नदी, और घाट, लोगों का स्थान, पूजा-पाठ, दैनिक कार्य व हिमालय की पहाड़ियों को चित्रित किया गया है। यह चित्र अधिकांशतः लघु कागज पर जल रंग माध्यम में बनाए गए हैं।

रणवीर सिंह विष्ट, दक्षघाट, जल रंग, 36×30 सेमी0, 1955, परिवार संग्रह

रणवीर सिंह विष्ट, शीर्षकविहीन, 36×45 सेमी0, 1962, परिवार संग्रह

3. **प्रकृति का आकर्षक सौन्दर्य** - रणवीर सिंह विष्ट के द्वारा निर्मित इस दृश्य चित्र श्रृंखला से सम्बन्धित चित्रों में प्रकृति में उपस्थित प्राकृतिक तत्व पेड़-पौधे, पत्थरों नदियों झरनों की कल-कल, पशु-पक्षियों जानवरों आदि के प्राकृतिक सौन्दर्य से आकर्षित होकर इन्हें चित्रित किया गया है। इसमें प्रमुखतः एकल या समूह में बन्दरों को, नदियों झरनों से सम्बन्धित चित्र में प्राकृतिक सौन्दर्य को देखा जा सकता है।

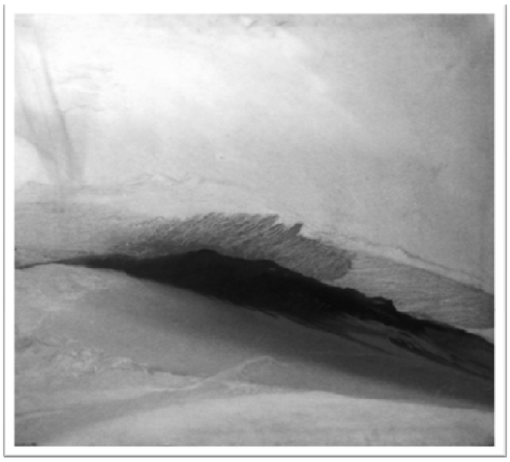

रणवीर सिंह विष्ट, होमेस्ट टू डेजर्ट, तैल रंग, 91×91 सेमी, 1994, राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ

रणवीर सिंह विष्ट, इनेमर्ड बाई नेचर, जल रंग, 52×30 सेमी0, 1997, परिवार संग्रह

4. **ग्रामीण दृश्य श्रृंखला –** भारत के ग्रामीण जन जीवन को इस दृश्य चित्र श्रृंखलाओं के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं। इन चित्रों में रणवीर सिंह विष्ट भारत के भ्रमण किए हुए गाँवों, मन्दिरों, सब्जी बेचती औरतें, खेत पर जाती स्त्रियाँ और खेत व पहाड़ों का दृश्य चित्रण किया है।

रणवीर सिंह विष्ट, ग्रामीण दृश्य, जल रंग, 49×30 सेमी0, 1966, परिवार संग्रह

5. **विविधता (अमूर्त)** – जीवन के विभिन्न रंगों का चित्रण इस दृश्य श्रृंखला चित्रों के अन्तर्गत दर्शाया है। उन्होंने पशु-पक्षी, पहाड़ी लोगों का व्यक्ति चित्र, व ज्यामितीय आकारों के साथ अंकन किया है, जैसे उदाहरणतः इस चित्र में पीले व भूरे रंग के पेड़ व उसके पीछे ज्यामितीय रेखाओं का प्रयोग कर छोटे-छोटे मकानों को चित्रित किया गया है। यह चित्र तैल रंग में है। इस चित्र में

(अर्थ कलर) मिट्टी के रंगों का प्रयोग कर उन्होंने चित्र का भारतीय संस्कार से जोड़ने का प्रयास किया है।

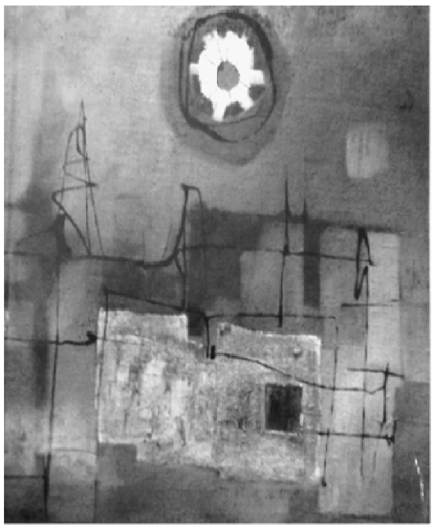

रणवीर सिंह विष्ट, शहरी दृश्य (अमूर्त), जल रंग, 57×60 सेमी0, 1964, राज्य ललित कला अकादमी, दिल्ली

रणवीर सिंह विष्ट, शीर्षकविहीन, तैल रंग, 36×25 सेमी0, 1965, प्राइवेट संग्रह

6. **अभिव्यक्ति** – इस श्रृंखला के अंतर्गत इन्होंने भूख, तृष्णा, वासना व आतंकवाद से सम्बन्धित विषयों को अपनी चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

7. **ब्लू सीरीज व हिमालय** –रणवीर सिंह विष्ट ने इस श्रृंखला के अन्तर्गत बहुत से चित्रों का सृजन किया। 'ब्लू सीरीज' के चित्र उन्होंने 1980, 1982, 1985, 1986 ई0 के वर्षों में बनाया। इस चित्र श्रृंखलाओं को उन्होंने गढ़वाल के हिमालय सौन्दर्य से प्रभावित होकर चित्रित किया है। उन्होंने इस श्रृंखला में अपने पिछले कला कर्म में इधर-उधर बिखरी निजी रचनात्मक प्रवृत्तियों व चिन्तन को बहुत ही सुन्दर ढंग से अपने चित्रों में संग्रहित कर चित्रित किया है।

रणवीर सिंह विष्ट, हिमालय, जल रंग, 76×110 सेमी0, 1960, राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ

रणवीर सिंह विष्ट, हिमालय, जल रंग, 46×110 सेमी0, 1967, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली

रणवीर सिंह विष्ट, ब्लू सिरीज, तैल रंग, 76×110 सेमी0, 1985, राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

रणवीर सिंह विष्ट, ब्लू सिरीज, तैल रंग, 76×110 सेमी0, 1986, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली

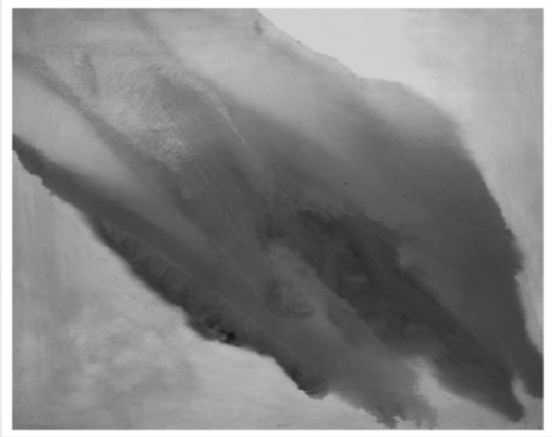

रणवीर सिंह विष्ट, मेरा अस्तित्व, टेम्परा, 91×110 सेमी0, 1986, राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ

प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य ने रणवीर सिंह विष्ट को इतना आकर्षित किया कि वह बाल्यावस्था से उनके अन्तिम समय तक बना रहा। जीवन के विभिन्न पड़ावों, बहुत से स्थानों का भ्रमण, भिन्न-भिन्न वातावरण में रहते हुए उसका प्रभाव उनके चित्रों में विविधता तो लायी पर प्राकृतिक सौन्दर्य व हिमालय पर्वत, बादलों व हिम से आच्छादित पर्वतों के सौन्दर्य को उन्होंने प्रारम्भ से अपने अन्तर्मन में समाहित किए रहे, जिसे उन्होंने विभिन्न माध्यमों व तकनीक से अपने चित्रों में आत्मसात कर चित्रित किया। यही अन्तर्मन में बसे दृश्यों को जब तुलिका व रंगों के माध्यम से कैनवास पर चित्रों के रूप में चित्रित किया तो रणवीर सिंह विष्ट एक प्रसिद्ध प्रकृति चित्रकार के रुप में प्रसिद्धि प्राप्त किए।

संन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. अवधेध मिश्रा, ''कला त्रैमासिक : रणवीर सिंह विष्ट विशेषांक'', ललित कला अकादमी, उ0प्र0
2. असद अली, ''मोनोग्राफ : रणवीर सिंह'', ललित कला अकादमी, दिल्ली
3. शेफाली भट्नागर, ''वेरीगेटेड विस्टा-पेन्टिंग स्कल्पचर एण्ड प्रिन्ट मेंकिंग, पोस्ट इन्डिपेडेड पिरियड'', शुभि पब्लिकेशन
4. www.r.s.bist.com
5. www.anandway.com/article/446/Artist-Padamshri-singh-bistandPro-vimla-bist-lucknow-India(04.06.2010)
6. शोध प्रबन्ध :- अवधेश मिश्र, ''लखनऊ की चित्रकला का समीक्षात्मक अध्ययन'', एम0जे0पी0 रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय

उत्तराध्ययनसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता में कर्त्तव्याकर्त्तव्य बोध

प्रो. प्रद्युम्न शाह सिंह एवं साध्वी निवेदिता (गरिमा जैन)***

उत्तराध्ययनसूत्र भगवान महावीर की अन्तिम देशना है और श्रीमद्भगवद्गीता श्री कृष्ण का संदेश है। दोनों शास्त्रों में दो भिन्न-भिन्न भगवन्तों के माध्यम से कर्त्तव्याकर्त्तव्य बोध पर प्रस्तुत लेख में विचार किया जाएगा।

भगवान महावीर ने अपने उपदेशों में संत और गृहस्थ दोनों के कर्त्तव्यों और अकर्त्तव्यों का बोध कराया है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँचों व्रतों का पालन करना एक सन्त का भी कर्त्तव्य है और एक श्रावक का भी। सन्त इन पाँचों व्रतों का पूर्णतया पालन करते हैं, उनके लिए कोई छूट नहीं होती। इसलिए साधु के व्रतों को महाव्रत कहते हैं और श्रावक आंशिक रूप से इन व्रतों का पालन करते हैं। गृहस्थ द्वारा ग्रहण किए गए व्रतों में आंशिक छूट होती है, इसलिए श्रावक के व्रतों को अणुव्रत कहते हैं। इस प्रकार सन्त और श्रावक दोनों को अपने-अपने कर्त्तव्य पथ पर चलने की प्रेरणा उत्तराध्ययनसूत्र के माध्यम से भगवान महावीर ने दी है।

भगवान महावीर व्यक्ति के पुरुषार्थ को जगाकर उसे इहलोक और परलोक दोनों के लिए उत्तम मार्ग बताते हैं। इस लोक में भी और परलोक में भी बंधन से मुक्त होने के लिए कर्त्तव्य ही सबसे बड़ा पथ है। जो व्यक्ति सुबह से शाम तक अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं, वे प्रताड़नाओं के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं, वे उज्ज्वल भविष्य के दर्शन करते हैं और जो व्यक्ति सुबह से लेकर शाम तक प्रमाद में पड़े रहते हैं, अपने कर्त्तव्यों की तनिक भी चिन्ता नहीं करते वे अन्यान्य समस्याओं से ग्रसित हो जाते हैं और बंधन में बंध जाते हैं। प्रभु महावीर ने हमें जो कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध कराया है, वह जीवन के सर्वोच्च उद्देश्य मोक्ष की तरफ कदम बढ़ाने का मार्ग है।

दूसरी तरफ श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भी अर्जुन को उसके कर्त्तव्यों का बोध करवाते हैं। हे अर्जुन! युद्ध करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है, तुम इससे पीछे नहीं हट सकते। तुम क्षत्रिय पुत्र हो। अपने उद्देश्य की पूर्ति करना, उसकी पवित्रता को बनाये रखना तुम्हारा पावन कर्त्तव्य है। एक क्षत्रिय के लिए धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्त्तव्य नहीं है।[1]

श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन के माध्यम से यह संदेश दिया जा रहा है कि एक गृहस्थ को आवश्यकता पड़ने पर स्वयं के लिए और समाज के हित के लिए युद्ध करना पड़े तो उसे अपना कर्त्तव्य समझकर करे, उससे पीछे कभी न हटे। यहाँ पर युद्ध करने के पीछे हिंसा का उद्देश्य नहीं है बल्कि अपने कर्त्तव्यों को निभाना है, कर्त्तव्य पथ से च्युत नहीं होना है। भगवान श्री कृष्ण ने तो यहाँ तक कहा है कि जो इस युद्ध में कर्त्तव्य बोध से लड़ेंगे, वे सारे महारथी सद्गति को प्राप्त होंगे। कर्त्तव्य को निभाना हमारा धर्म है। यहाँ पर कर्त्तव्य धर्म बन गया। इसी कारण यह युद्ध धर्मयुद्ध कहलाया।

श्रीमद्भगवद्गीता[2] के प्रथम श्लोक में ही कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र कहा गया, वो भी धृतराष्ट्र के मुख से। धृतराष्ट्र जो स्वयं अधर्म की तरफ थे, वे भी इस युद्ध को धर्मयुद्ध मानते हैं। उन्होंने कुरुक्षेत्र के मैदान को धर्मक्षेत्र कहा।

कुछ अल्पज्ञ पाठक जो श्रीमद्भगवद्गीता को हिंसा का उपदेश देने वाला ग्रन्थ मानते हैं। वे श्रीमद्भगवद्गीता का वास्तविक अर्थ और गहरा भाव जानते ही नहीं हैं। किसी भी धर्म ग्रन्थ के प्रति व्यक्ति कैसा दृष्टिकोण अपनाते हैं, वे उस पर कैसा विचार करते हैं, ये लोगों की अपनी-अपनी दृष्टि पर निर्भर करता है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा भी है-

जिन्ह के रही भावना जैसी।

प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥[3]

मन्दिर में रखी हुई प्रतिमा किसी को पत्थर का खण्ड नजर आती है तो किसी को उस पत्थर के खण्ड में ही परमात्मा का भास हो जाता है। प्रत्येक धर्म ग्रन्थ अपने महान अर्थों को अपने में समेटे हुए रहता है। उन अर्थों को समझने की दृष्टि का विकास होना आवश्यक है। जब तक किसी भी धर्म ग्रन्थ को पढ़ा न जाए, उसकी व्याख्या न की जाए, उसका गंभीर चिन्तन न किया जाए तब तक उस धर्म ग्रन्थ का मर्म समझ में नहीं आता।

भगवद्गीता कोई युद्ध हिंसा को बढ़ावा देने वाला ग्रन्थ नहीं है, वह हिंसा की प्रेरणा नहीं देता अपितु कर्त्तव्यपरायणता सिखाता है। अपने कर्म को छोड़कर कायर बनकर कर्त्तव्य विमूढ़ बन जाना धर्म नहीं है बल्कि प्रत्येक परिस्थिति में अपने कर्त्तव्य का पालन करना, कर्म करने के लिए तत्पर रहना ही सच्चा धर्म कहलाता है। भगवद्गीता का संदेश है कि तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।[4] श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म करते हुए बुराई को, पाप को अधर्म को खत्म करने का संदेश दिया है।

* अध्यक्ष, जैन बौद्ध दर्शन विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** शोधकर्त्री, धर्म अध्ययन विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला।

बुराई क्या है? पाप क्या है? और अधर्म क्या है? बुराई कहीं बाहर नहीं है, पाप कहीं बाहर नहीं है और बाहर हमारा कोई शत्रु भी नहीं है। जो शत्रु हैं, बुराईयाँ हैं, पाप हैं, सब हमारे भीतर ही हैं। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर काम, क्रोध, लोभ, माया, अहंकार, राग-द्वेष समाए रहते हैं, जिन्हें मारने का संदेश श्रीमद्भगवद्गीता में दिया गया है।

उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान महावीर भी कर्म करने का संदेश दे रहे हैं। उनका कहना है कि जो व्यक्ति इस प्रकार कहते हैं कि ज्ञान ही मोक्ष का कारण है किन्तु मोक्ष के लिए कोई क्रिया नहीं करते, वे बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्तों की प्रतिज्ञा बोलकर ही करने वाले हैं। वे वाणी की वीरता मात्र से ही अपने आपको तथा बाल जीवों को झूठा आश्वस्त करते हैं।[5]

अर्जुन के माध्यम से प्रत्येक प्राणी को यह संदेश दिया जा रहा है कि अर्जुन तू इन्द्रियों को वश में करके उस ज्ञान और विज्ञान का नाश करने वाले महान् पापी काम को बलपूर्वक मार डाल।[6] श्रीमद्भगवद्गीता प्रतीकात्मक शैली में है। यदि इसके सही अर्थ का ज्ञान किया जाए तो हमें ज्ञात होता है कि भगवद्गीता में कौरव बुराई के प्रतीक हैं और पाण्डव अच्छाई के प्रतीक हैं। हमें पापी को नहीं पाप को खत्म करना है। दुर्योधन, दुःशासन इत्यादि कौरव बुराई के प्रतीक हैं। वे क्रोधी, अहंकारी, दुराचारी, कपटी एवं धूर्त हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार आत्मा अजर-अमर अविनाशी है और शरीर नाशवान है। कौरव जो कि बुराई के प्रतीक हैं उन्हें मारना अर्थात् बुराई को मारना है। अर्जुन को श्रीकृष्ण समझा रहे हैं कि न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था, तू नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे।[7] जैसे जीवात्मा की इस देह में बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है, उस विषय में धीर पुरुष मोहित नहीं होता।[8] हे अर्जुन! तुम अपने भाईयों को नहीं मार रहे बल्कि बुराईयों को मार रहे हो। इसमें कैसा मोह? जीवात्मा तो कभी मरता नहीं। आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, जल गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती।[9] इसलिए युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ। याद रखना युद्ध बाहरी शत्रुओं से नहीं बल्कि भीतरी शत्रुओं से करना है। बुराई को, पाप को खत्म करना है।

भगवान् महावीर स्वामी भी फरमा रहे हैं कि युद्ध करो, शत्रुओं का अन्त करो किन्तु देखना यह है कि वास्तविक शत्रु कौन है? अव्रत, मिथ्यात्व, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग इत्यादि आत्मा के शत्रु हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है- 'जो दुर्जय संग्राम में दस लाख सुभटों को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो एक मात्र अपनी आत्मा के अव्रत आदि शत्रुओं को जीत लेता है, यही उसकी परम विजय है।[10] भगवान महावीर फरमाते हैं कि स्वयं आत्म-दोषों से ही युद्ध करो, तुम्हें बाह्य युद्ध से क्या लाभ? कषाय-आत्मा को चारित्र-आत्मा से जीतने पर ही मनुष्य वास्तविक सुख पाता है।[11] इससे पहले कि बंधन और वध से इस दुष्ट आत्मा को दमन किया जाए, श्रेष्ठ यही होगा कि व्यक्ति स्वयं अपनी इस दुष्ट आत्मा को संयम और तप के द्वारा दमन कर ले।[12]

श्रीकृष्ण अर्जुन व अन्य पाण्डव युद्ध नहीं चाहते थे, लाखों व्यक्तियों की हिंसा का कारण नहीं बनना चाहते थे किन्तु यदि श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध करने की प्रेरणा न देते तो चारों ओर अन्याय का साम्राज्य फैल जाता। अत्याचारियों और आततायियों का शासन आता तो सारी प्रजा दुःख के गहरे सागर में डूब जाती। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को युद्ध से पूर्व उपदेश दिया कि आपने अपने मन में प्रतिशोध की भावना से युद्ध नहीं करना अपितु न्याय के लिये युद्ध करना है। केवल द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए नहीं अपितु भविष्य में समाज में ऐसा अन्याय किसी और नारी के साथ न हो, समाज में फैली बुराई को खत्म करने के लिए न्याय की भावना से युद्ध करना है। प्रतिशोध व्यक्तिगत होता है, लेकिन न्याय में सम्पूर्ण समाज के हित की भावना समाई होती है। व्यक्तिगत स्वार्थ कर्म बन्धन का कारण है और सम्पूर्ण समाज के हित की भावना, न्याय के लिए लड़ना कर्म क्षय का साधन बनता है। जब समाज के हित के लिए कोई हिंसा करनी पड़ती है तो उस हिंसा के द्वारा जो कर्म बन्धन होता है उसे पश्चाताप द्वारा जप-तप, दान-पुण्य के द्वारा तोड़ा जा सकता है। यदि उस समय अर्जुन अपने कर्तव्य से पीछे हट जाता, कर्त्तव्य विमूढ़ बनकर युद्ध करने के लिए मना कर देता तो जो द्रौपदी के साथ हुआ, जो पाण्डवों के साथ अन्याय हुआ वैसा अन्याय भविष्य में भी होता रहता और समाज में अधर्म, अन्याय, छल एवं कूटनीति का साम्राज्य फैल जाता। समाज में से बुराई को, आततायियों को, अन्याय को जड़ से समाप्त करने के लिए अपने कर्तव्यपालन के लिए युद्ध करने की प्रेरणा श्रीमद्भगवद्गीता में दी गई है।

श्रीमद्भगवद्गीता में युद्ध के महत्व को बताया गया है। युद्ध को केवल युद्ध समझना भूल होगी, मात्र लड़ाई तक इसे सीमित कर देना भूल होगी। सुबह से शाम तक हम जो जीवन का संग्राम लड़ते हैं, ये किसी युद्ध से कम नहीं होता अर्थात् जो कुछ हमारे द्वारा किया जाता है वो सारा का सारा युद्ध है। जब हम युद्ध से अर्थात् कर्त्तव्य पथ से विमुख हो जाते हैं तो हम भी अर्जुन वाली स्थिति में पहुँच जाते हैं। अर्जुन कह रहा है कि युद्ध करके क्या करना है, इससे हमें कोई लाभ नहीं है वैसे ही जब हम जब कर्तव्यपथ से विमुख हो जाते हैं तो कामों को टालते रहते हैं। अर्जुन भी टाल रहा है। हम भी अर्जुन की तरह अपने जीवन के कर्त्तव्यों को टालते रहते हैं, निरन्तर कर्त्तव्य से विमुख होते रहते हैं। ऐसे में हमारा धर्म कहाँ से पलेगा।

उत्तराध्ययन सूत्र में प्रभु महावीर भी फरमा रहे हैं कि क्रिया न करने वाला जीव, कर्त्तव्य से विमुख होने वाले जीव सदैव पाप कर्मों में डूबे रहते हैं।[13]

श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन में आने वाली प्रत्येक परिस्थिति को युद्ध समझकर उसका सामना करके लड़ने की प्रेरणा दी गई है।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तुमने जो धनुषविद्या सीखी है और जो ज्ञान गुरुओं से प्राप्त किया है, आज जो धर्म संकट तुम्हारे सामने खड़ा हुआ है, यदि उससे तुम भाग जाते हो, तो यह अधर्म रूपी बीमारी इतना जकड़ लेगी कि मानवता त्रस्त हो जाएगी। त्रस्त होकर भ्रष्ट हो जाएगी। मैं ये कभी नहीं चाहूँगा कि अर्जुन तुम्हारे रहते हुए अधर्म का राज्य हो जाए। तुम अन्तिम सांस तक ये लड़ाई लड़ो। श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि अर्जुन तुम्हारे पास कोई दूसरा विकल्प ही नहीं है। तुम युद्ध करो। या तो युद्ध में मारे जाकर तुम स्वर्ग को प्राप्त करोगे अथवा संग्राम में जीतकर पृथ्वी का राज्य भोगोगे। इसलिए युद्ध करो।[14] इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य संघर्ष के पथ पर निकल पड़ता है और बीच में यदि वह संघर्ष से हट जाता है तो उसे कोई उपलब्धि नहीं होगी। जिस कर्त्तव्यपरायणता के सम्बन्ध में अर्जुन को श्रीकृष्ण ने जगाया, उसी कर्त्तव्यपरायणता के लिए हर मनुष्य को, सिद्धान्तवादियों को, कर्मठ व्यक्तियों को जगाने और प्रेरित करने की आवश्यकता है। युद्ध जीवन का अपरिहार्य अंग है जब हम अपने जीवन के कर्त्तव्यों में शिथिलता बरतने लगते हैं, तो हमारे विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। एक तरफ वे लोग हैं जो अपना काम स्वयं एक युद्ध की भांति लड़ते हुए करते हैं और दूसरी तरफ वे लोग हैं जो महा आलसी हैं। दोनों व्यक्तियों में हमें विकास और ह्रास का अन्तर स्पष्ट दिखाई दे जाता है। जो लोग आत्महत्या कर लेते हैं, वे अपने संघर्ष से लड़ते नहीं है, अपने जीवन के युद्ध में पीछे हट जाते हैं। उन्हें जीवन भार रूप प्रतीत होने लगता है। ऐसे व्यक्ति सोचते हैं कि ये जीवन ढोया नहीं जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों को कर्त्तव्यपरायणता, संघर्ष करने और कर्म करने का संदेश श्रीमद्भगवद्गीता में दिया गया है।

प्रत्येक धर्म-दर्शन ने कर्म बन्धन एवं कर्म के अनुसार उसके शुभाशुभ फल को स्वीकार किया है। पाप कर्म का फल अशुभ एवं पुण्य कर्म का फल शुभ होता है।

जैन धर्म के अनुसार कर्म स्वयं फलित होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा है कि कर्म की गति गहन है।[15] श्रीकृष्ण ने यहाँ पर यह नहीं कहा कि मैं कर्म का फल देता हूँ। वे कह रहे हैं कि कर्म स्वयं अपनी गति से चलते हैं और समय आने पर सुख-दुःख रूपी फल मानव को प्रदान करते हैं।

जैन धर्म में पुण्य को भी बंधन माना है और पाप को भी। दोनों ही बंधन हैं, दोनों ही मोक्ष में बाधक हैं। इसलिए दोनों का त्याग करना चाहिए। यदि शुभ व अशुभ, पुण्य एवं पाप दोनों प्रकार के कर्मों का त्याग कर देंगे तो क्या जीवात्मा की अकर्म के प्रति आसक्ति नहीं हो जाएगी? क्या मानव अकर्मी नहीं बन जाएगा?

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण फरमा रहे हैं कि अर्जुन निःसन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षण मात्र भी बिना कर्म किए नहीं रहता, क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है।[16] कोई भी व्यक्ति क्षण मात्र के लिए भी कर्म किए बगैर नहीं रह सकता। चलना, फिरना, खाना, पीना, सोना, श्वास लेना प्रत्येक क्रिया कर्म है।

जैन धर्म तो वास्तववादी एवं पुरुषार्थवादी धर्म है। वह व्यक्ति को अकर्म की प्रेरणा नहीं देता, वह कर्म पथ को ही प्रशस्त मानता है। कर्म तो करना है किन्तु कैसे कर्म करने चाहिए यह चिन्तन और विचार करने की बात है।

दशवैकालिक सूत्र में प्रश्न किया गया है कि प्रभु प्रत्येक क्रिया को करने से कर्मों के बंधन बंधते हैं तो मैं कैसे चलूँ, कैसे खड़ा रहूँ, कैसे बैठूँ, कैसे सोऊँ, कैसे भोजन करूँ और कैसे बोलूँ कि मुझे पाप कर्म का बंधन न हो। इसका उत्तर दिया गया है कि जो व्यक्ति यतनापूर्वक, विवेकपूर्वक चलता है, यतनापूर्वक खड़ा रहता है, यतनापूर्वक बैठता है, यतनापूर्वक सोता है, यतनापूर्वक भोजन करता है। यतनापूर्वक बोलता है, उसके पाप कर्म का बंधन नहीं होता।[17]

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भी दोनों प्रकार के कर्मों के त्याग की बात कह रहे हैं- समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तु समत्वरूप योग में लग जा; यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है, क्योंकि समबुद्धि से युक्त होकर निर्विकार परम पद को प्राप्त हो जाते हैं।[18]

सार रूप में कहा जाये तो हम यह कह सकते हैं कि कर्म को सबने माना है। श्रमण परम्परा एवं वैदिक परम्परा दोनों पुरुषार्थवादी परम्पराएँ हैं। दोनों कर्म करने की प्रेरणा देती हैं। कर्म पथ को श्रेयस्कर एवं उपयुक्त मानती हैं। एक शुभ कर्म होते हैं, दूसरे अशुभ कर्म होते हैं और एक शुद्ध कर्म होते हैं। शुभ एवं अशुभ दोनों ही जन्म-मरण को बढ़ाते हैं। शुभ कर्म, पुण्य कर्म का फल सुख रूप में मिलता है और अशुभ कर्म, पाप कर्म का फल दुःख रूप में मिलता है। दोनों ही प्रकार के फल भोगने के लिए जीवात्मा को चौरासी में भटकना पड़ता है। ये दोनों ही कर्म व्यक्ति को शाश्वत सुख से दूर ले जाते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र[19] एवं श्रीमद्भगवद्गीता[20] दोनों ही शास्त्रों में शुद्धकर्म करने का संदेश दिया गया है। शुद्ध कर्म आसक्ति से रहित होकर, राग-द्वेष से ऊपर उठकर, समता एवं विवेक पूर्वक किए जाते हैं।

इस लेख के सारांश के रूप में दो तथ्य सामने आते हैं। पहला यह है कि श्रीमद्भागवद्गीता युद्ध हिंसा को बढ़ावा देने वाला ग्रन्थ नहीं है, बल्कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध कराने वाला ग्रन्थ है। वह कर्त्तव्यपरायणता एवं प्रत्येक परिस्थिति में कर्म करने की प्रेरणा देता है। दूसरा तथ्य यह है कि उत्तराध्ययन सूत्र एवं श्रीमद्भगवद्गीता दोनों ही कर्म पथ को स्वीकार करते हैं। कर्म पथ से न भटकने, न हटने का संदेश देते हैं। समत्व योग अथवा समता के द्वारा कर्म

करने का मार्ग बताते हैं। समता से किए गए कर्म न पुण्य का बन्धन बांधते हैं और न ही पाप का, बल्कि समस्त कर्मों के बंधनों को तोड़कर जीवात्मा को शाश्वत पथ निर्वाण एवं मोक्ष प्रदान करवाते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. धर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।**-श्रीमद्भगवद्गीता, 2/31**
2. धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः। मामकाःपाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।। **- वही, 1/**
3. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा-240 चौपाई-2
4. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। **- श्रीमद्भगवद्गीता, 2/47**
5. भणंता अकरेंता य, बंध-मोक्ख-पइण्णिणो। वाया-विरिय-मित्तेण, समासासेंति अप्पयं।। **- उत्तराध्ययनसूत्र, 6/10**
6. तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ। पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम। **- श्रीमद्भगवद्गीता, 3/41**
7. न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।। **- श्रीमद्भगवद्गीता, 2/12**
8. देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।। **- वही, 2/13**
9. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। **- वही, 2/23**
10. जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे। एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ।। **- उत्तराध्ययनसूत्रा, 9/34**
11. अप्पाण-मेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ। अप्पाणमेवमप्पाणं, जिणित्ता सुहमेहए।। **- वही, 9/35**
12. वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य। माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहि य।। **- वही, 1/16**
13. विसण्णा पाव-कम्मेहिं, बाला पंडियमाणिणो। **- उत्तराध्ययनसूत्र, 56/11**
14. हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।। **- श्रीमद्भगवद्गीता, 2/37**
15. गहना कर्मणो गतिः। **- श्रीमद्भगवद्गीता, 4/17**
16. न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। **- वही, 3/5**
17. कहं चरे कहं चिट्ठे, कहमासे कहं सए। कहं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं ण बंधई।। जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए। जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं ण बंधई।। **- दशवैकालिक सूत्र, 4/7, 8**
18. बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते। तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः। जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।। **- श्रीमद्भगवद्गीता, 2/50, 51**
19. निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो। समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य।। **- उत्तराध्ययनसूत्र, 19/90**
20. योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय। सिद्धयसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। **- श्रीमद्भगवद्गीता, 2/48**

किसान जीवन एवं ग्रामीण परिवेश का जीवंत चितेरा कवि केदारनाथ अग्रवाल

*डॉ. ऋतम्भरा तिवारी**

प्रगतिशील हिंदी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर केदारनाथ अग्रवाल पर हिन्दी के अनेक समीक्षकों ने प्रकाश डाला है, लेकिन सबसे अधिक प्रभावशाली एवं तार्किक विवेचन प्रसिद्ध समीक्षक डॉ0 रामविलास शर्मा ने किया है। उन्होंने केदार की कविताओं का वस्तुनिष्ठ विवेचन करते हुए उनके काव्य गुणों एवं काव्य दोषों का स्पष्ट विवेचन किया है। शर्मा जी के अनुसार केदारनाथ अग्रवाल ने लोकजीवन, ग्रामीण परिवेश, किसान के संघर्ष एवं श्रमिकों के श्रम का जीवंत ढंग से चित्रण किया है। उन्होंने केदारनाथ अग्रवाल के काव्य का विश्लेषण करके स्पष्ट किया है कि सामाजिक यथार्थ, प्राकृतिक परिवेश, सौन्दर्य, शृंगार और प्रेम उनकी कविता के केन्द्र में हैं। केदार विशिष्ट बोध वाली वैयक्तिक चेतना के रचनाकार हैं। इनकी वैयक्तिक चेतना सामूहिक बोध एवं मानवीय संवेदना से सम्पृक्त है। केदार सामान्य जन के श्रम के प्रखर कवि हैं। उनकी राजनीतिक कविताएं क्रान्ति एवं विद्रोह की कलात्मक अभिव्यक्ति हैं। वैचारिक धरातल एवं अनुभूति के द्वारा वे प्रगति-विरोधी शक्तियों से संघर्ष करते हैं। वे हिन्दी की प्रगतिशील परम्परा के सफल एवं संप्रेषण सक्षम कवि हैं। उनके संदर्भ में रामविलास शर्मा की भविष्यवाणी है- ''जैसे-जैसे संघर्ष एवं विद्रोह का दायरा बढ़ता जायेगा, वैसे-वैसे केदार की कविताओं का महत्व बढ़ता जायेगा और उनकी लोकप्रियता का दायरा दिनों दिन बढ़ता ही जाएगा। एक बार अखिल भारतीय पैमाने पर जन-आन्दोलन का प्रसार होने दो, लोग केदार की कविताएं ढूंढ़-ढूंढ़ कर पढ़ेंगे।''[1]

धरती के कवि केदारनाथ की काव्यकला की सबसे बड़ी विशेषता है 'चित्रण कौशल'। कविता में प्रकृति का सहज, सजीव, सूक्ष्म और स्वाभाविक चित्रण प्रकृति का जीवंत चित्र उपस्थित करता है। रामविलास जी ने उनकी कविताओं में विद्यमान ठेठ देसीपन की सराहना की है। उनकी कविता कृत्रिमता से दूर है तथा अन्तर्विरोध, द्वन्द्व और तनाव से तनी हुई नहीं है। कविता का ठेठपन ही केदार जी की मूल पहचान है। वे लिखते हैं- ''अवध की धरती और उस पर लहराते हुए अन्न के पौधे, फल-फूल, वनस्पतियाँ और नीले आसमान में चमकते हुए चाँद-तारे कविता के छन्द, ध्वनि और लय में रम गए हैं। इन कविताओं में एक ठेठपन है जो बहुत माँजे-सँवारे न जाने के कारण भी इतना आकर्षक बन गया है।''[2]

डॉ0 शर्मा के अनुसार केदार की कविता में उदात्तता और सहजता का अद्भुत सामंजस्य है। उनके यहाँ उदात्त सहजता से उभरता है, वह बलात आरोपित नहीं प्रतीत होता। उनकी कई कविताओं में जीवन का अर्थ सहजता से व्यक्त हुआ है। केदार लोकगीतों की कला को सर्जनात्मक रूप देते हैं। वे अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा द्वारा कविता को लोकगीतों के धरातल से ऊपर उठाकर उसमे छायावादी कविता के उदात्त काव्य-सौन्दर्य को भर देते हैं। ''कोयल के प्रतीक द्वारा कवि नयी चेतना और नयी जिन्दगी की तस्वीर खींचता है। जो कोयले मुर्दा बने मुँह छिपाये रो रहे थे- वे जिन्दगी की नयी चिनगारी लगने से शिव के लाल नेत्र जैसे जल उठे हैं। देश में बड़ी तेजी से दो दल बनते जा रहें हैं। एक कहता है दुनिया जल्दी बदलो। दूसरा कहता है दुनिया कभी न बदले। लेकिन न बदलने वाले अकेले पड़ रहे हैं और बदलने वालों के साथ देश आ रहा है।''[3] शर्मा जी के अनुसार इस भावना को कवि ने एक सहज चित्र द्वारा अंकित किया है।

''रनिया कहती है जग बदले
जल्दी बदले, जल्दी बदले
मैं कहता हूँ, कभी न बदले
कभी न बदले, कभी न बदले
किन्तु आज मेरे विरोध में,
पूरा हिन्दुस्तान खड़ा है।
अब रनिया के दिन आये हैं,
जग उसके माफिक बदला है।''[4]

केदारनाथ अग्रवाल मूलतः किसान जीवन एवं उससे जुड़े हुए परिवेश के सफल कवि हैं। उनके यहाँ किसान जीवन एवं ग्रामीण परिवेश ऊपर से थोपा हुआ बनावटी एवं यान्त्रिक नहीं है। रामविलास जी के अनुसार ''केदारनाथ नयी पीढ़ी के उन लेखकों में हैं जो शहर की नकली संस्कृति से ऊब गये हैं, दिखावा और बनावट से जिन्हें चिढ़ है और जिनके हृदय में अपने देश की धरती के लिये सच्चा प्यार है। अगर कविता में धरती की गन्ध आ सकती है, तो वह गन्ध केदार की कविता में है।''[5] केदारनाथ अग्रवाल ग्रामीण जीवन के यथार्थ से भलि प्रकार परिचित हैं। ग्रामीण संस्कृति का कटु यथार्थ उनकी कविता में दिखाई देता है। उन्होने ग्रामीण संस्कृति में किसान जीवन की दयनीय दशा का वास्तविक चित्रण किया है। शहर की चकाचौंध भरी जिन्दगी और उसकी कृत्रिमता से वे कोसों दूर हैं। ग्रामीण जीवन की सामन्ती संस्कृति में किसान और मजदूर पशुवत जीवन जीने को विवश हैं। इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति केदार जी की कविता में हुई है। वे लिखते हैं- ''वह

* पूर्व सीनियर रिसर्च फेलो, (यू.जी.सी.) हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

गाँव में किसी काल्पनिक सौन्दर्य के दर्शन नहीं करता। वह जानता है कि बाप के मरने पर खेतिहर मजदूर को एक टूटी हुई औगी, बहता हुआ हुक्का और बनिये का भारी कर्ज विरासत में मिलता है। वह जानता है कि श्रम की ऐसी व्यवस्था कर दी गयी है कि उसमें मनुष्य भी गाय, बैल, भेड़ों के साथ मिलकर उन्हीं जैसा बन जाता है। उसके घरों के आसपास गन्दगी के ढेर लगे हैं, जिसमें वह कुछ देर के लिये जिन्दगी का मतलब ही भूल जाता है।''[6] उदाहरणार्थ शर्मा जी ने केदार की काव्यपंक्ति को उद्धृत किया है-

''सड़े घूर की गोबर की बदबू से दब कर,

महक जिन्दगी के गुलाब की मर जाती है।''[7]

केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी के सहज मौलिक कवि हैं। रामविलास जी के अनुसार केदार की अनुभूतियाँ, उनके बिम्ब, उनके प्रतीक एवं अप्रस्तुत योजना सब में किसान जीवन के विविध रंग, विभिन्न भाव भंगिमाओं के साथ कलात्मक रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। इनके इस काव्य वैशिष्ट्य का विवेचन उन्होंने निम्न शब्दों में किया है- ''केदार की कविता में यह किसान अपने समूचे परिवेश के साथ विद्यमान है। जब वह प्रत्यक्ष नहीं होता, तब भी आस-पास झांकते आप उसे देख सकते हैं। केदार जिस परिवेश से विद्रोह करते हैं, उससे मूल विरोध इस किसान का है। केदार ने जिस प्रकृति पर सुंदर कविताएं रची हैं, वह किसान को घेरे हुए उसका परिवेश है।''[8]

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन के प्रमुख कवि हैं। उनके विचारबोध और रचनाशीलता से स्पष्ट है कि उन्होंने मार्क्सवाद को दृढ़ता से ग्रहण किया है और उसके विषय में उनकी समझ निखरती हुई दिखाई देती है। केदारनाथ अग्रवाल अपनी कला के प्रति अद्भुत ईमानदार हैं। उनकी शुरू की रचनाओं में छायावाद का कम प्रभाव दिखाई देता है। उनकी बाद की रचनाओं में नई कविता वाले हथकंडे कहीं ढूढने से भी न मिलेंगे। शर्मा जी का मत है- ''उनकी कविता में उनकी प्रतिभा का अपना विकास है; वह विकास कविता के फैशनों का इतिहास नहीं है।''[9] इस प्रकार शर्मा जी ने उनके साहित्यिक विकास का बड़ी सूक्ष्मता से मूल्यांकन करते हुए सप्रमाण स्पष्ट किया है कि- ''केदार की अन्तर्दृष्टि, उनकी विवेक-बुद्धि, उनकी सामान्य ऐन्द्रिय संवेदनाएँ एक साथ, सघन रूप से सक्रिय होती हैं, अन्तर्विरोध के बिना, परस्पर संवर्धनशील, एक ही आन्तरिक लय में बँधी हुई।''[10]

शर्मा जी के अनुसार केदार ने अपनी रचनाओं में लगातार सांप्रदायिक और साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है और जनवादी क्रान्ति को लेकर अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की है। सन् '46 की क्रान्ति कांग्रेस की समझौतावादी नीतियों के कारण असफल रही और क्रान्ति की राह पर आगे बढ़ती हुई जनता को पीछे हटना पड़ा। केदार ऐसे क्रान्तिकारी वीरों को धैर्य बंधाते हुए लिखते हैं-

''हार न मानो,

और न हारो, जीना जानो,

यह जीवन की आन हमारी शान है,

और हमारे भुजवीरों की प्रान है।''[11]

शर्मा जी के मतानुसार केदार की कविताओं में जनजीवन और परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। उन्होंने लिखा है- ''केदार की रचनाओं में एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उनमें जनता के पिछड़ेपन को, उसके अंधविश्वासों को नजरंदाज नहीं किया गया है। सन् 46 का जन उभार अपनी तर्कसंगत परिणति तक नहीं पहुंचा, इसका कारण वामपक्ष की कमजोरी के अलावा जनता का पिछड़ापन भी था। एक ओर मंडलाकार मेघ सा उमड़-घुमड़ कर कोटि-कोटि कंठों का जनमत ओजपूर्ण गर्जन करता है, दूसरी ओर दीन-दुःखी कुनबा कौड़ा ताप रहा है।''[12]

केदारनाथ अग्रवाल किसान जीवन के संघर्ष, लोकजीवन तथा संस्कृति के जीवन्त चितेरे कवि हैं। उनमें मार्क्सवाद के स्पष्ट विचारबोध तथा जुझारू किसान या मजदूर के भावबोध का अद्भुत सामंजस्य है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रामविलास जी का यह कथन केदार के प्रति सर्वथा उचित है- ''विरोधी परिवेश का मुकाबला वह हिम्मत से करते हैं और यह हिम्मत एक किसान योद्धा की है। 'हड्डी की लोहे से टक्कर'- इस तरह की पंक्ति केदार ही लिख सकते थे।''[13]

शर्मा जी के अनुसार बड़ा कवि वह नहीं होता जिसका महत्व उसके समकालीन कवियों के बीच हो अपितु उसके जाने के बाद परवर्ती पीढ़ी के रचनाकार उससे जिस मात्रा में प्रेरणा एवं शक्ति ग्रहण करते हैं वह कवि उसी मात्रा में सफल एवं बड़ा कवि माना जाता है। इस कसौटी पर भी केदारनाथ अग्रवाल जी खरे उतरते हैं। इस सन्दर्भ में रामविलास शर्मा जी का कथन सत्य है- ''हिन्दी प्रदेश में जब भी जन-आन्दोलन का प्रसार होगा और कवि उससे सम्बद्ध होकर कविताएं लिखेंगे, वे अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों में सबसे अधिक नागार्जुन और केदार से ही सीख सकेंगे। केदार की सामाजिक यथार्थवादी कविताओं की लोकप्रियता दिन पर दिन बढ़ेगी। जनता का असंतोष घटने वाला नहीं है, दिन पर दिन बढ़ेगा। वह बड़े खरे रूप में केदार की कविताओं में व्यक्त हुआ है।''[14]

रामविलास शर्मा के अनुसार प्रगतिशील कवि केवल रोटी और क्रान्ति की ही बात नहीं करता है। प्रकृति के सौन्दर्य से इन्हें भी प्रेम है और मानव ह्रदय की रसभरी कोमल भावनायें इनमें भी विद्यमान हैं। केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं इसका प्रमाण हैं। वे मानव सुलभ भावनाओं से ओत प्रोत सौन्दर्य और जीवन के प्रेमी प्रगतिशील कवि हैं। उदाहरणार्थ उनकी निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं।

''और सरसों की न पूछो

हो गयी सबसे सयानी

हाथ पीले कर लिये हैं

ब्याह मंडप में पधारी

फाग गाता मास फागुन

आ गया है आज जैसे।

देखता हूँ मैं, स्वयंवर हो रहा है;

प्रकृति का अनुराग-अंचल हिल रहा है।''[15]

केदारनाथ अग्रवाल की इस प्रकार की कविताएं जीवन और प्रकृति के प्रति प्रेम को दर्शाने के साथ-साथ जीवन के प्रति संघर्ष और उत्साह को भी प्रदर्शित करती हैं।

केदारनाथ अग्रवाल ने सामाजिक विकास की जो व्याख्या की है रामविलास जी उससे सहमत नहीं हैं। केदारनाथ अग्रवाल 'युग की गंगा' की भूमिका में लिखते हैं- ''जब जैसी अर्थनीति होती है, वैसी ही समाजनीति होती है, वैसी ही राजनीति होती है और वैसी ही संस्कृति और सभ्यता होती है।''[16] सामाजिक विकास की इस व्याख्या को रामविलास जी ने अर्द्धसत्य कहा है। उनके अनुसार समाज की आर्थिक व्यवस्था संस्कृति और राजनीति को गहरे रूप में प्रभावित करती है लेकिन बिल्कुल उसके प्रतिबिम्ब के रूप में हूबहू इसका निर्माण नहीं होता है। सामाजिक विकास क्रम में द्वन्द्वमूलक जो असंगतियाँ होती हैं, उसे केदार जी ने भुला दिया है। केदारनाथ अग्रवाल की इस भ्रान्तिपूर्ण अवधारणा का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने सभी पुराने भारतीय साहित्य को पुरोहितों और सामन्तों की मानसिक प्रक्रिया का साहित्य मान लिया। रामविलास जी ने केदार जी के इस भ्रान्तिपूर्ण अवधारणा का तार्किक ढंग से खण्डन किया है। वे लिखते हैं – ''हमारे साहित्य की एक जागरूक और प्रगतिशील परम्परा है जिससे हमें नाता तोड़ना नहीं जोड़ना है। संत कवियों ने जनता की समानता और एकता के भावों को व्यक्त किया है। इसे पलायन कहना भ्रामक है। सामन्तसाही के प्रति जनता का विद्रोह अनेक संश्लिष्ट रूपों में प्रकट हुआ है। उन रूपों को पहचानना हमारा काम है; एक यान्त्रिक-दृष्टि से उनकी तरफ से मुँह मोड़ लेना नहीं, भ्रम का लक्षण है। तुलसी, सूर, मीरा, कबीर, दादू आदि ने भारतीय हृदय को प्रेम रस से सीचा है, उसमें मानव-सुलभ सहानुभूति के अंकुर उपजाये हैं; उन सबद साखी और बानी हमारी सजीव संस्कृति की वाणी हैं। भारत की जिस पुरानी संस्कृति पर हम गर्व कर सकते हैं, ये उसके निर्माता हैं।''[17] स्पष्ट है कि डॉ0 रामविलास ने केदारनाथ अग्रवाल के 'युग की गंगा' में प्रगतिवाद के सन्दर्भ में अभिव्यक्त उनकी अवधारणा का स्पष्ट रूप से खण्डन करते हुए उसका तर्कसंगत विवेचन किया है। उन्होंने प्रगतिशील साहित्यिक परम्परा का उल्लेख करते हुए उसे जातीय चेतना और जातीय गौरव के लिये महत्वपूर्ण बताया है। उन्होंने अपने प्रिय कवि केदार जी की समीक्षा करते हुए उनकी विशिष्टताओं की प्रशंसा के साथ-साथ उनकी सीमाओं की ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

समग्रतः डॉ0 रामविलास शर्मा ने केदारनाथ अग्रवाल की कविता के वैशिष्ट्य का तार्किक विवेचन करते हुए उनकी लोकजीवन के प्रति गहरी आसक्ति एवं लगाव को स्पष्ट किया है। साम्यवाद को जीवन का आधार मानकर केदार जी ने जनसाधारण के जीवन की गहरी व व्यापक संवेदनाओं को अपनी कविता में मुखरित किया है। उनकी कविताओं में धरती की सुगन्ध और लोकसंस्कृति के प्रति आस्था का स्वर मिलता है। लोकजीवन के विविध पक्षों एवं लोकसंस्कृति के विविध आयामों का सर्जनात्मक एवं सहज प्रयोग उन्हें अपने समकालीन कवियों से भिन्न एवं विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 रामविलास शर्मा, 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल', परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं0, 1986,पृ0 86
2. डॉ0 रामविलास शर्मा, 'भाषा, युगबोध और कविता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0, आवृत्ति 2014, पृ0 232
3. वही, पृ0 235-236
4. वही, पृ0 236
5. वही, पृ0 232
6. वही, पृ0 233
7. वही
8. डॉ0 रामविलास शर्मा, 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल', परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं0, 1986, पृ0 48
9. डॉ0 रामविलास शर्मा, 'भाषा, युगबोध और कविता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0, आवृत्ति 2014, पृ0 238
10. वही, पृ0 239
11. डॉ0 रामविलास शर्मा, 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल', परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं0, 1986
12. वही, पृ0 45
13. वही, पृ0 85
14. वही, पृ0 98
15. डॉ0 रामविलास शर्मा, 'भाषा, युगबोध और कविता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0, आवृत्ति 2014, पृ0 236
16. केदारनाथ अग्रवाल, युग की गंगा, भूमिका
17. डॉ0 रामविलास शर्मा, 'भाषा, युगबोध और कविता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं0, आवृत्ति 2014, पृ0 237

प्रेमचंद के साहित्य में यथार्थवाद

*डॉ. ज्योति मिश्रा**

नारी समाज की महत्वपूर्ण इकाई है, परिवार की नींव है जिस पर गृहस्थ और समाज के सभी सदाचार टिके हुए हैं लेकिन भारतीय समाज में नारी को कहीं उचित सम्मान और स्थान नहीं मिला है। भारतीय समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग नारी है। उच्चवर्ग और निम्नवर्ग की महिलाओं की अपेक्षा मध्यमवर्गीय महिलाओं की स्थिति और भी अधिक चिंतनीय है। प्रेमचंद पहले ऐसे कथाकार थे जिन्होंने अपने सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, ज्ञान, विवेक और अनुभव के आधार पर मध्यवर्ग की सम्पूर्ण जटिलताओं तथा समस्याओं के मौलिक कारणों की खोज की। प्रेमचंद के मन में नारी समाज के प्रति अत्यंत स्नेह, सहानुभूति, अपार श्रद्धा और दया थी इसलिए उन्होंने नारी की सभी समस्याओं के लिए समाज को और सामाजिक परिस्थितियों को दोषी बताया, किसी व्यक्ति विशेष को नहीं। प्रेमचंद के सभी नारी पात्र किसी न किसी सामाजिक समस्या को लेकर अवतरित हुए हैं, इसलिए पथभ्रष्ट नारी दया की पात्र है घृणा की नहीं। गाँधीवाद विचारों से अनुप्राणित होने के कारण वे पाप से ही गृणा करते हैं, पापी से नहीं जिसे सुधार जा सकता है। अतः प्रेमचंद जी प्रत्यक्ष रूप से समाज-सुधार की भावना से अनुप्राणित दिखाई देते हैं और समाज सेवा का व्रत लेते हुए नारी समस्या का हल सदनों एवं आश्रमों की स्थापना से कर लेते हैं। प्रेमचंद द्विवेदी युगीन परिष्करण, परिमार्जन, आदर्शवादी मर्यादावाद के प्रतीक हैं। अतः उनकी नायिकाएं तत्कालीन परिवेश के अनुरूप सुधारवादी जीवन मूल्यों को अपनाकर अपने जीवन को परिवर्तित और विकसित करती हैं। प्रेमचंद आदर्श नारी संबंधी अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैंः 'मेरा नारी का आदर्श एक ही स्थान पर त्याग, सेवा और पवित्रता का केन्द्रित होना। त्याग बिना फल की आशा के हो, सेवा सदैव बिना असंतोष प्रकट किये हुए हो और पवित्रता सीजर की पत्नी की भांति हो, जिसके लिए पछताने की आवश्यकता न पड़े।'[1]

यथार्थवाद एक व्यापक विचारधारा है जो साहित्य में एक उपयोगितावादी दृष्टिकोण को लेकर चलता है। इसकी पृष्ठभूमि में पूंजीवाद के विनाश तथा समाजवाद के विकास का उद्देश्य निहित है। एक यथार्थवादी साहित्यकार मानव जीवन और मानव समाज के आदर्श और कल्पित स्वरूप की अपेक्षा अपनी रचनाओं में यथार्थवादी चित्रण पर बल देता है। डॉ. सुरेश सिन्हा इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि -'समाजवादी यथार्थवाद समष्टि को मान्यता देता है व्यष्टि को नहीं'। उनके मतानुसार समाजवादी यथार्थवाद साहित्य और कला में यथार्थवादी चित्रण पर बल देता है। वह मानवीय शक्तियों के प्रति आग्रहशील है। वह मानवीय प्रगति की अवरोधक शक्तियों का रहस्योद्घाटन करता है। उसका कार्य अतीतकाल का व्याख्यात्मक चित्रांकन मात्र नहीं अपितु वर्तमान की क्रांतिकारी सफलताओं को एक सूत्र में आबद्ध करने में सहायक होना एवं भविष्य के लिए महान् समाजवादी उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करना भी है। समाजवादी यथार्थवाद व्यापक दृष्टिकोण को अपनाता है और इसकी क्षमता उन्हीं लेखकों में व्याप्त हो सकती है जो वर्तमान को भविष्य के सन्दर्भ में मूल्यांकित कर सकने में समर्थ हैं। यही दृष्टिकोण वास्तव में समाजवादी यथार्थवाद की आधारशिला होनी चाहिए।'[2]

हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में यथार्थवाद का आर्थिक रूप में समावेश भारतेंदु युग में ही परिलक्षित होने लगा था किन्तु इसका वास्तविक रूप प्रेमचंद युग में ही सामने आया। हिन्दी कहानी में यथार्थवादी विचारधारा और व्यापक रूप में विकसित हुई। पूर्व भारतेंदु युग तथा भारतेंदु युग की कहानियों में जहाँ यथार्थ चित्रण बहुत कम हुआ है वहाँ प्रेमचन्द युग में उसका स्पष्ट स्वरूप लक्षित होता है। प्रेमचन्दोत्तर तथा स्वातंत्र्योत्तर कहानी में उसकी प्रखर चेतना दृष्टिगत होती है।

प्रेमचंद जी से पहले हिंदी उपन्यास के तीन प्रकार थे :

1. तिलस्मी और ऐय्यारी के उपन्यास जैसे देवकीनंदन खत्री का चंद्रकांता संतति।
2. श्रृंगार रस से पूर्ण सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास जैसे किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा', 'अंगूठी का नगीना'।
3. जासूसी और साहसपूर्ण उपन्यास जैसे गोपालराम गहमरी के 'जासूस' नामक पत्र तथा 'हत्या का रहस्य', 'मेम की तलाश' आदि।

इस समय के साहित्य में जीवन के लिए कोई स्थान नहीं था। इस तीनों प्रकार के उपन्यासों के अतिरिक्त बंगला, मराठी और अंग्रेजी के उपन्यासों के अनुवाद भी हिंदी में अत्यधिक मात्रा में हो रहे थे। हिंदी पाठक वर्ग तिलस्मी अय्यारी अथवा जासूसी उपन्यास पढ़कर अद्भूत रस प्राप्त करता था। साथ ही रीतिकालीन श्रृंगारिकता से युक्त सामाजिक उपन्यास पढ़कर सस्ती भावुकता का आनंद प्राप्त करता। जनता अथवा पाठक का जो वर्ग इस प्रकार के जासूसी अथवा सस्ते मनोरंजन से युक्त सामाजिक उपन्यास पसंद नही करता था और जिसमें नैतिकता के प्रति आग्रह था वह अपने लिए बंगला, मराठी अथवा अंग्रेजी के अनुवादों को पढ़कर ही संतोष प्राप्त करता। इस प्रकार हिंदी पाठक वर्ग के पास उपन्यास अथवा कहानी के नाम

* एसोसिएट प्रोफेसर, 'हिन्दी', गंगाधर मेहेर विश्वविद्यालय, सम्बलपुर (ओड़िशा)

पर ठोस जीवन के धरातल पर आधारित अपना कोई साहित्य नही था। खत्री, गोस्वामी अथवा गहमरी के उपन्यासों से उसका जी ऊबने लगा तथा अनुवादों में उसकी वृत्ति रमी नहीं। फलस्वरूप इस अभाव से वह तिलमिला उठा। वह एक ऐसे साहित्यकार की तलाश में था जो जीवनदायिनी प्रतिभा बनकर आये और उपन्यासों के रूप में भारतीय जीवन, भारतीय संस्कृत के आधार पर तत्कालीन जीवन का ऐसा चित्रण करे जिसमे युग का प्रतिबिम्ब तथा मौलिक चिंतन निखर उठे और भारतीय जनता उसमें अपना प्रतिबिम्ब देख सके । हिंदी साहित्य जगत में प्रेमचंद का आगमन ऐसी ही एक जीवनदायिनी प्रतिभा के रूप में हुआ जिसने पूरी सच्चाई और नैतिकता के साथ शुद्ध साहित्यिक आधार पर भारतीय जीवन के सामाजिक तथा राजनीतिक संघर्षों को ऐसी कुशलता से चित्रित कर दिया कि हिंदी पाठक का सिर गर्व से उन्मत हो गया। प्रेमचन्द के मौलिक चिंतन ने उसे इस कदर प्रभावित किया कि उसने पीछे मुड़कर तिलस्मी और जासूसी को न देखा, न ही उसे सामाजिक प्रश्नों के हल ढूँढ़ने के लिए बंगला, मराठी अथवा अंग्रेजी अनुवादों की शरण लेनी पड़ी। प्रेमचंद की रचनाओं की सबसे बड़ी शक्ति है उसकी प्रामाणिकता और विश्वसनीयता। वे एक ऐसे विरले कथाकार हैं जिनके साहित्य में भारत की आत्मा की सच्ची तस्वीर दिखलाई पड़ती है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं : 'अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, सुख-दुःख और सूझ-बुझ को जानना चाहते हैं तो प्रेममंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।'[3] प्रेमचंद ने स्वयं कहा है : 'मेरे अधिकांश चरित्र वास्तविक जीवन से लिए गये हैं।'[4] प्रेमचंद की रचनाओं की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के पीछे उनके अनुभव की वास्तविक जमीन है।

प्रेमचंद का हिंदी उपन्यास काल 1904 से 1936 तक का संक्रांति काल है जिसमे : 'किसान जड़, दरिद्रताग्रस्त, उत्पीडित और अपने दुर्भाग्य पर रोने वाला था और हाथ पर हाथ धरे बैठा हुआ सरकार, जमींदार, साहूकार, छोटे सरकारी अफसर, पुलिस, वकील और पंडे-पुजारियों द्वारा शोषित हो रहा था।'[5] 'एक ओर तो जमींदारी प्रथा के विरुद्ध गांवों में वह पुराना और निरंतर बढ़ने वाला असंतोष था जो 1920-22 के और 1930-32 के राष्ट्रीय आन्दोलन में गहराया था और दूसरी ओर उस मजदूर वर्ग का आकस्मिक उत्थान था, जो पूंजीवाद के विकास के साथ-साथ नवीन शक्ति लेकर जागा था।'[6] तीसरी ओर यह समय नारी का वह उत्थान काल था जिसने गांधी, तिलक, गोखले, रानाडे, राजाराम मोहन राय के राजनीतिक आव्हान को सुना और परंपरागत रुढियों से मुक्त होकर विजयलक्ष्मी पंडित, अमृत कौल, सरोजिनी नायडू आदि नारियाँ राजनैतिक आंदोलन में सक्रिय भाग लेने लगीं। फिर भी तत्कालीन समय में स्त्रियों की स्थिति परम्परागत रूढियों, अन्धविश्वासों, आर्थिक जड़ताओं से ग्रस्त थी। यह समय नारी के मानसिक जागरण का काल था। उसकी सामाजिक स्थिति में कोई सुधार नहीं था।

भारतीय समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग नारी है और उससे भी अधिक चिंतनीय स्थित मध्यवर्गीय नारी की है। निम्नवर्ग में नारी का अपने सामाजिक सम्मान के प्रति, अपनी अस्मिता के प्रति कोई जागरूकता नहीं है वह आसानी से एक पति को छोडकर दूसरे पति के पास जा सकती है। उच्चवर्गीय महिलाएँ अपने सम्मान के प्रति जागरूक तो होती हैं लेकिन अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उन्हें चिंता नहीं करनी पड़ती। किन्तु मध्यम वर्ग में नारी घर की इज्जत है। वह न तो निम्नवर्ग की महिलाओं की तरह बन पाती है और न ही उच्चवर्ग की महिलाओं की तरह अपनी समस्त आकांक्षाओं की पूर्ति कर पाती है अर्थात उसे अपनी वासनाओं और आकांक्षाओं का गला घोटना पड़ता है। प्रेमचंद पहले ऐसे कथाकार थे जिन्होंने मध्यमवर्गीय महिलाओं की समस्याओं के मौलिक कारणों की खोज की। 'सेवासदन' की सुमन मध्यवर्गीय नारी है, जिसको सामाजिक रुढियों के कारण ही अनेक मार्ग से गुजरना पड़ता है। कृष्णचंद्र ने अपनी थोथी प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए घूस लिया और गजाधर ने अपने घर की मर्यादा के कारण ही 'सुमन' को घर से निकाल दिया। मध्यवर्ग की इस थोथी मर्यादा के मूल में सामाजिक रुढियों का ही हाथ है। भीतर-भीतर चाहे जितना व्यभिचार होता रहे। परन्तु उसे बाहर नहीं प्रकट होना चाहिए।'[7] प्रेमचंद के मन में नारी समाज के प्रति अत्यधिक स्नेह, सहानुभूति और श्रद्धा थी इसलिए उन्होंने नारी की सभी प्रकार की समस्याओं के लिए समाज को दोषी माना, व्यक्ति को नही। प्रेमचंद के सभी नारी पात्र सामाजिक समस्याओं को लेकर ही चित्रित किये गये हैं। उनकी दृष्टि में पथभ्रष्ट नारी दया का पात्र बनती है घृणा का नहीं। 'वह पाप से ही घृणा करते हैं, पापी से नहीं जो कि सुधारा जा सकता है। वह प्रत्यक्ष रूप से समाज सुधार की भावना से अनुप्राणित दिखाई देते हैं।'[8] नारी परिवार की नींव है, सामाजिक विकास की एक महत्वपूर्ण इकाई है। गृहस्थ और समाज के सभी सदाचार उस पर टिके हुए हैं लेकिन उसे कहीं भी उचित आदर और सम्मान नहीं मिला। उसे उसके कर्त्तव्य तो बताये गये लेकिन उसके समस्त अधिकारों से वंचित रखा गया। इसी शोषित और अभागिन नारी को प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में मुख्य स्थान दिया एवं वे द्विवेदी युगीन सुधारवादी मूल्यों के अनुरूप उनकी जीवन धारा को परिवर्तित एवं विकसित करते हैं।

नारी समस्या में मुख्य रूप से उन्होंने वेश्या समस्या, अनमेल विवाह की समस्या, विधवा समस्या एवं नारी शिक्षा की समस्या को उठाया है। इन सभी समस्याओं की जड़ में अर्थ की समस्या ही मुख्य है। प्रेमचंद जी ने 'सेवासदन' में वेश्या समाज के सुधार के साथ साथ अर्थ की समस्या के कारण उत्पन्न अनमेल विवाह का परिणाम भी दिखाया है। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी के शब्दों में : 'सेवासदन उपन्यास में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से दहेज की समस्या, समाज की झूठी नैतिकता या पाखंड, रूढिवादिता आदि अनेक प्रश्न आये हैं, परन्तु जिस प्रश्न को लेकर प्रेमचंद जी ने प्रत्यक्ष रूप से और विस्तार के साथ विचार किया है, वह है-

विधवाओं और विशेषतः वेश्याओं के सुधार और आर्थिक निर्वाह का प्रश्न।'[9] 'सेवासदन' की नायिका सुमन अनमेल विवाह के कारण असंतुष्ट है किन्तु भारतीय नारी के आदर्शों के अनुसार पति से समझौता करने का प्रयास करती है किन्तु आर्थिक तंगी के कारण खिंचाव बढ़ जाता है और उसका पति गजाधर उसे घर से निकाल देता है कहीं आश्रय न पाने के कारण सुमन भोली वेश्या के पास जाती है जो उसके घर के सामने रहती है। अनमेल विवाह के परिणाम स्वरुप सुमन कुलीन होकर अकुलीन जीवन व्यतीत करने को बाध्य होती है। यहाँ प्रेमचन्द एक समाज सुधारक के रूप में सामने आकर सुमन को वेश्यालय से निकालकर एक विधवा आश्रम में लाते हैं जहाँ सुमन वेश्याओं के बच्चों को शिक्षा देना, स्वावलंबन सिखाना एवं उनके पालन पोषण का दायित्व निर्वाह करती है। प्रेमचंद ने सेवासदन में वेश्याओं के हृदय परिवर्तन करके सामाजिक समस्या का समाधान करने की कोशिश की है। 'सेवासदन' की वेश्या जोहरा जान अंत में कहती है : 'बहुत दिनों तक गुनाह की गुलामी कर ली अब हमें अपने को आजाद करना चाहिए। हमको खुदा ने इसलिए पैदा किया है कि अपना हुस्न, अपनी जवानी, अपनी रूह, अपना ईमान, अपनी गैरत, अपनी हया हरामाकर शुहवतपरस्त आदमियों की नजर करें। आइन्दा से हमारा यह वतीरा (ढंग) होना चाहिए कि अगर अपने में से किसी को बुराई करते देखें तो उसे उसी वक़्त बिरादारी से खारिज कर दें।'[10] 'प्रतिज्ञा' में प्रेमचंद जी ने वैधव्य से अभिशापित भारतीय नारी के जीवन की दुर्गति का चित्रण किया है। भारतीय समाज में एक विधुर व्यक्ति चाहे कितना व्यभिचार करले लेकिन एक विधवा स्त्री अगर किसी से प्रेम करती है तो सामाजिकों की दृष्टि में वह पापिन और कलंकिनी होती है। धर्म और सामाजिक मर्यादा मानो मिट्टी में मिल जाती है। 'पूर्णा' भारतीय विधवा नारी की प्रतिनिधि है। कमलाप्रसाद उसे सहारा देकर अपने घर ले आता है। 'पर वह क्या जानती थी कि यह उसे उबारने वाली नौका नहीं वरन एक विचित्र जल-जंतु है जो उसकी आत्मा को निगल जायेगा।'[11] उसकी दीन-हीन स्थिति को देखकर कमलाप्रसाद की आँखों में वासना की चिंगारियों का नग्न रूप दिखाई देने लगता है। 'उसमें उसे प्रेमी की प्रदीप्त आकांक्षा नहीं, व्याघ्र का हिसंक संकल्प दिखाई देने लगता है।'[12] अपनी पवित्रता की रक्षा करती हुई पूर्णा वहां से भाग जाती है। यहाँ प्रेमचंद का समाज सुधारक रूप सामने आता है। विधवाओं का या तो विवाह हो जाये या वनिता भवन की स्थापना की जाये जहाँ विधवाओं को सामाजिक संरक्षण मिले। इस प्रकार प्रेमचंद विधवा समस्या का हल विधवा विवाह अथवा विधवा आश्रम की स्थापना में बताते हैं। डॉ. इंद्रनाथ मदान के अनुसार : 'प्रतिज्ञा रक्त मांस के पात्रों वाले उपन्यास की अपेक्षा विधवाओं के उद्धार की समस्या से अधिक सम्बन्ध रखता है।'[13] 'निर्मला' एक ऐसा उपन्यास है जिसके चारों ओर पहाड़ जैसी बड़ी-बड़ी समस्याएँ खड़ी हैं। पिता की मृत्यु के कारण एवं डॉक्टर युवक को पच्चीस हजार दहेज न दे पाने के कारण निर्मला का विवाह एक ऐसे वृद्ध वकील से होता है जिसके पहले से ही तीन युवक पुत्र हैं। वृद्ध तोताराम अपने बड़े बेटे के प्रति शंकालु और ईर्ष्यालु है। पिता से तीनों बेटे परेशान हैं। बड़ा पुत्र मंशाराम मर जाता है, दूसरा आत्महत्या कर लेता है, तीसरा साधु के साथ घर से भाग जाता है। अंत में तोताराम भी दरिद्रता के कारण घर से चला जाता है। संकटों को सहन करते करते निर्मला मरणासन्न हो जाती है, मरते समय कहती है : 'दीदी जी बच्चों को आपकी गोद में छोड़े जाती हूँ। अगर जीती जागते रहे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजियेगा.........चाहे कुवांरी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालियेगा, पर कुपात्र के गले न मढ़ियेगा।'[14] निर्मला के माध्यम से प्रेमचन्द यह बताना चाहते हैं कि अनमेल विवाह कोई व्यक्तिगत समस्या नहीं बल्कि सामाजिक समस्या है इसका समाधान होना ही चाहिए। दहेज की समस्या भारतीय हिन्दू समाज की वैवाहिक समस्या है। डॉ. भुवन कहता है : 'लाख रुपये तो लाख जनम में भी जमा कर पाउँगा......किसी धनी लड़की से शादी हो जाती तो चैन से कटती।'[15] भुवन भारतीय पुरुष के उस वर्ग का प्रतिनिधत्व करता है जो धन के लालची हैं और सामाजिक रुढियों पर चलने वाले हैं। अंत में निर्मला से विवाह न होने के कारण वह पछताता है और आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार धन के पीछे दौड़ने वाले युवकों को प्रेमचंद ने चेतावनी दी है। 'कायाकल्प' में भी अनमेल विवाह और दहेज़ की समस्या को उठाया गया है। लौंगी लड़की के माता-पिता को चेतावनी देते हुए कहती है : 'लड़की कंगाल को दे दे पर बूढ़े को न दे। गरीब रहेगी तो क्या, जन्म भर का रोना-झिकना तो न रहेगा।'[16] 'बूढ़े आदमी के साथ कोई लड़की कैसे सुख से रह सकती है।'[17] 'लड़की बेचकर धन नहीं कमाया जाता। यह नीचों का काम है, भले मानुषों का नहीं।'[18] इस प्रकार 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में धन देखकर विवाह करने वालों का प्रेमचंद ने कड़ा विरोध किया है।

'गोदान' का प्रकाशन सन् 1936 में हुआ, 'सेवासदन', 'सेवाश्रम', कायाकल्प', 'कर्मभूमि', 'गबन', 'प्रतिज्ञा', 'निर्मला' और गोदान तक आते-आते प्रेमचंद के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाई देता है और परिवर्तन के इस स्वरुप को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार यथार्थवादी दिखाने का प्रयत्न किया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में, राजनीति के क्षेत्र में और सामाजिक क्षेत्र में वह प्रगति की ओर अग्रसारित थी। समाज में प्रचलित अनेक कुप्रथाएं समाप्त कर दी गयी थीं। 'गोदान' उपन्यास की मिस मालती परिवर्तनशील भारत के उत्थानकाल की प्रतिनिधि नारी है। आधुनिक युग में नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग हुई है। विवाह के बारे में मिस मालती सोचती है कि मित्र बनकर रहना स्त्री-पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर है। जीवन के प्रति मि. मेहता को वह सन्देश देना चाहती है कि 'अपनी विद्या और बुद्धि को, अपनी जगी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोश के साथ उस रास्ते पर ले चलो जहाँ समाज का कल्याण हो।'[19] इस प्रकार प्रेमचंद ने मिस

मालती को आदर्शवादी बनाकर प्रेम और बलिदान की देवी बनाया है। इस प्रकार मिस मालती के माध्यम से प्रेमचंद ने भारतीय शिक्षित नारी के उस आदर्श रूप को प्रस्तुत किया है जिसमे वह भारतीय संस्कृति को स्वीकार करते हुए अपने को सत्यम-शिवम्-सुन्दरम बना देती है। 'सेवासदन' की सुमन कहती है : 'मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने सत्य की रक्षा करुँगी, गाऊंगी, नाचूंगी पर अपने को भ्रष्ट न होने दूंगी।'[20] निर्मला कहती है : 'पूर्व जन्म में नजाने कौन से पाप किये थे जिसका प्रायश्चित करना पड़ा। इस जन्म में कांटे बोती, तो कौन गति होती।'[21] यहाँ दोनों की मनःस्थिति यथार्थवादी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सुमन से लेकर निर्मला और मालती तक यथार्थवादी सामान्य पात्र असामान्य बन गये हैं।

प्रेमचंद का सम्पूर्ण कहानी साहित्य के क्रमिक विकास में कलात्मकता के विविध स्तर मिलते हैं। इनके प्रथम चरण की कहानियां (1917 से 1920 तक) आदर्श व परामर्शन्युक्त हैं जिनमें पात्रों को कर्त्तव्य पालन और ऊंचे आदर्श की शिक्षा दी गयी है। सप्तसरोज, नवनिधि और प्रेमपचीसी की कहानियाँ प्रथम चरण के अंतर्गत आती हैं। द्वितीय चरण की कहानियों (1920 से 1930 तक) का धरातल आदर्शवाद का था किन्तु इस चरण में वह आदर्श यथार्थोन्मुख हो गया। प्रेमचंद के शब्दों में : 'हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ में मिलाने की चेष्टा की है।'[22] विकासकालीन इन कहानियों के कथानक यथार्थवादी हैं और पात्रों का चयन भी जीवन के यथार्थ है। तृतीय चरण की कहानियां (1930 से 1936 तक) मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवादी हैं। इन कहानियों का केंद्रबिंदु मानव मनोभाव है साथ ही जो जीवन के अत्यंत निकट आ गयी थीं। इन कहानियों में प्रेमचंद का उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं, बल्कि जीवन के एक अंग को प्रस्तुत करना था। प्रेमचंद ने यह स्पष्ट अनुभव किया कि जीवन के समस्त समस्याओं के पीछे आर्थिक व्यवस्था का मुख्य हाथ है इसिलए इस काल की कहानियों में यथार्थवादिता मुख्यतः आर्थिक धरातल पर थी सामाजिक धरातल पर नहीं। देवेश ठाकुर के शब्दों में : 'अब तक वे अपने देश के ग्राम्य जीवन के यथार्थ को खूब देख-परख लिया था। वे जान गये थे कि अपने देश की अधिकांश जनता ग्रामीण है और ग्रामीणों का जीवन पशुओं के समान शोषित, मूक और निरीह है। आर्थिक विषमता ने उसकी प्राण शक्ति को निचोड़ लिया है और यह सबकुछ किसी दैवी शक्ति से नहीं वरन व्यक्ति समाज में वर्ग भेद के कारण हुआ है। एक वर्ग शासन पुलिस, जमींदार, महंत और पूंजीवाद के रूप में शोषकों का है और दूसरा वर्ग उन निरीह खेतीदार और खेतीदार मजदूरों का है जो रात दिन काम करने के पश्चात भी अपने परिवार के लिए पूरा अन्न नहीं जुटा पाते। इसलिए निराशा और निष्क्रियता की एक परम्परा भी उनकी नसनस में समा गयी थी। इसलिए बाद की कहानियों में जिन्हें हम प्रेमचंद का उत्कर्षकाल कह सकते हैं, जीवन का यथार्थ अपनी सम्पूर्ण विभीषिका के साथ उपस्थित हुआ है।'[23] 'नशा', 'ठाकुर का कुआँ', पूस की रात, दूध का दाम, नया विवाह, शतरंज के खिलाडी, चंपा तथा कफ़न प्रेमचंद की यथार्थवादी कहानियां हैं। इन कहानियों में प्रेमचंद ने मनोविज्ञान एवं यथार्थ के विश्लेषण पर अधिक बल दिया है। उनका कहना है : 'सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। अब हम कहानी का मूल्य उसके घटना विन्यास पर नहीं लगाते। हम चाहते हैं, पात्र की मनोगति स्वयं घटनाओं की सृष्टि करे। घटनाओं का स्वतंत्र कोई महत्व नहीं रहा। उनका महत्व केवल पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने की दृष्टि से नही है।'[24] उनकी कहानियों में व्यक्त व्यंग्य अनावृत्त सत्य को उसके नग्न रूप में सामने ला खड़ा करता है। व्यंग्य यथार्थपरक साहित्य का मूल प्राण है। प्रेमचंद की अनेक कहानियों में समाज के विभिन्न वर्गों के प्रति करारा व्यंग्य है। इन व्यंग्यों के पीछे एक मंगलमय समाज के निर्माण की कल्पना दृष्टिगोचर होती है।

सामाजिक यथार्थवाद का व्यापक रूप प्रेमचंद की कहानियों में देखने को मिलता है। प्रेमचंद की कहानियों में भारतीय सामाजिक जीवन का कोई भी ऐसा वर्ग नही है जो उनकी कहानियों में अछुता रह गया हो। ग्रामीण और नागरिक शोषक-शोषित, श्रमिक-कृषक, शिक्षित-अशिक्षित, राजनीतिक विद्यार्थी और अध्यापक, रोगी-चिकित्सक, सवर्ण-अछूत आदि सभी वर्गों के जीवन का यथार्थ चित्रण उन्होंने अपनी कहानियों में किया है। इन कहानियों में प्रेमचंद ने यह बताया है कि किसी भी प्रकार का शोषण समाज के लिए अहितकर है। 'ठाकुर का कुआँ' एक छोटी सी किन्तु बड़ी ही मार्मिक कहानी है जिसमें वर्ण व्यवस्था का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। जोखू निम्न जाति का है। उसके कुएं में जानवर गिरकर मर जाता है। पानी बदबूदार हो गया। उसकी पत्नी गंगी परिस्थिति से विद्रोह करने के लिए कसमसाती है रात के समय ठाकुर के कुएँ में पानी भरने के लिए जाती है लेकिन ठाकुर के डर से घड़ा और रस्सी दोनों कुएँ पर ही छोड आती है। घर पहुंचकर देखती है कि जोखू वही गन्दा पानी पी रहा है। वह सोचती है : 'हम लोग क्यों नीच हैं, और ये लोग क्यों ऊंचे हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डालते हैं।'[25] सामाजिक यथार्थ का यह व्यंग्यात्मक रूप हमे सिर्फ प्रेमचंद की कहानियों में ही देखने को मिलता है। 'शांति' भी इसी प्रकार के सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करती है। पुरानी सभ्यता को मानने वाली शांति का विवाह एक ऐसे युवक से होता है जो नवीन सभ्यता का हिमायती है। धीरे धीरे पत्नी को वह नए सांचे में ढाल लेता है। वह खूब ठाट-बाट से रहती है। लेकिन जब पति बीमार पड़ता है तो पत्नी के पास इतना समय नहीं कि वह उसकी सेवा कर सके । अंत में पति के विचारों में परिवर्त्तन आता है। इस स्थिति का प्रेमचंद ने यथार्थ चित्रण किया है। 'रानी सारन्ध्र', राजा हरदौल, मर्यादा की वेदी, पाप का अग्निकुंड और आल्हा-उदल आदि ऐतिहासिक कहानियों में ऐतिहासिक यथार्थ का प्रभावशाली रूप प्रेमचंद ने प्रस्तुत किया है। इन कहानियों में प्रेमचंद ने आदर्श का विरोध करते हुए यथार्थ स्थिति को ही स्वीकार किया है। 'शतरंज के खिलाडी' एक ऐसी प्रभावशाली ऐतिहासिक यथार्थवादी कहानी है। इस कहानी में अंग्रेजों के समय की जड़ता, सामाजिक व

मानसिक ह्रास का चित्रण हुआ है। यह कहानी अवध के नवाब वाजिद अली शाह के समय का, युगीन जीवन के क्षेत्रीय विविधताओं एवं उसकी यथार्थता का एक विश्वसनीय दस्तावेज प्रस्तुत करती है। मीर और मिर्जा अपनी शतरंज की बाजी के लिए मरमिट तो सकते थे परन्तु अपने राजा के लिए नहीं, जो पकड़ा गया था। उनकी सभी संवेदनाएं जैसे भोथरी हो गयी थीं। इस कहानी में व्यंग्य के अनेक स्तर हैं।

प्रेमचंद के समय में मनोवैज्ञानिक कहानी का लेखन आरम्भ हो गया था। स्वयं प्रेमचंद ने भी मनोवैज्ञानिक कहानी को ही सर्वश्रेष्ठ बताया है। कहानियों की रचना घटनाओं को लेकर नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक अनुभूति को लेकर होने लगी। प्रेमचंद ने भी 'नशा', 'मनोवृत्ति', 'कफ़न', 'पूस की रात', जैसी मनोवैज्ञानिक कहानियां लिखी। 'मनोवृत्ति' कहानी में गाँधी पार्क बिल्लोर में एक सुन्दर युवती बेंच पर गहरी नींद में सोई हुई है। जिसे देखकर पार्क में प्रातःकालीन वायुसेवन के निमित्त आये हुए विभिन्न प्रकार के लोगों के मन में विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियां जन्म लेती हैं। कहानी प्रत्येक पात्र के मनोजगत से निकलकर अपने स्वरुप को प्राप्त करती है। कहानीकार की सहानुभूति बाह्य जगत से हटकर भावगत पर केन्द्रित हो जाती है। प्रेमचंद मनोवृत्ति कहानी को उन कहानियों की श्रेणी में रख सकते हैं जो प्रत्येक दृष्टि से आधुनिक मनोवैज्ञानिक कहानियों से प्रतिस्पर्धा कर सकती है। 'नशा' कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थ है। एक साधारण परिवार का युवक एक सम्पन्न परिवार में जाकर किस प्रकार का व्यवहार करता है उसका यथार्थ मनोवैज्ञानिक चित्रण है। 'कफ़न' प्रेमचंद की अंतिम यथार्थवादी कहानी है। 'कफ़न' कहानी की विशेषता यह है कि इसमें मनोवैज्ञानिक चित्रण के साथ साथ एक कठोर सामाजिक वास्तविकता का भी चित्रण किया गया है। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि सामाजिक चित्रण के अंतर्गत ही मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। माधव और घीसू का चोरी से आलू खाना उस समय जब माधव स्त्री की प्रसववेदना से मरणासन्न हो रही है और दुबारा उन दोनों का शराब की दुकान पर ताड़ी पीना उस पैसे से जो कफ़न खरीदने के लिए चंदे से मिले थे, अत्यंत मर्मपूर्ण नवीन परिस्थिति का द्योतक है। यह चित्रण मनोविज्ञान के लिए मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं है, बल्कि जीवन की वास्तविकता का चित्रण है।'[26] 'माधव बोला कफ़न लाने से क्या मिलता आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहु के साथ तो न जाता। लेकिन लोगों को क्या जवाब देंगे। लोग पूछेंगे नहीं? कफन कहाँ है? घीसू हंसा, 'अबे कह देंगे कि रूपए कमर से खिसक गये। बहुत ढूँढ़ा मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आएगा लेकिन फिर वही रूपए देंगे। दोनों गाने लगे, ठगिनी क्यों नैना झमकाये ठगिनी।'[27] कहानी कला की दृष्टि से भी यह चरम उत्कर्ष की कहानी। एक अकेली 'कफन' कहानी कहानीकार प्रेमचंद को सम्पूर्ण विश्व के कहानीकारों के समक्ष ला खड़ा करती है। प्रेमचंद की कहानी 'माता का हृदय' में भी मनोवैज्ञानिक यथार्थ का चित्रण देखने को मिलता है। 'बड़े भाई साहब', 'पंचपरमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'सौत', 'माता का हृदय', 'एक्ट्रेस', 'नमक का दरोगा', 'सवा सेर गेंहू', 'पूस की रात' आदि कहानियां वस्तुगत यथार्थ की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

'पूस की रात' कहानी में एक ऋणग्रस्त किसान की दयनीय दशा का बड़ा ही मार्मिक एवं यथार्थ चित्रण किया गया है। दिन-रात धूप तथा वर्षा में काम करने से भी जब उसके पल्ले कुछ नही पड़ता तो उसके मन में तीव्र हताशा के भाव जागते हैं। इस कहानी में गरीब किसानों की स्थिति का यथार्थपूर्ण ढ़ंग से चित्रण किया गया है। तीन रूपए शेष हैं, महाजन डांट कर ले जाता है। अब किसान के पास कुछ भी नहीं रहा। पूस की रात है। वह खेत ताकने अपनी मडैया में जाता है। उसके साथ उसका कुत्ता झबरा भी जाता है। दोनों ठिठुर रहे हैं। हल्कू ने कुत्ते के प्रति मौखिक सहानुभूति प्रकट की। आखिर शीत से ये परेशान होकर एक-दूसरे से लिपट जाते हैं, इतने में अरहर के खेत में आवाज होती है, हल्कू नहीं उठता, झबरा जागता है पर नील गाय खेत चर जाती है। उसकी निराशा चरम सीमा तक पहुँच जाती है। इसलिए उसने खेत चर जाने दिया। दूसरे दिन उसकी पत्नी ने देखा कि सारा खेत चरा जा चुका है तो उसने हल्कू को फटकारना चाहा पर हल्कू अन्दर ही अन्दर प्रसन्न था कि अब उसे पूस की रात में जागना नहीं पड़ेगा। किसी प्रकार के पछतावे की भावना उसमे नहीं थी कि ठण्ड की रात में उसे यहाँ सोना नहीं पड़ेगा।'[28]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचंद के सम्पूर्ण साहित्य में उनके अपने समय का सम्पूर्ण युग जीवन और सामाजिक जीवन प्रतिबिंबित होता है। प्रेमचंद ने अपना ज्ञान, विवेक और अनुभव के आधार पर एवं अपनी अद्भुत पर्यवेक्षण शक्ति द्वारा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों विशेष रूप से ग्रामीण एवं मध्य वर्ग भारतीय समाज की विविध सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया। उसकी सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी कहानी 'कफन' से ही जीवन के यथार्थवादी स्वरुप को ग्रहण कर वर्तमान हिंदी कहानी शुरू होती है। प्रेमचंद अपनी प्रथम चरण की कहानियों में आदर्शवादी, द्वितीय चरण में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और अंतिम चरण में पुर्णतः यथार्थवादी बन गये। डॉ. सुरेश सिन्हा के शब्दों में 'जीवन के बहुविध पक्षों एवं विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का ऐसा चित्रण न पूर्ववर्ती साहित्यकार ने किया है न उनके परवर्ती साहित्यकार ने। यही प्रेमचंद की महानता थी और यही उनके साहित्य की विशिष्टता थी।'[29]

सन्दर्भ

1. डॉ. इंद्रनाथ मदान, प्रेमचंद एक विवेचन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989, पृ.155
2. डॉ. कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप, समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृ.13

3. डॉ.कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप, समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृ.40

4. संजय कुमार एवं मनोज मोहन, प्रेमचंद एक समग्र अवलोकन, जवाहर पुब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रथम संस्करण, पृ.23

5. डॉ.इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचंद एक विवेचन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,1989, पृ.11

6. डॉ.इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचंद एक विवेचन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,1989, पृ. 19

7. डॉ.त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 2018 (तृतीय सं.) पृ. 132

8. डॉ.इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचंद एक विवेचन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,1989, पृ.43

9. आचार्य नंददुलारे बाजपेयी, प्रेमचंद एक साहित्यिक विवेचन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2018(पाँचवाँ सं.) पृ.39

10. सेवासदन, प्रेमचन्द, साहनी पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2018, पृ.219

11. प्रतिज्ञा, प्रेमचन्द, शबनम पुस्तक महल, कटक, प्रथम संस्करण, पृ.

12. प्रतिज्ञा, प्रेमचन्द, शबनम पुस्तक महल, कटक, प्रथम संस्करण, पृ.127

13. डॉ.इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचंद एक विवेचन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,1989, पृ.5

14. डॉ.कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप, समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृ.187

15. डॉ.कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप, समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृ.26

16. डॉ.कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप, समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृ.135

17. डॉ.कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप, समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृ.153

18. डॉ.कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप, समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968,, पृ.154

19. गोदान, प्रेमचन्द, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 2013, पृ.315

20. सेवासदन, प्रेमचन्द, साहनी पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2018, पृ.63

21. डॉ.कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप, समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृ.64

22. प्रेमचंद, सत्येन्द्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृ. 133

23. डॉ.देवेश ठाकुर, हिंदी कहानी का विकास, संकल्प प्रकाशन, मुंबई, प्रथम संस्करण, पृ.74

24. डॉ.कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप,समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृ.46

25. डॉ.कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप,समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृ.141

26. आचार्य नंददुलारे बाजपेयी, प्रेमचंद एक साहित्य विवेचन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2018(पाँचवाँ सं.)पृ.105

27. डॉ.कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप,समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृ.46

28. डॉ.कृपाशंकर पांडेय, हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थबोध के विविध रूप, समीक्षा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृ.159

29. डॉ.सुरेश सिन्हा, हिंदी कहानी का उद्भव और विकास, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1967, पृ.298

●

भारतीय संस्कृति में बालोपयोगी क्रीड़ाएँ

*डॉ. पल्लवी त्रिवेदी**

संस्कृति शब्द '**सम्**' उपसर्ग पूर्वक '**कृ**' धातु में '**क्तिन् प्रत्यय**' जोड़कर बना है, जिसका अर्थ है- सजाना, सँवारना, परिष्कृत करना, प्रशिक्षित करना आदि। संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है। यह हमारे साहित्य में, धार्मिक कार्यों में, मनोरंजन और आनन्द प्राप्त करने के तरीकों में भी देखी जा सकती है।

इस दृष्टि से यदि भारतीय संस्कृति में क्रीड़ाओं पर विचार करें तो कोई भी कार्य जिनमें नियमों की संरचना हो और जिसको आनन्द प्राप्ति के लिए, मन बहलाव के लिए किया जाता हो क्रीड़ा या खेल है। क्रीड़ा बच्चों की स्वाभाविक क्रिया है। भिन्न-भिन्न आयुवर्ग के बच्चे विभिन्न प्रकार के खेल खेलते हैं जो बच्चों के सम्पूर्ण विकास में भी सहायक होते हैं। क्रीड़ाओं से बच्चों के शारीरिक, संज्ञानात्मक, संवेगात्मक, सामाजिक एवं नैतिक विकास को बढ़ावा मिलता है।

क्रीड़ा से बच्चे की स्वाभाविक रुचि, प्रवृत्ति, शक्ति, पटुता एवं लगन का पता चलता है। किसी क्रीड़ा प्रतियोगिता में प्रथम आने से अथवा किसी प्रकार की रचनात्मक क्रीड़ा में संलग्न होने से बालक को उतनी ही प्रसन्नता होती है जितना किसी ठोस कार्य को करके सफल होने पर। क्रीड़ा के प्रकारों पर विचार करें तो इन्हें मूलतः चार प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है-

(क) गत्यात्मक क्रीड़ाएँ– जिनसे शरीर के प्रत्येक अंग को गति प्राप्त होती है। ये क्रीड़ाएँ बालकों के शारीरिक विकास में सहायक होती हैं ये एकल, युगल अथवा बहुल रूप में हो सकती हैं। यथा- उछलकूद, लुका-छुपी, दौड़ इत्यादि।

(ख) सृजनात्मक क्रीड़ाएँ– इससे बच्चों का मानसिक एवं बौद्धिक विकास होता है। इन क्रीड़ाओं के माध्यम से बालक की सृजनात्मक क्षमता में भी वृद्धि होती है। ये क्रीड़ाएँ हैं- रेत व मिट्टी के घर बनाना, चित्रकारी, कागज की नाव बनाना इत्यादि।

(ग) द्वन्द्वात्मक क्रीड़ाएँ– वे क्रीड़ाएँ जिनमें बालक एक दूसरे से आगे बढ़ना या जीतना चाहते हैं। यथा- कुश्ती, गेंद-तड़ी, छुआछूत, धक्का-मुक्की, छीन-झपट्टा इत्यादि। इन क्रीड़ाओं में बालकों के क्रियाकलापों को देखकर ऐसा लगता है जैसे उनमें झगड़ा या विवाद हो रहा है किन्तु इससे बालक की शारीरिक शक्ति तथा व्यक्तित्व का विकास होता है।

(घ) बुद्धिवादी क्रीड़ाएँ– इस प्रकार की क्रीड़ाओं का सम्बन्ध बालक की मानसिक चेतना एवं बुद्धि से है। इन क्रीड़ाओं में शारीरिक अवयवों की अपेक्षा बुद्धि और चिन्तन की आवश्यकता होती है। यथा- शब्द-निर्माण, भूल-भुलैया, व्यूह-रचना, विचित्र आकृतियों के समाधान आदि।

इन क्रीड़ाओं को भारतीय सांस्कृतिक सन्दर्भ में देखें तो प्राचीन काल में **कृत्रिम वृषभ क्रीड़ा, निलयन क्रीड़ा, शिक्यादिमोषण क्रीड़ा, नृपक्रीड़ा, हरिणाक्रीड़ा, वीटा क्रीड़ा, चित्रक्रीड़ा** आदि अनेक प्रकार की क्रीडाएँ थीं जिनका उल्लेख श्रीमद्भागवतपुराण, हरिवंशपुराण, स्कन्दपुराण, महाभारत तथा काव्यादि ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। इन क्रीड़ाओं से बच्चे अपना मन तो बहलाते ही थे साथ ही इन क्रीड़ाओं से उनमें संगठन शक्ति, सहयोग की भावना, निःस्वार्थता, सहनशीलता, संयम, साहस तथा अविचलता जैसे सद्गुणों का विकास भी होता था।

प्राचीन काल में प्रचलित इन क्रीड़ाओं से होने वाले लाभों पर चर्चा करने से पूर्व इन क्रीड़ाओं के स्वरूप पर दृष्टिपात आवश्यक है-

1. **कृत्रिम वृषभ क्रीड़ा–** इस क्रीड़ा में बालक बैल का सा वस्त्र ओढ़कर या सिंह का सा चर्म ओढ़कर लड़ते थे तथा शब्द करते थे। श्रीमद्भागवत में उल्लेख है कि भगवान कृष्ण कृत्रिम गौ, वृष बनकर ग्वाल बालों के साथ क्रीड़ा करते थे-

क्वचित् पादैः किंकिणीभिः क्वचित् कृत्रिमगोवृषैः॥

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम्।

अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा॥[1]

2. **शिक्यादि-मोषण क्रीड़ा–** शिक्या (छींका) या अन्य किसी प्रकार की वस्तु लेकर क्रीड़ा हेतु कोई बालक भागता और जब उस छीकें या वस्तु का स्वामी उस बालक के पीछे भागता तब वह बालक अपने अन्य साथियों में क्रमशः एक दूसरे के पास वह वस्तु फेंककर जिसकी वह वस्तु है उसे हैरान करते किन्तु अन्त में वह वस्तु लौटा दी जाती वन में ग्वाल बाल परस्पर इसी प्रकार यह क्रीड़ा करते थे-

मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः।

तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः॥[2]

---

* सेण्टेनरी विजिटिंग फेलो, भारत अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

3. हरिणाक्रीडन क्रीड़ा– बालकोचित इस क्रीड़ा का उल्लेख विष्णु पुराण (5/9/9), भागवत पुराण (10/18/19-29) तथा हरिवंश पुराण (चतुर्दश अध्याय, विष्णु पर्व) में भी हुआ है। खेल की परिपाटी यह है कि एक निश्चित लक्ष्य के पास एक साथ दो-दो बालक हिरन की भाँति उछलते हुए जाते हैं। दोनों में जो पहले पहुँच जाता है, वह विजयी होता है। हारा हुआ बालक जीते हुए को अपनी पीठ पर चढ़ाकर मुख्य स्थान तक ले जाता है। यही हरिणाक्रीडन है। हरिवंश पुराण में वर्णन है कि बलराम जी को मारने हेतु प्रलम्ब नामक असुर ग्वालबालों का वेष बनाकर उनके साथ क्रीड़ा करने लगा-

हरिणाक्रीडनं नाम बालक्रीडनकं ततः।

प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन्॥

कृष्णः श्रीदामसहितः पुप्लुवे गोपसूनुना।

संकर्षणस्तु प्लुतवान् प्रलम्बेन सहानघ॥

गोपालास्त्वपरे द्वन्द्वं गोपालैपरैः सह।

प्रद्रुता लङ्घयन्तो वै तेऽन्योन्यं लघुविक्रमाः॥

श्रीदाममजयत् कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसुतः।

गोपालैः कृष्णपक्षीयैर्गोपालास्त्वपरे जिताः॥

ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं संहर्षात् सहसा द्रुताः।

भाण्डीरस्कन्धमुद्दिश्य मर्यादां पुनरागमन्॥[3]

श्रीदामा के साथ श्रीकृष्ण और ग्वालबाल के वेष में आये हुए प्रलम्ब के साथ संकर्षण (बलराम) कूद-कूद कर चलने लगे। इसी तरह दूसरे ग्वाल बाल अन्य ग्वालबालों के साथ दो-दो की जोड़ी बनाकर एक दूसरे को लाँघ जाने का प्रयत्न करते हुए शीघ्र गति से उछलते हुए चलने लगे। उस खेल में श्रीकृष्ण ने श्रीदामा को, बलराम ने प्रलम्ब को तथा अन्यान्य कृष्णपक्षीय गोपों ने दूसरे पक्ष के गोपों को पराजित कर दिया। जो-जो बालक हारे थे, वे अपने साथ के विजयी बालकों को पीठ पर ढ़ोते हुए हर्ष के साथ दौड़े और नियम सीमा तक जाकर लौट आये। किन्तु दानव प्रलम्ब बलराम को अपने कंधे पर लिये-लिये आकाश में जा पहुँचा जहाँ बलराम ने उस दानव के मस्तक पर प्रहार कर उसका वध कर दिया।

4. वीटा क्रीड़ा– गिल्ली-डण्डे का खेल। इस क्रीड़ा में खिलाड़ी जौ के आकार की लकड़ी के टुकड़े को हाथ भर लम्बे डण्डे से बार-बार मार कर दूर और दूर फेंकते हैं। महाभारत में वर्णन है कि एक बार जब हस्तिनापुर के बाहर कौरव-पाण्डव राजकुमार यह खेल खेल रहे थे तब अचानक उनकी गिल्ली एक कुएँ के भीतर गिर पड़ी। बहुत यत्न करने पर भी कुमार लोग उसे नहीं निकाल पाये तब वहाँ से जा रहे आचार्य द्रोण ने बाणों से बींधकर उस गिल्ली को निकाला।[4] आज भी ग्रामीण अँचलों में कहीं-कहीं बालक यह खेल खेलते हैं।

5. नेत्रबन्ध क्रीड़ा– इस क्रीड़ा के तीन प्रकार हैं-

(क) जिसमें पीछे से आकर आँख मूँदने पर बँधे नेत्रों वाला बाँधने वाले को पहचान ले।

(ख) या नेत्र बन्द करने पर छोड़ा हुआ बालक छिपे हुए बालकों का पता लगाये।

(ग) या जहाँ पर बँधे नेत्र वाले बालक को अन्य बालक छू-छूकर जाते हैं तथा बद्ध नेत्र उन्हें पकड़ने का यत्न करता है। भागवत में ग्वाल बालों संग श्रीकृष्ण एवं बलराम द्वारा यह क्रीड़ा करने का वर्णन है-

क्वचिद् बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्व चामलकमुष्टिभिः।

अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगरवगेहया॥[5]

6. अहमहमिका-स्पर्शक्रीड़ा– दूर खड़े खिलाड़ी को पहले दौड़ कर छूने की क्रीड़ा। भागवत में वर्णन है कि यदि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण वन की शोभा देखने के लिए कुछ आगे बढ़ जाते तब सारे ग्वाल बाल आपस में होड़ लगा कर पहले मैं छुऊँगा, पहले मैं छुऊँगा उनकी ओर दौड़ पड़ते और उन्हें छू-छूकर आनन्दमग्न हो जाते।

यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम्।

अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे॥[6]

7. गान-कूर्दन क्रीड़ा– गाने एवं नाचने कूदने का खेल। श्रीकृष्ण, बलराम एवं ग्वाल बालों द्वारा इस क्रीड़ा में एक ओर तो ग्वालबाल भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्रों की मधुर तान छेड़े रहते तो दूसरी ओर बलरामजी के साथ वनमाला पहने हुए श्रीकृष्ण मतवाले भौंरो की सुरीली गुनगुनाहट में अपना स्वर मिलाकर मधुर संगीत अलापते हैं-

क्वचिद् गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः।

उपगीयमानचरितः स्त्रग्वी संकर्षणान्वितः॥[7]

जिस समय श्रीकृष्ण नाचने लगते, उस समय कुछ ग्वाल बाल गाने लगते और कुछ बाँसुरी तथा सींग बजाने लगते-

रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः॥

कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन्।

वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे॥[8]

कहीं-कहीं जब दूसरे ग्वालबाल नाचने लगते तो श्रीकृष्ण और बलराम गाते या बाँसुरी, सींग आदि बजाते-

क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम्।

शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ।।[9]

8. यष्टिकाकर्षण क्रीड़ा– स्कन्दपुराण में इस क्रीड़ा का उल्लेख है जिसे आजकल रस्साकशी कहा जाता है। इसके लिए कुश और काँच की बनी हुई नई रस्सी तैयार की जाती थी जिसे बालकों के दो दल पकड़ कर खड़े हो जाते थे और दोनों ओर के अन्तिम बालकों के पीछे धरती पर एक-एक लकीर खींच दी जाती थी। जीतने वाले पक्ष के लिए वह रेखा पार करना अनिवार्य था।[10] श्रीमद्भागवत में भी बालक कृष्ण एवं बलराम की यष्टिकाकर्षण क्रीड़ा का वर्णन है।[11]

9. मर्कटोत्प्लावन क्रीड़ा– बँदरों की तरह पेड़ों पर चढ़कर एक से दूसरे वृक्षों पर छलाँग लगाना, दूसरे शब्दों में बन्दरों की नकल करने की क्रीड़ा। श्रीकृष्ण के साथ खेलते समय ग्वाल बाल यह क्रीड़ा करते थे-

विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान्।

विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु।।[12]

10. चित्रक्रीड़ा– चित्र एवं मिट्टी के खिलौने बनाना। महाभारत में सत्यवान के विषय में कहा गया है कि बाल्यकाल में वह भीत (दीवारों) पर घोड़ों का चित्र बनाकर खेला करता था इसलिये बचपन में उसका नाम चित्राश्व पड़ा था।[13]

इन क्रीड़ाओं के अतिरिक्त पशु-पक्षियों की नकल उतारना उनकी बोली बोलना-

केचिद् भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे।।

विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधुहंसकैः।

बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः।।[14]

एवं

चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः।

अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद् व्याघ्रसिंहयोः।।[15]

मेंढको की तरह फुदक-फुदक कर चलना, नदी में छप-छप करना-

साकं भेकैर्विलंघन्तः सरित्प्रस्रवसम्प्लुताः।

विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान्।।[16]

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः।[17]

रंगीन पंखों, पुष्प हारों, गेरु आदि रंगीन धातुओं से स्वयं को तथा दूसरे बालकों को सजाना[18], घुमरी-परेता[19], बिल्वादिप्रक्षेपण क्रीड़ा[20], स्पन्दान्दोलिका क्रीड़ा[21] (झूला झूलना), नृप क्रीड़ा[22] (राजा की नकल करने का खेल), नियुद्ध (कुश्ती) जैसी क्रीड़ाएँ भी अत्यन्त प्रचलित थीं।

महाकवि कालिदास ने बालिका पार्वती द्वारा खेले जाने वाली क्रीड़ाओं का भी वर्णन किया है जिनमें, मिट्टी एवं बालू से वेदिका बनाना, कन्दुक क्रीड़ा एवं गुड्डे-गुड़ियों से खेलने का चित्रण किया है-

मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च।

रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये।।[23]

इस प्रकार बालोपयोगी क्रीड़ाओं पर यदि समेकित रूप से विचार किया जाये तो स्पष्ट होता है कि क्रीड़ा का समग्र रूप बच्चों के शारीरिक, मानसिक, नैतिक, अनुशासनिक, सांस्कृतिक एवं सभ्यता के विकास से जुड़ा हुआ है और बच्चे के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए क्रीड़ाएँ विशेष उपादेय हैं। क्रीड़ाएँ चित्त की प्रसन्नता के साथ-साथ नवीन चेतना, स्फूर्ति एवं साहस देती हैं। क्रीड़ाएँ बच्चों को सांसारिक वास्तविकता से अवगय कराती है बच्चों को क्रीड़ाओं के लिए प्रोत्साहन देने से वे पढ़ाई-लिखाई में भी मन लगाते हैं।

बच्चों की शिक्षा पर क्रीड़ाओं के प्रभाव को देखें तो क्रीड़ा काल में बच्चों की एकाग्रता, स्मृति, सीखने की क्षमता आदि उच्चतर स्तर पर कार्य करती है ये विकसित क्षमताएँ शिक्षा में भी काम आती हैं। क्रीड़ा में बच्चे अपने आन्तरिक विचार के अनुसार कार्य करते हैं और मूर्त रूप में दिखने वाली चीजों से बँधे नहीं रहते। यहीं से उनमें अर्मूत चिन्तन व विचार की तैयारी होने लगती है। विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाओं में बच्चों को वस्तुएँ छूने, उन्हें ध्यान से देखने और आस-पास के वातावरण को जानने का अवसर प्राप्त होता है जिससे उनके मन में उठने वाले कई प्रश्नों के उत्तर उन्हें स्वतः मिल जाते हैं। क्रीड़ा में बच्चों को अपनी रुचि के अनुसार क्रियाएँ चुनने की स्वतन्त्रता होती है इस प्रकार वह उन चीजों को सीखते हैं जिन्हें सीखने के लिए वह तैयार होते हैं इससे सीखने की प्रक्रिया बोझ न बन कर आनन्ददायक हो जाती है। क्रीड़ाएँ बच्चों की कल्पनाशक्ति को विकसित करती हैं।

क्रीड़ा करते हुए चीजें आपस में बाँटना, नियमों का पालन करना, अपनी बारी की प्रतीक्षा करना इन सबके माध्यम से बच्चे अन्य लोगों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखना और उनको महत्त्व देना भी सीखते हैं। क्रीड़ाओं के माध्यम से वे विभिन्न प्रकार के कार्यों, त्यौहारों, धारणाओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त करते हैं। अपने से भिन्न सभ्यता एवं संस्कृति तथा भाषा बोलने वाले बालक जब साथ में क्रीड़ाएँ करते हैं तो वे परस्पर में एक दूसरे की सभ्यता, संस्कृति एवं भाषा भी सीख जाते हैं। क्रीड़ा में सहभागी बनने से स्वास्थ्य भी उत्तम होता है क्योंकि दौड़ने कूदने, भागने जैसी क्रीड़ाओं में श्वास लेने की क्षमता दो से तीन गुना अधिक बढ़ जाती है साथ ही शरीर के रक्त परिसंचरण में भी सुधार आता है।

क्रीड़ाएँ बच्चों को हर्ष, उल्लास, क्रोध, भय और दुःख व्यक्त करने का अवसर प्रदान करती हैं। पूर्वोक्त कथित क्रीड़ाओं के

सन्दर्भ में देखें तो शिक्यादि मोषण क्रीड़ा, अहमहमिका स्पर्श क्रीड़ा जैसी दौड़ने से सम्बन्धित क्रीड़ाएँ शारीरिक चुस्ती फुर्ती और शरीर की क्रियाशीलता को बढ़ाती थी। चित्र क्रीड़ा, गान-कूर्दन क्रीड़ा आदि रचनात्मकता को बढ़ाती थीं तथा नृप क्रीड़ा, कृत्रिम वृषभ क्रीड़ा, मर्कटोत्प्लावन क्रीड़ा जैसी क्रीड़ाएँ कल्पना शक्ति को विकसित करने वाली थीं संक्षेप में कहा जाए तो सभी प्रकार की क्रीड़ाएँ बच्चों के आत्म प्रकाश का साधन होती हैं। क्रीड़ाएँ बच्चों के विकास में मदद करके उन्हें भविष्य की भूमिकाओं के लिए तैयार करती हैं और बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ा कर उन्हें चुनौतियाँ स्वीकार करने के लिए तैयार करती हैं।

वर्तमान समय में बच्चे क्रीड़ाओं से दूर हो गए हैं। शिक्षा का बोझ उन पर इतना है कि क्रीडाङ्गण उनसे दूर हो गया है माता-पिता भी इससे होने वाले नुकसान को न देखते हुए बच्चों को क्रीड़ा स्थल से दूर ही रखते हैं और हर समय बच्चों पर शिक्षा का, अच्छे अङ्क लाने का दबाव बनाये रहते हैं यदि कदाचित् कुछ समय बच्चों को खेलने के लिए मिल भी जाये तो आजकल बच्चे क्रीड़ा स्थल वाली क्रीड़ाएँ छोड़कर मोबाईल, इन्टरनेट गेम्स खेलना ज्यादा पसन्द करते हैं। इससे न केवल इन बच्चों का शारीरिक विकास बाधित होता है अपितु मानसिक विकास भी अवरुद्ध होता है। और तो और विगत कुछ वर्षों में कुछ ऑनलाइन गेम्स (जैसे- ब्लू व्हेल इत्यादि) के कारण तो बच्चों को जान भी गँवानी पड़ी है क्योंकि इन गेम्स को बनाने वाले लोगों ने कुछ इस तरह गेम को डिजाइन किया था जो बच्चों को आत्महत्या के लिए उकसाता था। साथ ही ये ऑनलाइन गेम्स या मोबाइल गेम्स बच्चों की एक लत बन जाते हैं जिनके कारण बच्चों को कई प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियाँ घेर ले रही हैं।

आज आवश्यकता है अपनी जड़ों की ओर लौटने की क्योंकि भारतीय बाल क्रीड़ाएँ बच्चों के शारीरिक, मानसिक विकास में सदा से ही सहायक रही हैं और इनके साथ यह सिद्ध है कि यदि प्रारम्भ से ही इन क्रीड़ाओं के साथ बच्चों का परिचय करा दिया जाये तो वह जीवन के हर क्षेत्र में अपने को पारंगत बनाने में सफल हो जाते हैं। भारतीय संस्कृति की बालोपयोगी क्रीड़ाएँ बच्चों को आपस में प्रेमपूर्वक मिल-जुल कर रहना, आपसी वैर भाव समाप्त कर विभिन्न जाति व सम्प्रदाय के साथ आपसी तालमेल के द्वारा निर्धारित जीवन लक्ष्य को प्राप्त करना सिखाती हैं।

सन्दर्भ सूची

1. श्रीमद्भागवत, 10/11/39, 40
2. श्रीमद्भगवत, 10/12/5
3. हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, चतुर्दशअध्याय, 18-21
4. महाभारत
5. श्रीमद्भागवत 10/18/14
6. श्रीमद्भागवत 10/12/6
7. श्रीमद्भागवत 10/15/10
8. श्रीमद्भागवत 10/18/9-10
9. श्रीमद्भागवत 10/18/13
10. स्कन्द पुराण 10/64-69
11. श्रीमद्भागवत 10/18/12
12. श्रीमद्भागवत 10/12/9
13. महाभारत 3/293/13
14. श्रीमद्भागवत 10/12/7-8
15. श्रीमद्भागवत 10/15/13
16. श्रीमद्भागवत 10/12/10
17. श्रीमद्भागवत 10/18/15
18. श्रीमद्भागवत 10/18/9
19. श्रीमद्भागवत 10/18/12
20. श्रीमद्भागवत 10/18/14
21. श्रीमद्भागवत 10/18/15
22. श्रीमद्भागवत 10/18/15
23. कुमारसम्भव 1/29

●

'नैषधीयचरितम्' में प्रतिबिम्बित विष्णुभक्तिः एक विमर्श

डॉ. अरुण कुमार त्यागी[*]

संस्कृत-वाङ्मय स्वीय विपुलता के कारण महत् आश्चर्य व परमतोष का अवगाहक है। प्रायः विद्वत्वृन्द सहज भाव से इस तत्त्व को स्वीकृति प्रदान करते है। इस देवनिधि, सुधावारिधि स्वरूप वाङ्मय में वर्णित विषय उपमेय-उपमान, यथार्थ-कल्पना, लौकिक आध्यात्मिक, ग्रामीण-नागरिक, पशु-मानव, बोध-अबोध, सहज-असहज, शून्य-अनन्त, सन्देह-भ्रान्तिमान्, अतिशयोक्ति-श्लेषादि के माध्यम से किया गया चित्रण स्वयं में इस विचार का प्रबल प्रमाण है, जिसने शताब्दियों से जनमानस की जिजीविषा व जीवनशैली को रसाप्लवित किया है। इस प्रकाशस्वरूप, प्राणस्वरूप वाङ्मय द्वारा आज भी सहृदयों को तात्कालिक दिव्यता, आनन्दमयतुष्टि व तेज का अनुभव होता है जो ब्रह्मस्वरूप प्रणेता के शरीरमय आलय में प्रवहमान थे। संस्कृत-वाङ्मय में काव्यऋषि प्रतिक्षण जीवन की विषय परिस्थितियों के अन्तःकरण से आनन्द के अन्वेषण में सदैव संलग्न रहे है। इसी परम्परा में भारतीय हृदय को अखण्डज्ञान की ज्योति से सदा सर्वदा के लिए प्रज्ज्वलित करने वाला 'नैषधीयचरितम्' संस्कृत काव्योदधि का एक दिव्य रत्न है, जो एक ओर तो काव्यनिष्णात को अपनी चमत्कृति से आश्चर्यचकित करता है, तथा दूसरी ओर स्वयं के अदभुत पाण्डित्य से विद्वानों को मन्त्रमुग्ध करता है। इसी सन्दर्भ में महाकवि श्रीहर्ष की भी स्वीकरोक्ति है कि मेरा प्रयास सुधीजनों को तुष्ट करने का है, अल्पबुद्धि बालक की उन्हें चिन्ता नहीं - '**मदुक्तिश्चेदन्तमर्दयति सुधीभूय सुधियः। किमस्या नामस्यादरसपुरुषानादरभरैः॥**'[1] शृङ्गारामृतशीतगुकाव्य' के प्रणेता की उद्घोषणा है कि इस 'काव्यरसोर्मिप्रवाह' में सुधीजन ही 'मज्जनसुखव्यासज्जन' (स्नानानन्द) प्राप्त कर सकता है, जिसने श्रद्धानत हो गुरु-अर्चना की है, 'प्रज्ञमन्यखल' इसमें क्रीड़ा करने का दुष्प्रयत्न न करें।[2]

वस्तुतः संस्कृत जगत् को 'नैषधीयचरितम्' से गौरवान्वित करने वाले एवं मूर्धन्य महाकवियों की परम्परा के ध्वजवाहक श्रीहर्ष का जीवनवृत्त पूर्ण प्रकाशित है, उसमें सन्देह का लेशमात्र भी स्थान नहीं है।

'नैषधीयचरितम्' के सर्गान्त-पुष्पिका में - ''**श्रीहर्ष कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतं, श्रीहीरः सुषवे जितेन्द्रिय मामल्लदेवी च यम् ।**''[3] में कवि का आत्म-परिचय सुस्पष्ट है कि श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहीर व माता का नाम मामल्लदेवी था। पुष्पिका से ज्ञात होता है कि श्रीहर्ष के पिताश्री श्रेष्ठ कवि परम्परा के संवाहक थे जिनको राजसत्ता द्वारा ''**कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः**'' से आभूषित किया है। प्रसिद्ध नैयायिक आचार्य उदयन को अपने वाग्वैधग्य से हतप्रभ करने वाले श्रीहर्ष ने नैषध के अन्तिम बाईसवें सर्ग में स्वयं के आश्रयदाता का उल्लेख किया है-

ताम्बूलद्वयामासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वराद्

यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं ब्रह्मप्रमोदार्णवम् ।

यत्काव्यं मधुवर्षि धर्षित परास्तर्केषु यस्योक्तयः

श्रीश्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम् ॥[4]

यद्यपि पं0 नीलकमल भट्टाचार्य ने इन्हें इनके ग्रन्थ 'गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति' के आधार पर किसी अज्ञातनामा गौडाधिपति का आश्रित बताया जो बहुत स्वीकृत मत न हो सका।

अतः यह तो स्पष्ट हो जाता है कि काव्यरूपी प्रतिभा के ऐश्वर्य से समालङ्कृत श्रीहर्ष तर्कशास्त्र के भी मर्मज्ञ थे। वे कान्यकुब्जाधिपति की राजसभा समादरणीय पण्डित थे। जिसके प्रतीकस्वरूप कान्यकुब्जेश्वर 'ताम्बूलद्वय' और 'आसन' अर्पित किया करते थे। इनका नाम जयन्तचन्द्र था-

'परममहाराजाधिराजपरमेश्वरपरममाहेश्वराश्वपतिगजपतिनरपतिराज-त्रयाधिपति विविधविद्याविचारवाचस्पतिश्रीमज्जयन्तचन्द्रः।'

यही राजा जयचन्द्र देशज में जयचन्द के नाम से प्रसिद्ध है।

वस्तुतः श्रीहर्ष अगाध पाण्डित्य की उत्सभूमि थे। उनमें साहित्य, न्याय, तर्क आदि विषय के साथ ही साथ वेद-वेदाङ्ग, द्वादशदर्शन, सङ्गीत, गणित, आयुर्वेद, धनुर्वेद, सामुद्रिकविद्या, ज्योतिष्, पुराणादि, नीतिशास्त्र के भी उद्भट विद्वान् थे, जिसके फलस्वरूप उन्होंने भारतीय इतिहास की प्रसिद्ध घटना नल-दमयन्ती की प्रणय-कथा को परम वैभवात्मक रूप प्रदान कर 22 सर्ग के देदीप्यमान नक्षत्र में परिणत कर दिया-

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च।

ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्त्तनं कलिनाशनम् ॥[5]

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको जनार्दनः।

पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः॥[6]

---

* अध्यापक, देव मेमोरियल पब्लिक स्कूल, गढ़मुक्तेश्वर, उ0प्र0

'भक्ति' मानव जीवन की सुकुमार तथा ललित भावनाओं का अक्षय स्रोत है तथा जीवनरूपी सरिता के प्रवाह का एकमात्र उत्स है। शताब्दियाँ इसका प्रमाण है कि भारतीय समाज सदैव भक्ति की अजस्र धारा से स्वयं को आप्लावित, निर्देशित व समर्पित करता आया है।

भक्ति शब्द का प्रकृति प्रत्यय विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि भक्ति शब्द √'भज्' धातु में क्तिन् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। ऋग्वैदिककाल में भज् धातु का तात्पर्य है।- 'वितरित करना' या विभाजित करना। किन्तु आचार्य पाणिनि के पश्चात् 'भज्' धातु 'भज्-सेवायाम्' इस अर्थ में प्रयोग होने लगा। काशिकावृत्ति में भक्ति का विश्लेषण - 'भज्यते सेव्यते इति भक्ति' से मिलता है। 'भक्ति' शब्द का सर्वप्रथम स्पष्ट प्रयोग श्वेताश्वतरोपनिषद् में देवभक्ति एवं गुरुभक्ति के सन्दर्भ में हुआ है-

'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥'[7]

सामान्यतः सगुण ईश्वर के प्रति की जाने वाली अर्चना ही 'भक्ति' शब्द से अभिहित की जाती है। प्राचीन आचार्यो ने भक्ति में प्रेम व अनुरक्ति को आवश्यक माना है। देवर्षि नारद स्वरचित भक्तिसूत्र में उसे **प्रेमरूपा**[8] **एवं अमृतस्वरूपा**[9] **प्रतिष्ठित किया है।** अतः देवर्षि नारद द्वारा निर्देशित भक्ति की अवस्था में साधक का समस्त लौकिक व पदार्थो के प्रति आकर्षण शून्य हो जाता है तथा उसकी परिणति प्रभु आसक्ति व सेवा के रूप में प्रस्फुटित होती है। महर्षि शाण्डिल्य भी भक्ति में अनुरक्ति को महत्त्व देते है- **'सा परानुरक्तिरीश्वरे'**।[10] शाण्डिल्य भक्ति से पूर्व प्रभु स्वरूप एवं गुणों के ज्ञान की अनिवार्यता स्वीकार करते है। उनका तर्क है कि ईश्वरस्वरूप ज्ञान के बिना उनके प्रति अनुरागातिशय एवं सर्वात्मना समर्पण सम्भव ही नही हो सकता है।

यद्यपि समस्त पुराण न्यूनाधिक्य रूप से भक्ति तत्त्व के आश्रयस्थल हैं। श्रीमद्भागवतपुराण में भक्ति के दृष्टिकोण से भगवान् विष्णु को ही एकमात्र एवं सर्वश्रेष्ठ विग्रह स्वीकार किया है। पाञ्चरात्र मत के अनुसार श्रीकृष्ण अपने 'पर' रूप में भक्ति के सर्वोच्च अधिष्ठान है। रूपगोस्वामी जी ने भी अन्य प्रकार की कामनाओं से रहित, ज्ञान और कर्म से अनाच्छादित, अनुकूल भावना से कृष्ण के सेवन को उत्तम भक्ति कहा है-

अन्यभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥[11]

इसी क्रम में नैषधीयचरितम् में श्रीहर्ष का भक्ति भाव परिपाक भी स्पष्ट परिलक्षित होता है।

'नैषधीयचरितम्' के इक्कीसवें सर्ग में पुरुषोत्तम विष्णु का स्तुतिपरक वर्णन किया गया है, जो श्रीहर्ष द्वारा राजा नल के माध्यम से विष्णु-भक्ति की प्रतिष्ठापना है। वस्तुतः नल की भगवान् विष्णु के प्रति स्वप्रणति अप्रत्यक्षरूप से श्रीहर्ष की पुरुषोत्तमार्चना की ही द्योतक है-

उत्तमं स महति स्म महीभृत् पूरुषं पुरुषसूक्तविधानैः ।

द्वादशापि च स केशवमूर्त्तीर्द्वादशाक्षरमुदीर्य ववन्दे॥[12]

मध्याह्नस्नान के पश्चात् नल के पुरुषोत्तम विष्णु की पुरुषसूक्त की षोडश ऋचाओ के द्वारा विधि-विधान के साथ पूजार्चना करते हैं। तदुपरान्त राजा नल ने द्वादशाक्षर मन्त्र- **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** का उच्चारण करते हुए द्वादश विष्णु विग्रहों की वन्दना उनकी विष्णु के प्रति अनन्य भक्ति-भावना की प्रतीक है, इन मन्त्रों का पाठ करते हुए भगवच्चरणों में जल व पुष्प अर्पित किया जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में योगिराज भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं -

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्तया प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥[13]

द्वादशाक्षर मन्त्रोच्चारणपूर्वक केशव की मूर्तियों के पूजन के सन्दर्भ में 'पद्मपुराण' में प्रसङ्ग समुपलब्ध है जिसमें द्वादश शालग्राम शिलाओं की अर्चना से एक दिन में उतना साफल्य प्राप्त होता है, जितना सुवर्ण कमल द्वारा से द्वादश लिङ्गो की आराधना से बारह कल्पों के उपरान्त प्राप्त होता है-

शिलाद्वादश भो वैश्य शालग्रामसमुद्भवाः।

विधिवत्पूजिता येन तस्य पुण्यं वदामि ते ॥

राजा नल ऋग्वेदोक्त पुरुषसूक्त से वन्दना करने के पश्चात् मल्लिका कुसुमों के **'डुण्डुभक कुण्डली'** तुल्य पीठ पर विराजित नारायण को साक्षात् अहिशायी नारायण के रूप में देखा, जो उनके मनोभाव के सूचक थे-

मल्लिकाकुसुमडुण्डुभकेन स भ्रमीवलयितेन कृते तम् ।

आसने निहितमैक्षत साक्षात् कुण्डलीन्द्रतनुकुण्डलभाजम् ॥[14]

राजा नल की धन-रत्नादि सम्पदा श्रीनारायण के चरणों में अर्पित कर तदनन्तर सरस पद्य-स्तुतियों द्वारा श्रीविष्णु-चरणाराधन करते हुए अपनी प्रचुर भक्ति प्रदर्शित की-

स्वानुरागमनघः कमलायां सूचयन्नपि हृदि न्यसनेन।

गौरवं व्यधित वागधिदेव्याः श्रीगृहोद्ध्र्वनिजकण्ठनिवेशात् ॥

इत्यवेत्य वसुना बहुनाऽपि प्राप्नुवन्न मुदमर्चनया सः।

सूक्तिमौक्तिकमयैरथ हारैभक्तिमैहत हरेरुपहारैः॥[15]

श्रीहर्ष उपर्युक्त पद्य के माध्यम से संकेत करते है कि लक्ष्मी-सेवकों की अपेक्षा सरस्वती उपासक श्रेष्ठ होते है तथा उनको भगवत्कृपा रूप शरणस्थली अपेक्षाकृत सरलता से प्राप्त हो जाती है।

नैषधकार का कथन है कि ईश्वर का वर्णन सम्भव नही है, वह 'वर्णनातीत' है। जब नारायण सर्वथा अगोचर है, तब उस प्रकाशपुञ्ज, कल्याणकारक, स्वप्रकाशक का स्तवन भी सम्यक् रूप से न होने कारण अनर्गल प्रलाप होगा। अतः क्षमाप्रार्थनपूर्वक- 'तदपि च न जाने स्तुतिमहो' विनयी भक्तों का भगवच्चरणों में भक्ति-निवेदन ही श्रेयस्कर है-

दूरतः स्तुतिरवाग्विषयस्ते रूपमस्मदभिधास्तव निन्दा।

तत् क्षमस्व यदहं प्रलपामीत्युक्तिपूर्वमयमेतदवोचत् ॥[16]

राजा नल ने ऋग्वेदोक्त पुरुषसूक्त के मन्त्रों द्वारा पुरुषोत्तमार्चना करने के पश्चात् वेदोद्धार के निमित्त अविमूर्त श्रीहरि के मीनावतार की स्तुति, कूर्मावतार का स्तवन, वराहावतार का गुणसंकीर्तन, नृसिंहावतार से स्वरक्षा की प्रार्थना, वामनावतार में प्रयुक्त वाक्पटुता के प्रति प्रणति-निवेदन, परशुरामावतार के भुजयुगल की वन्दना, श्रीरामावतार के मर्यादित आचरण की स्तुति, श्रीकृष्णावतार का लीलाकीर्तन; बुद्धावतार में सेवित धैर्यधन व कल्कि अवतार में श्रीहरि के सार्थक शुभ्रतर व सर्वतोव्याप्त यश की अर्चना स्तुति विशेषविध्यनुसार की।

श्रीहरि के प्रसिद्ध अवतारों की विधि विधानानुसार स्तुति के उपरान्त नैषधराज नल के अवतारक्रम में विश्वरूप नारायण के परस्पर विरोधी कृत्यों का संकीर्तन करते है कि रामावतार में श्रीहरि ने सूर्यपुत्र सुग्रीव को कृतार्थ किया तथा इन्द्रपुत्र बालि का वध किया, इसके पश्चात् कृष्णावतार में इन्द्रतनय अर्जुन को कृतार्थ किया और सूर्यपुत्र कर्ण का वध किया-

भानुसूनुमनुगृह्य जय त्वं राममूर्तिहतवृत्रहपुत्र : ।

इन्द्रनन्दनसपक्षमपि त्वां नौमि कृष्ण! निहितार्कतनूजन ॥[17]

परशुरामावतार में आपने अर्धचक्राकार परशु से सहस्त्रार्जुन की भुजाओं को खण्डित किया था, किन्तु कृष्णावतार में सुदर्शन चक्र से बाणासुर का मानमर्दन किया अर्थात् जो अर्थ से श्रेष्ठकार्य कर सकता है, उसने सम्पूर्ण चक्र से पूर्वकृत से न्यून कार्य किया, महत् आश्चर्य है-

अर्द्धचक्रवपुषाऽर्जुनबाहून् योऽलुनात् परशुनाऽथ सहस्त्रम् ।

तेन किं सकलचक्र विलूने बाणबाहुनिचयेऽञ्चति चित्रम् ?॥[18]

निषधाधिपति श्रीनारायण को प्रणति अर्पित करते हुए कहते है कि बुद्धावतार में जो हरि-अहिंसा के व्रती थे, वे कल्किरूप में **'कृतसमस्त'** कैसे हो गये।[19] राजा नल प्रभु के नरहरि हिरण्यकशिपु के वधार्थ नर व हरि का रूप, दशाननवधार्थ नर श्रीराम व हरि सुग्रीवादि तथा पांडव विरोधी दुर्योधनादि के वधार्थ नर (अर्जुन व हरि श्रीकृष्ण व ध्वजवाहक हनुमान् का योग था) इस प्रकार प्रभु को दुर्विज्ञेय परमपुरुष नारायण को नमन करते हुए निषधाधिपति कहते है कि समस्त सांसारिक वस्तुएं घट-पट, वृक्ष-नदी में विचार करने पर कोई सार्थक व वास्तविक भेद सिद्ध नहीं होता है। जो घट-पटादि रूप में आरोपित भिन्नता है, वह नारायण की इच्छा का विलास है। यहाँ नारायण ही सर्वज्ञ है। अन्य कोई नहीं-

वस्तु विश्वमुदरे तव दृष्टवा बाह्यवत् किल मृकण्डतनूजः।[20]

अधोलिखित श्लोक में श्रीहर्ष ने भगवन्नाम-ग्रहण का महत्त्व बताया है-

लीलयाऽपि तव नाम जना ये गृह्णते नरकनाशकरस्य।

तेभ्य एव नरकैरुचिता भीस्ते तु बिभ्यतुकथं नरकेभ्यः॥

मृत्युहेतुषु न वज्रनिपाताद् भीतिमर्हति जनस्त्वयि भक्तः।

यत् तदोच्चरति वैष्णवकष्ठान्निष्प्रयत्नमपि नाम तव द्राक॥[21]

वस्तुतः संकेत, परिहास अथवा लीलया नारायण का स्मरण समस्त पापों का क्षय कर देता है। आशय यह है कि विष्णु-नाम जप सकल-भय का निवारक है। राजा नल श्रीनारायण स्तुति के अन्त में प्रार्थना ज्ञापित करते हुए विनती करते है कि नारायण का ऐश्वर्य, अनुग्रह अनन्त है, उसमे साधारण प्राणिमात्र भगवन्नाम के असीम करुणा को कितना ग्रहण कर सकेगा। अर्थात् दरिद्र व्यक्ति सुवर्णगिरि को प्राप्त कर क्षुद्र वस्त्र में कितना स्वर्ण ले जा सकता है।[22] नल प्रार्थना करते हुये नारायण से कहते है- कि भगवान् कौन-सा भगवन्नाम विशिष्ट है- 'यह हम अज्ञानी जनों का अविषय होने पर भी रामनाम को विशिष्ट गुणो का आगार स्वीकार करते है, अन्यथा अवतारत्रय में आपने उसका अनुबंध क्यों किया?'

'नैषधीयचरितम्' के इक्कीसवें सर्ग में श्लोक संख्या 50-103 पर्यन्त श्रीहर्ष द्वारा नल के माध्यम से 'श्रीहरिसंकीर्तन' विशेष रूप से मुखरित हुआ है, जो श्रीहर्ष की विष्णु-भक्ति की ओर संकेत करता है। परोक्ष रूप से यह भी प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष कहीं न कहीं वैष्णव रहे हों जो भी हो महाकवि श्रीहर्ष की इस अनुपम रचना में विष्णु-भक्ति की चर्चा स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है।

सन्दर्भ सूची

1. नैषधीयचरितम् – 22 कविपशस्ति 4
2. प्राज्ञम्मन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु। दिशि दिशि गिरिग्रावाणः स्वां वमन्तु सरस्वतीम् ।। (नैषध 22/151)
3. नैषधीयचरितम् - 1/145
4. नैषधीयचरितम् - 22/153
5. मार्कण्डेय स्मृति – 32
6. पद्मपुराण 51
7. श्वेताश्वतरोपनिषद् 6-2
8. सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा । ना0 भ0 सू0 - 2
9. अमृतस्वरूपा च - ना0 भ0 सू0 -3

10. शाण्डिल्यभक्तिसूत्र-2
11. भक्तिरसामृतसिन्धु 1-1-11
12. नैषधीयचरितम् - 21/39
13. गीता; अ0 9 श्लोक 26
14. नैषधीयचरितम् - 21/40
15. नैषधीयचरितम् - 21/48-49
16. नैषधीयचरितम् - 21-50
17. नैषधीयचरितम् - 21/08 (इन दस श्लोको पर जीवातु टीका नही है प्रकाश टीका उपलब्ध है।)
18. नैषधीयचरितम् - 21/83
19. नैषधीयचरितम् - 21/09
20. नैषधीयचरितम् - 21/94
21. नैषधीयचरितम् - 21/97

●

शक्तिमज्जीवितायै मे शक्त्यै भूयान्नमस्ततिः

*डॉ. सिद्धिदात्री भारद्वाज**

अनुत्तरमहेश्वरः चिदेकघनः स्वभावभूतशक्तिसमाश्रयणेन संविद्रूपः सततं स्फूर्तिसमूर्जितो वस्तुत एकोऽपि विश्वरूपतया प्रथते। तदेतत् प्रथनं प्रकाश इत्याख्यायते। न चायं प्रकाशो विमर्शेन विना स्वां सत्तां विज्ञप्तिं वाऽनुविन्दति। काश्मीरशैवागमदर्शने भगवतः शिवस्य प्रकाशरूपतया अवधारणं चेद् शक्तेः शिवायाः विमर्शरूपतया अवधारणं विहितमिति जानन्त्येव विदः सुधियः। न हि शिवां शक्तिं विना सर्वेश्वरस्य शिवस्य विश्वरूपतया प्रभवतः स्पन्दनमपि सम्भवति। तामेनां शक्तिसमृद्धिं स्मरन्ति भगवत्पादा आद्यशङ्कराचार्या जगद्गुरवः। तद्यथा—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं

न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि

प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥[1]इति

भगवतः शक्तिरियं स्वातन्त्र्यशक्तिरिति विमर्शशक्तिरिति परामर्श इति आमर्श इति प्रत्यवमर्श इत्येवमादिभिः शब्दैः शास्त्रेषु व्यवह्रियमाणा चकास्ति।

एकैव भगवतः शक्तिरियं यद्यपि वस्तुतः, तथापि नामकार्यविभेदेन त्रिधा, पञ्चधा, पञ्चविंशतिधा षट्त्रिंशद्विधा वा अनन्तस्वरूपा वा प्रोच्यते। निगमागमोद्यानयोः बहुधा शक्तिप्ररूपणं विलसति। क्वचिद् शक्तिरियं चिदानन्दादिप्रभेदैः अन्यत्र खेचरीप्रभृतिप्रभेदैः, इतरत्र पराप्रभृतिप्रभेदैः, अन्यत्र अघोराद्यात्मप्रभेदैः, क्वचित् वामाज्येष्ठादिप्रभेदैः, अन्यत्र ब्राह्मीप्रभृतिप्रभेदैः विभिन्नप्रस्थानेषु शैव-सौर-बौद्ध-वैष्णवादिषु च विभिन्नाभिः संज्ञाभिः एकाऽपि भगवती स्तुत्या चोपगम्या श्रद्धेया निरूप्यते।

सैषा स्वातन्त्र्यशक्तिः विमर्शपदेन समधिकं शास्त्रेषु प्रथमाना चकास्ति। प्रकाशविमर्शयोः यत् सामरस्यं तस्य पराकाष्ठा संविद् इत्युच्यते। सर्वेषु शास्त्रेषु संविद् नमस्या निरूपणीया चास्ते। परं शैवागमदर्शने ग्रन्थेषु संविदः स्वरूपं तदीयमुपादेयत्वं च सम्यक् तथा प्रतिपादितं यथा अन्यदर्शनेषु कृतानां प्रतिपादनानां स्वरसत एवाङ्गत्वं संजातम्। यदुक्तं महामहोपाध्यायेन महामाहेश्वरेण—

''सर्वागमनदीसंघोप्येति यत्प्राप्य पूर्णताम्।इति[2]

स्तोत्रेण रामेश्वरनिर्मितेन

यः स्तौति या वापि शिवं शिवां च।

नाप्नोति दुःखं स वियोगजन्यं

प्राप्नोति तूर्णं शिवसामरस्यम्॥

सर्वमङ्गलागमे शिवशक्तिमतोः स्वभावस्वभाविनोः समुल्लसितं सामरस्यं तयोरैक्यं वा स्फुटमभिधीयते। तद्यथा—

शक्तिश्च शक्तिमांश्चैव पदार्थद्वयमुच्यते।

शक्तयोऽस्य जगत् कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः[4]।इति।

तदेवं शैवागमदर्शने यद्यपि शिव इत्यभिधीयतां शक्तिरिति वा नास्ति तयोर्भेदो मनागपि तथापि शक्तिः शक्तिमानिव स्वातन्त्र्येण परतत्त्वं नाभ्युपगम्यते। क्तिन्-प्रत्ययाभिधेयायाः शक्तेः मतेरिव केनचिदाधारेण शक्तिमता विना अनुपपद्यमानत्वात्। यथोक्तम्—

''न हि स्वतन्त्रं शक्तिस्वरूपं भवितुमर्हति।''इति।[5]

नामकार्यविभेदेन शक्तिरेकापि विभिन्नाभिः संज्ञाभिः अभिधीयते किलागमिकैः। यथोक्तमभिनवगुरुणा—

''पूर्णतैवास्य शक्तिः कुलं सामर्थ्यम् ऊर्मिः हृदयम् सारः स्पन्दः विभूतिः त्रीशिका काली कर्षणी चण्डी वाणी भोगो दृक् नित्या इत्यादिभिरागमभाषाभिस्तत्तदन्वर्थप्रवृत्ताभिरभिधीयते, तेन तेन रूपेण ध्यायिनां हृदि आस्तामिति।[6]

यत् सम्पूर्णमपि विश्वं भाति तद् विद्यते प्रतिबिम्बितं शक्तिमति शिवे ततो नास्य प्रतिबिम्बस्य पृथक्पदार्थता। अथ यया शक्त्या प्रतिबिम्बनं भवति सा करणस्वरूपा यद्यपि तथापि शक्तिमतः स्वभावः सा न स्वस्वभाविनः शक्तिमतो व्यतिरिच्यते। लोके आदर्शभित्तौ भासितं प्रतिबिम्बं यद्यपि ततो विभिन्नं न तिष्ठति तथापि असदेव यतः तत्र आभाति शक्तौ तु आश्रिते तस्मिन् असतो भेदस्य भानमपि न भवति। सोऽयं विशेषः विमर्शिनीकृता निष्कर्षवचनेन प्रकाशितः। यदुक्तम्—

स्तुत्यानया तोषमुपागतौ तौ Øीडापरौ विश्वविलासभाजौ गौरीमहेशौ कुरुतां समन्ताद् दासान् निजोल्लासभरान् विशुद्धान॥ इति च। [3]

* असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृतविभागः कलासंकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसा

व्यतिरिक्ता न चैवैषा कर्तृत्वं शक्तिरुच्यते। इति[7]

स्वातन्त्र्यमात्रसद्भावा या त्विच्छा शक्तिरैश्वरी।

शिवस्य सैव करणं तया वेत्ति करोति च।।इति[8]

प्रतिबिम्बे हि भेदोऽसन्नप्याभाति तावत्, शक्तौ तदपि नेति। इति च''[9]

शिवस्य या उल्लासनकर्तृता सा स्वभावप्रत्यवमर्शरूपा भाति। तत्र द्वौ सूक्ष्मप्रभागौ भासेते—संवेदनं संरम्भश्चेति। प्रकाशमयः संवेदनभागः ज्ञानशक्तिरिति विमर्शनमयः संरम्भभागस्तु क्रियाशक्तिरित्युच्यते। यदुक्तम्—

वस्तुत एकैव ईश्वरस्य स्वभावप्रत्यवमर्शरूपा शक्तिः। सा संवेदनरूपत्वात् ज्ञानशब्देन उच्यते। तावन्मात्रसंरम्भरूपत्वात् क्रियाशब्देन चोद्घोष्यते। इति[10]

वस्तुतः शक्तिरैकैव स्वभावभूता महेश्वरस्य अथापि विश्वोत्तीर्णे महेश्वरे चिच्छक्तिरूपेण आनन्दशक्तिरूपेण च विजृम्भमाणा सती सन्तिष्ठते सा, विश्वमयोल्लासने तु सृष्टिस्थितिसंहारनिग्रहानुग्रहसंज्ञकानां पञ्चानां कृत्यानां सम्पादने इष्यते, वेद्यते अथ च सम्पाद्यते प्रकाशसंलग्नतया यतस्ततः शक्तिस्त्रिरूपा समाभाति—इच्छाशक्तिः, ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिश्चेति। महेश्वरे स्थिता ज्ञानशक्तिः, पशौ सत्त्वगुणतया परिणता भवति, क्रियाशक्तिः रजोगुणतया अथ मायाशक्तिः तमोगुणतया परिणता भवति।

सर्वत्रौन्मुख्ये इच्छाशक्तेः, प्रयोजकता विद्यते। ज्ञानशक्तौ द्रष्टा उपरज्यते क्रियाशक्तौ दृश्यमुपरज्यते, इच्छाशक्तौ न द्रष्टा उपरज्यते न वा दृश्यम्। मायाशक्तौ दृश्यंप्रधानतया उपरज्यते द्रष्टा तु गौणतया इत्येव विशेषः। यदुक्तम्—

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु पत्युर्ज्ञानं क्रिया च या।

मायातृतीये ते एव पशोः सत्त्वं रजस्तमः।।इति[11]

ता एतास्तिस्त्रः शक्तयो भगवति नैसर्गिक्यो दृष्टाः। इति च। [12]

शक्तिरियमेका तत्त्वतया शुद्धाध्वरूपेण परिणता पञ्चभिः संज्ञाभिः प्रथमाना पञ्चधा प्रतिपाद्यते— चिद् आनन्दः इच्छा ज्ञानं क्रिया चेति। महेश्वरस्य प्रकाशरूपता चिच्छक्तिः शिवतत्त्वरूपेण परिणता भाति, स्वातन्त्र्यम् आनन्दशक्तिः शक्तितत्त्वरूपेण परिणता भवति, इच्छाशक्तिः प्रभोः चमत्कारात्मा सदाशिवतत्त्वरूपेण भाति, आमर्शात्मकता ज्ञानशक्तिः ईश्वरतत्त्वरूपेण परिणता भवति, सर्वाकारयोगिता क्रियाशक्तिस्तु शुद्धविद्यातत्त्वरूपेण भाति। यदुक्तम्—

तस्य देवादिदेवस्य परबोधस्वरूपिणः।

विमर्शः परमा शक्तिः सर्वज्ञा ज्ञानशालिनी।।इति[13]

प्रकाशस्य जडवैलक्षण्यं संरम्भः कर्तृतारूपो यः स एवात्म-विश्रान्तिलक्षणो निरपेक्षत्वेन विमर्शोऽहमिति कथ्यते। इति[14]

सा चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियारूपशक्तिपञ्चकसामरस्यस्वभावेत्याख्यायते। इति[15]

विमर्शशक्तिश्च परा परमेश्वरी भैरवभट्टारकस्य निरतिशयस्वातन्त्र्यात्मिका पूर्णकृशतदुभयात्मरहितत्वेनावतिष्ठते। इति च[16]

यतश्च विमर्शशक्तिः महेश्वरस्य नित्या विभूतिः स्वभावभूता शक्तिः विद्यते अतो महेश्वरः विमर्शस्वभाव आम्नायते। प्रभोः विमर्शः दुःसहतया प्रतीयमानमपि सहते यत्र स्वरसतः संघटते— परस्यापि आत्मीकरणम्, आत्मनः परीकरणम्, उभयोरेकीकरणम्, एकीकृतस्य द्वयस्यापि न्यग्भावनम्— इत्येवमादि। यदुक्तम्—

विमर्शो हि सर्वंसहः परमाप्यात्मीकरोति, आत्मानं च परीकरोति, उभयमेकीकरोति, एकीकृतं द्वयमपि न्यग्भावयति– इत्येवं स्वभावः इति।[17]

इयं प्रभोः विमर्शशक्तिः निर्बाधं विश्ववैचित्र्यम् उद्भावयति। इच्छारूपतया ज्ञानक्रियारूपतया बीजयोन्यादिरूपतया वर्गकलाभेदरूपतया च प्रतिभासमाना एषा क्षोभमात्मसात्कृत्वा विश्वमातनुते। यथोक्तम्—

एकैव अभिन्नाप्यसौ तदीया विमर्शशक्तिः इच्छात्वं प्रतिपद्य ज्ञानक्रियारूपतया स्थित्वा शिवशक्तिपरामर्शात्मकबीजयोनिभेदेन द्विधा भूत्वा.....नवधा पञ्चाशद्धा च स्फुरन्ती.....। इति[18]

शुद्धचेतना प्रकाशविमर्शयोः सामरस्यस्वरूपा स्वयं प्रकाशते। स्वयं प्रकाशमानां स्वविमर्शनमपि कुर्वतीमेनां संविदमाहुरागमिकाः। अर्थजातं प्रकाशयन्त्या अस्या भावस्वभावता घटते। अर्थप्रकाशः अन्योन्यं यदि भिद्येत तदा स्मरणं प्रत्यभिज्ञा वा नोपपद्येतेति सर्वस्यापि वेद्यराशेः संविद्गर्भरूपता नूनमङ्गीकरणीया। अन्यथा स्मृत्यादीनामुपपत्तेरभावात् सर्वव्यवहारः उच्छिद्येत।

यतो देशस्य कालस्य चाभासभित्तिभूता इयम्, ततः संविदः कालस्पर्शराहित्यमेव अङ्गीक्रियते, अकालकलितामेनाम् एकाम् अतिरोहितामज्ञेयां मातृमेयादिरूपिणीमामनन्ति रहस्यविदः। यथोक्तम्—

संविद् यदि स्वात्ममात्रविश्रान्ता, अर्थस्य सा कथं प्रकाशः। स हि अर्थधर्म एव तथा स्यात्। ततश्चार्थप्रकाशस्तावत्येव पर्यवसितः, इति गलितो ग्राह्यग्राहकभावः। स चार्थप्रकाशो यदि अन्यश्चान्यश्च तत्र स्मरणमुपपन्नम्। इत्यत एक एवासौ। इति[19]

उच्छलन्त्यपि संवित्तिः कालक्रमविवर्जनात्।

उदितैव सती पूर्णा मातृमेयादिरूपिणी।।इति[20]

ये त्वभ्यासपथेन संविदमिमां संस्कर्तुमभ्युद्यतास्

ते किं कुत्र कुतः कथं विदधतामित्यत्र संदिह्महे।। इति[21]

यदि पुनः सुखादिवेद्यवस्तुसम्बन्धात् सुखादिवत् संविदोऽपि अहम्प्रत्ययरूपाः परमार्थत एव बह्व्यः स्युः, तदा स्मृतिप्रत्यभिज्ञाद्यनुसन्धानं न स्यात्। असति च तस्मिन् सर्वव्यवहारोच्छेदः प्रसक्तः। इति च[22]

यावन्ति प्रमाणानि तैस्तैः तीर्थंकरैः प्रतिपाद्यन्ते तेषां समेषामपि अवभासिका संविदेव भगवती प्रभवतीति केनचित् प्रमाणेन नास्याः सिद्धिरपेक्ष्यते। यथाहुर्महामहोपाध्यायाः परमगुरवः—

प्रमायां न प्रवर्तन्ते मानानि यदुपेक्षया।

किं प्रमाणं भवेत् तत्र मानप्राणान् वितन्वति।।

सर्वावभासकस्यास्य परापेक्षा न विद्यते।

निरपेक्षोऽस्त्यतः पूर्णः स्वतन्त्रः सर्वभासकः।।

न नियताकृतिस्तस्य देशो न नियतः प्रभोः।

यतो हि विश्वरूपत्वे नैयत्यं प्रतिबन्धकम्।।इति[23]

प्रमाणप्रमेयादिरूपतया भासमानाऽपि संविद् अजडा एका प्रस्फुरत्स्वरूपा चित्राऽप्येकरूपा जगदुत्पतिस्थितिलयभूमिराभासते। अहन्तारूपाया अस्या विमर्शांशप्राधान्यं महेशानत्वं विश्वरूपत्वं सर्वकारणत्वं स्वप्रमाणत्वं च विलसति। प्रमातृवह्निस्वरूपाया अस्याः प्राक् प्राणे परिणतिरिष्यते। यथोक्तम्—

संविदाप्यपरामर्शरूपा चेत्तदसावपि।

अभावेन जडेनाथ तुल्यैव प्राग्वदात्मनि।।

सैवंभूतात्मना स्वेनाप्यलब्धपरिनिष्ठितिः।

कथमन्यस्य भावस्य प्रतिष्ठास्पदतामियात्।। इति[24]

सर्वमेतत् संविद्रूपतयैवावभासते न तु बाह्यतया। इति[25]

संविन्महिम्ना कुम्भकृति दण्डचक्रादौ घटेऽवस्थिते तन्महिम्नैवाभिमानो जायते यथा मया इदं कृतम्, अनेनेदं कृतम्, मम हृदये स्फुरितम्, अस्य हृदये स्फुरितमिति।......इति संवित्स्वभावे कर्तृत्वं व्यवस्थाप्यते। इति[26]

सा चान्तःस्थितमन्त्रात्मशब्दनामर्शसुन्दरा।

अनपेक्षान्यविरहात् प्रमाणं स्वत एव हि।।इति[27]

यथाग्निना समाविष्टं सर्वं तद्रूपमीक्ष्यते।

तथा ज्ञानसमाविष्टं सर्वं तद्रूपमीक्ष्यताम्।।इति।।[28]

संविदः नैजो धर्म एष यदसौ विश्वाकारतया भासमानोऽपि स्वस्वरूपान्न प्रच्यवते। सृष्टिधर्मिता नाम तेन तेन रूपेण स्फुरत्ता सैव महेश्वरत्वं संविदः स्थापयति अन्यथा घटादिवज्जडता तत्रापि आपादिता भवेत्। यदुक्तम्—

अस्थास्यदेकरूपेण वपुषा चेन्महेश्वरः।

महेश्वरत्वं संवित्त्वं तदत्यक्ष्यद् घटादिवत्।।इति[29]

शक्तिमज्जीवितामेनां शक्तिं शिवां शिवं च भूयो भूयः प्रणम्य कृतार्थतामनुविन्दामि—

समुच्छलन्त्यै जगदात्मिकायै शान्तस्वरूपाय सदाशिवाय।

सते भवन्त्यै भवते च सत्यै नमः शिवायै च नमः शिवाय।।

पादटिप्पणी–

1. सौन्दर्यलहरी - श्लोक संख्या 1
2. श्रीपूर्णताप्रत्यभिज्ञावचनम्।
3. शिवशिवास्तोत्रवचनम्
4. उद्धृतम् - प0सा0वि0, पृ0-10
5. ई.प्र. विमर्शिनी, खण्ड-1, पृ0-275
6. तन्त्रसारः, पृ027
7. नेत्रतन्त्रम् 21/40
8. श्रीतन्त्रालोकः 10/17
9. ई0प्र0वि0वि0, खण्ड-3, पृ0 270
10. स्पन्दविवृतिः, पृ0-42
11. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, 4/1/14
12. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविर्शिनी, खं0-2, पृ0 254
13. नेत्रतन्त्रोद्योते उद्धृतम्, श्रीकालीकुलवचनम्, खं.1, पृ0-21
14. ई0प्र0वि0वि0, खण्ड-2, पृ0 182
15. महार्थमञ्जरीपरिमलः, पृ0-182
16. परात्रीशिका वि0 पृ0-165
17. ई0प्र0वि0वि0खं0-1, पृ0 205
18. स्पन्दनिर्णयः, पृ0-66
19. ई0प्र0वि0,खं0-1, पृ0-107
20. श्री0त0आ-3-128
21. मा0वि0 वा0 2/4
22. स्प0वि0, पृ0-27
23. श्री पू0प्र0 का0-1/38-40
24. अ0प्र0सि0 9/10
25. श्री0त0आ0वि0, खं0-7/2, पृ0 77
26. ई0प्र0वि0,खं0 2, पृ0 140
27. मा0वि0वा0 1/434
28. स्प0 प्र0, पृ0 36
29. श्रीत0 आ03/100

●

वेदमार्त्तण्डः श्री करपात्रस्वामि मतानुसारेण आधुनिक काले वेदानां स्वरूपम्

डॉ. प्रियङ्कर अग्रवाल[*]

अथेदानीं वेदस्वरूपविमर्शाभिधो विषयाः अनन्तश्रीकरणापात्रिस्वामिभिस्तपोमूर्तिभि प्रकाशितः बौद्धमतावलम्बिनां वैज्ञानिकदृष्टिमावहतामाधुनिकानाम् आर्यसमाजान्तर्गतानां विवेचकानाञ्च या विचारधारा वेदस्वरूपविषये, साऽत्र स्वामिचरणैः परिशीलिता वर्तते।

आस्तिकनास्तिकभेदेन विभक्तेषु दर्शनप्रस्थानेषु आस्तिकदर्शन प्रस्थानानि वेदस्वरूपविषये मतभेदमावहन्त्यपि तत्प्रामाण्यविषये न तेषां काचन विप्रतिपत्तिः। शब्दस्य पृथक्प्रामाणत्वमनङ्गीकुर्वन्तो वैशेषिका अपि वेदप्रामाण्यं निर्विचिकित्समभ्युपयन्ति। आस्तिकदर्शनेष्वेकैकस्य तत्तत्सूत्रकारनुमता स्वस्वदर्शनानुकूला पद्धतिः मर्यादा च काचन नियता। नियताया अस्याः पद्धतेः मर्यादायाश्च निर्वाहाय तत्तत्सूत्रकारान्तरकालीनाः सर्वेऽपि दार्शनिकास्सम्प्रवृत्ताः। अमीषां पदार्थेषु तदुपपादकप्रकारेषु तत्प्रामाण्याधायकेषु च प्रमाणेषु सत्यमपि मतभेदे, वेदप्रामाण्यप्रतिक्षेपाय प्रवृत्तानां वेदबाह्यानां मतनिरासाय 'अन्यैस्सह विरोधे तु वयं पञ्चोत्तरं शतम्' इति न्यायमवलम्बमाना दार्शनिका एकीभवन्ति।

यदपि- ''भरद्वाजो ह त्रिभिरायुर्भिर्ब्रह्मचर्यमुवास। तं ह जीर्ण स्थविरं शयानमिन्द्र उपव्रज्योवाच-भरद्वाज यत्ते चतुर्थमायुर्दद्यां किमेतेन कुर्या इति। ब्रह्मचर्यमेवैतेन चरेयमिति होवाच। तं ह त्रीन् गिरिरूपान विज्ञातानिव दर्शयाञ्चकार। तेषां हैकैकस्मान्मुष्टिमाददे। सहोवाच भरद्वाजेत्यागमन्त्य-वेदा वा एते। अनन्ता वै वेदाः। एतद्वा एतैस्त्रिभिरायुर्भिरल्ववोचथाः' इति।[1]

नहि इदानीमुपलभ्यमाना वेदा अनन्ताः सन्ति। तस्माद्विज्ञायते ''यत्किमपि तत्त्वान्तरमेव वेदपदव्यपदेश्यं यदनन्तं भवतीति'' उच्यते।

तन्न; 'भरद्वाजो ह' इत्यादिसमुद्घृतवचनविरोधात्, शब्दराश्यात्मकवेदाध्ययनार्थमेव ब्रह्मचर्यग्रहणविधिप्रसिद्धिभ्याम् । किञ्च 'अन्ववोचथा' इत्यनुवचनस्य शब्दराशिग्रहण एवाञ्जस्यम् । नहि तत्त्वान्तरस्य तत् सम्भवति। न चोपलभ्यमानस्य वेदस्यानन्त्यं नास्तीति वाच्यम्; देवर्ष्यादिग्राह्यस्य वेदस्यानन्त्ये बाधाभावात् । अद्यत्वे तु मानवबुद्धिग्राह्याणामपि सहस्राधिकशाखानां विपरिलोपो दृश्यते, महाभाष्यकारादिभिर्वेदस्य एकत्रिंशदुत्तरैकादृशशतशाखानां चर्चितत्वात् । देवादिबुद्धिग्राह्यास्तु वेदा अनन्ता एव। अत एव—

'इन्द्रादयोऽपि यस्यान्तं न ययुः शब्दवारिधेः।'

इति वचनं श्रूयते।

अपि च- अनन्तप्रपञ्चसृष्टेः ईश्वरज्ञानपूर्वकत्वेन तदनन्तरज्ञानेष्वनुविद्धानां शब्दानामप्यानन्त्यम् -

'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगममाहते।'

इति अभियुक्तोक्तेः। अत एव ईश्वरीयनित्यानन्तज्ञानेषु अनुविद्धाः शब्दरूपा वेदा अपि नित्या अनन्ताश्चेति सर्वमनवद्यम् । अत एव च 'वेदैरेव ब्रह्मा सृष्टिं करोति।' इति श्रुतिस्मृतिषु, पुराणेषु, च प्रसिद्धिराजञ्जस्येनोपपद्यते। नात्र वेदशब्दव्यपदेश्यं किमपि तत्त्वान्तरं निर्दिष्टम्, 'वेदशब्देभ्यं एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे', 'शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' इति 'शब्द' पदनिर्देशात् । अत एव 'भूरिति व्याहरत्, तस्माद्भुवमसृजत्' इत्यादिभिः शब्दव्याहरणपूर्विका सृष्टिः श्रूयते। यथा लोके कुलालो घटशब्देन घटं स्मृत्वा दण्डचक्रादि व्यापारेण तं सृजति तथैव परमेश्वरोऽपि तैस्तैः शब्दैस्तांस्तानर्थान् स्मृत्वा सृजति।

<u>वेदेषु वैज्ञानिकार्थ-परीक्षणम्</u> —

वेदानां स्वरूपं कीदृशम्? कश्च तदपरोक्षज्ञानोपायः? किं वा तत्फलमिति जिज्ञासायाम् अपौरुषेयो मन्त्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिरेव यद्यपि तत्स्वरूपम्, अविच्छिन्नपारम्पर्येण तदाभ्यासजन्यसंस्कारसमीचीनमनःसहकृतश्रोत्रेन्द्रियमेव तदापरोक्ष्यो-पायः, तदर्थज्ञानानुष्ठानसापेक्षस्य तदपरोक्षज्ञानस्य चतुर्वर्गफलप्राप्तिः फलञ्चेति प्रसिद्धमेव; तथापि नवीनाविष्कारप्रधानेऽस्मिन् युगे प्रसिद्धमपरोक्षमपि परित्यज्य किञ्चित् नवीनं वस्तु आविष्कृत्य प्रसिद्धा दृष्टिरपसारणीयेति कुतूहलवशादेव एतत्प्रश्नत्रयं समुदेति।

अत्र केचित् सङ्गिरन्ते-''प्रयत्नतत्त्वकोविदा विपश्चितः इतिहासदृष्ट्या प्राच्यसंस्कृतेर्गवेषणाया धीमन्तः तत्तत्सम्प्रदायशास्त्रादिभेदभिन्नाः सनातनधर्मानुसारिणः सर्वेऽपि महानुभावाः तदितरेऽपि विद्वांसो वेदानां महत्त्वं निखिलशास्त्राणामपेक्षया प्राचीनतमत्वञ्च मन्यमानास्तद्विषयकं विविधं समालोचनादिकं विदवति। अस्माकं यावन्तो धर्ममार्गाः यावञ्च वाङ्मयम्, सर्वमेव वेदानुप्राणितम् । यत्र स्थूलदृष्टिभिः साक्षाद् वेदाश्रितत्वं न संलक्ष्यते, तत्रापि परम्पराया द्वारद्वारिभावेन च वेदानां प्रभावः स्फुटमेव उन्नेतुं शक्यते इति विदुषां तत्तदर्थविवेकानां मभिमतम् । स्मृतिषु दर्शनेषु इतिहासपुराणेषु तन्त्रेषु तथा न्यत्रापि

---

* अतिथि प्राध्यापक, धर्मशास्त्र-मीमांसा विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञानसंकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शास्त्रेषु सर्वत्रैव वेदानुमतत्वेनैव सिद्धान्तविशेषस्य शिष्टेषु परिग्रहः समादरश्च भवतीति दृश्यते।'' तत्सत्यम्; सर्वमेतत्प्रसिद्धमेव वेदमाश्रित्य सङ्गच्छते।

यदपि तैः- ''वस्तुतस्तु लौकिकदृष्ट्या समुच्छिन्नप्रायोऽप्ययं नैकान्ततो बहुश्रुतानां पण्डितानामगोचरः। कियन्तो वेदाः कियत्यस्तेषां शाखाः कानि वा तेषामङ्गानि, उपाङ्गानि च। तत्रापि के तावद् ग्रन्था मुद्रिता अमुद्रिता वा समुलभ्यन्ते। के पुनर्लुप्ताः सर्वमेतत् न्यूनाधिकतया विदुषां सुविदितमेव। वेदानुशीलनकर्शितमतयः पाश्चात्त्यपण्डिताः स्वदेशेष्वपि केचन तादृशमेवासामर्थ्यं कृतविद्या भृशमन्वेषणतत्परा वेदेभ्यो भाषावत्त्वं शब्दतत्त्वमाख्यानादिकम् सामाजिकं दार्शनिकम् ऐतिहासिकं भौगोलिकश्च तथ्यं जलधिभ्यो मथ्यमानेभ्यो रत्नखण्डानीव आविष्कुर्वन्तः स्वस्वप्रतिभामनतिक्रम्य, वेदज्ञानय समृद्धिं सम्पादयन्तीत्यतिरोहितं विशेषज्ञानाम् । वेदानां नित्यत्वमनित्यत्वं वा, पौरुषेयत्वमपौरुषेयत्वं वा, इत्यपि दार्शनिकैः स्वस्वसिद्धान्तानुगुणाभिर्युक्तिभिस्तत्र तत्र विवेचितम्। वेदप्रामाण्ये विप्रतिपिन्नानां सौगतानामार्हतानाञ्च युक्तीरपाकुर्वद्‌भिराचार्यैस्त-त्प्रामाण्यस्थापने प्रयत्नः कृत एव'' इत्यभाणि। तदपि सत्यम्; एतदपि प्रसिद्धमेव वेदं गमयति, अप्रसिद्धे विप्रतिपत्त्याद्यसम्भवात् सर्व ज्ञानं धर्मिण्यभ्रान्तम्, प्रकारे तु विपर्यय इति न्यायात्।

यदपि तैः प्रतिपादितम् - ''निरुक्तकृतां कालेऽपि वेदार्थनिर्णये पण्डितानां भूयान् मतभेद आसीत् । तदुत्तरकालिकेषु वेदार्थनिर्वचनपरेषु रावण-हरिस्वामि-स्कन्दस्वामि-सायणोव्वट-महीधराद्याचार्येष्वपि तद्रूपमेव मतवैषम्यं लक्ष्यते'' इति। तदपि अकिञ्चित्करम्; वेदार्थविषयकमतभेदस्य वेदस्वरूप-भेद-तदज्ञानाप्रयोजकत्वात्।

यद्यपि प्रसिद्धेभ्यो वेदेभ्य वास्तविकवेदबुद्धिनिरासायोक्तम्— ''निखिलमिदं वाङ्मयं कण्ठे धारयतोऽपि वेदार्थमर्यग्रहणे यादृशं छायासु वस्तुत्वमारोपसतां छायाभ्यो वस्तुतत्त्वनिरूपणपराणां वस्तुस्वरूपविषये परिदृश्यते। प्रतिबिम्बतफलेभ्यो यथा वास्तविक-फलाम्वादनजातृप्तिः क्षुन्निवृत्तिश्च न संभवति, तथा वैखरीवागात्मकेभ्य ऋगादिमन्त्रेभ्यो वेदत्वेन लोके प्रसिद्धेभ्योऽपि साक्षादेव दैवीवाक्संराधनजममृतत्वं सर्वज्ञत्वादिकञ्च नोपज्ञभ्यते'' इति। तदपि नाकिञ्चित्; अनुक्तोपालम्भात् । अनुक्तोपालम्भनमेतत् - नहि कण्ठे धारणमात्रादमृतत्वं सर्वज्ञत्वादिकञ्च वेदे कुत्रचिदुक्तम्। किन्तु वेदार्थग्रहणानुष्ठानसापेक्षस्यैव कण्ठे धृतस्य वेदस्य तत्तत्पुरुषार्थसाधकस्यं श्रूतम्।

यत्तु-''तत्राध्ययनमात्रेण घृतकुल्या-पयःकुल्यादि-फलश्रवणम्, अश्वमेधाध्ययन-मात्रेण अश्वमेधफलप्राप्तिश्रवणात्' इति। तदपि धर्मज्ञानानुष्ठानाश्वमेधोपासनफलपरमिति सायणीये ऋग्वेदीयभाष्योपोद्धाते स्पष्टमेव। तथा हि, सायणाचार्येण प्रकृतप्रसङ्गे मीमांसोपन्यस्ता-'दर्शपूर्णामासयोर्वेदविमर्शनं प्रकृत्य श्रूयते- 'आस्य प्रजायां वाजी जायते य एवं वेद।' 'पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति' 'पशवधयाजी सर्वान लोकान् जयति' तरति मृत्यम्, तरति पाप्मानम्, तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते य उ चैनं वेद।' अग्न्याधेयपूर्णाहुत्या सर्वकामप्राप्तेरग्निहोत्रादीन्युत्तरकालीनान्यनर्थकान्येव स्युः। तथा निरूढपशुबन्धानुष्ठानेन सर्वलोकाभिजयात् ज्योतिष्टोमादीनामानर्थक्यमेव स्यात् । एवमेव अध्ययनकालीनेनैव अश्वमेधवेदनेन ब्रह्महत्यादितरणात् तदनुष्ठानं व्यर्थमेव स्यात् ? एवं पूर्वपक्षस्य समाहितम् - पूर्णाहुतिं जुहुयादि'त्यस्य विधेः शेषोऽयमर्थवादः। सर्वकामावाप्तिहेतुत्वात् प्रशस्तेयमाहुतिः। यथा सर्वे ब्राह्मणा भोजयितव्य इत्यत्र सर्वत्वं स्वगृहागतब्राह्मणविषयम् एवं पूर्णाहत्या कर्मसाङ्गत्वम् । यत्फलं तस्मिन्नधिकारे प्रस्तावे सम्भावितं तद्विषयकमेव सर्वत्वं द्रष्टव्यम् । पूर्णाहुतेरभावे सत्याधानरूपं कर्माङ्गं विफलं भवति। तच्च वैकल्पं पूर्णाहुत्या समाधीयते- इत्येकः कामः, तस्मिन् समाहिते सति आहवनीयाद्यग्नयो अग्निहोत्रादिकर्मसु योग्या भवन्ति इत्यन्यः कामः। तैश्च कर्मभिस्तत्तत्फलं भवतीति कामान्तरम्।

नन्वीदृशी सर्वकामावाप्तिराहुत्यन्तरेष्वपि विद्यत इति चेत् ? भवतु, तथापि पूर्णाहुतिस्तुर्तेर्न काचिद्धानिः।

पृथिव्यादीनां फलानां कर्मान्तरेण परिणामाधिक्यं सारत्वं वा सम्पाद्यते, ततः फलविशेषः स्यात् । यथा निष्क्रेण वस्त्रमात्रमुपलभ्यते, निष्कद्वयेन तु सारभूतं दुकूलम्, तथैव ब्रह्महत्याया अपि मानस्या मनःकृतायाः स्वल्पाया वेदनमात्रेण तरणम्, कायिक्यास्तु महत्या अश्वमेधेनेति नानुष्ठानानर्थक्यम् ।

<u>वेदे ऐतिहासिकघटनादि विचारः</u> —

यदुक्तम् - ''पौराणिकभुवनकोशवर्णनप्रसङ्गे इतिहासादिप्रसङ्गे च पुराणटीकाकारैः औदासीन्यं प्रदर्शितम् एवं विकाशवादादीनि विज्ञानानि भूस्तरविद्यादयश्च तैरुपेक्षिता'' इति। तदपिन न; श्रीधर-नील-कण्ठादिभिः यथाप्रमाणं भुवनकोशाद्यु पवर्णनात् । सर्वथा आधुनिक विज्ञानानुसारेण पुराणादिव्याख्यानस्न्तु उपहासास्पदमेव-केनचिद् व्याख्यात्रा तरुतारमिति वाक्येन यथा तन्त्रीविज्ञानं साधितं तद्वत् । निरुक्तकृतो विज्ञानानुसारि-वेदार्थाख्यानन्तु दुर्गाचार्यादिभिः स्पष्टीकृतमेव।

यदप्युक्तम् - ''इतिहाससम्बन्धे ततोऽप्यधिको विप्लवः, वेदाना मपौरुषेयत्वं समर्थयमानेन भगवता जैमिनिना 'अनित्यदर्शनाच्च' इति पौरुषेयता-पूर्वपक्षमुद्भाव्य 'परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्' इति समाहितम् । जैमिनेर्भगवतः क आशय इति तु वेत्ति सर्वान्तर्यामी। अनेकाधा स विवरीतुं शक्यते, च बहुभिः। पर श्रीशबरस्वामिप्रभृतयो मीमांसाका इत्थं वर्णयन्ति यन्मनुष्या यदि वेदेषु वर्ण्यन्ते तर्हि वेदास्तन्मनुष्यादुत्तरं प्रादुर्भूता इत्यनादित्वमपौरुषेयत्वञ्च वेदानां भज्येतेति शङ्का।

न सन्त्येव मानुषाणि चरितानि। नामसादृश्यमूलयातु भ्रान्त्या नित्यपदार्थसम्बन्धिवर्णनं मानुषमित्यभिमन्यते कैश्चित् यथा 'बबरः

प्रावाहणिरकामत' इत्यादिषु 'बब' इति शब्दानुकृत्या वायुरभिधीयते, स च प्रवहणीशल इति प्रावाहणिरुक्तः। अत्र प्रवहणपुत्रो बबरनामा कश्चिन्मनुष्यो भवत्, तद्वितिहासभ्रान्तिः लोकानां जायते। वस्तुतस्तु वाय्वादेर्नित्यस्यैवेदं वर्णनमिति तस्मानधानश्चेति।

एतेन ''मनुष्येतिहासो वेदेषु नास्त्येवेति मतं बहुभिरेवेदानी मादृतम्, अनूदितञ्च'' इति। तदपि न किञ्चित; यतो जैमिनिना नान्तर्याम्यर्थ सूत्रं रचितम्, किन्तु वाक्यशास्त्राधिकारिणां कृते। अतः शबरस्वाम्यादिभिरेव तद्भूतयं निवेदितम् । श्रीशङ्करभगवत्पादाः 'शास्त्रतात्पर्यविदः' इति सबहुमानं श्रीशबरस्वामिनः स्मरन्ति। तद्विपरीतविवरणन्तु सूत्राननुसार्येव। सूत्राक्षराणि च स्वारस्येन अस्मिन्नेवार्थे सङ्गतानि। अवश्यं वेदशब्दानामितिहासानुसारित्वे पौरुषेयत्व-सादित्वदिना अपौरुषेयत्वहान्या प्रामाण्यस्वतस्त्वं वेदानां भज्यते। उत्तरमीमांसकाश्चाप्यत्र संवदन्ते। 'अत एव च नित्यत्वम्, शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' इत्यादिभिस्तदुक्तमेव।

घटनाऽननुसारित्वमेव वैदिकशब्दानां वैशेष्यम्। शब्दानुसारिण्यस्तु घटना भवन्त्यो न वार्यन्ते, सृष्टेः शब्दपूर्वकत्वनिर्णयात् । अत एव प्रमाणान्तराविरुद्धा अनादित्वाऽपौरुषेयत्वाप्रतिरोधिकाश्च घटनाबोधिका आख्यायिका भूतार्थवादिन्य सत्यो भवन्त्वितिहासरूपाः, परन्तु प्रमाणान्तरविरुद्धा अनादित्वविरोधिन्यस्तु ता गुणवादिन्य एव। गुणवादिन्योऽपि इतिहासवदेव व्याख्यायन्ते। न च तावता पूर्वोक्त-मीमांसा-सिद्धान्तविरोधः।

अत एव ''इमां पद्धतिमवलम्ब्य मीमांसकाभिमतस्य मन्त्र-ब्राह्मणात्मकस्य कृत्स्नस्य वेदस्य प्रामाणिकी व्याख्या न केनाप्यद्यावधि कृता'' इत्यपि निर्मूलम्। उक्तीत्यैव सायणादिभिर्व्याख्यातमित्युक्तवात्। नहि बबर-शब्दव्याख्यानवदेव तदनुसारिव्याख्यानम्, मानुषादि चरिताननुसरिणो वैदिकाः शब्दा इत्येव मीमांसकमतम्। तदनुसार्येण सर्वमपि आस्तिककृत-वेदव्याख्यानम्।

यदुक्तम् - ''सायण-माधवाचार्यौ सादरमुपोद्घाते मीमांसकमतमिदमन्व वदताम्, परं व्याख्यानकाले त्विदं सर्वं व्यस्मरतामिव, यतो बहवो मन्त्रा बहूनि च ब्राह्मणानि मानुषेतिहासावलबनेनैव तत्र भवद्भ्यां व्याख्यातानि। यथा- 'आभोगयं प्रयाहि गच्छन्त्र ऐतना...... इति मन्त्रं व्याचक्षाणो माधवाचार्य आह-ऋभवो हि सुधन्वनः अङ्गिरसस्य पुत्राः, कुत्सोऽप्याङ्गिरसः, अतस्तेन मदीया ज्ञातयः इत्युक्तम् । हे सौधन्वनासः सुधन्वनः पुत्राः। एवेव 'भ्रातारत्रं प्र तरित्वा दधाति' इत्यत्रापि माधवाचार्यः दीर्घतमः कक्षीवतोः सर्वमितिहासं भावव्यपुत्रेण स्वनयेन यद्यद्दत्तं तस्य विवरणञ्च सर्वमुपबध्नाति। तदेव तत्र वृत्तमलम्ब्य सूत्रमिदं व्याचष्टे'' इत्यादि।

तदपि न पूर्वोक्तसिद्धान्तप्रतिकूलात्; ताच्चरितानुसारिमन्त्रनिर्माण मित्यस्यार्थस्य तद् व्याख्यानेन सिद्धेः। भवन्मतरीत्याऽपि मन्त्रार्थ-तज्ज्ञानयोः ईश्वरप्रसादलभ्यत्वम्। मानुषादिचरितानाम अनित्यत्वे कथं तत्र मन्त्रार्थता घटते? कुतो वा वृत्ततज्ज्ञानयोरीश्वरप्रसादलभ्यत्वम्? यथाकथञ्चित्तु सर्वस्यैव वृत्त-ज्ञानादेरीश्वरप्रसादजत्वमेवेति मन्त्रार्थज्ञानयोः किं वैलक्षण्यम्? एवमेव हरिश्चन्द्रोर्वशीपुरूरवादि-कथावर्णनमपि नाऽनादित्वाऽपौरुषेयत्वादिविरोधि तद्बोधक-मन्त्रब्राह्मणादीनां ततद्घटनाननुसारित्वादेव। मन्त्रादिशब्दानुसारिण्यो भवन्त्यस्तु घटना न वार्यन्ते, वेदापौरुषेयत्वाविरुद्धत्वादेव इत्युक्तमेव।

यदुक्तम्- ''उपनिषत्सु उपलभ्यमाना आख्यायिका मनुष्यपरतयैव श्रीशङ्कराचार्यप्रभृतिभिः सर्वैः भाष्यकृद्भिः व्याख्याता, 'शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रववणात् सूच्यते हि, क्षत्रियत्वावगतेश्चोत्तररत्र चैत्ररथेन लिङ्गात्'[2] इत्यपशूद्राधिकरणे। भगवता व्यासेनैव मनुष्यख्यानमभिमतमि''ति। तदपि न किञ्चित; श्रीशङ्कराचार्यैः तादृगाख्यानानां सुखावबोधार्थमाख्यानमात्रपरत्व अनेकत्र उक्तात्वात् । तत्रैव प्रमाणान्तराविरोधे भूतार्थवादरूपत्वेन इतिहासत्वमपि सङ्गच्छते। अत एव बृहदारण्यकोपिनषदि इतिहास-पुराणमित्यत्र उर्वशी-पुरुरवसोः संवादादि 'उर्वशी ह्यप्सरा' इत्यादि ब्रह्माणमेवेत्युक्तम् । तदभिप्रायेणैव वैयासिकमपशूद्राधिकरणसूत्रमपि सङ्गच्छते। न च तावताऽपि लौकिकेतिहासवद् घटनानुसारित्वं संभवति। 'अत एव च नित्यत्वमि'ति विरोधाद् अन्यथोपपत्तेश्च । एवम् -

'भूतं भवद्भविष्यच्च सर्व वेदात् प्रसिद्ध्यति।'

इति मनुवचनमपि उक्तसिद्धान्तानुसारेणैव उपपद्यते। न च घटनानुसारीतिहासवर्णने तत् सङ्गच्छेत; अन्यथा अपौरुषेयत्वाद्यनुपपत्तेः।

यदप्युक्तम्- ''न कदाचिदनीदृशं जगत् इत्यभिमन्यमानां मीमांसकानामनया युक्त्या अपौरुषेयत्वरक्षणं स्यादपि। अन्येषां तु सर्गप्रलयप्रवाहमुररीकुर्वतां दार्शनिकानां पौराणिकानाञ्चैते वर्तमानकल्पसम्बन्धिनः पृथिव्यादिपदाथर्ज्ञ अप्यादिमन्तः इति वर्णनेऽपि वेदानामनादित्वभङ्गशङ्कातङ्को दुस्तर एव। प्रवाहरूपेण नित्यता तु पृथिव्यादीनामिव देवर्षि-पितृ-राजर्षिप्रभृतीनामपि पौराणिका अभ्युपगच्छन्त्येवेति पक्षद्वयेऽपि साम्येन इतिहासविलोपपक्षस्य प्रयोजनं न पश्याम'' इति। तन्न; सृष्टिप्रलयाङ्गीकर्तॄणां वेदान्तिमीमांसकानामपि प्रमाणान्तरेणार्थमुपलभ्य विरचितत्व-प्रथमोच्चरितत्व-पूर्वानुपूर्वीनिरपेक्षोच्चारणविषयत्वादिरूप-पौरूषेययत्वाभावेन तदपौरुषेययत्वसिद्धेः। नियतानुपूर्वीतत्तत्संस्कारवन्मायावदीश्वरे नियतानुपूर्वीविशिष्टानां वेदानां सम्प्रदायाविच्छेदस्य अभ्युपगम्यत् पौरुषयेणां पुराणादीनामपि यद्यपि पृथिव्यादीनामिव प्रवाहरूपेण नित्यत्वम् ; तथापि तत्र अर्थनित्यत्वेऽपि आनुपूर्वीनैयत्याभावात् पौरुषेयत्वम्। वेदे तु प्रतिकल्पम् अश्वमेधब्रह्मवधादीनाम्

इष्टानिष्टजनकत्वनैयत्वयद् आनुपूर्वीनैयत्वस्यापि सत्त्वेनापौरुषेयत्वम तदुक्तं भामतीकृता—

'अनाद्यविद्योपधानलब्धसर्वशक्तिज्ञानस्यापि परमात्मनो नित्यस्य वेदानां योनेरपि न तेषु स्वातन्त्र्यम्, पूर्वपूर्वसर्गानुसारेण तादृशतादृशानुपूर्वीविरचनात् । यथा यागादिब्रह्महत्यादयोऽर्थानर्थहेतवो ब्रह्मविवर्ता अपि न सर्गान्तरे विपरीयन्ते। नहि जातु क्वचित् सर्गे ब्रह्महत्याऽर्थहेतुरनर्थहेतुश्च अश्वमेधो भवति, अग्निर्वा क्लेदयति आपो वा दहन्ति तद्वत् । यथाऽत्र सर्गे नियतानुपूर्वव्यं वेदाध्ययनमभ्युदयनिःश्रेयसहेतुः, अन्यथा तदेव वाग्यज्ञतयाऽनर्थहेतुः, एवं सर्गान्तरेऽपि तदनुरोधात् सर्वज्ञोऽपि सर्वशक्तिरपि पूर्वपूर्वसर्गानुसारेण वेदान् विरच यन्न स्वतन्त्रः। पुरुषास्वातन्त्र्यमात्रं चापौरुषेयत्वं रोचयन्ते जैमिनीया अपि। तच्च अस्माकमपि समानम्, अन्यत्राभिनिवेशात्' इति।[3]

एतेन मन्त्रेषु ब्राह्मणेषु च तास्ता आख्यायिका इतिहासाश्च वेदापौरुषयेयत्वाविरोधिनो ग्राह्या एव। तदभिप्रायेणैव सायणादीनां यथाश्रुतार्थव्याख्यानम्, एकत्र निर्दिष्टस्य सिद्धान्तस्य सर्वत्र योजयितुं शक्यत्वात्। एतेन निरुक्ते (अ0-2)- 'अष्टोगो होत्रमृषिर्निषीदन् देवापि देवसुमति चिकित्वात्' इत्यादिषु देवापि-शन्तनु-प्रभृतीनां चरितं तत्तन्मन्त्रनिदानत्वेन प्रस्तौति वृहद्देवताकृत् शौनकोऽपि बहूनामृषीणां चरितानि मन्त्रनिदानत्वेन बृहद्देवतायां स्पष्टमाचष्टे इत्यादिकमपि समाहितमेव।

यत्तु- ''वेदेषु सर्वयेतिहासानभ्युपगमे महान् विप्लवः स्यात्, वेदेषु ऊर्वशी-पुरूरवो-हरिश्चन्द्रप्रभृतीनां बहव इतिहासाः। ते च पुराणेष्वपि उपबृंहिताः। ततश्च वेदेषु ते यथाऽन्यपराः पुराणेष्वपि ते तथैव व सम्भाव्यन्ते। तथा च तद्धटितपौराणिकराजवंशस्य ऐतिहासिकं तथ्यं दूरोत्सारितं स्यात् । ततश्च 'नास्त्येव भारतीयानां कोऽपि इतिहासः। कल्पनामात्रसाराः पौराणिका इतिहासाः। नासीत् कोऽपि रामो युधिष्ठिरो वा' इत्यादिपाश्चात्यानाममनर्गला कल्पना एव विजयन्ते। तथा गुहायां दृढदत्तार्गलञ्च भारतीयसभ्यतायास्तत्त्वं स्यात् । कुतश्च श्रीशबरस्वामि उपबृंहितं मतमेव प्रमाणीकुर्वीमहि? न तु शौनक-यास्क-शङ्कर-माधवादिभिः स्वीकृतवेदेषु स्फुटं भासानं स्वारसिकसिद्धान्तम्'' इति।

तदपि निस्सारमेव; मामतीप्रदर्शितरीत्या पूर्वोत्तरमीमांसाकाना मुक्तार्थे विरोधाभावस्य उक्तत्वात्। शौनक-यास्कादीनामपि मतं तदनुगुणमेव, दुर्गाचार्यैस्तत्र तत्र तथैव व्याख्यातत्वात्। 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः, इति न केवलं पूर्वमीमांसाकमतम्, उत्तरमीमांसकैरपि तथैवाभ्युपगमात्। वेदार्थविचारे वाक्य-शास्त्ररूपयोः पूर्वोत्तरमीमांसयोरेव परमादर आवश्यकः। मीमांसानिर्णीतार्थस्यैव पुराणेतिहासादिषु प्रतिपादितत्वात्।

सन्दर्भ सूची

1. तैत्तिरीय ब्राह्मणम्— 3/10/11/3-4.
2. ब्रह्मसूत्रे 1।3।34,35
3. भामतीकारः।

न्यायवैशेषिकदर्शनसम्मतं शब्दस्य प्रत्यग्राह्यत्वस्वरूपम्

शारदा मुखर्जी एवं सरोज कुमार पाढ़ी* **

अस्माकं दैनन्दिनजीवने शब्दस्य बह्वः उयोगिताः वर्तन्ते। यतोहि शब्दमाध्यमेनैव अस्माभिः मनसि निहितः भावः प्रकाश्यते। शब्द अयं बह्वर्थवाची भवति। न्यायदर्शने शब्दः किमर्थम् अवश्यस्वीकार्यमिति चेत्, आस्तिकत्वात्। भारतीयदर्शनस्य भेदद्वयं वर्तते - आस्तिकं नास्तिकञ्चेति। आस्तिकः इत्यनेन सः सम्प्रदायः बोध्यते यः वेदस्य प्रामाण्यं स्वीकरोति, स्वस्य मतं परिपुष्टाय श्रुतिवाक्यानाम् अध्याहाराश्च करोति। एवं विधेषु आस्तिकदर्शनसम्प्रदायेषु न्यायदर्शनम् एकम्। अनेन न्यायदर्शनेन स्वीकृतेषु चतुर्षु प्रमाणेषु शब्दप्रमाणम् अन्यतमम्। मीमांसकः शब्दं नित्यविभुद्रव्यरूपेण स्वीकरोति। न्यायवैशेषिकौ तु शब्दः आकाशस्य गुणरूपेण स्वीकुरुतः। वैयाकरणाः तु शब्दः आकाशस्य गुणरूपेण स्वीकरणात् परमपि अर्थबोधकशब्दरूपेण स्फोटात्मकरूपेपापि स्वीकुर्वन्ति। अपि च परापश्यन्तीमध्यमावैखरीभेदेन शब्दः चतुर्धा विभज्यते। न्यायदर्शने तु मूलतः शब्दः गुणरूपेण गृह्यते। गुणाः चतुर्विंशतिः भवन्ति। तेषु चतुर्विंशतिगुणेषु अन्यतमेकः शब्दः। तद्यथा-

''रूपरसगन्धस्पर्शसंख्या-परिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरूत्वद्रवत्वस्नेहशब्द-बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माऽधर्मसंस्काराश्चतुर्विंशतिर्गुणाः॥''[1]

अनया पंक्त्या तु उद्देशः क्रियते। अधुना लक्षणपरोक्षे कर्तव्ये। तद्यथा भाष्यकारेण वात्स्यायणेन

''त्रिविधा चास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिः। उद्देशलक्षणपरीक्षा चेति।''[2] इदानीं शब्दस्य लक्षणविषये प्राप्यते-

''श्रोत्रग्राह्यः गुणः शब्दः।''[3]

अर्थात् श्रोत्रेन्द्रियेण यस्य प्रत्यक्षं भवति सैव गुणः शब्दः। शब्दत्वेऽव्याप्तिवारणाय गुण इति पदं प्रयुक्तं शब्दस्य लक्षणे। रूपादौ गुणे अतिव्याप्तिवारणाय च श्रोत्रग्राह्य इति पदं प्रयुक्तम् । यतो हि गुणत्वात् अपि रूपादिषु श्रोत्रग्राह्यत्वं न वर्तते।

ननु शब्दस्यास्य प्रत्यक्षं कथं भवति? भवति न वेति? चतुर्विंशतिगुणेषु केचन प्रत्यक्षग्राह्याः, केचन तु प्रत्यक्षाग्राह्याः भवन्ति इति। प्रसिद्धा पंक्तिः वर्तते- योग्यविभुविशेषगुणानां स्वोत्तरत्पन्नगुणनाशत्वनियमात् । विभुद्रव्याणां भेदद्वयं वर्तते- विशेषः सामान्यञ्चेति। विभुविशेषगुणाः पुर्नार्द्वविधाः- प्रत्यक्षग्राह्यः, प्रत्यक्षाग्राह्यः इति।

श्रोत्रेन्द्रियेण यस्य गुणस्य प्रत्यक्षं भवति न तु केवलं तत् अपि तु श्रोत्रेन्द्रियेण यस्य प्रत्यक्षयोग्यता सिद्ध्यति सः शब्दः। यतो हि भेर्यादिदेशावच्छेदे आकाशे यः शब्दः उत्पद्यते सः श्रोत्रग्राह्यः न भवति, तस्य श्रावणप्रत्यक्षं न भवति। किन्तु सोऽपि शब्दः। तस्मात् केवलं प्रत्यक्षं नापि तु प्रत्यक्षयोग्य इति कथनीयम् । अत्र योग्यता पदेन शब्दत्वं जातिमत्त्वं प्रकाशितम्। शब्दप्रत्यक्षस्य कारणं शब्दः। तस्य कारणतावच्छेदकं तु शब्दत्वम्। अतः तस्मिन् शब्दे शब्दप्रत्यक्षनिष्ठकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकत्वस्य वर्तमानत्वात् शब्दत्वे प्रत्यक्षयोग्यता अपि वर्तते। शब्दोऽयं द्विप्रकारेण विभज्यते- पदं वाक्यश्च।

''पदज्ञानन्तु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः।

शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी॥''[4]

शब्दशक्तिरिति पदम्। वाक्यश्च शब्दप्रमाणमिति। वर्णानां समष्टिः एव पदम्। शक्तिस्तु पदे विद्यते, न तु वर्णे।

पुनः शब्दः द्विविधः - ध्वनिः वर्णश्च। मृदङ्गादिषु उत्पन्नाः शब्दाः ध्वन्यात्मकाः। ध्वन्यात्मकशब्दानाम् अर्थः न भवति। अपरस्तु कण्ठसंयोगेभ्यः उत्पन्नाः अ, आ इत्यादयः वर्णाः, वर्णघटितपदाः, पदघटितवाक्याश्च वर्णात्मकशब्दाः इत्युच्यते।

''मृदङ्गादिभवो ध्वनिः॥

कण्ठसंयोगादिजन्या वर्णास्ते कादयो मताः॥''[5]

सर्वे शब्दाः अनित्याः आकाशवृत्तयः च। आकाशे शब्दः समवायसम्बन्धेन उत्पद्यते- **''नभोवृत्तिराकाशसमवेतः''।**[6] असमवायिकारणं तु मुखादिना सह आकाशस्य संयोगः, निमित्तं च इच्छाप्रयत्नादयः भवति, प्रयत्ने सति उदरस्थवायुः उर्ध्वगामी भूत्वा कण्ठताल्वादिना सह संयुक्तः भवति। एवं संयुक्ते सति मुखप्रदेशावच्छिन्ने आकाशे शब्दः उत्पद्यते।

शब्दः एषः पुनः त्रिविधः - संयोगजन्यः, विभागजन्यः शब्दजन्यश्च। भेरीसहितदण्डसंयोगात् भेरीदेशावच्छिन्ने आकाशे यः शब्दः उत्पद्यते सः संयोगजन्यः। दण्डस्य विभागसमये उत्पन्नः शब्दः विभागजन्यशब्दः। तत् तत् स्थाने शब्दोत्पत्तिम् आरभ्य वीचीतरङ्गन्यायेन पुनः श्रोतुः श्रोत्रदेशे यः शब्दः उत्द्यते सः शब्दः शब्दजन्यः। यथा- नद्यां पाषाणस्य क्षेपणत्वात् तरङ्गस्योत्पत्तिर्भवति। तस्मात् तरङ्गात् अपरस्य तरङ्गस्य ततः अपरस्य, एवं बहूनां तरङ्गानाम्

* शोधच्छात्रा, वैदिक दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** एसोसिएट प्रोफेसर, वैदिक दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

उत्पत्तिर्भवति। एषः वीचीतरङ्गन्याय इत्यनेन शब्देनोच्यते अत्र तु शङ्का जायते, तरङ्गात्तु तरङ्गस्योत्पत्तिर्भवति। किन्तु कथं भेर्यादौ देशे उत्पन्नः शब्दः श्रोतुः श्रोत्रदेशे आगच्छति इति। किं शब्दः श्रोत्रदेशे आगच्छति उत श्रोता एव शब्दस्य समीपं गच्छति एषोऽपि प्रश्नः जायते। यदि उच्यते शब्दः आगच्छति, यतो हि श्रोता भेर्यादौ देशे न गच्छति इति तु प्रत्यक्षसिद्धः। तस्मात् शब्दः एव श्रोतुः कर्णशष्कुल्यावच्छिन्नाकाशे आगच्छति। किन्तु किं शब्दस्य आगमनस्य सामर्थ्यम् अस्ति इति उच्यते चेत्, न। शब्दस्य गमनागमनस्य सामर्थ्यं नास्ति गुणत्वात्। उदयनाचार्येणापि उक्तम् –

''वासनासंक्रमो नास्ति।''[7]

वासना नाम गुणविशेषः, तस्य संचारः गतिरिति नास्ति। तदानीमुच्यते सत्यं, शब्दः तु श्रोतुः श्रोत्रदेशे न गच्छति। अपि तु वक्तुः मुखविवरावच्छिन्ने आकाशे उत्पन्नः शब्दः अपरं शब्दमुत्पादयति, स्वयं च विनश्यति।

एवं वक्तुः मुखविवरावच्छिन्ने आकाशे उत्पन्नात् शब्दात्, अपरशब्दस्य, ततः अन्यस्य शब्दस्योत्पत्तिर्भवति यावत् श्रोतुः कर्णशष्कुल्यावच्छिन्नाकाशे शब्दः न जायते। शब्दस्य समानजातीयशब्दम् उत्पन्ने सामर्थ्यमस्ति। आकाशे परम्पराक्रमेण शब्दानां या धारा उत्पद्यते सः वीचीतरङ्गन्यायेन शब्दजन्यः शब्दः इत्युच्यते। तस्मादुच्यते-

''सर्वः शब्दो नभोवृत्तिः श्रोत्रत्पन्नस्तु गृह्यते।

वीचीतरङ्गन्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिता।।''[8]

अन्यथा कदम्बपुष्पस्य कठिनांशं परितः यथा कोरकः उत्पद्यते तद्वत् भेर्यादिदेशावच्छिन्नाकाशे यदा एकः शब्दः उत्पद्यते, तदा तस्य आश्रयीभूतमाकाशं परितः दशशब्दाः उत्पद्यन्ते। अनेन क्रमेण श्रोत्रदेशे या शब्दधारा उत्पद्यते, सः एव कदम्बकोरकन्यायेन शब्द-जनितः शब्द इत्युच्यते। न्यायवैशेषिकयोर्मते शब्दः अव्याप्यवृत्तिः। अर्थात् आकाशस्य एकप्रदेशावच्छेदे शब्दः तिष्ठति, अन्यप्रदेशावच्छेदे तु शब्दास्याभावः विद्यते। शब्दः तु तृतीयक्षणे नश्यते। प्रथमक्षणे शब्दः उत्पद्यते, तदनन्तरं द्वितीयक्षणस्थशब्देन प्रथमक्षणस्थस्य शब्दस्य नाशः भवति। अस्याशयः यथा, शब्दः स्वोत्तरवर्तीशब्देन विनश्यति, 'योग्यविभुविशेषगुणानां स्वोत्तरवर्तीनाशनियमात्।' अन्तिमशब्दः तु तस्य पूर्ववर्तीशब्देन उत्पद्यते, द्वितीयक्षणे च विनश्यति। न्यायवैशेषिकरीत्या एवं शब्दस्य प्रत्यक्षं भवति।

सन्दर्भाः

1. अन्नंभट्टः तर्कसंग्रहः व्याख्याकारः- आचार्य श्रीशेषराजशमरिग्मी प्रकाशकः- चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनम् संस्करणम् – 2018, पृ0सं0 4
2. वात्स्यायणः, न्यायसूत्रवात्स्यायणभाष्यम् व्याख्याकारः - फणिभूषणतर्कवागीशः प्रकाशकः- पश्चिमबङ्गराज्यपुस्तकपर्षत्, कोलकाता- 70001 संस्करणम् – 1981, सूत्र संख्या – 2/2/2
3. अन्नंभट्टः, तर्कसंग्रहः पृ0सं0 – 19
4. विश्वनाथाचार्यः, न्यायसिद्धान्तमुक्तावली व्याख्याकारः- पञ्चाननभट्टाचार्यशास्त्री प्रकाशकः- पश्चिमबङ्गराज्यपुस्तकपर्षत्, कोलकाता 700073 संस्करणम् – 1970, कारिकासंख्या 81
5. तत्रैव, कारिकासंख्या – 164, 165
6. तत्रैव, मुक्तावली टीका
7. उदयनः, न्यायकुसुमाञ्जलि, व्याख्याकारः- आचार्यः विश्वेश्व प्रकाशकः - चौखम्बाविद्याभवनम् वाराणसी-221001, संस्करणम् – 201 कारिका संख्या (1/15)
8. विश्वनाथाचार्यः, कारिकावली कारिकासंख्या 165, 166

चन्द्रस्पष्टीकरणे वैज्ञानिकसंस्कारारणां विमर्शः

*डॉ. मधुसूदनमिश्रः**

ग्रहगणितपरम्परायां चन्द्रस्य महत्त्वपूर्णं सथानं विद्यते । वेदेषु चन्द्रः मनस्तत्त्वप्रधानकः आयुर्वेदे औषधाधीशः ज्योतिषशास्त्रे च नक्षत्राधीशः कथ्यते। ज्योतिषशास्त्रे **मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोरिति** सौरवचनेन चन्द्रस्पष्टीकरणे तथा च भास्करेण प्रोक्तं यत् **स्फुटौ रवीन्दू मृदुनैव वेद्याविति** वचनेन परिलक्षितो भवति यत् केवलं मन्दफलेन संस्कृतश्चन्द्रः स्फुटो भवति । परन्तु दृक्प्रत्ययानुरोधेन वर्तमानकाले एतन्न समीचीनतया सङ्घटते। केवलं मन्दफलेन संस्कृतश्चन्द्रः स्फुटो न भवतीति यन्त्रबलेन प्रत्यक्षतया ज्ञायते । चन्द्रस्य भूमेस्सन्निकटतमत्वाद् लघुपिण्डत्वाच्च ग्रहाणां गुरुत्वाकर्षणेन किं वा भूमेश्चाकर्षणबलात् चन्द्रगतौ, स्थित्यां स्पष्टीकरणे च महदन्तरमुत्पद्यते। तत्र चन्द्रस्य परममन्दफलमानं 6 अंशाः 27 कलाप्रमितमस्ति। परं मध्यमस्पष्टचन्द्रयोरन्तरकारका अन्येऽपि हेतवः सन्ति यस्मात् सम्प्रति चन्द्रवेधेन मध्यमस्फुटचन्द्रयोरन्तरं कदाचित् $8^{0}30$ पर्यन्तमपि भवति। अतः स्पष्टचन्द्रसाधयितुं प्रायश्चत्वारिंशत्संस्काराणामावश्यकता विद्यते।[1] एषु मन्दफलसंस्कारो महत्तमः। चत्वारोऽन्येऽपि संस्काराः महत्त्वपूर्णाः अर्वाचीनसमुदाये स्वीकृतास्ते च—

(1) पाक्षिकसंस्कारः (Variation)/तिथिसंस्कारः

(2) च्युतिसंस्कारः (Evection)

(3) वार्षिकसमीकरणम्/वार्षिकसंस्कारः (Annual Equation)

(4) लम्बनीयसंस्कारः (Paralictic inequality)

मन्दफलातिरिच्य एतैश्चतुर्भिः संस्कारैः संस्कृतश्चन्द्रो स्पष्टतामेति, किञ्च तत्रापि यथाकाले केचन बीजसंस्काराः अपेक्षन्ते। अथ चन्द्रस्पष्टीकरणस्य विविधवैज्ञानिकसंस्काराणामैकेकं सैद्धान्तिकरीत्या परिशीलनं शोधपत्रेस्मिन् विधीयते ।

1.(क) पाक्षिकसंस्कारविमर्शः(तिथिसंस्कारः) *(Variation)*

अयं संस्कारः सूर्याकर्षणस्याधिक्याद् न्यूनत्वाच्चोत्पद्यते, सूर्यः कदाचिद् भुवमधिकमाकर्षति कदाचिच्चन्द्रमेवातः चन्द्रगतौ प्रतिपक्षे तिथिवशाद् विकार उत्पद्यते। यथा कृष्णाष्टम्यां चन्द्रो भुवं पृष्ठे विहाय सूर्यदिशि गमनप्रवृत्तो भवत्यतः, सूर्यस्याधिकतरमाकर्षणं चन्द्रे एव भवति। एतेनाकर्षणेन चन्द्रस्य तावत्पर्यन्तमधिकगतिः यावच्चन्द्रो रवेरतिसन्निकटं गच्छति। अर्थात् कृष्णाष्टमीतोऽमावस्यापर्यन्तं सूर्यस्याधिकतरमाकर्षणं चन्द्रे भवत्यतः चन्द्रगतिर्वर्धते।

किन्त्वमान्ताद् सूर्यसान्निध्यं विहाय चन्द्रः सूर्यात् विपरीतदिशि गच्छति तदा चन्द्रगतिः सूर्याकर्षणेन क्षीयते। इयं क्षीयमाना गतिः अमान्ताच्छुक्लाष्टमीपर्यन्तं भवति पुनः अष्टम्यनन्तरं चन्द्रो भुवं पृष्ठे विहायाग्रे गच्छति तदा सूर्यस्याधिकतरमाकर्षणं भुवि भवति, अतः तदा चन्द्रस्य वर्द्धमाना गतिः शुक्लाष्टमीतः पूर्णिमान्तं यावत् ततः पूर्णिमान्ततो कृष्णाष्टमीं यावच्चन्द्रगतिः क्षीयमाना च भवति। अर्थात् अमान्तपौर्णमास्योः रविः चन्द्रं भुवञ्च क्रमेणाधिकमाकर्षति, येन तदानीं भूचन्द्रकर्णोऽधिकः चन्द्रगतिश्च परमाधिका। तत्राष्टम्योरल्पतमा चन्द्रगतिः। अस्मादुत्पन्नः संस्कारः पाक्षिक इत्यभिधीयते। तत्र पक्षः संस्कारभ्रमणकाल इति। पाक्षिकसंस्कारोत्पत्तिहेतुभूत-कारणेनाष्टम्योश्चन्द्रस्य कक्षाधिकतरवक्रा भवति, पर्वणोश्चाल्पतरवक्रा। इदमन्यथाप्युपपाद्यते। भूचन्द्रकर्णीयशक्तिः = व/2 भवतीति शक्तिशास्त्रीयं सूत्रम्। अत्र व = चन्द्रवेगः र = भूचन्द्र-कर्णः। अत्र कर्णीयशक्तिदिषद्वैषम्येण स्थिरा भवतीति कृत्वा यदा वेगो महान् तदाकर्णोऽपि महान् भविता, कर्णमहत्वे चाल्पतरवक्रत्वम्। पर्वणोः कक्षायाः अल्पतरवक्रत्वम्। पर्वणोः कर्णीयशक्तेरल्पतमत्वं भवतीति हेतोः व/र इत्यस्य मानं अल्पम्। ततश्च कर्णस्य महत्त्वम्। तस्माच्चाल्प-तरवक्रत्वम्। पाक्षिकसंस्कारोऽष्टम्योः पर्वणोश्च शून्यो भवति, यदा व्यर्केन्दुः 45, 225 भागमितो भवति, तदा दीर्घवृत्तीयध्रुवकात् 35 कलामितोऽधिको भवति। पाक्षिकसंस्कारसंस्कृत-श्चन्द्रो यदा व्यर्केन्दुतो 135, 315 भागमितो भवति, तदा 35 कलामितो न्यूनो भवति। अतोऽस्य संस्कारस्य प्रमाणं (मध्यम चन्द्रः - स्पष्टरविः) इत्यनेन ज्ञायते। सूर्यचन्द्रयोरन्तरूपैव तिथिः, किञ्च तदवलम्बितोऽयं संस्कारः तिथिसंस्कारः पाक्षिकसंस्कारो वा निगद्यते।

अमायां पूर्णिमायाञ्च तिथिफलाभावात् पाक्षिकसंस्कारस्य शून्यत्वाच्चान्तरं नोत्पद्यते, संस्कारस्यास्य प्रयोजनञ्च न भवति। पाक्षिकसंस्कारस्य विवेचनं मुञ्जालाचार्येण 854 शके तदनु 932 ईस्वीये विहितं तत्तु टॉल्मी (Ptolmy) मतापेक्षया सूक्ष्मतरम्। लघुमानसे यथा प्रोक्तमाचार्येण—

इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्ना गत्यंशा विभवा विधोः।
गुणो व्यर्केन्दुदोः कोट्यो रूपपञ्चाप्तयोः क्रमात्॥
फले शशाङ्कतद्गत्यो लिप्ताद्ये स्वर्णयोर्वधे,
ऋणं चन्द्रे धनं भुक्तौ स्वर्णसाम्यवधेऽन्यथा॥[2]

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, (सहायकाचार्यः, ज्योतिषविभागः), वेदवेदाङ्गसङ्कायः , सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी

आचार्यकेतकरेण केतकीग्रहगणिते षड्भाल्पे तिथिकेन्द्रे तिथिसंस्कारफलकलाः प्रोक्ताः। मेषादिषट्राशिके धनं 0,12,22,30,34,34,29,21,10; ऋणं 2,14,25,33,36, 36,32,24,13,0 तुलादिषट्के तिथिफलानि भवन्ति। तद्धि केतकीग्रहगणिते—

धनं खं च सूर्या यमौष्ठाः खरामाः,समुद्राग्नयो वेदरामा नवौष्ठाः।

कुपक्षा दिशोऽथ क्षयो द्वे च शक्राः, शरौष्ठाः सुराः षड्गुणाः षड्गुणाश्च॥

रदा वेदपक्षास्त्रिचंद्रा वियच्च,कलास्तैथिका संस्कृतिस्स्याद्धिमांशोः।

इयं स्वर्णता मध्यमे व्यर्कचन्द्रे- ऽजषड्भे सति स्यात्तुलादौ विरुद्धा॥[3]

आचार्यैः प्रोक्ताः येङ्कास्तत्र चतुर्थपञ्चमयोर्मध्यस्थोऽङ्को 34 भवति, अस्मदङ्कस्तु 35 कलायातीति स्वल्पान्तरात्सूत्रमुपपद्यते। एवं परिमलभाष्ये केतकराचार्येण निरूपितम्।अस्य विशदतया विवेचनं वेङ्कटेशतनयश्रीदत्तराजविरचितेन केतकीपरिमलेन केतकीग्रहगणितस्य परिमलवासानानामधेये स्वभाष्ये कृतम्। गणितीयरीत्या तत्र युग्मायुग्मपदयोर्मध्ये इदं तिथिफलं परमं 35 विकलात्मकं भवति। अयमेव तिथिसंस्कारः सिद्धान्तपरम्परायां प्रतिपाद्यते बुधैः।

(ख) च्युतिसंस्कारविमर्शः (तुङ्गान्तरसंस्कारः) *(Evection)*

अयं संस्कारः सूर्यापेक्षया चन्द्रमन्दोच्चस्थितिमधिकृत्य भवति। यदि चन्द्र अष्टम्योरुच्चे गच्छति तदा तस्य विलम्बितस्योच्चप्राप्तिर्भवति, अर्थात्तत्र चन्द्रमन्दोच्चे रवेराकर्षणतो विकृति-र्जायते चन्द्रगतौ। द्वितीयोऽपि विकारः चन्द्रगतौ च्युतिवशेन भवति, यतो हि यदा चन्द्रः अमापौर्णमास्योरुच्चे गच्छति तदा च्युतिपर्रमा यदा चाष्टम्योरुच्चे गच्छति तदा च्युतिर्परमाल्पा भवति। तत्र परमाधिका च्युतिः 0.066 मिता परमाल्पा च्युतिश्च 0.044 मिता वर्तते। अत्र द्वयोर्विकारयोरेकीकरणेन ध्रुवके 77' पर्यन्तमन्तरमापतति। च्युतिफलस्यावृत्तिकालः 31' दिनानि भवन्ति। च्युतिफलज्ञानार्थं निम्नलिखितानां मानान्यपेक्षन्ते—

(1) नीचाच्चन्द्रस्य दूरत्वम्। (2) भुवः सूर्याद्दूरत्वम्।

(3) उत्केन्द्रितायाः परिवर्तनम्। (4) नीचभोगांशानां परिवर्तनम्।

अस्य संस्कारस्योच्चपरिवर्तनाधीनत्वात् अपरो नाम ''तुङ्गान्तर'' संस्कार इति वर्तते। नव्यैः च्युतिफलस्य महत्तमं मानम् 74' कलाप्रमितं स्वीकृतं विद्यते, तच्च समीकरणम्—

आचार्यकेतकरेण ग्रहगणिते प्रतिपञ्चांशेषु च्यतुतिफलकलाः निर्धारिताः। अस्मिन् संस्कारे उच्चगणितस्यापेक्षता विद्यते।

तैस्तावत् = च्युतिकेन्द्रम् = 2 (चन्द्रः-सूर्यः)- चन्द्रमन्दकेन्द्रम्।

= 2चं-2सू-चं.+चन्द्रोच्चम्।

= च+चन्द्रोच्चं-2सूर्यः इति केन्द्रलक्षणम्।

अत्रापि समीकरणेन परमच्युतिफलमानं 74 कलाप्रमितं भवति। आचार्यकेतकरेण तु —

खं विश्वे शरषट्कृती हयकृताः षट्पञ्चवेदर्तवो।

नन्दाङ्गान्यनलाद्रयोऽब्धितुरगा रामाद्रयः सप्ततिः।

पञ्चाङ्गानि हयेषवो वसुकृता अष्टाग्नयः षड्यमाः।

विश्वे खं च्युतिकेन्द्रके दशदशांशेषु स्थिता लिप्तिकाः॥

निजतुङ्गयुतो निशापतिर्द्विगुणार्केण हि मध्यमेन हीनः।

च्युतिकेन्द्रमितीर्यते फलं क्रियषट्के ऋणमन्यथा धनं स्यात्॥[4]

(ग) वार्षिकसंस्कारविमर्शः (वार्षिकसमीकरणम्) *(Annual Equation)*

चन्द्रो भुवं परितो भ्रमति, भूरियञ्च रविं परितो भ्रमति। अतो भूः रविर्वा स्वकीयोच्चस्थाने व्रजति तदा भुवं परितो भ्रमन्तं चन्द्रं स्वल्पमेवापकर्षति रविः। यत्तस्तु तत्र भुवा साकं वर्तमानश्चन्द्रः सूर्याद्दूरे तिष्ठति। यदा चेयं भूः स्वकीये नीचस्थाने गच्छति तदा चन्द्रः सूर्यस्य सन्निकटस्थो भवति। अतो हि तत्र चन्द्रमधिकमेवाकर्षते सूर्यः। परञ्च भूरियमेकेन सौरवर्षेण सौरकक्षां भ्रमति, अतः स्वकीयसम्पूर्णकक्षायां नीचासन्नत्वात् षण्मासपर्यन्तं चन्द्रस्य गतिः मध्यगतेरल्पा भवति। एवं भुव उच्चासन्नत्वात् षण्मासपर्यन्तं चन्द्रगतिः तन्मध्यम-गतितोऽधिका भवति। अर्थाच्चान्द्रमासादैर्घ्ये यो विकारः समायाति तज्ज्ञानार्थमयं संस्कारो विधीयते। वस्तुतस्तु भूः सूर्याद् विभिन्नकाले विभिन्नं दूरत्वं धारयति। यदा रविर्नीचे भवति तदा तस्य कर्णस्य परमाल्पत्वं ततश्च विकर्षणमधिकतमम्। यदोच्चे तदा विकर्षणस्य परमाल्पत्वं जायते अनेनोत्पद्यमानः संस्कारश्चान्द्रमासदैर्घ्ये विकारं जनयति। विकर्षणप्रमाणं नवीनाकर्षणसिद्धान्ते श्रेणीगतं कलितं विद्यते।

(घ) लम्बनीयसंस्कारविमर्शः *(Paralictic inequality)*

रवेश्चन्द्रे यद्विकर्षणं पौर्णमास्यां भवति तस्मादधिकतरममावस्यायां भवति। अतोऽनेन विकर्षणेन चन्द्रः कृष्णाष्टमीतः शुक्लाष्टमीपर्यन्तमधिकतरमाकृष्यते। तेन कृष्णाष्टमीतोऽमावस्यापर्यन्तं चन्द्रगतिरधिका अमान्ततः शुक्लाष्टमीपर्यन्तं च चन्द्रगतिरल्पा। गतौ जायमानादस्माद् विकारादुत्पद्यमानः संस्कार एव लम्बनीयसंस्कारः। अनेन संस्कारेण नवीनसिद्धान्ते रविकर्णो रविद्रव्यत्वञ्च गण्येते।

(ङ) चन्द्रस्पष्टीकरणे अन्येषां महत्त्वपूर्णसंस्काराणां विमर्शः

मन्दफलेतरानां चतुर्णां संस्काराणां प्रयोजनमतिरिच्य केचन अन्येऽपि महत्त्वपूर्णाः संस्काराः चन्द्रस्पष्टीकरणे प्रयुज्यन्ते येषामुल्लेखः अंशमात्रेण प्राचीनग्रन्थेषु प्राप्यते। तत्र हि कर्षसंस्कारः, किरणवक्रिभवनसंस्कारः बीजसंस्कारश्च प्रमुखाः, एतेषां प्रयोजनं ग्रहाणां दृक्कर्मणि भवतीति निर्धार्य, अग्रे यथावसरे समीक्ष्यते। वस्तुतस्तु विचार्यमाणेऽत्र चन्द्रस्फुटीकरणाय नव्यैः ये संस्काराः क्रियन्ते तेषु केचन पूर्वाचार्यैः ज्ञाता एव। तत्र तैः मुख्यतया एव केचन संस्काराः स्वीकृताः, केषाञ्चन संस्काराणामतिस्वल्पत्वात् त्यागश्च कृतः।

वस्तुतस्तु तत्यागेनापि चन्द्रे बह्वन्तरं नापद्यते, अतो वृथा ग्रन्थप्रपञ्चेन ग्रन्थविस्तरेण चालमित्यालोच्यैव तैस्वल्पान्तरजन्यास्संस्काराः त्यक्ताः। तद्यथा ह्याचार्याः भास्कराः—

स्वल्पान्तरत्वादबहूपयोगात् प्रसिद्ध्यभावाच्च बहुप्रयासात्।

ग्रन्थस्य तज्ज्ञैर्गुरुताभयेन यस्त्यज्यतेऽर्थो न स दूषणाय॥[5]

मन्दफलेतराः ये चत्वारो मुख्याः संस्काराः त एव प्राचीनाचार्यैः प्रतिपादिताः। यथा प्रथमतो मुञ्जालाचार्येण चन्द्रोच्चरव्यन्तरेण तुङ्गान्तरसंस्कारः (Evection), रविचन्द्रान्तरेण च पाक्षिकसंसकारः (Variation) स्फुटचन्द्रे चन्द्रगतौ च कृतः। तदनु नित्यानन्दाचार्येण वर्णिता एते संस्काराः। आचार्यसामन्तचन्द्रशेखरसिंहेनापि संस्काराणामेतेषां चर्चा विहिता। भास्कराचार्येण बीजोपनये पाक्षिकसंस्कारः, तुङ्गान्तरसंस्कारश्च निर्दिष्टः। आचार्येण पाक्षिकसंस्कारस्य ज्ञानार्थं तत्फलानां चतुर्विंशतिः पिण्डकानि दत्तानि। तद्यथा—

अर्कस्फुटाच्चन्द्रमिमं विशोध्यं शिष्टे-ऋणं त्वोजपदे फलं स्यात्।

अतोऽन्यथान्यत्र यथाक्रमं वै ब्रुवे फलानामपि पिण्डकानि॥

रसाश्च नन्दा गुणतारकेशौ भूभृद्भुवौ बाहुकरौ जिनाश्च।

तारा खरामा द्विगुणाश्च देवा वाराशिरामा सरिदीशकालाः॥

वेदाग्नयो दानवशत्रवश्च शशाङ्कवह्नी नवबाहवश्च।

रसाश्विनौ वेदकरौ खबाहूरसक्ष्मे रुद्र गजा नलाः खम्॥

एताः कलाः ओजपदे ऋणं स्युर्धनं तदन्यत्र भवन्ति भूयः।

अनेन युक्तश्च शशिस्फुटस्स्यात् कर्मार्हकालानयनेषु योग्यः॥[6]

अनयैव रीत्या आचार्यकेतकरेणापि स्वकृतौ केतकीग्रहगणिते एतेषां संस्काराणां सूक्ष्मतया विवेचनं कृतम्। ग्रहस्पष्टीकरणे समीक्षणीयोऽयं विषयः यत् मध्यमस्पष्टग्रहयोरन्तर्भूतकारणानि कानि? कथं मध्यगत्यापेक्षया समागतो मध्यमग्रहो स्फुटो दृग्योग्यो वा न भवति? सैद्धान्तिकपक्षानाम-वलोकनेन ज्ञायते यत् मध्यमस्पष्टगत्योर्भेदत्वादेव मध्यमस्फुटग्रहयोरन्तरमापतति। अहर्गणेनागतो आनुपातिको ग्रहः मध्यमगतिकः, परन्तु स्वकक्षावृत्ते ग्रहः सर्वदा तयैव मध्यमगत्या न गतिमान् विद्यते, कदाचित्तस्य गतिः मध्यमापेक्षयाधिका कदाचिच्च न्यूनेति स्पष्टतया ज्ञायते, अतो ग्रहकक्षायां केचन अवयवा अदृश्यरूपास्सन्ति यैः मध्यमग्रहे न्यूनाधिक्यं समुत्पाद्य मध्यमस्पष्ट-ग्रहयोर्भेद उत्पाद्यते। अतः मध्यमग्रहे ये भेदोत्पादकाः अवयवाः सन्ति तेषां फलं मध्यमग्रहे धनं ऋणं वा विधाय स्पष्टग्रहाः साध्यन्ते। अतः प्राच्यावाच्यमतयोः किं कारणमिति विचार्यते।

2. प्राच्यमतेन मध्यमस्फुटग्रहयोरन्तरविश्लेषणम्

प्राचीनसिद्धान्तेषु मध्यस्फुटग्रहयोरन्तरभूतत्वेन त्रीणि[7] कारणानि प्रतिपादितानि सन्ति—

(1) मन्दोच्चकृताकर्षणम् (2) शीघ्रोच्चकृताकर्षणम्

(3) पातकृताकर्षणम्

एतानि शीघ्रमन्दोच्चपातस्थानानि ग्रहभ्रमणवृते एवं अदृश्यतया निबद्धानि, स्वाकर्षण-रज्जुभिश्च मध्यमग्रहान् स्वाभिमुखम् कर्षयन्ति दूरं वा प्रेरयन्ति, अतः मध्यमग्रहापेक्षया स्पष्टग्रहे भेदः समायाति।[8] यदा उच्चसंज्ञो बिन्दुः मध्यमग्रहस्थानात् पूर्वतः राशिषट्काभ्यन्तरे भवेत्तदा मध्यमग्रहं प्राङ्मुखम्, ग्रहात्पश्चाद्राशिषट्काभ्यन्तरे यदि उच्चस्थानं भवेत्तदा मध्यमग्रहं पश्चिमाभिमुखम् अर्थात् स्वसम्मुखं पूर्वापरं कर्षति।[9] अतः पूर्वकर्षिते ग्रहे मध्यमगतिः स्पष्टगत्यापेक्षया अधिका पश्चिमकर्षिते च मध्यमगतिः स्पष्टापेक्षया न्यूनेति स्फुटैव। तथा च ग्रहेषु याम्योत्तराकर्षणं पातवशाद्भवति। यदा ग्रहापेक्षया पात ऊनः परं राषिषट्काभ्यन्तरितो भवति तदा क्रान्तिवृत्ताद्विमण्डलमुत्तरगतं विक्षेपतुल्यान्तरे भवति। अतस्तदा ग्रहबिम्बं क्रान्त्यन्तबिन्दोर्विक्षेपतुल्यमुत्तरगतं भवति। यदा च पातः ग्रहापेक्षयाधिकः परं राशिषट्काभ्यन्तरे भवति तदानीं क्रान्तिवृत्ताद्विमण्डलस्य विक्षेपतुल्यं दक्षिणतोगतत्त्वात् क्रान्त्यन्तबिन्दोर्ग्रहबिम्बं विक्षेपतुल्यं दक्षिणतो भवतीति निरुपितं सिद्धान्तेषु।[10] अत्र ध्यातव्यमिदं यत् उच्चनीचयोः कृताकर्षणस्य समन्वयो मन्दप्रतिवृत्तभङ्ग्या नीचोच्चभङ्ग्या च विधत्तमाचार्यैः। तत्र भवतु नाम भगोलस्य केन्द्रं भूरेव स्यात् परन्तु ग्रहगोलकेन्द्रं भूकेन्द्रादितरे वर्तते।[11] अतो ग्रहास्तु प्रतिवृत्ते भ्रमन्ति यस्य केन्द्रं भूकेन्द्रादन्यत्र वर्तते। सूर्यचन्द्रयोः भूसापेक्षत्वादेव मन्दोच्चाकर्षणजन्यमन्दफलसंस्कारेणैव तौ स्फुटौ, परन्तु पञ्चताराग्रहाणामादौ भारतीयपरम्परायां मन्दप्रतिवृत्तकेन्द्राभिप्रायिकेन मन्दफलेन शीघ्रोच्चकृता-कर्षणेन शीघ्रफलेन च संस्कार्य मध्यमग्रहो स्फुटीक्रियते। यस्मिन् वृत्ते मध्यमग्रहो भ्रमति तन्मन्दप्रतिवृत्तम्। योहि बिन्दुः भूकेन्द्राद् दूरतरप्रदेशे स्थितस्तस्य मन्दोच्चसंज्ञा शीघ्रोच्चसंज्ञा वा कृता, निकटतमप्रदेशस्य च नीचसंज्ञा विहिता।[12] इदमुच्चमेवाकर्षकः। अतः मन्दोच्चस्थाने ग्रहगतिः परमाल्पा नीचे च परमाधिका। सूर्यचन्द्रयोः प्रतिदिनं वेधेनावस्थितिं विज्ञाय मन्दोच्चस्थानं ज्ञातुं शक्यते। अन्येषां ग्रहाणां मन्दोच्चज्ञानार्थं स्फुटग्रहाद् विलोमसंस्कारः अपेक्षितः। दिनद्वयग्रहान्तरं मन्दस्पष्टागतिः, अतः प्रत्यहं वेधेन मन्दस्फुटगतिं विज्ञाय यदा मन्दस्फुटगतेः परमाल्पत्वं दृश्यते तदा मध्यमग्रह एव मन्दस्पष्टो भवति, अर्थात् ग्रहतुल्यमेव मन्दोच्चं भवति। एवमेव शीघ्रोच्चज्ञानमपाकर्तुं शक्यते। अस्य मन्दोच्चशीघ्रोच्चयोरपि गतिर्भवति, नायं स्थिरप्रदेशः।[13] अतः अनयोरप्यानयनं भगणवशाज्जायते, परन्तु चन्द्रं विहायान्येषां मन्दोच्चानां गतिः वर्षशतैरपि नावलोक्यते[14] भास्करेनोक्तम्। चन्द्रविषये तस्योच्चस्यापि प्रतिवत्सरं भिन्नं भिन्नं स्थानमभिज्ञातमाचार्यैः तस्य गतिश्च सूक्ष्मतया साधिता।[15] अतः ताः कियत्यः इत्याशङ्क्य कुट्टकोक्तविलोमविधिना तेषां गतिः सिषिधुराचार्याः। अत्र विषये

नवीनैरेवमाक्षिप्यते यत् ग्रहाः सर्वेपि पातमन्दोच्चसहिताः कल्पादावश्विन्यादावतिष्ठन्नित्यत्र न किमपि मानम्। कल्पकालश्च तद्तद्ग्रहणभगणकालानां पूर्णाङ्कवृत्त्या कल्पितः, न तु वास्तविकः। अतश्चन्द्रमन्दोच्चं हित्वा इतरग्रहोच्चानां गतयो न दृक्सिद्धाः। अत एव दीक्षितमहोदयेन भारतीयज्योतिषे प्रोक्तं यत् ग्रीकदेशीयाः हिपार्कसटालमीप्रभृतयो गणकाः मन्दोच्चगतिं न जानन्ति स्मेति मन्दोच्चगतिज्ञानं भारतीयगणकाणां सूक्ष्मवेधज्ञतां प्रकटयति।[3] उच्चादुच्चस्थानं यावत् परिक्रमाकालः उच्चभगणपूर्तिकालः। आधुनिकज्योतिषमतानुसारं एतादृशो भगणपूर्तिकालः (Periodic time of almanistic motion) इति नाम्ना व्यवह्रियते।

पातकृतयाम्योत्तराकर्षणस्य फलसंस्कारः विक्षेपवशात् दृक्कर्मणि विधीयते, तस्य समीक्षा पञ्चमाध्याये विधास्यते। मध्यमस्पष्टग्रहयोः दिग्देशकालवशादन्यान्यप्यन्तराणि जायन्ते तेषां ज्ञानं देशान्तरोदयान्तरप्रभृतिसंस्कारैः ज्ञायते। शीघ्रोच्चज्ञाने तु भारतीयाचार्यैः अन्तर्ग्रहीयत्वेन बहिर्ग्रहीयत्वेन च द्विधा शीघ्रोच्चं पठितम्। यथा ग्रहाणां सूर्यकेन्द्राभिप्रायिकभ्रमणस्याङ्गीकाराद् भौमगुरुशनयः बहिर्ग्रहाः भवन्ति बुधशुक्रौ चान्तर्ग्रहौ भवतः। तत्र बहिर्ग्रहाणां शीघ्रोच्चं रविर्निर्दिष्टम् अन्तर्ग्रहयोश्च शीघ्रोच्चमन्यथोक्तम्। तत्र कथं नैव सर्वेषां ग्रहाणामेकरूपं शीघ्रोच्चकल्पितमिति जिज्ञासायामुच्यते यद् रविकेन्द्रिकग्रहभ्रमणस्याङ्गीकारात् स्पष्टं प्रतिभाति यत् यदा बहिर्ग्रहाः रवितुल्याः भवन्ति तदैव ग्रहो भुवोऽत्युच्चं प्रदेशं गच्छति। तदानीं रवेरेकस्मिन् भागे भूः अपरस्मिन् च भागे बहिर्ग्रहो भवति। अर्थाद्रवितुल्ये बहिर्ग्रहे सति तस्योच्चप्राप्तिः। परं तत्र बहिर्ग्रहापेक्षया रवेरेवाधिकगतिकत्वाद् बहिर्ग्रहस्य गतितस्तदुच्चगतिरेवाधिकतरा अतो ग्रहगतितः तदुच्चगतेरधिकतरत्वात् कुजादीनां विषये रविरेव शीघ्रोच्चमिति युक्तियुक्ता संज्ञा।[16]

अथ बुधशुक्रयोः रविगतितोऽधिकगतिमत्वात् तयोः वास्तविकौ ग्रहावेव शीघ्रोच्चत्वेनाभिहितौ प्राचीनाचार्यैः। तत्र तयोर्वास्तविकबिम्बयोरेव शीघ्रोच्चत्वेनाभिहितत्वात् तयोर्मध्यमग्रहो मध्यमरवितुल्य एव कल्पितः। वस्तुतः बुधशुक्रौ रवेरनुचराविव कदाचित्तस्याग्रतः पृष्ठतश्च व्रजन्तौ भचक्रभोगं कुरुतः। अर्थात् रवितोऽतिदूरे राशित्रयादधिके प्रदेशे तौ नैव गच्छतः। अतो रविभगणा एव बुधशुक्रयोर्भगणाः स्वीक्रियन्ते तथा मध्यमरविरेव बुधशुक्रयोर्मध्यमग्रहत्वेन स्वीक्रियते। अतो प्राचीनैः रविकेन्द्रिकभगणा एव बुधशुक्रयोश्शीघ्रोच्चभगणाः स्वीकृताः परन्त्वेतत् सर्वं फलोपपत्त्यै प्रकल्पितमपि वास्तविकौ बुधशुक्रयोर्ग्रहबिम्बौ कुत्र भ्रमत इति जिज्ञासायां भास्करेण स्पष्टतया निर्दिष्टम्।[17] शीघ्रोच्चज्ञानप्रसङ्गे अर्वाचीनज्योतिर्विज्ञाने अर्कसोमयाजिमहोदयेनोक्तं यत् — ग्रहाः रविकेन्द्रिकवृत्तेषु न भ्रमन्ति, किन्तु गणितेनानुमीयते। अत्र प्राचीनाचार्यैर्प्रदर्शिता गणितीयपद्धतिः रविकेन्द्रत्वं सूचयन्त्यपि कथं तैस्तथा नोक्तमित्याश्चर्यम्। तत्रैव—

कुजजीवशनीनान्तु रविश्शीघ्रोच्चनामकः।
ज्ञशुक्रयोर्ग्रहः सूर्यः भवेत्तौ शीघ्रनामकौ।।[18]

3. अर्वाचीनमतानुसारेण मध्यमस्फुटग्रहयोरन्तरविमर्शः

मध्यमस्पष्टग्रहयोरन्तरज्ञाने प्राचीनमतापेक्षया अर्वाचीनानां न हि कश्चन तात्त्विको भेदः। वस्तुतः ग्रहभ्रमणवृत्तस्य दीर्घवर्तुलाकारत्वस्वीकारे कक्षाप्रतिवृत्तयोः समन्वितां भङ्गिद्वयकल्पनां विहाय ग्रहभ्रमणवृत्तस्य केन्द्रे सूर्यं प्रकल्प्य ततः सूर्यकेन्द्रात् ग्रहाणां मध्यमस्पष्टगतिवशात् मध्यमस्फुटग्रहयोरन्तरविश्लेषणं तैर्कृतम्। 1571 ईस्वीये केपलरमहोदयेन ग्रहगतिसम्बन्धिनो नियमाः प्रतिपादिताः—

(1) **कक्षानियमः** (Law of Orbit) — सर्वेग्रहाः सूर्यनाभिकदीर्घवृत्ते भ्रमन्ति।

(2) **क्षेत्रफलनियमः** (Law of Area)— रविग्रहमध्यमदूररूपकर्णो रविनाभिं परितस्तुल्यकाले तुल्यक्षेत्राक्रमणनियमेन भ्रमति, अर्थात् सूर्यग्रहकेन्द्रगता रेखा समकाले समं क्षेत्रं निर्मातीति द्वितीयो सिद्धान्तः।

(3) **परिक्रमणकालनियमः** (Law of Revolution Period)— मन्दकर्णवर्गघनयोर्निष्पत्तिः समैव। एतेन तु यो ग्रहः सूर्याद् यावन्मितं दूरं तत्परिभ्रमणकालश्च तन्मितमधिकमेवेति तृतीयो नियमः।

अत्र हि ग्रहप्रदक्षिणाकालानां यो वर्गस्तस्य घनमूलं ग्रहमध्यममन्दकर्णो भवतीति नियमः। इत्थं मन्दकर्णघनस्य वर्गमूलं भगणकालो भवतीति केपलरीयतृतीयनियमात् सूर्यतो ग्रहाणामन्तर-रूपमन्दशीघ्रकर्णयोर्ज्ञानं भवति। अतः आधुनिकानां समवाये तु

(1) सूर्याद्ग्रहस्य परमान्तरमुच्चसंज्ञकम्

(2) सूर्याद्ग्रहस्य न्यूनान्तरं नीचसंज्ञकम्

अतः मध्यमस्फुटग्रहयोरन्तरं उच्चनीचकारणभूतमेव अर्वाचीनैरपि स्वीक्रियते, तद्वशात् ग्रहगतौ न्यूनाधिक्यादाधुनिकैः केपलरस्य द्वितीयनियमेनादौ केन्द्रच्युतिज्ञानम् (ecentricity) अर्थात् सू प इत्यस्यमानं ज्ञायते अतः केपलरमहोदयेन ग्रहकर्णवशाच्च्युतिज्ञानेन मध्यमस्पष्टग्रहयोरन्तरं प्रतिपादितम्। एतदनन्तरं 1643 तमे ख्रीस्ताब्दे न्यूटनमहोदयेन गुरुत्वाकर्षणसिद्धान्तः मध्यमस्पष्टग्रहयोरन्तरकारणभूतोऽन्वेषितः, अयमेवाकर्षणसिद्धान्तः प्राचीनभारतीयसिद्धान्तज्योतिषपरम्परायामपि दृश्यते। मध्यमस्पष्टग्रहयोरन्तरकारणभूतस्य गुरुत्वाकर्षणस्येमानि त्रीणि सूत्राणि तैः व्याख्यापितानि यथा—

(1) ग्रहे सूर्याभिमुखं केन्द्रिकं बलं शक्तिविशेषरूपं (आकर्षणम्) प्रचाल्यमानं विद्यते।

(2) आकर्षणवशात् ये ग्रहाः सूर्याभिमुखिनस्सन्ति तेषां परिमाणं सूर्यतो ग्रहान्तरवर्ग-विलोमानुसारं भवति।

(3) आकर्षणमिदं ग्रहद्रव्यमानस्यानुक्रमानुपाती भवति। अर्थाद् सूर्यस्य यथा-यथा सन्निकटत्वं ग्रहाणां जायते

आकर्षणफलमधिकमुत्पद्यते। अतः न्यूटनमहोदयः समर्थयामास यत् आकर्षणशक्तिश्च कर्णवर्गस्य वैलोम्येन भवति। कर्णवर्गाधिक्ये शक्तिह्रासः कर्णवर्गाल्पत्वे शक्तिवृद्धिश्च भवतीति।

अथ च रवेर्यावती शक्तिर्ग्रहे कर्णमार्गेणैव भवति, ग्रहे नान्या शक्तिर्विद्यत इत्युक्ते कर्णस्य लम्बमार्गे न काचिच्छक्तिर्विद्यते। अथ च केपलरीयतृतीयसूत्राद् रवेराकर्षणं ग्रहेषु तुल्यदूरे तुल्यमेवेति। यत्किञ्चिदपि वस्तु वस्त्वन्तरं सदाकर्षति तदाकर्षणशक्तिमानञ्च वस्तुद्वयद्रव्यघातं वस्त्वन्तरदूरवर्गभाजितं भवतीत्याकर्षणसिद्धान्तः। अयमेव सिद्धान्तो गोलीयशक्तिशास्त्रस्य मूलभूतो न्यूटनकालादारभ्य पाश्चात्यखगोलशास्त्रमतीवं विस्तारयामास। अत एव फलानयने आधुनिकैः मन्दनीचोच्चपरिधेः केन्द्रं भूकेन्द्रमेव स्वीक्रियते।[19]

4. मध्यमस्फुटचन्द्रयोरन्तरभूतानामन्येषां कारणानां विमर्शः

उच्चनीचपातादीनां गुरुत्वाकर्षणप्रभावेनान्तरितानां मध्यस्फुटग्रहाणां ज्ञानं मन्दशीघ्रफलसंस्कारेण विक्षेपवशात् दृक्कर्मसंस्कारेण च जायते, परन्तु अन्यान्यपि कानिचन प्रमुखानि अन्तर्भूतकारणानि मध्यमस्फुटग्रहयोस्सन्ति, मानाधिक्यात् सम्प्रति तेषामपि संस्कारः मध्यमग्रहे, किं वा स्फुटग्रहे च सूक्ष्मस्पष्टतायै आवश्यकः प्रतीयते। यथा चन्द्रस्पष्टीकरणे केवलं मन्दफलेन संस्कृतश्चन्द्रः प्राच्यावाच्ययोरुभयत्र च स्पष्टतां नैति। तत्र बहवः संस्काराः अपेक्षितास्सन्ति। चन्द्रस्याधुनिकं मन्दफलं $6^{0}2$ कलाप्रमितं प्राप्यते, अतो मध्यमस्पष्टचन्द्रयोः भेदकारकाः अन्येऽपि हेतवस्सन्तीति ज्ञायते। वस्तुतः चन्द्रस्य गत्यधिकत्वादयं भेदः सुलभतया प्रतीयते, कालान्तरे सर्वेषु ग्रहेष्वेते संस्काराः न्यूनाधिकभेदेन अपेक्ष्यन्ते। अत्र तावत् संक्षेपतया मध्यमस्फुटग्रहयोरन्तभूतकारणानि तज्जन्यसंस्काराश्च उपस्थाप्यन्ते—

(1) **च्युतिसंस्कारः–** च्युतिर्नाम केन्द्रच्युतिः। सूर्यापेक्षयोच्चनीचरेखास्थितिवशात् चन्द्रस्य (Nucleus Diversion) केन्द्रच्युतिः भवति। उच्चगतिव्यभिचारादपि केन्द्रच्युतेरूनाधिक्यं संभवति। अस्मादेव ग्रहाणां मन्दफले भेदो दृश्यते। विशेषतया चन्द्रे अवलोक्यते। अयमेव संस्कारः तुङ्गान्तरसंस्कारेणापि व्यवह्रियते (Orbit Diversion) संस्कृतचन्द्रस्पष्टरव्योर्विचलनवशाज्जायमानमन्तरमपाकरणायायं संस्कारः। एतस्य मानम् 1^{0} 20.2 कलाप्रमितं आधुनिकैः प्रतिपाद्यते।[20] एतच्च सर्वेषां ग्रहाणां भवितुं शक्यते।

(2) **पाक्षिकसंस्कारः (Variation)—** सूर्यस्य प्रतिपक्षे न्यूनाधिक्याकर्षणात् जायमानमन्तरं साध्यते।

(3) **तिथिसंस्कारः (Daily Variation)—** दैनिकसूर्यचन्द्रगत्या ज्जायमानं संस्कारविशेषश्चन्द्रे भवति। वस्तुतो पाक्षिकतिथिसंस्कारयोरेकतस्यैव प्रयोजनं भवति।

(4) **वार्षिकसंस्कारः (Annual Equation)—** वर्षे सूर्यकेन्द्रिकभ्रमणे भूमे उच्चासन्नत्वात् नीचासन्नत्वाच्च यो गतिविकारः वर्षे उत्पद्यते तस्यायं संस्कारः। अयमपि सर्वेषां ग्रहाणां भवतीति ज्ञायते।

(5) **लम्बनीयसंस्कारः (Paralictic Inequality)—** सूर्यविकर्षणेन चन्द्रे गतिभेदोत्पद्यमानः संस्कारः।

(5) **कर्षसंस्कारः–** गुरुत्वाकर्षणप्रभावक्षेत्रं न्यूनाधिकं भवतीत्यस्य संशोधनायायं संस्कारः। ग्रहकक्षायाः सङ्कुचनमानमप्यनेन ज्ञायते।

(6) **किरणवक्रिभवनसंस्कारः (Deviation of Rays)—** वातावरणजन्यकिरणवक्रत्वेन स्पष्टग्रहे दर्शनायोग्यतायाः निराकरणायं संस्कारविशेषः। एवमन्यानि कारणानि सन्ति मध्यमस्फुटग्रहयोरन्तरभूतानि येषां विवेचनं संस्काराणां परिशीलने यथावसरे कृतम्।

➢ निष्कर्षः

मध्यमस्फुटग्रहयोरन्तरभूतं मूलसैद्धान्तिकं कारणमाकर्षणविकर्षणमेव। तदाकर्षणं प्राचीनमतानुसारेणोच्चनीचाभ्यां भवतु नवीनानां च मतानुसारेण सूर्याद्वा भवतु। नव्यैः ग्रहस्फुटीकरणे ये संस्काराः क्रियन्ते तेषु केचन पूर्वाचार्यैः ज्ञाताः परन्तु मुख्यतया त एव संस्काराः तैः स्वीकृताः येषां सुलभतया ज्ञानं स्यात्, स्वल्पान्तरजन्यमन्तरं तैः नाङ्गीकृतम्।

मुञ्जालाचार्येण तु चन्द्रोच्चरव्यन्तरेण तुङ्गान्तरसंस्कारः, रविचन्द्रान्तरेण पाक्षिकसंस्कारः स्फुटचन्द्रसाधने चन्द्रगतिसाधने च कृतः। आचार्यभास्करेण च बीजोपनये ग्रन्थे मध्यस्फुटग्रहयोरन्तरर्भूतानां तत्त्वानां विवेचनं विशदतया विहितम्। अद्यापि वेधवशात् मध्यस्फुटयोरन्तरं सहजतया ज्ञातुं शक्यते तथा चानुदिनं नवीनाः पक्षाः दृष्टिपथि समागच्छन्ति। भारतीयग्रहगणित-परम्परायां म.म. बापूदेवशास्त्रिभिः सुधाकरद्विवेदिभिश्च नूतनसंस्काराणां प्रासङ्गिकतानुमोदिता ग्रहगणितपद्धतिश्च विकसिता। प्राचीनार्वाचीनमध्यमस्फुटग्रहयोर्मौलिकमन्तरं यत् प्राचीनस्पष्टग्रहाः साक्षात्तया भूसापेक्षिकाः नक्षत्रानुरोधेनैव जायन्ते, परमाधुनिकपरम्परायां सूर्यकेन्द्रिकस्फुटग्रहाणां परिणामनं भूसापेक्षे विधीयते। इत्थमुभयत्र इषदन्तरेण साम्यता एव विद्यते। आचार्यकेतकरेणास्य समन्वयश्च स्थापितः।

सन्दर्भाः -

1. ग्र.ग.मी., पृ. 22.
2. लघुमानसे, 3/18-19.
3. केतकीग्रहगणिते, स्प.अ., श्लो.सं. 19-20.
4. के.ग्र.गणिते.स्प.अ., श्लो.सं. 17-18.

5. सि.शि.उ.अ. श्लो.सं. 16.
6. भास्करीयबीजोपनये, श्लो.सं. 29-32.
7. शीघ्रमन्दोच्चपाताख्याः ग्रहाणां गतिहेतवः। (सू.सि.स्प. श्लो.सं. 1)
8. पूर्वापरापकृष्टास्ते गतिं यान्ति पृथग्विधाम्। (सू.सि.स्प. श्लो.सं. 2)
9. सू.सि. स्प. (तत्रैव श्लो.सं. 4-5).
10. उत्तराभिमुखं पातो विक्षिपत्यपरार्द्धगः। ग्रहं प्राग्भगणार्धस्थो याम्यायामपकर्षति।। सू.सि.स्प.अ. 6.
11. भूमेर्मध्ये खलु भवलयस्यापि मध्यं यतः स्यात्, यस्मिन् वृत्ते भ्रमति खचरो नास्य मध्यं कुमध्ये। (सि.शि.गो.छे. 50).
12. भ्रमन्ग्रहः स्वे प्रतिमण्डले नृभिः, सि.शि.गो.छे. श्लो. 20.
13. प्रकल्पितं तुङ्गमिहाद्यसूरिभिः.
14. वासनाभाष्यतः समुद्धृतम्,
15. भारतीयज्योतिषम्, पृ.सं. 478.
16. भौमार्कीज्यविहीनमध्यमरविस्स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्। ग्र.प.ता.स्प. श्लो.सं. 6.
17. अर्कस्य कक्षैव सितज्ञयोः सा ज्ञेया तयोरानयनार्थमेव। उक्ते तयोर्ये चलतुङ्गयोर्ये तत्रैव तौ च भ्रमतोऽर्कगत्या।। सि.शि.म.आ.क.अ. श्लो.सं. 9
18. ज्योतिर्विज्ञानम्, पृ.सं. 25.
19. ग्र.ग.मी., पृ.सं. 11.
20. के.ग्र.ग., तास्प.17-18.

●

संस्कृत रूपकों में वर्णित सूत्रधार का अध्ययन

*डॉ. प्रदीप कुमार**

यद्यपि कि संस्कृत रूपकों में छोटे से छोटे पात्र की अपनी विशिष्ट भूमिका होती है। रङ्गमञ्च पर नट अपनी जिस भूमिका में प्रवेश करता है, उसी भूमिका में रूपक समाप्त होने तक जीता है। ऐसे पात्रों में सूत्रधार का भी वर्णन मिलता है, जिसका प्रवेश रूपक में प्राण डाल देता है।

सूत्रधार का अर्थ- यह दो शब्दों के योग से निर्मित है-

1- सूत्र् धातु से **'अच्'** प्रत्यय करके

सूत्र सु **'अतोऽम्'**[1] सूत्र से सु के स्थान पर **'अम्'**

सूत्र अम् **'अमिपूर्वः'**[2] से सूत्र शब्द के उत्तरवर्ती अकार तथा अम् के अकार के स्थान पर पूर्वरूपेकादेश से **सूत्रम्** शब्द का निर्माण हुआ ।

सूत्रम् जिसका अर्थ होगा-धागा, रेखा, रस्सी, रेशा, तन्तु, पुत्तलिका का तार, धागों की आटी, यज्ञोपवीत, जनेऊ (जो प्रथम तीन वर्ण धारण करते हैं।)[3]

धारः

धृ (धारण करना) धारयति / धारयते ।

धृ कर्मण्यण्[4] से **'अण्'** प्रत्यय करके -

धृ अण् **'अचोञ्णिति'**[5] सूत्र से ऋ को वृद्धि से आ तथा **'उरणरपरः'**[6] से आ के

साथ

रकार का व्यवहार । पुनः-

धार् अ = धार सु पुनः सु के उकार का अनुबन्ध लोप तथा सकार को रुत्व और विसर्ग

धारः ।

इस प्रकार **'सूत्रधार'** शब्द का निमार्ण हुआ । जिसका अर्थ है- स्थापक।

सूत्रधार का लक्षण-

नाटकीयकथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते ।

रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥

..

आसूत्रयन् गुणान्नेतुः कवेरपि च वस्तुनः।

रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधारः स उच्यते ॥[7]

जो सर्वप्रथम रङ्गभूमि में प्रवेश करके नाटकीय कथावस्तु की सूचना देता है,वह सूत्रधार कहलाता है ।

जो सूत्र धारण करता हुआ कवि के गुणों और कथावस्तु का स्थापक तथा रङ्गभूमि की साज-सज्जा का पारखी होता है,वह सूत्रधार कहलाता है।

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।

सूत्रं धारयते यस्तु सूत्रधारः स उच्यते॥[8]

जो नाट्यसम्बन्धी उपकरणों से युक्त रङ्गमञ्च पर सूत्र का स्थापन करता है। तथा सूत्र (जनेऊ) धारण करता है, वह सूत्रधार कहलाता है।

अपि च

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम्।

रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः॥[9]

बीजसहित नाटक के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं। जो उसको धारण करने वाला (सञ्चालन करने वाला) होता है । उसे सूत्रधार कहते हैं ।

सूत्रधारलक्षण के बाद आचार्य धनञ्जय ने कहा-

पूर्वरङ्गं विधायादौ सूत्रधारे विनिर्गते ।

प्रविश्य तद्वदपरः काव्यमास्थापयेन्नटः ॥[10]

प्रारम्भ में पूर्वरङ्ग का कार्य करके सूत्रधार चला जाता है । फिर उसी के जैसा दूसरा नट (अभिनेता) रङ्गमञ्च पर प्रवेश करके काव्य की स्थापना करता है।

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाऽथ विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्॥[11]

जहाँ सूत्रधार (स्थापक) विचित्र उक्ति के द्वारा नटी, पारिपार्शिविक (मार्ष) या विदूषक को प्रस्तुत अर्थ का आक्षेप करने वाला अपना कार्य बतलाता है, वह आमुख (प्रस्तावना) कहलाता है।

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग कला संङ्काय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सुत्रधार का वर्णन नान्दी के बाद आता है,जो प्राचीन पुस्तकों में प्राप्त होता है –

नान्द्यन्ते सूत्रधारः ।

आचार्य विश्वनाथ ने सूत्रधार के विषय में संक्षेप में कहा-

पुर्वरङ्गं विधायैव सूत्रधारो निवर्तते ।

प्रविश्य स्थापकस्तद्वत्काव्यमास्थापयेत्ततः॥[12]

पूर्वरङ्ग का विधान कर सूत्रधार जाता है। तब सूत्रधार के समान स्थापककाव्य का आस्थापन होता है ।

नान्द्यन्ते प्रविशति ततः सूत्रधारः

नान्दी समाप्त हो जाने के बाद सूत्रधार रङ्गमञ्च पर प्रवेश करता है।

अभिज्ञानशाकुल नाटक से-

सूत्रधार- (नेपथ्याभिधानमवलोक्य) आर्ये, यदि नेपथ्याभिधानमवसितम्, इतस्तावदागम्यताम् ।[13]

(नेपथ्य को सामने देखकर) आर्ये, यदि (नेपथ्य-कार्य) नटों की सज्जा सम्पन्न हो गयी हो तो इधर आओ ।

प्रविश्य

नटी- आर्यपुत्र, इयमस्मि (अर्यपुत्र,यह मै उपस्थित हूँ)

सुत्रधार-आर्ये, अभिरूपभूयिष्ठां परिषदियम् । अद्य खलु कालिदासग्रथितवस्तुनाऽभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यस्माभिः । ततः प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः ।[14]

आर्ये ! यह विशिष्ट विद्वानों की बडी सभा है । आज हमें कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञानशाकुन्तल नाम नये नाटक का अभिनय करना है । अतः प्रत्येक पात्र पर ध्यान देना ।

नान्द्यन्ते

रत्नावली नाटिका से-

अलमतिविस्तरेण ! अद्याहं वसन्तोत्सवे सबहुमानमाहूय नानादिग्देशागतेन राज्ञः श्रीहर्षदेवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहेनोक्तो यथा- अस्मत्स्वामिना श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालङ्कृता रत्नावली नाम नाटिका कृता । सा चास्माभिः श्रोत्रपरम्परया श्रुता न तु प्रयोगतो दृष्टा । तत्तस्यैव राज्ञः सकलजनहृदयाह्लादिनो बहुमानादस्मासु चानुग्रहबुद्धया यथावत्प्रयोगेण त्वया नाटयितव्येति । तद्यावदिदानीं नेपथ्यरचनां कृत्वा यथाभिलषितं सम्पादयामि । (परिक्रम्य अवलोक्य च ।) अये आवर्जितानि सकलसामाजिकानां मनांसीति मे निश्श्यः । कुतः-

श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषागुणग्रहिणी लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम् वस्त्वेकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं किं पुनर्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ।[15]

अधिक विस्तार (वर्णन) व्यर्थ है । मुझे आज वसन्तोत्सव पर आदर के साथ बुलाकर अनेक दिशाओं (स्थानों) से आये हुये राजा श्रीहर्षदेव के चरणकमलाश्रित राजाओं के समूह ने कहा है, कि हमारे स्वामी श्रीहर्षदेव ने अपूर्व वस्तु रचना से अलङ्कृत रत्नावली नाम की नाटिका की रचना की है और वह हम लोगों ने तो कानों से सुनी है । पर अभिनय रूप से नहीं देखी है । (तुम) उन्हीं महाराज (श्रीहर्ष) की सभी लोगों के मन को प्रसन्न करने वाली हम (कवि) पर अति सम्मान तथा कृपा बुद्धि से यथोचित अभिनय द्वारा उस नाटिका को अभिनीत करो । अतएव अब जब तक नेपथ्य रचना करके इच्छानुकूल सब कार्य पूर्ण करता हूँ । (घूमकर और देखकर)

अरे ! सभी सामाजिकों (नाटकदर्शकों) के मन हमने अपनी ओर आकर्षित कर लिये हैं । ऐसा मेरा विश्वास है। क्योंकि

श्रीहर्षदेव निपुण कवि हैं, यह परिषद् (दर्शकसभा) भी गुणों को ग्रहण करने वाली है, इस प्रकार एक गुण का होना भी वाञ्छित फल (सफलता) दिलाने वाला होता है । तो फिर यहाँ हमारे सौभाग्य से समस्त गुण एकत्र प्राप्त हो रहे हैं ।

नान्द्यन्ते-

उŸाररामचरित नाटक से-

सूत्रधारः- अलमतिविस्तरेण ! अद्य खलु भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि एवमत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु । अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः।[16]

नान्दी के बाद –

अधिक विस्तार बन्द करो । आज भगवान् कालप्रियानाथ (शंकर) के उत्सव के अवसर पर आदरणीय जनों में भी श्रेष्ठ (आप) महानुभावों को विनम्रता के साथ सूचित कर रहा हूँ । (इस सूचना को) इस प्रकार पूजनीय आप लोग समझें–

आदरणीय काश्यपगोत्र में उत्पन्न, 'श्रीकण्ठ' इस उपाधि से विभूषित, व्याकरण, मीमांसा तथा न्याय के मर्मज्ञ, जतुकर्णी के पुत्र भवभूति नाम वाले (एक कवि) हैं ।

उपसंहृति-

निष्कर्षतः कहा जा सकता है,कि सूत्रधार जो कि रूपक में आदि पात्र के रूप में रङ्गमञ्च पर प्रवेश करके काव्य की स्थापना करता है। वह रूपक का प्रमुख पात्र माना जाता है। वह रूपक चाहे नाटक हो, प्रकरण हो, भाण हो, व्यायोग हो

या प्रहसन हो चाहे उपरूपक का प्रमुख भेद मानी जाने वाली नाटिका हो, सबमें सूत्रधार की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

सन्दर्भ-सूची-

(1) श्रीधरानन्दशास्त्रीयव्याख्याकृत लघुसिद्धान्तकौमुदी/पृ0-223

(2) श्रीधरानन्दशास्त्रीयव्याख्याकृत लघुसिद्धान्तकौमुदी/पृ0127

(3) वामन शिवराम आप्टे कृत संस्कृत-हिन्दी /पृ0/1119

(4) श्रीधरानन्दशास्त्रीयव्याख्याकृत लघुसिद्धान्तकौमुदी/पृ0-727

(5) श्रीधरानन्दशास्त्रीयव्याख्याकृत लघुसिद्धान्तकौमुदी/पृ0-167

(6) श्रीधरानन्दशास्त्रीयव्याख्याकृत लघुसिद्धान्तकौमुदी/पृ0-38

(7) शारदातनयविरचित भावप्रकाशन / पृ0-288

(8) डॉ0रमाशंकरत्रिपाठीव्याख्याकृत उत्तररामचरित,तृतीय संस्करण/1/पृ0-5

(9) डॉ0रमाशंकरत्रिपाठीव्याख्याकृत उत्तररामचरित,तृतीय संस्करण परिशिष्ट भाग/पृ0-561

(10) आचार्य धनञ्जय-विरचित दशरूपक / 3 / 2

(11) आचार्य धनञ्जय-विरचित दशरूपक / 3 / 8

(12) आचार्य विश्वनाथ-विरचित साहित्यदर्पण / 6 / 26

(13) महाकवि कालिदास-विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् / 1 / पृ0-2

(14) महाकवि कालिदास-विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् / 1 / पृ0-3

(15) डॉ0 जयमङ्गलपाण्डेयव्याख्याकृत रत्नावली /1 / पृ0/9

(16) डॉ0रमाशंकरत्रिपाठीव्याख्याकृत उत्तररामचरित,तृतीय संस्करण/1/पृ0-4

●

कालिदाससाहित्ये सङ्गीतम्

डॉ. शोभा मिश्रा[*]

कविताकामिन्याः विलासः कविकुलगुरुः कालिदासो हि नितान्तं कलाप्रियः । एका कला कलान्तरे अलङ्कारत्वं व्रजतीति प्रतीतचरं विदुषां कालिदाससाहित्यस्यानुशीलनेन । तत्र काव्यमपि कलारूपेण प्रतिष्ठितं प्रतिभाति प्रतिपदम् । कालिदासवाङ्मयगतायाः कलायाः शब्दैकसंवेद्यत्वे अपरोक्षज्ञानविषयत्वेऽपि प्रत्यक्षज्ञानविषयता प्रतिभाति सहृदयानाम् । तथ्यमेतत् प्रकाश्यते सनातनकविभिः रेवाप्रसादद्विवेदमहोदयैरेवं स्वकीये कालिदाससमीक्षाविषयके **कालिदासभारती**-ति नाम्नि ग्रन्थविशेषे -

एके सत्कवयः प्रबन्धरचनाशौण्डीर्यधुर्याः परे,
नानारूपकसन्धिबन्धकलनाटोपैकबद्धादराः।
वाचामेव विचित्रगुम्फनविधावन्येऽद्भुता किन्तु यः,
सामग्र्येण समग्रतां कवयतेऽसौ कालिदासः परम् ॥[1]

नृत्यलग्नायाः भगवत्याः सरस्वत्याः उरसि विद्यमानं क्रीडाशैलद्वयं महाकवेरस्य कविताकामिनीं सूते सहृदयैकगोचराम् –

सङ्गीतमथ साहित्यं सरस्वत्याः स्तनद्वयम् ।
एकमापातमधुरम् अन्यदालोचनामृतम् ॥

महामेधसा महाकविना कालिदासेनोपग्रथितानि विश्वप्रसिद्धानि सप्त काव्यरत्नानि । तद्यथा [2]-

खण्डकाव्यद्वयम् - ऋतुसंहारम् (ऋ.) मेघदूतञ्चेति (मे.), **महाकाव्यद्वयम्** – कुमारसम्भवम् (कु.) रघुवंशञ्चेति (र.), **नाटकत्रयम्** - मालविकाग्निमित्रम् (मा)., विक्रमोर्वशीयम् (वि.) अभिज्ञानशाकुन्तलञ्चेति (अ.)।

रघुवंशमहाकाव्ये महाकविः 'ललितकला' इत्यस्य शब्दविशेषस्य प्रयोगं विदधाति । तृणबिन्दुरित्यस्य महर्षेः शापेनाक्रान्ता हरिणी नामा काऽपि अप्सरा दिव्यमात्मानं शरीरं विहाय मर्त्यलोके मनुष्यत्वमगात् । शापोन्मोचनाय तया ऋषिः सम्प्रार्थितः । तत्प्रार्थनां स्वीकृत्य शापादुन्मोचनं भविष्यति तस्याः स्वर्गस्थस्य पुष्पसंपर्केणेति प्रतिश्रुतं महर्षिणा । इन्दुमतीरूपेण अप्सरैषा कोसलाधिपतेः अजस्य अर्धांगिणी अभवदन्यस्मिन् जन्मनि मर्त्ये । देवर्षेः नारदस्य स्वर्गस्थस्य वीणायाः अग्रभागात् च्युता पुष्पमाला मर्त्यलोकस्थां इन्दुमतीं स्पृशति तेन च सा मनुष्यशरीरान्मुक्तिं लेभे । प्रियतमायाः वियोगेनाक्रान्तः अजः इन्दुमतीं सम्बोध्य विलपत्येवं तन्निष्ठं कलाकलापाभ्यासगतं वैशिष्ट्यं प्रकाशयन् –

गृहणी, सचिवः, सखा, मिथः,
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना,
हरता त्वां वद, किं नु मे हृतम्॥ (र. 8.67)

शृङ्गारे भृशं रज्यतोऽन्तःकरणस्यास्य महाकवेः दरीदृश्यते जागरूकता यथावसरं प्रयोगेषु कलानाम् ।

रघुवंशीये[3] पद्यरत्नेऽस्मिन् कलापदेन कामसूत्रस्याङ्गविद्यात्वेन परिगणिताः वादित्राद्यश्चतुःषष्टिः कलाः विनिर्दिष्टाः सन्ति । सनातनकविः रेवाप्रसादद्विवेदी **'कालिदास अपनी बात'** नाम्नि ग्रन्थे ललिते कलाविधाविति प्रयोगं विशदयति – 'अत्र कलया सह सम्बद्धः विधिशब्दः प्रयोगपर एव, कलानां ललितविधिरेव ललिताः प्रयोगाः।'[4] एवमेव मालविकाग्निमित्रे गीतनृत्ययोर्निपुणा मालविकाऽपि ललितविधानेन योजिता विधात्रा –

अव्याजसुन्दरीं तां ललितविधानेन योजयता।
परिकल्पितो विधात्रा बाणः कामस्य विषदिग्धः।।मा.2.13

गीतं नृत्यं च वादित्रं त्रयं सङ्गीतमुच्यते इति परिभाषया कालिदाससाहित्ये उपनिबद्धान् सङ्गीतस्य काञ्चन सन्दर्भानधस्तादुपस्थापयामि –

1. गीतम् – भवत्येतच्चतुर्विधं –

1. **स्वरगम्** , 2. **पदगम्** , 3. **लयगम्**

4. **चेतोवधानगञ्च**।

गीतस्य सर्वेषामपि भेदानां कालिदासीयाः प्रयोगाः प्राप्यन्ते । कुमारसम्भवमहाकाव्यस्यादावेव भगवत्याः सौन्दर्यवर्णनप्रसङ्गे महाकविः कथयति, यदासीद् भगवत्याः पार्वत्याः स्वरः अमृतस्राविं एवम् –

स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव
प्रजल्पितायामभिजातवाचि।
अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा
श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना॥ (कु.1.4)

* एसोसियेट प्रोफेसर, संस्कृतविभागः, विक्रमाजीतसिंह-सनातनधर्म-महाविद्यालयः, नवाबगंज, कानपुर।

कालिदासमते भगवत्याः स्वरेण तिरस्कृतिं लभते वितन्त्री वीणेव ताड्यमानः कोकिलालापोऽपि । अत्र पुनः स्वरगतं वैशिष्ट्यमुपलक्ष्यते संगीतशास्त्रानुमोदितम् ।

भगवती पार्वती भगवन्तमवाप्तुं तपस्तपति । तत्र सैषा भगवती भगवतो पिनाकिनः चरितस्य गीतिक्रमे (वर्णो गीतिक्रमः) स्वकीयैः सबाष्पकण्ठस्खलितैः पदैः वनान्तसङ्गीतसखीः अरोदयत् एवम् -

उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः

सबाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियम्।

अनेकशः किन्नरराजकन्यका

वनान्तसङ्गीतसखीररोदयत्॥ (कु. 5.56)

नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्तांश्च संजायमानः तन्त्रीकण्ठ-जन्मा स्वरविशेषः षड्जः। षड्जोऽयं स्वरः आविष्कृतावस्थायां शुद्ध-विकृतभेदेन च्युत-अच्युतभेदेन वा द्विविधो भवति। मयूरः षड्जं वदति, केका वाणी मयूरस्य भवतीत्येतत् सर्वं जानाति कालिदासः।

पुत्रकाम्यया गुरोर्वसिष्ठस्याश्रमं गच्छतोः दिलीप-सुदक्षिणयोः रथनेमिस्वनोन्मुखैः शिखण्डिभिः षड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः-

मनोऽभिरामाः शृण्वन्तौ

रथनेमिस्वनोन्मुखैः।

ष.ड्जसंवादिनीः केका

द्विधा भिन्ना शिखण्डिभिः।।(र.1.39)

आत्मशास्त्रविदां स्तुतियोग्यः मूर्च्छनापरिगृहीतकैशिकैः किन्नरैः गीतमङ्गलः परमेश्वरः व्यबुध्यत-

स व्यबुध्यत बुधस्तवोचितः

शातकुम्भकमलाकरैः समम्।

मूर्च्छना-परिगृहीत-कैशिकैः

किन्नरैरुषसि गीतमंगलः॥ कु. 8.85

संगीतशास्त्रे मूर्च्छना हि कम्पनयुक्ताः सप्त स्वराः, कैशिकश्च प्रभातकालीनो रागविशेषः।

उर्वश्याः वियोगे उन्मत्ते पुरूरवसि श्रूयन्तेऽनेकाः गीतयः विक्रमोर्वशीयस्य सम्पूर्णेऽपि पञ्चमाङ्के व्याप्ताः - **चर्चरी, खड्गधारा, मल्लघटी, द्विपदी, चतुष्पदी, गलतिका** चेति।

अभिज्ञानशाकुन्तले सङ्गीतशालायां हंसपदिका कलविशुद्धायाः गीतेः स्वरसंयोगात्मकं वर्णपरिचयं करोति (अ. 5.1.3)। चेतोवधानमिति गीतभेदं कालिदासो बहु मन्यते। अभिज्ञानशाकुन्तलस्य पञ्चमे अङ्के शकुन्तलाया विरहाद् उत्कण्ठितः दुष्यन्तः मधुराणां शब्दानां मनसि प्रभावं स्मरति एवम् -

रम्याणि वीक्ष्य मधुराँश्च निशम्य शब्दान्

पर्युत्सुकी भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं

भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥ (अ. 2.1)

2. **नृत्यम्** –नृत्यं द्विविधं भवति– नाट्यमनाट्यञ्चेति। **नाट्यं** ह्यभिनयः स्वर्ग-मर्त्य-पातालादिलोकस्थितानां कार्याणां नटनम्। **अनाट्यं** पुनः नर्तकाश्रितं शुद्धं नृत्यम्.नृत्तरूपं वा भवति ।

2.1 **नाट्यम्-** मालविकाग्निमित्रस्य मङ्गलाचरणे नाट्यस्य वैशिष्ट्यमेवं निरूपयति महाकविरसौ -

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं।

रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम्॥

मा. 1.4

एवमेव – **'प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रम्'** (मा. 1.16.9)

मालविकाग्निमित्रे शिल्पाधिकारे योग्या (1.7.1) मालविका **वाक्यम्, सूचा, अङ्कुरः, शाखा, नाट्यायितम्, निवृत्त्यङ्कुरश्चेति षडङ्गम्**[5] सर्वमनवद्यम् अभिनयं करोति। मालविका उपगानं कृत्वा चतुष्पदवस्तु गायति एवम्-

दुल्लहो पिओ मे तस्सिं भव हिअअ णिरासं,

अम्हो अपंगओ मे परिप्फुरइ किं वि वामओ।

एसो सो चिरदिट्ठो कहं उवणइदव्वो, णाह

मं पराहीणं तुइ परिगणअ सतिण्हं॥

(दुर्लभः प्रियो मे तस्मिन् भव हृदय निराशम्

अहो अपाङ्गो मे परिस्फुरति किमपि वामः।

एष स चिरदृष्टः कथमुपनेतव्यो

नाथ मां पराधीनां त्वयि परिगणय सतृष्णाम्।।) (मा. 2.4)

अत्र-

जनमिमनुक्तं विद्धि नाथेति गेये

वचनम् (वाक्यम्), **अभिनयन्त्या स्वाङ्गनिर्देशपूर्वम्**(अङ्कुरः)।

(मा. 2.5)

हस्तैरन्तर्निहितवचनैः (शाखा) **सूचितः सम्यगर्थः** (सूचा)

पादन्यासो लयमुपगतस्तन्मयत्वं रसेषु (नाट्यायितम्)

शाखायोनिर् मृदुरभिनयः षड्विकल्पानुवृत्त

भावे भावे नुदति विषयान् (निवृत्त्यङ्कुरः) **रागबन्धः स एव॥**

(मा. 2.8)

2.2 अनाट्यम्-

2.2.1 **नृत्यम्-** नृत्यमपि भवति षडङ्गम् । तद्यथा -

I. **करणानि -** स्थानानि, उपकरणानि।

II. **अङ्गहाराः-** अङ्गानां हरणं स्थानान्तरगमनम् एव अङ्गहारः।

III. **विभावाः -** आलम्बनविभावाः, उद्दीपनविभावाः।

IV. **स्थायिभावाः-** रतिः, हासः, शोकः, क्रोधः,

उत्साहः, भयम्, जुगुप्सा, विस्मयः, शमश्चेति नव।

V. **अनुभावाः -** स्वैः स्वैः कारणैः उद्बुद्धं बहिर्भावं प्रकाशयन् कार्यरूपः लोक एवानुभावः।

VI. **रसाः-** शृङ्गारः, हास्यः, करुणः, रौद्रः, वीरः, भयानकः, बीभत्सः, अद्भुतः, शान्तश्चेति नव।

कालिदाससाहित्ये नृत्यस्य सर्वेऽपीमे विशेषाः समुपलभन्ते । सविशेषं मालविकाग्निमित्रस्य द्वितीयेऽङ्के (मा. 2.5, 2.8) प्रयोगनिपुणायाः मालविकायाः उपरि उल्लिखिते नृत्ये सर्वेऽपीमे विशेषाः द्रष्टुं शक्यन्ते। कुमारसम्भवे अप्सरसामाद्यः प्रयोग एवाङ्गहारः ललितः । सोऽसौ विद्योततेतरां शङ्करपार्वत्योः विवाहोत्सवे अप्सरसां नृत्यप्रयोगे एवम् -

तौ सन्धिषु व्यञ्जितवृत्तिभेदं रसान्तरेषु प्रतिबद्धरागम्।

अपश्यतामप्सरसां मुहूर्तं प्रयोगमाद्यं ललिताङ्गहारम्।।कु.7.9

नृत्यप्रयोगस्य सर्वविधवैशिष्ट्यमुपलभ्यते प्रत्यक्षम् अप्सरसां प्रयोगे ।

2.2.2 **नृत्तम्-** नृत्तं हि सजीवद्यूताश्रितायाः मूलकलायाश्चरमो भेदः।

कामसूत्रे[6] भोजराजस्य शृङ्गारप्रकाशे[7] च सन्निहितेयं कला मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधौ किन्तु कालिदाससाहित्ये नृणांताललयाश्रितम् अङ्गसञ्चालनार्थमपि नृत्तमिति पदं प्रयुक्तम् । यथा मालविकाग्निमित्रे –

वामं सन्धिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे

कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्त्रस्तमुक्तं द्वितीयम्।

पादाङ्गुष्ठाऽऽलुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं

नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्द्धम्।।(मा. 2.6)

कालिदासीयेषु पात्रेषु सर्वेऽपि भावाः तैः परिपुष्टाश्च सर्वेऽपि काव्यरसाः प्रकर्षेणोद्भवन्ति- मेघदूते यक्ष-यक्षिण्योः, कुमारसम्भवमहाकाव्ये पित्रोः शिव-पार्वत्योः, रघुवंशमहाकाव्ये अज-इन्दुमत्योः, मालविकग्निमित्रे अग्निमित्र-मालविकयोः, विक्रमोर्वशीये पुरूरवा-उर्वश्योः, अभिज्ञानशाकुन्तले दुष्यन्त-शकुन्तलयोश्च परस्परानुरागरूपा रतिः संयोगे सम्भोगशृङ्गारम् । अजः नवपाणिग्रहणामिन्दुमतीं सदयं बुभुजे-

सदयं बुभुजे महाभुजः

सहसोद्वेगमियं व्रजेदिति ।

अचिरोपनतां स मेदिनीं

नवपाणिग्रहणां वधूमिव ।। र. 8.7

असावेवाजः उपरतायां प्रियायां कथञ्चिदष्टौ वर्षानेव जीवितुं शशाक-

तेनाष्टौ परिगमिताः समाः कथञ्चिद्,

बालत्वादवितथसूनृतेन सूनोः।

सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः प्रियायाः

स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सवैश्च।। र. 8.92

एवमेवाभिज्ञानशाकुन्तले तृतीयेऽङ्के दुष्यन्तशकुन्तलयोः परस्परं वर्द्धितोऽनुरागः द्रष्टव्यः -

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुकः (शा. 3.13),

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वां मां पुनर्दहत्येव।(शा. 3.16),

अपरिक्षतकोमलस्य तावत्

कुसुकस्येव नवस्य कोमलस्य ।

अधरस्य पिपासिता मया ते

सदयं सुन्दरि पीयते रसोऽस्य ।। (शा. 3.23) इत्यादिषु प्रणयापराधाय कृतनिश्चयस्य हस्तिनापुरनरेशस्य तापसकन्यकायामत्यन्तमनुरक्तस्य दुष्यन्तस्योक्तिषु । प्रसङ्गेऽस्मिन् तापसकन्यका शकुन्तलापि स्वीयमनुरागमावरयितुं न शक्नोति । सा दुष्यन्तवदस्ति मदनसन्तप्ता प्रणयाय समुत्कण्ठितहृदया च एवम् -

तुज्झ ण जाणे हिअअं मम उण मअणो दिवा वि रत्तिं वि।

णिग्घिण ! तवइ बलीअं तुइ वुत्तमणोरहाइँ अंगाइँ।।

(तव न जाने हृदय मम पुनर्मदनो दिवापि रात्रावपि।

निर्घृण! तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथान्यङ्गानि।।) अ. 3.15

शकुन्तला प्रणयाय उत्कण्ठितं राजानं दुष्यन्तमेवं सम्बोध्य आत्मानं रक्षति प्रणयापराधाद् अविनयान्वितात् । कामसन्तप्तापि सा विनयं उत वा विवेकं नैव परित्यजति । कथयति च राजानं सम्बोध्य-

पौरव! रक्ख विणअं। मअणसंतत्ता वि ण हु अत्तणो पहवामि। (पौरव! रक्ष विनयम् । मदनसंतप्तापि न खलु आत्मनः प्रभवामि) (अ. 3.22.2) ।

संप्रयोगाङ्गभूतानां कलानां भेदेषु आलिङ्गन-चुम्बन-नखच्छेद्य-दशनच्छेद्य-सीत्कृतानि भृशं प्रयुक्तानि महाकविना। यथा अन्तःक्वणितषट्पदं पद्मं दृष्ट्वोर्वश्याः दशनच्छेद्यं, सीत्कृतं च स्मरति पुरूरवा-

मया दष्टाधरं तस्याः ससीत्करमिवाननम्॥ वि. 4.40

एवमेव कुमारसम्भवे पित्रोः शिवपार्वत्योः विवाहानन्तरं विहारभूमौ गतायां संदृश्यते परस्पराकर्षणादयो शृङ्गारस्य परिपोषकाः अनुभावादयः एवम् -

तौ क्षणं शिथिलितोपगूहनौ दम्पती चलितमानसोर्म्मयः।

पद्मभेदनिपुणाः सिषेविरे गन्धमादनवनान्तमारुताः॥

ऊरुमूलनखराजिमार्गणैस्तत्क्षणं हृतविलोचनो हरः

वाससः प्रशिथिलस्य संयमं कुर्वतीं प्रियतमामवारयत्॥

स प्रजागर-कषाय-लोचनं गाढ-दन्तपद-पीडिताधरम्

आकुलालकमरंस्त रागवान् प्रेक्ष्य भिन्नतिलकं प्रियामुखम्॥

तेन भङ्गिविषमोत्तरच्छदं मध्यपिण्डितविसूत्रमेखलम्।

निर्मलेऽपि शयनं निशात्यये नोज्झितं चरणरागलाञ्छितम्॥

स प्रियामुखरसं दिवानिशं तर्षवृद्धिजननं सिषेविषुः

दर्शनप्रणयिनामदृश्यतामाजगाम विजयानिवेदितः॥

(कु. 8.86-90)

अद्वितीयमेव महाकवेः खण्डकाव्यं मेघदूतं सम्पूर्णमपि विप्रलम्भशृङ्गारवर्णने । खण्डकाव्यस्यास्य पद्येऽस्मिन् सम्भोग-विप्रलम्भयोरेकत्र समावेशः -

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्

कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्।

सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृष्ट-

स्त्वामुत्कण्ठा-विरचित-पदं मन्मुखेनेदमाह॥ (मे.101)

संस्कृतनाटकेषु विदूषकस्य समावेशः नायकस्य मनोविनोदार्थं कविभिर्विधीयते । महाकविः कालिदासोऽपि विदूषकमुखेन शिष्टपरिहासमुपस्थापयति त्रिष्वेव नाटकेषु । मालविकाग्निमित्रस्य कपोतविडालाख्ये चतुर्थेऽङ्के विदिशाधीशस्य अग्निमित्रस्य अभिन्नमित्रस्य माणवकनाम्नः विदूषकस्य संवादेषु हास्यरससन्निवेशः भृशं प्राप्यते (मा. 4.16.16 – 21) ।

विक्रमोर्वशीये एवमेव माणवको नाम विदूषकः उर्वशी-चित्रलेखयोः संवादप्रसङ्गे स्वाभाविकं परिहासं प्रस्तौति (वि. 3.10.20- 3.12.7) ।

अभिज्ञानशाकुन्तले माधव्यो नाम विदूषकः नितान्तं मनोहरं परिहासं करोति यदा तपस्विकन्यायामासक्तो राजा हस्तिनापुरतः समागतात् करभक-नाम्नः दूतात् मातरः सन्देशं प्राप्नोति आगामिनि चतुर्थे दिवसे पुत्रपिण्डपालन-नाम्नः उपवासस्य पारणायां राज्ञः उपस्थितिविषयकम् (अ.18.15)। एकत्र गुरुजनाज्ञापरवशः अपरत्र च मुनिकन्यायामासक्तो राजा हस्तिनापुरं प्रेषयति आत्मनः प्रतिनिधिरूपेण माधव्यम् । सोऽसौ माधव्यः बह्वत्र परिहसति अवसरं लब्ध्वा (अ. 2.18.16-2.19.7)। मित्रस्य दुष्यन्तस्यानुरोधं स्वीकृत्य माधव्यः तस्य अनुजरूपेण तेन चात्मानं युवराजं परिकल्प्य हस्तिनापुरं गच्छति मातृणामुपवासपारणायाम् आत्मानमुपस्थापयितुमेवम् – (अ. 2.19.4)

तेन हि जह राआणुएण गंतव्वं तह गच्छेमि

(तेन हि यथा राजानुजेन गन्तव्यं तथा गच्छामि) ।

रघुवंशमहाकाव्येऽष्टमे सर्गे दिवङ्गतायाम् इन्दुमत्याम् अजस्य धृतिरस्तमिता, रतिश्च्युता, गेयं विरतम्, ऋतुः निरुत्सवः आभरणप्रयोजनं गतम्, शयनीयञ्चिरशून्यञ्च सञ्जातानि। अत्र अजस्य विलापेन (र. 8.40-93) करुणापि करुणायते।

रघुवंशमहाकाव्ये दिलीप-रघु-अज-दशरथ-श्रीरामचन्द्र-प्रभृतीनाम् इक्ष्वाकुवंशोद्भवानां राज्ञां सर्वेषु युद्धेषु वीर-रौद्रयोः रसयोः परिपाकाः परिदृश्यन्ते । इन्दुमतीं स्वयंवरे उपयम्य प्रत्यागच्छति अजः कोसलदेशम् । सर्वेऽपि स्वयंवरे सौन्दर्यप्रतिस्पर्द्धायां तेन पराजिताः योद्धुकामाः राजानः विदर्भदेशाद् बहिरागतस्य तस्य मार्गमवरुन्धन्ति । संग्रामः प्रवर्तते किन्तु अहिंसामवलम्ब्य । अजः विचन्तयति यदि नरसंहारो विधीयते संयुगे शत्रुपक्षीयाणां तर्हि सद्यः विवाहिता इन्दुमतिरुद्विग्ना भविष्यति तन्निष्ठां बीभत्सतां पश्यन्ती। अत एव असौ - **न चारिहिंसा विजयश्च हस्ते** – इत्येवं युद्धं विदधाति। कविरत्र युद्धं वर्णयत्येवम् -

पत्तिः पदातिः रथिनं रथेश-

स्तुरङ्गसादीतुरगाधिरूढम्।

यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थं

तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्॥ (र. 7.37)

रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान्

दृप्तं स राजन्यकमेकवीरः।

विलोडयामास महावराहः

कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः॥ (र. 7.56)

महावराहः यथा कल्पक्षये समुद्रं विलोडयामास तथैव अजोऽपि दृप्तं शत्रुपक्षं विलोडयामास एव न पुनः प्राणानहरत् ।

इन्दुमतीस्वयम्वरानन्तरमजेन सह तन्मार्गावरोधनाय उपस्थितानां स्वयंवरे पराजितानां प्रतिद्वन्द्विनां राज्ञां युद्धवर्णनप्रसङ्गे वीररसेन सह बीभत्समपि रसयति कविः सविस्तमेवम् -

शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या

च्युतैः शिरस्त्रैश्चषकोत्तरेव।

रणक्षितिः शोणितमद्यकुल्या

रराज मृत्योरिव पानभूमिः॥ (र. 7.49)

उपात्तयोर्निष्कुषितं विहङ्गै-

राक्षिप्य तेभ्यः पिशितप्रियाऽपि।

केयूरकोटिक्षततालुदेशा

शिवा भुजच्छेदमपाचकार॥ (र. 7.50)

कश्चिद् द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः

सद्यो विमानप्रभुतामुपेत्य।

वामाङ्कसंसक्तसुराङ्गनः स्वं

नृत्यत्कबन्धं समरे ददर्श॥ (र. 7.51)

रघुवंशमहाकाव्ये एवमेव सीतास्वयंवरानन्तरं महादेवस्य धनुर्भङ्गेन संक्रोधितः परशुरामो भार्गवः जमदग्निपुत्रः युद्धाय प्रवर्तते रामेण सह । क्षत्रियाणां शोणितेन पितृणां तर्पणाय प्रसिद्धस्य भार्गवस्यागमनस्य रौद्ररसगर्भां सूचनां ददति शिवाः एवम् –

भास्करश्च दिशमध्युवास यां तां श्रिताः प्रतिभयं ववासिरे ।

क्षत्रशोणितपितृक्रियोचितं चोदयन्त्य इव भार्गवं शिवाः ॥

(र. 11.60)।

मालविकाग्निमित्रे प्रतिरोधकानाम् आपार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि अनीकं दृष्ट्वा मालविका विभेति एवम्–

तूणीरपट्टपरिणद्धभुजान्तराल-

मापार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि ।

कोदण्डपाणि निनदत् प्रतिरोधकाना-

मापातदुष्प्रसहमाविरभूदनीकम् ॥ (5.10)

कुमारसम्भवे आत्मानमात्मन्यवलोकयन्तमक्षरं शिवं दृष्ट्वा कामो बिभेति एवम्-

स्मरस्तथाभूतमयुग्मनेत्रं

पश्यन्नदूरान्मनसाऽप्यधृष्यम्।

नाऽलक्षयत् साध्वससन्नहस्तः

स्रस्तं शरं चापमपि स्वहस्तात्॥ कु. 3.51

अभिज्ञानशाकुन्तले प्रथमेऽङ्के शरपतनभयात् स्यन्दनालोकभीतस्य सारङ्गस्य (1.7) गजस्य च (अ. 1.30) स्वाभाविकं भयं प्रदर्शितमस्ति महाकविना सहृदयमनःप्रसादाय –

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः

पश्चार्धेन प्रवृष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।

दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा

पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥

(अ.1.7)

तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धभग्नैकदन्तः

पादाकृष्टव्रततिवलयाऽऽसङ्गसञ्जातपाशः ।

मूर्त्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो

धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः ॥

(अ.1.30)

उपात्तविद्यः वरन्तुशिष्यः गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः यदा विहिताध्वं रघुं चतुर्दशकोटिं वित्तं (निष्कं) याचते तदा जगदेकनाथः रघुः गुर्वर्थमर्थिने पारदृश्वने कौत्साय दातुं गामात्तसारामवेक्ष्य कुबेरादर्थं निष्क्रष्टुं प्रदोषे प्रयान्तुं वशिष्ठमन्त्रोक्षणजात् प्रभावादुदन्वदाकाशमहीधरेष्वक्षुण्णगतिं कल्पितमस्त्रगर्भं रथमधिशेते। समुपस्थिते प्रातःकाले प्रयाणाभिमुखाय तस्मै कोशगृहे नियुक्ताः जनाः सविस्मयं सूचयन्ति **'कोशगृहस्य मध्ये नभस्तः पतितां हिरण्यमयीं वृष्टिम्'**। अद्वितीयोऽयमद्भुतरसस्य प्रसङ्गः यत्र धनाधिपतिः कुबेरः स्वयमेव अपर्याप्तां सुवर्णस्य वृष्टिं विदधाति मर्त्यलोके राज्ञः अध्वरदानरिक्तस्य कोशस्य परिपूरणाय –

प्रातः प्रायाणाभिमुखाय तस्मै

सविस्मयाः कोषगृहे नियुक्ताः ।

हिरण्मयीं कोषगृहस्य मध्ये

वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः ॥ र. 5.29 ॥

शान्तरसोऽपि कालिदासायात्यन्तं रोचते। रघुवंशे प्रत्येकं प्रतापी राजा वयस्योत्तरार्द्धे शान्तिमार्गममेवानुसरति–

प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः संनिवृत्तं,

विजयमनभिनन्द्य श्लाघ्यजायासमेतम्।

तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोऽभू-

न्नहि सति कुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय ॥ (र. 7.71)

अभिज्ञानशाकुन्तले महर्षेः कण्वस्याश्रमं नितान्तं शान्तमस्ति। यथानुभवति दुष्यन्त **'शान्तमिदमाश्रमपदम्'** (अ. 1.15) इति उद्गिरन् । अत्रैव एवमुपदिशति काश्यपः शकुन्तलाम् -

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी

दौःष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य ।

भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं

शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्॥ (अ. 4.20)

काश्यपस्याश्रमे तपस्तपताम् ऋषीणां स्वरूपं शान्तरसावकीर्णं कविना उपवर्ण्यते एवम् –

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने

तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्म्याऽभिषेकक्रिया ।

ध्यानं रत्नशिलागृहेषु विबुधस्त्रीसंन्निधौ संयमो

यत्काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयः तस्मिन् तपस्यन्त्यमी॥

(अ. 7.12)

3. वाद्यम् – भवति हि वाद्यं चतुर्विधम् । भरतमुनिः नाट्यशास्त्रस्य षष्ठेऽध्याये वाद्यवृन्दाय आतोद्यमिति पदं प्रयुङ्क्ते प्रस्तौति च आतोद्याय भेदचतुष्टयम् –

ततं चैवावनद्धं च, घनं सुषिरमेव च ।

चतुर्विधं च विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम् ॥

ततं तन्त्रीगतं ज्ञेयमवनद्धन्तु पौष्करम् ।

घनस्तु तालो विज्ञेयः सुषिरो वंश एव च ॥

(6.27-28)

घनं च विततं वाद्यं ततं सुषिरमेव च, कांस्य-पुष्कर-तन्त्रीभिर्वेणुना च यथाक्रमम् इति व्याख्यया -

1. **घनम् –** शब्दोत्पादकं घण्टा-मञ्जीरादि (कांस्य)
2. **विततम् –** विस्तृतः ध्वनिर्यस्मात् तत् – जलतरङ्गः (पुष्कर)
3. **ततम् –** तन्त्रीवाद्यम् – वीणा (सितार) (तन्त्री)
4. **सुषिरम् –** वेणुः (वंशी)

महाकविः कालिदासः वाद्यानां विविधान् प्रकारान् बहुधोपस्थापयति। तद्यथा-

भरतस्तत्र गन्धर्वान् युधि निर्जित्य केवलम्।

आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधम्।।र.15.88

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा

सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद् वीणिभिर् मुक्तमार्गः।मे. 45

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः

संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः।

निर्ह्रादी ते मुरज इव चेत् कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्

सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।।मे. 56

वेणुः वीणा द्वयोरेवैकत्र प्रयोगः प्राप्यते रघुवंशे-

वेणुना दशनपीडिताधरा

वीणया नखपदाङ्कितोरवः ॥ र. 19.35

कीचकाः वंशीवाद्यवद् व्यवहरन्ति वायुना पूरितरन्ध्राः -

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः

कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्।

शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चै-

रुद्गीयमानं वनदेवताभिः॥ र. 2.12

रघुवंशे माण्डकर्णेः ऋषेः पञ्चाप्सरसि स्थितात् सौधाद् संगीतस्य अंगभूतः मृदंगघोषः समुद्गच्छति -

तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः

प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः।

वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः

क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति॥ र. 13.40

महाकविमते उद्गायन्तीनां किन्नरीणां तानप्रदानाय हिमालयः कीचकरन्ध्रभागान् पूरयति वेणुवदेवं कुमारसम्भवे -

यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान्

दरीमुखोत्थेन समीरणेन।

उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां

तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम्॥ कु. 1.8

अरुणगिरिनाथः कीचकस्य व्याख्यानं विदधाति स्वकीयायां टीकायां प्रकाशाख्यायामेवम्-

'कीचकाः वेणवः । 'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनलोद्धाः' इति सिंहः । किन्नरा अश्वमुखा देवगायना इति दक्षिणावर्तः । तानो नामोद्गातव्यस्य स्वरादेरियत्तापरिच्छेदः। स चांशस्वर उच्यते । अत्राभिनगुप्तः -

द्विकत्रिकाचतुष्काः स्युर्ज्ञेया वंशगताः स्वराः ।

अधोऽधस्तारतां प्राप्तास्तानास्त्वंशस्वरो मतः ॥

अंशस्वरलक्षणे भरतः -

रागोऽस्मिन् निवसति यस्माच्चापि प्रवर्तते ।

नेता च तारमन्द्राणां योऽत्यर्थं चोपलभ्यते ॥

ग्राहोपन्यासविन्याससंन्याससन्यासगोचरः ।

अनुवृत्तश्च यश्चेह सोंऽशः स्याद् दशलक्षणः। इति ॥

तानप्रदानं च वंशेनैव कार्यम् ।

गाता यं यं स्वरं गच्छेत् तं तं वंशेन वादयेदि'ति भरतः।'[8]

मालविकाग्निमित्रे पुनः पुरूरवा मालविकायाः नृत्यप्रयोगप्रसङ्गे मुरजवाद्यरवं श्रुत्वा त्वरां विदधते एवम्-

धैर्यावलम्बिनमपि त्वरयति मां मुरजावाद्यरवोऽयम्।

अवतरतः सिद्धिपथं शब्दः स्वरमनोरथस्येव।।मा.1.22

अस्मिन्नेव प्रसंगे राजा पुरूरवा पूर्वं पुष्करवाद्यस्य ध्वनिं शृणोति-

जीमूतस्तनितविशङ्किभिर्मयूरै-

रुद्ग्रीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य।

निर्ह्रादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था

मायूरी मदयति मार्ज्जना मनांसि।।मा. 1.21

एतत् सम्पूर्णमपि सङ्गीतकं मालविकायाः नृत्यप्रस्तुतेः पूर्वं संजायते। गणदास-हरदत्तयोः नाट्याचार्ययोः नाट्यवैशिष्ट्यं प्रमाणीकर्तुं प्रस्तोष्यमाणां मालविकायाः नृत्यप्रस्तुतिं द्रष्टुकामो राजा अत्यन्तं समुत्कण्ठितोऽत्र।

रघुवंशमहाकाव्यस्य षोडशसर्गे वाद्यम् इत्यस्य शब्दस्य प्रयोगः समुपलभ्यते। अत्र पुनः ततवाद्यरूपेण प्रसिद्धस्य मृदङ्गवाद्यस्य उल्लेखः वर्तते-

तीरस्थलीबर्हिभिरुत्कलापैः

प्रस्निग्धकेकैरभिनद्यमानम्।

श्रोत्रेषु समूर्च्छति रक्तमासां

गीतानुगं वारिमृदङ्गवाद्यम्।।र. 16.64

कोसलाधिपतिः कुशः अयोध्यानगर्याः समुद्धारं विधाय तत्रैव जलक्रीडां करोति । पश्यति सोऽसौ तत्रैव जलक्रीडायां संरक्ताः राजकुलस्त्रियः। वारिमृदङ्गशब्दस्य प्रयोगोऽत्र वैशिष्ट्यं जनयति । गीतानुरक्तास्ताः वारिमृदङ्गं वादयन्ति गीतानुगम् अत्यन्तं मधुरम् ।

'कालिदास अपनी बात' ग्रन्थे **'कालिदाससाहित्ये कले'**-ति शीर्षके सनातनकविः चित्रकला, नृत्यम्, वाद्यम् वास्तुकला चेति चतसृणां कलानां कालिदासीयान् सन्दर्भानुपस्थापयति। आचार्यः हरिदामोदरवेणलकरमहोदयः साहित्य- अकादमीतः प्रकाशितस्य विक्रमोर्वशीयस्य भूमिकायां विक्रमोर्वशीयस्य गीतीः विस्तरेण निरूपयति। कालिदाससाहित्ये संगीतविद्यामधिकृत्य आचार्या सुषमाकुलश्रेष्ठमहाभागा समपादयदत्यन्तं महत्वपूर्णं कमपि ग्रन्थरत्नम्। कालिदाससाहित्ये संगीतविद्यायाः परिचयाय इमे सर्वेऽपि ग्रन्था अध्ययनीयाः सन्ति। एवञ्च **'कालिदासशब्दानुक्रमकोशः'**[9] इत्यस्मिन् कोशग्रन्थे काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य कलासङ्कायान्तर्गतस्य संस्कृतविभागस्य आचार्यः सदाशिवकुमारद्विवेदी कालिदासीये सम्पूर्णेऽपि वाङ्मये समुपलब्धान् सङ्गीत–संगीद–पदयोः सर्वान् सन्दर्भान् संकलय्य प्रस्तौति । अत्र संगीतविषयकाः संगीतकापदेशम्, संगीतरचनाम्, संगीतव्यापारम्, संगीतसहकारिणी, संगीतशालाम् इत्यादय अन्येऽपि सन्दर्भाः कोशनिर्मात्रा प्रस्तुताः सन्ति ।[7]

कालिदाससाहित्ये सङ्गीतशास्त्रविषयका अनेके विशिष्टसन्दर्भाः महाकवेरस्य सङ्गीतशास्त्रविषयिणीमनुरक्तिम् अभिव्यञ्जयन्ति। महाकविरसौ समावेशयति सङ्गीतस्य प्रयोगविशेषान् काव्यनाट्योभयविधरचनासु प्रसङ्गविशेषेषु तत्र लालित्यमुत्पादनाय सहृदयहृदयावर्जनाय च ।

सन्दर्भग्रन्थाः -

1. **कालिदासभारती** – रचयिता रेवाप्रसादद्विवेदी, प्रकाशकम्- कालिदाससंस्थानम्, 28 महामनापुरी, वाराणसी- 221005, प्रकाशनवर्षम्-2005, पृष्ठसंख्या-1
2. **कालिदासग्रन्थावली** (काव्यखण्डं नाट्यखण्डमिति भागद्वयात्मकं, हिन्दीभाषानुवादसहितञ्च तृतीयं संस्करणम्) प्रधानसम्पादकः मिथिलाप्रसादत्रिपाठी, सम्पादकोऽनुवादकश्च रेवाप्रसादद्विवेदी, सहायकसम्पादकः सदाशिवकुमारो द्विवेदी, प्रकाशिका- कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जयिनी, प्रकाशनवर्षम् 2008।
3. **रघुवंशम्–** आचार्यमल्लिनाथकृता संजीविनीटीकासहितम्, हरिदामोदरवेलणकरकृता भूमिकायुतम्, सम्पादकः नारायणराम आचार्यः, प्रकाशकः निर्णयसागरमुद्रणालयः, मुम्बई-2, प्रकाशनवर्षम्- 1948, एकादशं संस्करणम्।
4. **कालिदास अपनी बात** – रचयिता रेवाप्रसादद्विवेदी, सम्पादकः सदाशिवकुमारो द्विवेदी, प्रकाशनम् – कालिदाससंस्थानम्, वाराणसी-5 प्रकशनवर्षम्-2005, पृष्ठसंख्या-260।
5. **नाट्यशास्त्रम्** (खण्ड-1, काव्यलक्षणखण्डः), आचार्यः भरतमुनिः, सम्पादकोऽनुवादकः टिप्पणीकारश्च रेवाप्रसादो द्विवेदी, प्रकाशकम् – भारतीय उच्च अध्ययन संस्थानम् (घ्र्ीह घ्ह्रूल्ल र्द्न्हिम् एल्ल), शिमला, प्रथमं संस्करणम्– 2005, 22.40-47 पृष्ठ संख्या- 592-595
6. **कामसूत्रम्–** (प्रथम-द्वितीयभागात्मकं जयमंगलाटीकोपेतञ्च), महर्षिः वात्स्यायनः, टीककारः यशोधराचार्यः, सम्पादकः श्रीमाधवाचार्यः, प्रकाशनम्– श्रीखेमराजश्रीकृष्णदासप्रकाशनम्, बम्बई, ई0 1999, पृ0 84-87।
7. **शृङ्गारप्रकाशः-** (प्रथम-द्वितीयभागद्वयात्मकः), भोजराजः, सम्पादकः रेवाप्रसादो द्विवेदी, सहायकसम्पादकः सदाशिवकुमारो द्विवेदी, प्रकाशकद्वयम् – इन्दिरागांधीराष्ट्रीयकलाकेन्द्रम् , नई दिल्ली, कालिदाससंस्थानम् , 28 महामनापुरी, वाराणसी 221005, ई0 2007, पृ. 957-965
8. **कुमारसम्भवमहाकाव्यम्-** प्रकाशिका-विवरणाख्यव्याख्याद्वयोपेतम् । सम्पादकः रेवाप्रसादद्विवेदी, प्रकाशकः सम्पूर्णानन्दसंस्कृत-विश्वविद्यालयः, 2004, पृष्ठ 14 ।

9. **कालिदासशब्दानुक्रमकोशः** (Word-Index of Kalidas Literature) (कालिदाससाहित्यमूलपाठसहितः), सम्पादकः रेवाप्रसादो द्विवेदी, कोशनिर्माता सदाशिवकुमारो द्विवेदी, प्रकाशकम्-कालिदाससंस्थानम्, 28 महामनापुरी, वाराणसी-221005, ई. 2017, पृष्ठ. 456, 462 ।

सङ्गीत- सङ्गीतं कु0 5.56; मे0 56; रे0 13.40; मा0 2.1.2; शा0 5.1.3; संगीताय मे0 63

सङ्गीतरचन– याम् मा0 2.1.2

सङ्गीतार्थः मे0 56

सङ्गीतार्थप्रहतमुरजाः मे0 63 (पा.)

संगीतक- संगीतकम् मा0 1.2.5, 1.21.3, 5.10.17; संगीदेए (संगीतके) मा0 5.10.15;

संगीदं (संगीतं) मा0 1.4.5, 1.4.25, 1.20.11, 5.10.17; वि0 2.1.6; द्र. सङ्गीतं

संगीदआपदेसं (संगीतकापदेशम्) मा0 1.17.7

संगीदरअणं (सङ्गीरचनाम्) मा0 1.20.11

संगीदव्ववारं (सङ्गीतव्यापारम्) वि0 2.1.6

संगीद- सहआरिणी (संगीतसहकारिणी) मा0 5.10.17

संगीदसालं (संगीतशालम्) मा0 1.4.5

संगीदसालब्भंतरे (संगीतशालाभ्यन्तरे) शा0 5.1.3/संगीदसालांतरे (संगीतशालान्तरे) शा0 5.1.3 (पा.)

संगीतसालादो (संगीतशालातः) मा0 1.4.25

●

''राश्युदयमानस्य तुलनात्मकमध्ययनम्''

*डॉ. शत्रुघ्नत्रिपाठी**

कल्पितक्रान्तिवृत्तस्य द्वादशात्मकविभागस्य उदये (क्षितिजोदये) यत् मानं लगति तदेव राश्युदयमानमिति संज्ञा। तच्च द्विविधं भवति लंकोदयमानं स्वोदयमानञ्च। पण्डितप्रवरमुरलीधरठक्कुरमहोदयेन लिखितमस्ति यत् प्रतिभागबिन्दुगतानां ध्रुवप्रोतवृत्तानां मध्ये द्वयोर्द्वयोर्ध्रुवप्रोतवृत्तयोरन्तरे नाडीमण्डले ये किलासवः त एव तदवच्छिन्नराशीनां निरक्षोदयासवो भवन्ति। भास्कराचार्यः गोलाध्याये आदौ प्रश्नमाह –

भवलयस्य किलार्कलवाः समा, किमसमैरसमयैः खलु राशयः।

समुपयान्त्युदयं किमु गोलविद् न विषयेष्वखिलेष्वपि ते समा॥[1]

यदि सामान्यरूपेण विचार्यते चेत् कल्पितक्रान्तिवृत्तस्य द्वादशांशो भागः राशिः प्रवहवायुना 60 घटिभिः एकं भ्रमणं करोत्यत्र. , तदा 60 ÷ 12 = 5 घटिकोदयः एकराशे उदयमानमायाति परञ्चात्र निरक्षदेशेऽपि द्वादशभागानामुदयमाने महदन्तरमवलोक्यते प्रत्यक्षश्लोकपरम्परायाम्। तत् कथमिति? मानं किमिति? अन्यदेशे किमिति? बहवः पक्षाः विचारणीयाः सन्त्यत्र।

राश्युदयमानसंसाधने यानि महत्वपूर्ण उपकरणभूतानि तथ्यानि सन्ति, तेषां चर्चाऽत्र क्रियते-

क्रान्तिवृत्तम्	द्युज्या
नाडीवृत्तम्	ज्याज्ञानम्
गोलसन्धिः	चरखण्डः
अहोरात्रवृत्तम्	चापज्ञानम्
स्वक्षितिजम्	क्रान्तिज्या
निरक्षक्षितिजम्	पलभा
त्रिज्या	निरक्षदेशः
	स्वदेशः

इदानीं राश्युदयस्य साधनस्य प्रधानभूतकारणानि कान्यत्र विच्चार्यन्ते, यतोहि कारणं विना कार्यं नोत्पद्यते, अतोऽत्र आलेखमाध्यमेन प्रदर्शनमत्र क्रियते।

राश्युदयसाधनकारणानि

नाडीवृत्तम् (कालमानम्) → असवः/पलम्

क्रान्तिवृत्तम् (ग्रहस्थानम्) → कला

स्थानम् → चरखण्डः → अन्तरम्

प्रायः सर्वेष्वपि सिद्धान्तग्रन्थेषु राश्युदयासूनां साधनप्रक्रिया समाना एव, परञ्च केवलं शब्दभेदाद् ग्रन्थान्तरे भेदः दृश्यतेऽत्र। सर्वतोभावेन सरलग्रन्थसूर्यसिद्धान्तानुसारमत्र राश्युदयासूनां साधनं संक्षेपेण क्रियते।

राश्युदयासूनां साधनम् –

त्रिभद्युकर्णार्धगुणाः स्वाहोरात्रार्धभाजिताः।

क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक् – पृथक्॥

स्वाधोऽधः परिशोध्योऽथ मेषाल्लङ्कोदयासवः।[2]

श्लोकस्य सूत्रार्थः-

(क) $$\frac{\text{एकराशिज्या} \times \text{परमाल्पद्युज्या}}{\text{एकराशिद्युज्या}} = \text{चापं (मेषस्य)}$$

(ख) $$\frac{\text{द्विराशिज्या} \times \text{परमाल्पद्युज्या}}{\text{द्विराशिद्युज्या}} = \text{चापं (वृषस्य)}$$

(ग) $$\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्पद्युज्या}}{\text{परमाल्पद्युज्या}} = \text{चापं (मिथुनस्य)}$$

= वृषस्य चापं – मेषस्य चापं = वृषस्य उदयासवः

मिथुनस्य चापं – वृषस्य चापं = मिथुनस्य उदयासवः

मेषस्य चापं = मेषस्य उदयासवः,

* आचार्यः, ज्योतिषविभागः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः

गणितीयपरम्परया क्षेत्रयोः साजात्यात् अनुपातः -

(1) $\dfrac{\text{परमाल्पधुज्या} \times \text{ज्या 1 रा}}{\text{मेषान्तधुज्या}}$ = नाडीवृत्ते एकराश्युदयासुज्या

(2) $\dfrac{\text{परमाल्पधुज्या} \times \text{ज्या 2 रा}}{\text{वृषान्तधुज्या}}$ = नाडीवृत्ते द्विराश्युदयासुज्या

(3) $\dfrac{\text{परमाल्पधुज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{मिथुनान्तधुज्या}}$ = नाडीवृत्ते राशित्रयोदयासुज्या

अत्र राशित्रयोदयासुज्या – द्विराश्युदयासुज्या

= मिथुनोदयासुज्या एवमेव

द्विराश्युदयासुज्या – एकराश्युदयासुज्या

= वृषोदयासुज्या सिद्धयति।

यथोदाहरणम् –[3क]

(1) मेषोदयासुसाधनम् -

परमाल्पद्युज्या = 3141, ज्यां 30^0 = 1719

मेषान्तद्युज्या = 3366

पूर्वोक्तसूत्रेण –

$$\frac{3141 \times 1719}{3366}$$

= 1604 अस्य चापं अस्वात्मके = 1671 सिद्धयति

एवमेव

(2) वृषोदयासुसाधनम् - ज्या 60^0 = 1966,

परमाल्पद्युज्या = 3141, वृषान्तद्युज्या = 3212

$$= \frac{3141 \times 2977}{3218/3318}$$

= 2905 अस्य चापं = 3463/3465

अत्र मेषोदयासु शोधिते सति

3463 – 1671 = 1762, 1795 सिद्धयति

¼ **3** ½ feFkqukn;k l|l k/kue-

ज्या 90^0 = 3438,

परमाल्पद्युज्या = 3141, वृषान्तद्युज्या = 3141

$$= \frac{3141 \times 3438}{3141}$$

= 3438 अस्य असव = 5400

अत्र मेषोदयासु शोधिते सति

5400 – 3463 = 1937 सिद्धयति

अत्र शून्यादारभ्य चक्रांश परिमितं यावत् ग्रहभोगांशादीनां स्थितिः कीदृशी भवति। अत्रआचार्यमहावीरप्रसादश्रीवास्तवेन सूर्यसिद्धान्तस्य टीकायां सम्यक् प्रतिपादितमस्ति।

ग्रहाणां भोगांशादीनां चक्रम् -[3ख]

भोगांशः	**विषुवांशः**	**क्रान्तिः (उत्तरा)**
0	0-0	0-0
30	27:55	11:29
60	57:49	20:10
90	90:00	23:27
120	122:11	20:10
150	152:5	11:29
180	180:00	0-0
		क्रान्तिः (दक्षिणा)
210	207:55	11:29
240	237:49	20:10
270	270:00	23:27
300	302:11	20:10
330	332:5	11:29
360	360:00	0-0

अस्मिन् प्रसङ्गे भास्कराचार्येण होराद्रेष्काणादीनां साधनार्थ असूनां साधनविधिः प्रतिपादितमस्ति (तस्य भावार्थः) तद्यथा -

$$\frac{30^0}{2} = 15^0 \text{ होरा 1,}$$

$$= \frac{90^0}{15} = 6 \text{ होराज्या भवन्ति}$$

$$= \frac{3141 \times 15^0 \text{ ज्या}}{15^0 \text{ द्युज्या}} = \text{एवमत्र फलं}$$

चापं अधोऽधः षष्ठात पञ्चमं, पञ्चमात् चतुर्थं, चतुर्थात् तृतीयं, तृतीयात् द्वितीयं, द्वितीयात् प्रथमं विशोधनेन होरोदयासवः भवन्ति। एवमेव-

$\frac{30^0}{90^0}$ = 10^0 ज्या, 10^0 एकज्या कल्पयित्वा द्रेष्काणोदयासवः साधनीयानि ते

$\frac{90^0}{10}$ = 9 भवन्ति। एवमत्र सम्पूर्णहोरासवः = 12 × 2 = 24 द्रेष्काणासवश्च 12× 3 = 36 भवन्ति।

<u>विविधमतानुसारेणात्र प्रदर्श्यते तुलनात्मकं राश्युदयमानम् (अस्वात्मक-मिनिटात्मकपरिमाणयो) -</u>

ग्रन्थः	मेषस्य	वृषस्य	मिथुनस्य	
सूर्यसिद्धान्तः	1670	1795	1935	**अस्वात्मकं**
	278)	(299)	(323)	**पलात्मकं**
	111	120	129	**मिनटात्मकं**
सिद्धान्त-शिरोमणिः	1670	1793	1937	**अस्वात्मकं**
	278	298.83	322.83	**पलात्मकं**
	(111)	119.53	129.13	**मिनटात्मकं**
नवीनवेधा-नुसारम्	1675	1794	1931	**अस्वात्मकं**
	(279)	(299)	(322)	**पलात्मकं**
	11.7	119.6	128.7	**मिनटात्मकं**

<u>उदयासुसाधनानन्तरं स्वदेशीयकरणार्थं स्वदेशोदयासुमानसाधनम् –</u>

तेऽभ्रादिरूपा 1670 गुणगोऽद्रिचन्द्राः 1793

सप्ताग्निनन्देन्दुमिता 1937 अथैते।

क्रमोत्क्रमस्थाश्चरखण्डकैः स्वैः

क्रमोत्क्रमस्थैश्च विहीनयुक्ताः।।58

मेषादिषण्णामुदयाः स्वदेशे, तुलादितोऽमी च विलोमसंस्थाः।।59।। [4]

श्लोकस्य सूत्रार्थः-

मीनोदयासु/मेषोदयासु – चरखण्डः (प्रथमः) = स्वदेशे मेषोदयासु/ मीनः

कुम्भोदयासु/वृषोदयासु – चरखण्डः (द्वितीयः) = वृषोदयासु/ कुम्भः

मकरोदयासु/मिथुनोदयासु – चरखण्डः (तृतीयः) = मिथुनोदयासु/ मकरः

धन्वोदयासु/कर्कोदयासु + चरखण्डः (तृतीयः) = कर्कोदयास/ धनुः

वृश्चिकोदयासु/सिंहोदयासु + चरखण्डः (द्वितीयः) = सिंहोदयासु/ वृश्चिकः

तुलोदयासु/कन्योदयासु + चरखण्डः (प्रथमः) = कन्यासु/ तुला

अस्योदाहरणम् (गणितीयम्) –

अत्र चरासु कल्पितः, मेषस्य (प्रथमः) 300, वृषस्य (द्वितीयः) 240, मिथुनस्य (तृतीयः) 103

1670 – 300 = 1370 मेषोदयः। मी.

1793 – 240 = 1553 वृषोदयः। कु.

1937 – 103 = 1834 मि.। मं.

1937 + 103 = 2040 क.। ध.

1793 + 240 = 2033 सिंहः। वृ.

1670 + 300 = 1970 क.। तु.

स्वदेशोदयासवः भवन्ति।

निष्कर्षरूपेण प्रमुखोपपत्तिः-

(1) निरक्षस्वदेशार्कोदयान्तरं नाम् चरम्, यथोक्तं परिभाषायां।

उन्मण्डलाक्ष्मावलयान्तराले द्युरात्रवृत्ते चरखण्डकालः।

(2) वासना भाष्ये विस्तृतं चर्चितमस्ति

मेषान्ते – आदौ स्वदेशे – पश्चात् उन्मण्डले, संस्कारः - ऋणम्

एवमेव वृष – मिथुनयोरपि, संस्कारः - ऋणम् भवति

कर्क्यादौ चरखण्डानामपचीयमानत्वाद्धनं परिणमन्ति, पुनः तुलादौ उन्मण्डलस्याधः स्थितत्वात् धनं,

मकरादौ चरखण्डानामपचीयमानत्वाद् ऋणं परिणमन्ति।

समीक्षकदृष्ट्या विशिष्टचिन्तनम् –

(क) भास्कराचार्येण राश्युदयासुमानविषये प्रोक्तं अन्तिमे श्लोके यत्

क्षेत्राणां स्थूलत्वात् स्थूला उदया भवन्ति राशीनाम्

सूक्ष्मार्थी होराणां कुर्याद् दृक्काणानां वा ।। [5]

टीकायां मुनीश्वरःवदति - त्रिंशद्भागात्मकानां राशीनां असूक्ष्मत्वात् मेषादीनां राशीनाम् उदयाः असूक्ष्माः भवन्ति तथा चासूक्ष्मत्वेऽपि

प्राचीनानामनुरोधेन गणितलाघवार्थं राश्युदया एवोक्ता इति भावः।

(ख) वृषमिथुनयोः चरासुमध्ये अन्तरकारणप्रसङ्गे वासनाभाष्ये प्रोक्तं – अत्र धनुः करणे जीवानां स्थूलत्वाद् द्वितीयतृतीयावुदयौ नान्यैः सम्यक् पठितौ।

गोलाध्याये उपपत्तौ प्रोक्तं-

यो हि प्रदेशोऽपममण्डलस्य तिर्यकस्थितो यान्त्युदयं तथास्तम्।

सोऽल्पेन कालेन य उर्ध्वसंस्थोऽनल्पेनसोऽस्मादुदया न तुल्याः। [6]

अत्र टीकाकारः मरीचिः वदति, क्रान्तिवृत्तस्य यः प्रदेशःत्रिंशद्भागात्मकः कल्पितः, स प्रवहगत्यानुरोधेन तिरश्चीनतया स्थितः।

स राशिस्वल्पकालेन प्राग्भागासक्तम्। यः उर्ध्वसंस्थः (वृषः) स बहुना कालेनोदयमस्तं च प्राप्नोति।

यदा क्रान्तिवृत्तं विषुवद्वृत्ताकारं स्यात्तदा क्षितिजे तदवयवाः राशीनामुदयाः पञ्चघटयो नाक्षत्रतुल्याः संभवन्ति। यदि क्रान्तिवृतमुन्मण्डलाकारं स्यात्तदा निरक्षक्षितिजे युगपदेव संलग्नाः राशयः स्युः।

अग्रे भास्कराचार्येण सर्वं सुस्पष्टं प्रतिपादितमस्ति – तद्यथा-

भचक्रपादास्तिथिनाडिकाभिः ....

निरक्षोदयाः स्वदेशे स्युः[7]

अत्र सर्वं चरखण्डकैः संस्कृत्य प्रतिपादितमस्ति।अग्रे आचार्येण विभिन्नस्थलानां उदयप्रसंगे प्रोक्तं गोलाध्याये यत्

यत्र लम्बांशकः जिनोनकाः तत्र केचन् राशयः

सदोदिताः केचन् सदास्तमिताः भवन्ति।

अतस्तत्र तथा कथितास्तथोदया न भवन्ति।

तद्यथा- यत्र लम्बजवा जिनोनकास्तत्र.............. [8]

देशान्तरे राश्युदयज्ञानार्थं देशविशेषेणोदयमानम् –

त्र्यंशयुङ्नवरसाः पलांशका यत्र तत्र विषये कदाचन।

.... क्रियादिकम् [9]

अक्षांशः	**स्थितिः (अधः)**	**उर्ध्वस्थः**
69^0-20	धनु- मकरौ क्षितिजाधस्थौ	मिथुन –कर्कौ क्षितिजोर्ध्वे
	(द्विमासात्मकरात्रिः)	(द्विमासात्मकं दिनम्)
78^0-15	वृश्चिक – धनु – मकर – कुम्भश्च	वृष – मिथुन – कर्क – सिंहश्च
	(4 मासात्मिका रात्रिः)	(4 मासात्मकं दिनम्)
90^0	तुलादितः मीनान्तं	मेषादितः कन्यान्तं
	(6 मासात्मिका रात्रिः)	(6 मासात्मकं दिनम्)

एवमत्रोपपद्यते यत् 66^0 अक्षांशं यावदेव एष विधिः परिकल्पनीयः, अन्यथा तदधिके अक्षांशदेशे राश्युदयमानानि बृहत्तपरिमाणानि विचित्राणि वा भवन्ति।अतो तत्रस्थानां षष्ठ्यधिकाक्षांशगतानां देशानां कृते एष नियमः उदयमानसाधने न प्रयुज्यते।

सिद्धान्ततत्वविवेके आचार्यकमलाकरेण अतीतसरलतया परिभाषापूर्वकं वैशिष्ट्यं निरूपितमस्ति-

एकत्र उक्तं ''ते स्वोदयांशाः प्रतिभागकानाम्'' एवं प्रत्यंशोदयकालांशं प्रतिपादितमस्ति परन्तु तत्र स्पष्टरूपेण विधेः प्रदर्शनं न दृश्यते। यथोक्तं-

ते स्वोदयांशाः प्रतिभागकानाम।

व्यक्ष-स्वदेश-क्षितिजोदयान्तर्यतो भवेत् स्वं चरखण्डमेव।। [10]

शेषं भास्कराचार्यसदृश एव कमलाकरेण वर्णितचरमिति।

वर्तमानप्रसिद्धकुण्डलीनिर्माणार्थं यत् सफ़टवेयर प्रयुज्यते तदनुसारेण कथं भवन्ति उदयाः 66 अक्षांशे देशे पश्यन्तु, इदं महद् वैचित्र्यम् (पराशर – लाइट इत्यनेन निर्मितम किमपि समीक्षात्मकं मानमत्र प्रस्तूयते–[11]

दिनांकः	22 मार्च, 2019 ई0
देशः	ग्रीनलैण्ड (Greenland)
स्थानम्	
अक्षांशः	76^0 – 35 उत्तरे
रेखांशः	68^0 – 20 पश्चिमे
समय	**लग्नांशादयः**
6 am	कन्या - 17^0
8:30 am	सिंहः - 17^0
11:30 am	सिंहः - 1^0

12:30 pm	सिंहः - 4^0
4:00 pm	सिंहः - 21^0
8:00 pm	कन्या - 14^0

अत्र भिन्न-भिन्न समयानुसारेणात्र राश्युदयासु साधने महदन्तरं दृश्यते! यतोहि अस्य स्थानस्य अक्षांशः 76 अस्ति। एवमत्र 66 अंशान्तरे दूरे स्थाने अक्षांशे वा अनेन रीत्या उदयासु संसाधनं न कर्तव्यमिति। अत्र समयान्तराले उदयसाधनं दृश्यते।

विशिष्टांशः -

अत्र एकस्मिन् वृत्तपादे

क्रान्तिवृत्ते $60\times30^0 = 1800$ कला (मेषस्य)

क्रान्तिवृत्ते $60\times30^0 = 1800$ कला (वृषस्य)

क्रान्तिवृत्ते $60\times30^0 = 1800$ कला (मिथुनस्य)

सकलाःकलाः = 5400

$\therefore$ $5400\times4 = 21600$ कला 12 राशौ भवन्ति

एवमेव एकस्मिन वृत्तपादे

नाडीवृत्ते = 1670 असु (मेषस्य)

नाडीवृत्ते = 1795 असु (वृषस्य)

नाडीवृत्ते = 1935 असु (मिथुनस्य)

सकलाः = 5400 असवः

$\therefore$ $5400 \times 4 = 21600$ असव एकस्मिनहोरात्रे भवन्ति।

असुपदस्य परिभाषास्थले प्रोक्तं आचार्यकमलाकरेण यत् –

स्वाहोरात्राख्यवृत्तेऽपि तन्मिता एव चांशकाः।

असवस्तत्कला प्रोक्ताः कालज्ञानप्रसिद्धये।। [12]

तत्रोक्तम् लंकोदयमानमेव सम्प्रति प्रसिद्धचापीयत्रिकोणमितिप्रकरणानां मूलमिति भृशं विचित्यम्।

निरक्षीयद्वितीय – तृतीययोदयोर्भास्करोदिताभ्यां भेदः भास्कराचार्येण जीवानां स्थूलत्वात् भेदकारणं च स्वीकृतमस्ति।

स्व. महावीरप्रसादश्रीवास्तवमहोदयेन सू.सि.टीकायां (हिन्द्यां) नेपियरमहोदयस्य समीकरणेन सायनवृषोदयमानं 1794 अस्वात्मकं स्वीकृतमस्ति।. [13]

एवमेव स्वोदयमानसाधनं 66^0 अक्षांशं यावत् साधनीयम्, यतो तत्राधिकाक्षांशदेशे राश्युदयमानानि बृहत्परिमाणात्मकानि भवन्ति। 15^0 - 15^0 वा 10^0 - 10^0 इत्ययोः राश्युदयासुमानसाधनमपि सूक्ष्मार्थीनां कृते भवितुं शक्नोति परञ्च तत्र महत्प्रयासोऽपेक्षते।

।। शमिति ।।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1 सि0शि0,गोला0. प्रश्न 06,

2 सू0सि0, त्रिपश्न0. 43,

3 (क) **सि0शि0, स्प0, 58-59,** ¼प्रभाटीकायामपि द्रष्टव्या)

3 (ख) सू.सि., त्रिप्रश्नटीकायां (महावीरप्रसादः)

4 सि.शि., त्रिप्रश्न 58-59,

5 सि.शि., त्रिप्रश्न 60,

6 सि.शि.त्रिपश्न, 16,

7 गोला0, 19-23,

8 गोला0 त्रिप्रश्न/25,

9 सि.शि., त्रिप्रश्न – 135,

10 सू.सि्., त्रि – 44, (टीकायां – आचार्यसुधाकरः)

11 पराशर – लाईट, प्रसिद्ध कुन्डली निर्माण का साफ्टवेयर

12 सि0त0वि0,त्रि-124

13 सू.सि., त्रिप्रश्नटीकायां (महावीरप्रसादः) पृष्ठ 246

A QUALITATIVE ANALYSIS OF TANNERY INDUCED WATER POLLUTION IN KANPUR AND UNNAO AND ITS IMPLICATIONS ON HEALTH

ANUSHKA GUPTA AND DR. SRABANI SANYAL***

The art of making leather out of the skin of dead animals has been practiced since time immemorial. Once being confined to a specific group of people who specialised from the tanning to the manufacturing of the products, the industry has progressed fast to a large-scale export-oriented industry. 'Tanning is the process by which raw animal hides are converted into leather. During the process, the leather is made resistant to biological decay by stabilizing the collagen structure of the hide, using natural or synthetic chemicals'[1]. Water pollution, scarcity and its contamination can cause a havoc to the health of the living beings and their consequent existence. Kumra[2] had defined Water Pollution as 'a natural or induced change in the quality of water which renders it unusable or dangerous as regards food, human and animal health, industry, agriculture, fishing or leisure pursuits.' The water pollutants found in a water body come from domestic, industrial, agricultural, recreational or religious sources. Recent discussions on water pollution are mainly targeted upon the general effluents and plastic rather than major point sources of pollution and identification of the main establishments, which in most of the cases are not distributed evenly, largely controlled by industrialists which generate large revenues for the government and thus, are protected by the authorities. The problems largely go unnoticed and gains attention only from the local population who in general are not aware of its harmful effects and even if they are, their efforts to tackle the problem are commonly rendered futile. Tanneries fall in the above-mentioned category as they are concentrated at some specific centres in large numbers and bigger units. Large-scale tanneries in India are well established from the times of British regime, utilizing the modern technology for the production of leather and its allied products. Tamil Nadu, West Bengal and Uttar Pradesh are its important centres. The industry is run by from the large industrialists to the small entrepreneurs. The industry which once ran on the carcass and used a plant based chemical 'tannin', today is the user of some of the most hazardous chemicals which pollute environment and affect the health in many ways. It utilizes a lot of harmful chemicals while processing the leather, plus a huge amount of water as solvent and washing agent, hence, river like Ganga in Uttar Pradesh and West Bengal and Palar, Cooum and Adyar in Tamil Nadu are heavily polluted, for a large amount of underutilized chemical is drained to the industrial sewage.

During the initial process of hide preparation flesh, blood, hair and fat is cleaned using sodium chloride, Biocides, Surfacants, Enzyme Preparations - Trypsin, Amylase, Pepsin, Lipase, Bactericides, Soda Ash, Preservatives, Lime, Sodium Sulphide, Caustic Soda, Acids, Acid Salts, Ammonium Chloride, Ammonium Sulphate, Oropon, Sulphuric Acid, Formic Acid etc. and their pH is maintained through acidification. Most of these chemicals are organic which affect the Biological Oxygen Demand (BOD), Chemical Oxygen Demand (COD), pH, Suspended Solids (SS) and Total Dissolved Solids (TDS) of the released sewage. For tanning, two methods are employed. The first is vegetable tanning where tannins obtained from tree barks are utilized and second is mineral tanning, most common and preferred for its speed, texture and softness which it provides to leather, uses chromium salts i.e. chromium sulphate and chromium oxides which contain Cr(IV) and Cr (III), in addition to the chromate ions. It tends to damage kidneys, the liver and blood cells[3,4]. They contain other heavy metals like arsenic (As), cadmium (Cd), nickel (Ni) and mercury (Hg) as impurities. 'Of all the chromium salts used hides take up only 50-70% while the rest is discharged as effluent'[5].

In some cases, Retanning is performed after deacidification of the leather with the help of alkalis for the better results. The sewage released during this process is too high, diluting the chromium salts to a great extent and making it easier for the treatment plants to recover the salts. The process of finishing employs oils, grease, Dyes, Phenolics, Melamine,

*Research Scholar, (UGC-SRF), Department of Geography, Institute of Science, Banaras Hindu University, Varanasi
**Associate Professor, Department of Geography, Institute of Science, Banaras Hindu University, Varanasi

Acrylics, Polymers, Naphthalene etc. Though, some of the chemicals are consumed by the leather most of them find their way to sewage. Kumra[2] has stated that the primary toxicants of heavy metals are harmful for humans and animal kingdom, with disastrous effects on aquatic life too. The tanneries are also responsible for the release of pathogens which cause diseases in plants, animals and man through irrigation, direct consumption and dairy. The present paper aims to present an account of the status of tannery induced pollution in Unnao and Kanpur with the help of various published research papers and reports and its effect on health. It critically analyses the work done and identifies the research gaps.

Database and Methodology

The districts of Unnao and Kanpur are located on the left and the right banks of river Ganga, opposite to each other. It forms the 11th most populous agglomeration in India and largest agglomeration in Uttar Pradesh. The region lies in the fertile Ganga Plain experiencing continental climate of hot summers and cold winters. The seasonal rainfall due to monsoons occur from the mid-June to September. Kanpur was one of the most industrialised centres since the British times, once known as 'Manchester of the India' for its flourishing textile industry is now a home to a series of Industries including tanning, leather products, paper, fertilizers, parachute, iron and steel, furniture etc. The tanneries in Kanpur are located in the Jajmau area, adjacent to the river. Unnao, a district head quarters which has not developed to the required extent but is still denoted as a city between Kanpur and Lucknow. With the increasing land pressure, labour cost and urge to establish more industries, the tanning industry entered Unnao in 2000s. Since then the industry is flourishing accompanied with the establishment of 'Banthar Leather Technology Park' and 2 Combined Effluent Treatment Plants (CETP) in Banthar and Unnao. Tanneries in Unnao are located in two Uttar Pradesh State Industrial Development Corporation (UPSIDC) approved areas i.e. Eastern Unnao Industrial Area and Banthar Technology Park and a privately-owned area commonly known as Magarwara Industrial Area. The concerned industry and its allied industries of meat packing, pet foods, bone tallow and leather board provide employment to a large number of people, being one of the major private-sector in the district. Today, the tanning industry of the region holds an important position in this sector in the country.

The study is based on the secondary source of data from various government reports, published research papers and articles.

Results and Discussion

Status of Water Pollution in Unnao and Kanpur

The major and the ultimate receiver of the tannery waste water is the River Ganga. Sewage treated or untreated finds its way ultimately to the river. The first reported the dumping of tannery waste in the river Ganga in 1964-65 was from 3 sites in Kanpur[2].Since then, various studies have claimed to identify tannery originated wastes in Ganga. A study observed the presence of Chromium in the subsurface and the surface waters of Ganga for two sites (at two ends of the Kanpur) and for two seasons[6]. While the samples collected from the subsurface waters had same levels of Cr, there was tenfold increase in the Cr content in surface waters indicating their tannery origins. In addition to it there is significant increase in the level of BOD, COD, chlorides and TSS which may also be attributed to the other industries also while the increased amount of phenols and sulphides have a greater probability to be attributed from the tanneries. Eco-friends[7] conducted a series of tests with IIT-Kanpur in 2002 on the raw tannery effluents, raw Kanpur city sewage, post treated mix and post treated effluents created by CETP Unnao. They found alarming rates of Cr (IV) in addition to various heavy metals As, Cd, Hg and Ni in tannery waste water, city sewage and treated waste of CETP. This data not only illustrates the hazardous nature of the tannery effluents but how fallible are the treatment plants and about how the tannery waste has reached the domestic wastes of the city. These metals may be present as the part of impurities of the chrome salt used in tanning or the part of the finishing materials used in the tanning industry. A study on River Tinishu Akaki, Ethiopia indicated the decrease of suspended solids, BOD, COD and nitrification and reduction of micro-invertebrate community due to tannery waste and that the addition of chromium and sulphides into the water has led to the deterioration in the health of the river[8].

The infiltration of the heavy metals and the disturbances of the physical quality of the river are not just the only impacts of the wastes to the river. The dumping of these wastes in the river have let them contaminate the river sediments in unprecedented forms. A study has investigated various heavy metals and organic carbon in the Ganga river sediments and the agricultural soils of the Ganga plain in Kanpur-Unnao Industrial region[9]. The sediments collected in 1994 had exceptionally high contents of organic carbon (12.0 wt.%), Cr (3.40 wt.%), Tin (Sn) (1.92 wt.%), Zinc (Zn) (4000 mg/kg), Lead (Pb) (646 mg/kg) and Cd (9.8 mg/kg). It was important to note that the highest concentrations of the metals showed drastic increase in the case of Cr (34,019 mg/kg to 49,937 mg/kg), Sn (19,217 mg/kg to 27,937 mg/kg) and Zn (4000 mg/kg to 7485 mg/kg). When compared with the data of 1995, Iron (Fe) and Sn increased while organic carbon, Cd, Copper (Cu), Ni and Zn decreased while other do not show any change in their concentrations. Soils of the area show exceptionally high concentrations of organic carbon (5.9 wt.%), Cr (2.16wt.%), Sn (1.21 wt.%) and Zn (975 mg/kg) in 1994. When compared with the data of 1995 Cd, Fe and Sn increased, Ni decreased whiles others did not show any change in the concentrations. According to the study Cr and Cd had the highest enrichment factor and the present values show that nearly 95% of the concentration was from the anthropogenic input in both the sediments and the soils. Singh et al.[10] have analysed the sediments of the Yamuna in Delhi and Agra, Gomti in Lucknow and Ganga in Kanpur, Allahabad and Varanasi. They found high concentration of Cr in Ganga sediments in Kanpur, as high as 325 mg/kg and 532 mg/kg. The place showed high enrichment factor for the metal and claimed 55% of it being from anthropogenic sources. They also placed Cr in class 3 of Muller's Geo-accumulation Indices denoting that the sediments are moderately polluted by them, while Cd occupied the highest position of class 6 as very highly polluting metal in sediments. Beg et al.[5] did sediment quality assessment in Kanpur before and after the discharge of Tannery effluents and found Cr as the only trace metal with the radical increase from 5 mg/kg upstream to 147 (105-250) mg/kg downstream, with the second value greater than the Lowest Effect Level of 26 mg/kg and Probable Effect Level 90 mg/kg concentrations.

This indiscriminate dumping of the untreated tannery wastes has led to the contamination of the local water bodies used for agricultural use but also the groundwater through seepage, polluting the basic source of drinking water and also the major source of the irrigating water.Sahu et al.[11] have analysed the water in Loni Drain in Unnao, which is one of main the receivers of tannery waste and found Cr ranging from 1.48 to 1.68 mg/l at both the stations across the seasons. In addition to that Pb, TSS, BOD_5 and COD were much higher than the standard values. Indian Institute of Toxicological Research (IITR) collected 18 drinking water samples and 6 effluent samples from the selected sites in Unnao and found that 13 drinking water samples exceeded the recommended TDS limit, 12 total hardness, 13 fluoride, 6 sulphates, 5 alkalinity, 2 manganese (Mn), 9 Fe and 1 Hg[28]. While 2 effluent samples exceeded chromium and 4 fluoride. All the effluent samples exceeded the prescribed limit of BOD and COD. Central Ground Water Board (Northern Region) published a short-term investigation report in for Unnao[12]. They collected samples from hand pump water and effluents and found that 33% ground water samples exceeding total hardness, 40% Fe concentration and 50% manganese (Mn). They also found that the Cr concentration in the effluents before treatment in the Banthar CETP and Unnao CETP was 14.76 mg/l and 0.520 mg/l and after treatment was 3.254 mg/l and 0.490 mg/l. Not just chromium but increasing amounts of heavy metals as Arsenic has been identified in groundwater samples. CGWB (Northern Region) again published a report in 2012 to identify the arsenic pollution in groundwater and found arsenic as high as 0.637 mg/l in Shuklaganj area which is located very near to river Ganga[13]. The region near the tanning areas Dakari 0.118 mg/l of As was found in ground water as against to the standard value of 0.05 mg/l. Another report on Cr and fluoride incidence found that the effluent samples near Unnao CETP has recorded total chromium as 3.984 mg/l which is a significant increase from the report just two years back[29]. Mirza Tannery drain recorded total Cr as 4.455 mg/l. High values of Cr (IV) has been recorded near JR Inter College, Dharamkanta 0.602 mg/l, Shivanagar 0.141 mg/l, Maduwasi 0.102 mg/l, Masnagar 0.054 mg/l, Dakari 0.050 mg/l and Lauikhera 0.045 mg/l in the groundwater samples. Cr (IV) was recorded in Dharamkanta, near Unnao bypass area, where solid waste has been dumped. The presence of Cr (total) in surface as well as groundwater indicates that the surface water is polluting the groundwater, however the quantum and the area at present is very small but it has started polluting the ground water.

Srivastava et al.[3] have surveyed both the surface water and groundwater samples in Unnao District and found Total Chromium in all the samples they had collected but Cr (IV) was found in four samples both places exceeding the drinking water standards. At one place its value is 0.00149 mg/l, in another 0.00021 mg/l while another place JAR Inter College, Dharamkanta it was found to be 0.352 mg/l, both being groundwater samples. For the surface water samples 2.070 mg/l Cr (IV) content was found near JAR Inter College, Dharamkanta. Mirza Tannery drain recorded total Cr content of 4.455 mg/l, effluent samples near CETP recorded 3.984 mg/l and 3.310 mg/l of Cr content and water near JAR Inter College, Dharamkanta recorded 4.012 mg/l. Cr is detected even in the shallow tube-wells indicating the rapid percolation of the metal to the ground water. Dwivedi and Vankar[14] inferred that the Cu, Ni, Pb, Mn and Zn and Cd had anthropogenic origin in the groundwater of the industrial hub of Unnao and attributed them to Ni, Pb, steel and wood processing units but concluded that Cr and Fe had lithogenic sources based on the stringent regulations on the treatment of Cr. It is surprising to see that researchers tend to ignore the corruption and incompetency of government regulation for environment pollution.

Central Pollution Control Board (CPCB)[15] released a report in 2013 to evaluate the level of Surface Water and Ground Water pollution in Unnao District and found high amount of Cr in both post and pre monsoon periods in the inlet and outlet of CETP Unnao, CETP Banthar, Mustang leather, Omega International, Allied Leather Finishers; Loni Drain and 5 groundwater samples. All the surface water samples were high in BOD while fluoride, TDS, TSS, COD were high in the samples collected from the drains and CETP effluents. High amount of phosphate and As was found in some samples. They also reported high Fe, TDS, Hardness, Alkalinity, Chloride, Sulphates and Mn in pre-monsoon groundwater samples. The tanning industries in Unnao bore back tannery effluents into the groundwater and the remaining is surreptitiously released through illegal drainage pipes into the nearby water bodies[16].

Another study has also analysed the groundwater and surface water samples for Cr, fluoride and salinity in UPSIDC area Unnao detecting high values of Cr at Mirza Tannery Drain 6.578 mg/l, JAR Inter College, Dharamkanta 4.812 mg/l, Effluent CETP 4.285 mg/l and 3.820 mg/l from the surface water samples. Groundwater samples at Maduwasi 0.152 mg/l, Shivnagar 0.162 mg/l, Central School 0.056 mg/l, Masnagar 0.055 mg/l Laukhera 0.056mg/l and JAR Inter College, Dharamkanta 0.698 mg/l exceeded the limits. Cr (IV) was detected in all the samples collected from the JAR Inter College, Dharamkanta, CETP effluents in high amounts (2.876 mg/l, 0.388 mg/l (Groundwater), 0.045 mg/l, 0.65 mg/l) and in the lower amounts in the areas nearby[4].Another study found 6 out of 12 samples having more than standard Cr content in groundwater in Unnao District[14]. The samples collected near the tanning industries have shown the values more than 0.60 mg/l while the standard being only 0.05mg/l. Iron imbalances were also reported and both were attributed to the industries.

A study found 68.01 mg/l and 38.60 mg/l of chromium in the tannery waste water collected from Kanpur and Unnao respectively[18]. In addition to it, they found high amount of TDS, Hardness, Alkanity, chloride, BOD and COD much higher than the standard amounts in both the places. Swaroop et al.[19] performed a groundwater quality assessment of Unnao District. They found the poor water quality in the blocks of Bichhiya and Sikanderpur Sarausi (they house all the tanneries in the district). The water was contaminated with Cr and Fe with high values of TDS, Alkanity and Ground Water Quality Index (GWQI) exceeding the value 100. The chromium content exceeded the drinking water standards and was highest in all the blocks. Hence, we can see the increasing trend in the amount of contamination of the surface and groundwater by Chromium and other pollutants. The values obtained for JR Inter College, Dharamkanta increase with each study, proving the fact that the dumping is still not checked and the government and the authorities have failed to act on the problem.

Health Implications

CPCB reported that in Unnao, the CETPs have only 70% of the treating capacity[15]. In Unnao, the treated water from the CETPs is drained into either Loni Drain or Jail Drain, which also receives the untreated waste and eventually joins the River Ganga. The Loni drain is also used to irrigate the farm lands. The picture in Kanpur is no different[20]. Those who are first exposed to the chemicals in the tanneries are its workers. They are not trained to handle these hazardous chemicals. Above all, work is normally done manually and the machines normally lack safety devices exposing the workers to accidents and injuries[21]. Chromate dust is an established carcinogen[4]. There have been the reportings of high incidence of low-back pain, chronic bronchitis, watering of eyes, blurred vision, coughing, breathlessness, asthma, flatulence, dermatitis and skin irritation among the tannery workers in Kanpur[22,23]. The incidence of the problem increased with the increase of their working hours in tanneries[22].Incidence of lung cancer, soft-tissue sarcoma, pancreatic cancer, testicular cancer and sinonasal cancer have been found among the workers through different studies[23]attributing to the different chemicals used in the tanneries. K. R. Devi[24] reported a significant increase in the incidence of DNA damage due to genotoxicity due to inhalation and handling of chromium by the tannery workers. The health effects on the people of the locality are basically through the consumption of the contaminated groundwater. The local people residing the nearby residential colonies as Awas Vikas Colony in Unnao report oily lining in the vessels in stored water. Sharma et al.[25] assessed the health effects of groundwater contaminated by Cr (IV) in Kanpur and found self-reported digestion and dermatological disorders and haematological abnormalities. Females showed two times higher incidence of dermal disorders which can be attributed to their more exposure to water related activities[25].

In addition to this, consumption of food products cultivated in the contaminated water can the effect the health of the people too. Studies found the soils irrigated by tannery effluents contaminated by Cu, Cd, Cr, Zn, Ni, Fe, Mn, Pb and chlorides[11,26]. Crops like wheat[26], mustard[26], spinach[11] and potato tuber[11] were found to be concentrating heavy metals. Vaseem et al.[27] had analysed the tissues of Rohu fish collected from the Ganga River in Varanasi and found high amounts of Cr in Skin, Muscles, Gills, Liver and Kidney, but in range in the brain. Fe was too found in the higher amounts in all the parts of the fish. Results rendered the fish unfit for human consumption. But the effects of tannery effluents are severe in the villages and slums which lie near the tanning areas and through which these untreated wastes pass through. People from Mawasi village in Unnao and Jana village, Jajmau, Kanpur portray suffer from bone brittleness, stunted growth, deformed fingers and malnutrition[20,26]. People are forced to drink, to irrigate their crops and cook their food in the polluted waters. Their crops are considered poisonous, water from the tube well turns yellow when exposed to air and iron poles and gates have started corroding[20].

Mitigation and Conclusion

From the previous discussions, we can conclude that the problem prevalent in the region is not new but dates back to a few decades and still it is not been taken care of or given proper attention. In a general view, localised problems like these are often ignored, but the similar problems are prevalent in Tamil Nadu and West Bengal too. It is a very common knowledge in the region that, a string of mafias works to retrieve hides and arrange labours and government officials fear to take steps against the tannery owners who are extremely well connected and influential people. The government officials have often been heckled and inspection teams chased away[20]. The tanners themselves do not want to take the responsibility of the damage they are causing to the environment. The Government took various steps to mitigate the problem but failed dramatically, not because the plans were flawed, but because there always remained some incapacity from any one of the authorities. In 2005 a step was taken in Kolkata to shift the tanneries to a new location. The tanneries in Tangra, Kolkata, were shifted to Bantala Leather Complex, close to East Kolkata Wetlands. This Bantala plan proved to be a failure because of ineffectual CETP, and the tanners returned to Tangra. In the same way, where CETPs also cater the treatment of domestic wastes and lack in essential infrastructure, a new efficient sewage plan was passed by the authorities but never got funded. The already available infrastructure is never maintained or worked on, it’s a normal site to see CETPs in Unnao and Kanpur in dormant state. The Government has set standards and created laws but problem lies in their enactment and proper functioning. The tannery sewage even if released till the standard amount in the streams, it will pollute them and render them unfit for human use. Its unimaginable to ponder on the point that single stream receive these effluents from multiple tanneries without any source of dilution. It is not just the problem with the heavy metals but also with the physical parameters of water as COD, BOD, Hardness etc. The outcome of such negligence is faced by the workers in the tanneries and the people residing near the industrial area whose health though severely affected is not given enough importance and place in the research process. They are not highlighted as the problematic zones where there is an immediate need for rehabilitation and medical services. Just because they are poor, illiterate and unaware they are played upon by the industrialists, destroying their health and farms. Though, ample work has been done on the part of the researchers and the government on the Ganga and the water pollution from some time now but the health has long been ignored, which is affected not just directly but indirectly too through farms, fishes and fumes. After analysing the literature critically, we see an increasing emphasis on Chromium, which although is necessary, but the unprecedented growth of iron, cadmium, mercury and arsenic in the water are in some ways ignored and in others their sources are yet to be identified. These metals too are toxic to human health.

The new technology of using chromium salts as the tanning agent is responsible for this increasing pollution problem in the river. In today's environment where the importing countries demand chromium free leather, it would be better to shift back to the previous process but in an innovative way that the process does not remain that time taking and could produce the soft and firm leather. This would not just ensure the production of biodegradable waste but their treatment would also be easier in comparison to the chromium retrieval and reuse. The 150-year old tanneries are the biggest reason for pollution in the Ganga, shows response to a public interest petition filed in 2006 at the Allahabad High Court. Hence, to approach the problem in a systematic way instantaneous effort should be given towards stricter laws towards the localised and working treatment plants within the industry, retrieving of chromium and other metals, innovation in currently running treatment plants and dilution of the waste before and after treatment, better working conditions for the workers, provision of training and safety gears, culmination of open dumping of tannery wastes and rehabilitation of the worst affected people.

References

1. UNEP IE/PAC. Tanneries and the Environment – A Technical Guide, Technical Report (2nd Print) Series No. 4. 1994. ISBN 9280712762.
2. Kumra VK. Kanpur City: A Study of Environmental Pollution. Varanasi. Tara Book Agency. 1982.
3. Srivastava SK, Prakash R, Bharatiya, KG. Occurrence of high Chromium in parts of industrial area in Unnao district, Uttar Pradesh. Lucknow. Central Ground Water Board. 2013.
4. Srivastava Amrita, Singh Supriya. Industrial Impact of Chromium, Fluoride & Salinity in Unnao UPSIDC Area, Unnao, Uttar Pradesh. International Journal for Scientific Research & Development. 2014 1(12). ISSN (online): 2321-0613.
5. Beg KR, Ali S. Chemical Contaminants and Toxicity of Ganga River Sediments from Up and Down Stream Area at Kanpur. Am J Environ Sci. 2008. 4(4) pp 362-6.
6. Khwaja AR, Singh R, Tondon SN. Monitoring of Ganga and Sediments vis-à-vis Tannery Pollution at Kanpur (India): A Case Study. Environ Monit Assess. 2001. 68. Pp-19-35
7. EcoFriends. Pollution from Leather Tanneries As We Know and Pollution From Leather Tanneries We Do Not Know: Urgent Need For a Comprehensive Investigation at Kanpur [Internet]. 2002. Accessed on 7th October, 2018. See website: http://www.ecofriends.org/reports/001rptleather.htm
8. Mengistie E, Ambelu A, Gerven TV, Smets I. Impact of Tannery Effluent on the Self-purification Capacity and Biodiversity Level of a River. Bull Environ Contam Toxicol. 2016. 96. Pp-369-375. DOI: 10.1007/s00128-016-1735-5
9. Ansari AA, Singh IB, Tobschall HJ. Status of anthropogenically induced metal pollution in the Kanpur-Unnao industrial region of the Ganga Plain, India. Environ Geol. 1998. 38 (1) pp 25-33.
10. Singh M, Muller G, Singh IB. 2002. Heavy Metals in Freshly Deposited Stream Sediments of Rivers associated with the Urbanization of the Ganga Plain. Water Air Soil Pollut. 2002. 141.
11. Sahu, RK, Katiyar S, Tiwari Jaya, Kisku GC. Assessment of drain water receiving effluent from tanneries and its impact on soil and plants with particular emphasis on bioaccumulation of heavy metals. J Environ Biol. 2007. 28(3) pp- 685-690.
12. Central Ground Water Board. Ground Water Contamination in Industrial Area, Unnao District, Uttar Pradesh. 2010.
13. Central Ground Water Board. Arsenic Contamination in Ground Water in the Some Parts of Unnao District, Uttar Pradesh. 2012.
14. Dwivedi AK, Vankar PS. Source identification study of heavy metal contamination in the industrial hub of Unnao, India. Environ Monit Assess. 2014. 186. Pp 3531-3539. Doi: 10.1007/s10661-014-3636-6
15. CPCB. Report on Pollution Caused by Leather Tanning Industry to the Water Bodies/ Ground Water in Unnao District of Uttar Pradesh. Ministry of Water Resources. 2013. Government of India.
16. Swaminathan R. Death by another name in backwaters of UP, Governance Now. 2013. Accessed on 8th October, 2018.
17. Sinha S, Agarwal N, Pandey S, Grover V. Impact of Tanneries on Ground Water Contamination in Unnao District. Green Chemistry & Technology Letters. 2016. 2(2). Pp- 110-114. Doi: 10.18510/gctl.2016.2211
18. Parveen S, Bharose R, Singh D. Assessment of Physio-Chemical Properties of Tannery Waste Water and Its Impact on Fresh Water Quality. Int J Curr Microbiol Appl Sci. 2017. 6(4).Pp 1879-1887. Doi: 10.20546/ijmas.2017.604.224
19. Swaroop VK, Singh NB, Verma A. Assessment of Groundwater Quality using Water Quality Index in Unnao District, Uttar Pradesh, India. International Journal of Civil Engineering and Technology. 2018. 9(8).
20. Narain S, Sengupta S, Basu S. Can we save Ganga? Down To Earth Coverage [Internet]. 2018. Accessed on 10th October, 2018. See website: https://www.downtoearth.org.in/coverage/can-we-save-ganga--45282
21. Sahasranaman A. Occupational Safety and Health in the Tanning Industry in South-East Asia. 2000 Fourteenth Session of the Leather and Leather Products Industry Panel, Zlin, Czech Republic. UNIDO.

22. Öry FG, Rahman FU, Katagate V, Shukla A, Burdorf A. Respiratory Disorders, Skin Complaints and Low-Back Trouble Among Tannery Workers in Kanpur, India. AIHA J. 1997. 58 (10). PP 740-746. DOI: 10.1080/15428119791012397.

23. Mittal A, Gupta RK, 2008. Comprehensive Intervention in Occupational Health and Safety in Leather Industry. CEC Working Paper. Centre for Education and Communication. New Delhi.

24. Devi KR. Evaluation of Genotoxicity in Tannery Industrial Workers Exposed to Chromium using Comet Assay. Int J Pure Appl Biosci. 2016. 4(5). Pp- 168-174. Doi: http://dx.doi.org/10.18782/2320-7051.2383

25. Sharma P, Bihari V, Agarwal SK, Verma V, Keshavchandran CN, Pangtey BS, et al. Groundwater Contaminated with Hexavalent Chromium [Cr (VI)]: A Health Survey and Clinical Examination of Community Inhabitants (Kanpur, India). PLoS ONE. 2012 7(10): e47877. Doi: 10.1371/journal.pone.0047877

26. Chandra R, Bhargava RN, Yadav S, Mohan D. Accumulation and distribution of toxic metals in wheat (Triticum aestivum L.) and Indian mustard (Brassica camperstris L.) irrigated with distillery and tannery effluents. J Hazard Mater. 2009. 162. Doi: 10.1016/j.jhazmat.2008.06.040

27. Vaseem H, Banerjee TK. Contamination of Metals in Different Tissues of Rohu (Labeo rohita, Cyprinidae) collected from the Indian Ganga River. Bull Environ Contam Toxicol. 2013. 91. pp-36-41. Doi 10.1007/s00128-013-100-x.

28. Indian Institute of Toxicological Research. Analysis of Water Samples from Selected Sites in Unnao. 2010.

29. Central Ground Water Board. Ground Water Pollution by Chromium and Fluoride in Some Parts of Unnao District. 2012.

●

WILL THE MATERNITY BENEFIT (AMENDMENT) BILL, 2016 REALLY BENEFIT WOMEN IN NEED?

*DR. SUMAN SINGH**

Using the means of voice vote, the Mr. Bandaru Dattatreya, the Minister for Labour and Employment introduced and passed *The Maternity Benefit (Amendment) Bill, 2016*[1] in the *Rajya Sabha* on 11 August 2016, the penultimate day of the Monsoon Session of the Parliament. By doing so, the Government has tried to address the spatiality's surrounding maternity leave for working mothers. *The Maternity Benefit (Amendment) Bill, 2016* is an amendment to the Maternity Benefit Act, 1961 (the Act of 53 of 1961, which was passed on 12 December 1961). The new bill is the outcome of the recommendation of the 44th session of the Indian Labour Conference (ingeminated again during the 45th and 46th sessions of the Indian Labour Conference) together with the consultation of the Ministry of Child Development and other stakeholders. The bill currently bears a pending status, as it could not be finally passed in the *Lok Sabha*as it was adjourned following sine die. However, when it is finally passed into an Act (perhaps in the 2016 winter session of the Parliament), India would be joining hands with not only the Scandinavian (Denmark, Norway, Sweden) but also other countries— Canada, the United Kingdom, Serbia, Croatia, Finland, Greece, etc. that supports new mothers (parents) by offering generous maternity (parental) leaves. It is surprising to note that the USA, the world's most developed nation; despite being the birthplace of women's rights movement, fails to have federally mandated maternity (parental) leave policy, except for 12-week of unpaid, but job-guaranteed leave for both mothers and fathers under the 1993 legislation, Family and Medical Leave Act (FMLA), who have been employed full-time at a company with 50 or more employees. The central purpose of this commentary is to make a nuanced examination of the amendments to the bill aimed at gaining a better understanding and address gaps (if any).

Bill nomenclature

The new bill *interalia* mandates 26-week of paid leave for the new mothers in all establishments employing 10 or more people (including the private sector) such as factories, mines, plantations, shops and other establishments as against 12-week as per the 1961 Act. This would of course benefit the new mothers to breast feed, nurture and spend quality time together for longer with their new babies. This in turn might improve 'malnutrition' among the infants. UNICEF India reports that although India has been successful in reducing neonatal deaths by 18% over the last five years, yet, India is a home to one in three malnourished children of the world.[23]In addition, this would allow the mothers to heal their bodies, which in turn would help them to return to their workplace fit and healthy.

The new bill also guarantees 12-week of paid maternity leave for a woman who already has two or more children but "which cannot be availed before six weeks from the date of the expected delivery."[4]In addition, the new bill retains the clause of *Right to Payment* of the Maternity Benefit Act, 1961 that reads as:

Provided that where a woman dies during this period, the maternity benefit shall be payable only for the days up to and including the day of her death:

Provided further that where a woman, having been delivered of a child, dies during her delivery or during the period immediately following the date for her delivery for which she is entitled for the maternity, leaving behind in either case the child, the employer shall be liable for the maternity benefit for that entire period but the child also dies during the said period, then, for the days up to and including the date of the death of the child.

The other features of the bill are as follows:

Work from Home

It remains well documented that Indian married working women (and that too with children) face many constraints and challenges to perfectly balance between work and practices of everyday life.[4] Central purpose of the bill is to provide better opportunity for

* Associate Professor, Department of Geography, Banaras Hindu University, Varanasi

married working women and thereby, increase female workforce participation in the organized sector of the economy. Evidently, working women having no mechanism of family support apace with inadequate (and low quality) childcare facilities (crèches) often relinquish their career (paid jobs) to look after their family and raise child (ren)[5,] which often compel them to break off from their 'career ladder'. Hence, the clause 'work from home' is a breathtaking option. Indeed, this is a mother- and baby-friendly option, which would allow the mothers to retain their jobs without sacrificing a break from their career by negotiating with their employer "after the period of maternity leave, for a duration that is mutually decided by the employer and the woman."[6]

Notwithstanding, the bill fails to be father-friendly as it does not provide any paternity leave to the fathers. Arguably, the fathers too should be equally responsible for upbringing of their child (ren). As Ghosh (2016)[7] argues that granting paternity or shared parental leave might probably lessen gendered "discrimination against women at the workplace…if men too are entitled to a long childcare leave".[8]

Introduction of Crèche Facilities

The second enlightening clause of the bill is the introduction of mandatory childcare facilities (crèches) for those establishments with 50 or more employees within a recommended distance (either in a separate place or within the premise), where during the day, the mother would be allowed four visits to the crèche to breast feed and attend to the needs of the baby, although this also includes her leisure-time interval. Besides, the bill mandates a provision making it necessary for the employers to disclosing a woman employee in writing as well as electronically at the time of her appointment about all the maternity benefits she would be entitled to as and when require.

Leave for adoptive and commissioning mothers

Another forward-looking clause of the bill is the incorporation of 12-week of maternity leave for both adoptive mothers (who legally adopts a baby below three-month old) and commissioning mothers. Commissioning mother is a biological mother who outsources her pregnancy to a surrogate following infertility or inability to bear children naturally but usually uses her egg to create an embryo implanted into a surrogate. The 12-week time-period would of course, be calculated officially from the day the baby is handed over to the adoptive or commissioning mother. However, it is unclear as to whether there is any leave for a woman who adopts a baby that is beyond three months old.

Maternity Leave for the Surrogates

Notwithstanding, the bill makes no provision of maternity leave for a working woman, who could offer to act as a surrogate on altruistic grounds.[9] "In response to a Public Interest Litigation filed before the honorable Apex Court in November 2015"[10], the Government of India has banned commercial surrogacy services for the foreigners including Overseas Citizens of India.[11] With the legalization of commercial surrogacy in 2002, India emerged as a destination of medical tourism especially for Assisted Reproductive Technology services (including surrogacy) that remains highly unregulated.[12] However, following malpractices and blatant cases of exploitation[13] of the surrogates (who usually but not necessarily hail from the poorer/tribal background mired in acute forms of poverty), on 24 August 2016, the Government of India, under the chairpersonship of honorable Prime Minister, Mr. Narendra Damodar Modi, the Union Cabinet, introduced and approved of the draft bill on Assisted Reproductive Technologies (ART) in India, known popularly as the Surrogacy (Regulation) Bill, 2016, which aims at banning commercial surrogacy services altogether, and rely on altruistic surrogacy from friends and relatives. As stated elsewhere, the new Maternity Bill, 2016 as well as the Draft Surrogacy Bill— both fails to introduce a provision of maternity leave for the surrogates. It is arguable that the process of pregnancy for a surrogate is far too complicated when compared to a normal pregnancy. The body of a surrogate goes through massive painful process— hormone infusion for preparation of the uterus; implanting of the embryo(s) into the uterus of the surrogates; selective reduction (reduction of fetuses), most babies born through caesarean sections, emotional pains of handing over the baby to the commissioning parents they had delivered.[14] Hence, a working woman, who would offer her altruistic surrogacy service is not medically fit to go back to work immediately after the delivery. She must be entitled to at least three to four weeks of rest to heal her wounds.

Extended maternity leave for mothers of premature and physically challenged babies

The bill, currently as it stands fails to provide statutory maternity leave and pay to those mothers who deliver premature and (or) physically challenged babies. Having premature/physically challenged baby itself is a traumatic experience for the parents (especially for the mother). Not only the babies would need better postnatal intensive care (monitoring, life-support care, etc.) but the mothers too might suffer from post-traumatic stress disorder and require treatments. Extending maternity leave (say, to about a year) to the mothers in need would not only bestow them with financial and emotional support but could also help in providing better postnatal care, which in turn might lead the mothers to make a positive return to their workplaces and better outcomes in overall babies' development.

We urge upon all the authorities and the stakeholders for a serious rethink on these two aforesaid issues before the Maternity (Amendment) bill 2016 is finally passed in the 2016 winter session of the Parliament.

Conclusion

Despite few flaws, the bill as it stands now seems progressive and would certainly help those new working and expectant mothers to a great extent in the organized (formal) sector to balance their family life and work, albeit their counterparts working in the unorganized (informal) sector remains devoid of social security and maternity benefits.

References

1. *The Maternity Benefit Bill, 2016, Bill No. XLIII of 2016*, Retrieved from, http://www.prsindia.org/uploads/media/Maternity%20Benefit/Maternity%20Benefit%20Bill,%202016.pdf
2. Nutrition, India, UNICEF, Retrieved from, http://www.unicef.org/india/children_2356.htm
3. The Maternity Benefit (Amendment) Bill, 2016, *PRS Legislative Research*. Retrieved from, http://www.prsindia.org/billtrack/the-maternity-benefit-amendment-bill-2016-4370/
4. Lahiri-Dutt, Kuntala and Sil Pallabi (2014). "Women's 'Double Day' in Middle-class Homes in Small-town India", *Contemporary South Asia*, 1-17, DOI: 10.1080/09584935.2014.979762
5. Bhattacharyya, Rituparna (2016c). "Balancing Motherhood and Career in Stem Jobs", *Space and Culture, India*, 3 (3), 28-31, DOI: http://dx.doi.org/10.20896/saci.v3i3.178
6. *The Maternity Benefit Bill, 2016, Bill No. XLIII of 2016*, Retrieved from, http://www.prsindia.org/uploads/media/Maternity%20Benefit/Maternity%20Benefit%20Bill,%202016.pdf
7. Ghosh, Abantika (2016, 25 August). "Rajya Sabha may have passed bill to increase maternity leave, but social change will take longer time", *The Indian Express*, Retrieved from, http://indianexpress.com/article/opinion/web-edits/rajya-sabha-may-have-passed-bill-to-increase-maternity-leave-but-social-change-will-take-longer-time-2972344/
8. Singh, Suman (2016). "The Maternity Benefit (Amendment) Bill, 2016: A Critical Analysis", *Space and Culture, India*, 4(2),
9. Bhattacharyya, Rituparna (2016a). "Draft Surrogacy (Regulati on) Bill 2016: Rhetoric or Surrogate-centric?", *Space and Culture, India*, 4(2)
10. Bhattacharyya, Rituparna (2016b). "Discounted Life: The Price of Global Surrogacy in India", *Gender, Place & Culture*, 1-2, DOI: 10.1080/0966369X.2016.1211585
11. Bhattacharjee, Dalia (2016). "Commercial Surrogacy in India Bans, 'Altruism' and the Women Involved", *Economic and Political Weekly*, LI (13), 27-29
12. Rudrappa, Sharmila (2015). *Discounted Life: The Price of Global Surrogacy in India*, New York and London: New York University Press, ISBN: 978-1-47-982532-5
13. Shetty, Priya (2012). "India's Unregulated Surrogacy Industry", World Report, *The Lancet*, 380, 1633-1634
14. Majumdar, Anindita (2014). "Nurturing an Alien Pregnancy: Surrogate Mothers, Intended Parents and Disembodied Relationships", *Indian Journal of Gender Studies*, 21(2), 199-224, DOI: 10.1177/0971521514525087

OBSERVATIONAL STUDY OF DISEASES OF HEPATOBILLIARY SYSTEM WITH ULTRASONOGRAPHY IN PATIENTS OF EASTERN UTTAR PRADESH AND BIHAR

DR. AMIT KUMAR SINGH DR. SURENDRA SHEKHAR MISHRA***
*DR. ARUN KUMAR DWIVEDI*** AND DR. PRAGYA MISHRA*****

It is an established fact that Hepatobilliary disease are increasing rapidly all over the world. The detection of many cases possible in the modern era due to improve imaging diagnostic modality. Patient with hepatobilliary disease are common in medical practice Hepatobilliary disease incorporate a group of disease related to liver and biliary system e.g fatty liver, hemangioma, cholecystitis, cholelithiasis, choledocholithiasis, cirrhosis with asymptomatic to serious symptom.

In Hepatobilliary disease CD4+ count is low up to 20 cells/ microliter. Hepatobilliary disease are disease involving gall bladder, bile duct and structure related to transport and production of bile .This bile secrete from Liver after travelling from common hepatic duct to common bile ducts then ampulla of vater where it is controle by sphincter of oddi to drain in duodenum where it is involve in digestion process. Main cause of development of Hepatobilliary disease are heredity, high fatty food, obesity etc[1] Formation of stone due to impair cholesterol and bile ratio if ratio is 25:1 then bile make cholesterol in solution but if ratio less than 13:1 it solution converted into sludge and ultimately gall bladder stone formation take place[2]**.** Cholelithiasis normally asymptomatic but in 10-15 % cases symptomatic[3]**.** In comparison to intra hepatic duct extra hepatic billiary duct affect more.[4] In cholelithiasis occur more in women than man[5]**.** This cholelithiasis with cholecystitis are not the main cause of death in Hepatobilliary system but it only increase the hospital stay. Whereas cirrhosis of liver is the major contribution to National mortality[6]**.** Cirrhosis is a type of chronic disease characterised by deform liver structure, impair vessel supply, fibrosis ultimately cause liver failure cirrhosis is 10th in rank for cause of death in middle age group**.**[7] Due to alcohol consumption death from cirrhosis contribute 50 to 95% [8] The Laennec give the name cirrhosis[9]. Imaging Hepatobilliary with ultrasound has 83 % superior to CT (39%) clinically**.**[10] USG is the imaging modality through which 99 % of duct dilatation especially common hepatic duct dilate if more than 5 mm , common bile duct if more than 9 mm**.**[11] If common bile duct along with increase alkaline phosphate indicate obstruction.[12] Distal to the point of obstruction due to calculi or stricture billiary collapse.[13] Radiologically central dot sign is very important sign it indicate portal vein when colour Doppler perform it indicate blood flow and correspond the portal vein . Disorder of liver, gallbladder & Hepato-billiary tract are among the most commonly cause of upper abdominal pain in 4th to 5th decade of life. Hepatobilliary system refer to the liver, gall bladder & bile ducts. To know the exact pathology and clinical type of disease ultrasound scanning is one of the important method. This is the best & initial diagnostic tool to find out the diseases related to Hepatobilliary system. Ultrasonography is the least expensive, safest, non-invasive & most sensitive technique for imaging the liver, gall bladder and billiary tree.

Aim of study: To perform observational study of hepatobilliary system to find out nature of diseases its early diagnosis for better management.

Material & Methods:-

100 patients were screened randomly having symptoms related to hepatobilliary system during routine scanning, with informed consent, in the section of radiology (Indian Medicine) ,who came for USG whole abdomen.

Preparation of patient: **-** The patient were kept on without meals for 6-8 hours before scanning only water was allowed as per standard protocol for ultrasonography scanning. In acute clinical condition scanning was performed immediately.

*Medical Officer (Indian Medicine) Section of Rdiology, S.S.Hospital Banaras Hindu University, Varanasi
**Professor & Head, Department of Shalya Tantra, Faculty of Ayurveda, I.M.S. Banaras Hindu University, Varanasi
*** Assistant Professor, Department of Shalya Tantra, Faculty of Ayurveda, I.M.S. Banaras Hindu University, Varanasi
****Jr III Department of Agad Tantra, Vaidhya yagya, Dutta Sharma, Ayurveda Mahavidyalaya, Khurja

Position of the Patient:-

Patients were scanned in supine position, left lateral position was also adopted for confirming the diagnosis in some patients. Coupling agent was applied scanning was performed with the patient holding the breath in or with the abdomen "Pushed out in full expiration. Equipment used is

Choice of transducer: - Transducer used were of frequency 3.5 MHz-5mHz depending upon age and body built scanning started by placing the transducer centrally at the top of the abdomen (the xiphoid angle) with angling of the beam to the right side of the patient to image the liver, gall bladder and billiary tree, gain was adjusted to obtain the best image (**Palmer 2007**).

Observation & Result:-

1. Number of patients depending upon the chief complaint

Presenting Complaint	**No. of Patient**		**Percentage**
	M	**F**	
1. Asymptomatic	16	32	48%
2. Nausea	05	07	12%
3. Vomiting	02	04	06%
4. Nausea &vomiting	01	02	03%
5. Pain in upper abdomen	09	14	23%
6. Palpable mass in right hypochondrium	00	05	05%
7. Previousaly diagnosed cases of gallbladder & biliary tract disorders	00	03	03%
Total	**33**	**67**	**100%**

According to chief complain of patient maximum case are asymptomatic (48%) second chief complain is pain in upper abdomen (23 %) followed by nausea in 13 %, vomiting in 6% , palpable mass in 5 %, nausea and vomiting both in 03% and only 3% previously diagnosed case of Hepatobilliary.

2. Prevelance of diseases according to age and sex.

Diseases	**Age/Sex**							
	25-35		**36-45**		**46-55**		**56-65**	
	M	F	M	F	M	F	M	F
1. Cholelithiasis	05	07	07	23	07	10	00	01
2. Cholecystitis	04	05	03	04	01	02	01	00
3. G.B. Polyp	01	02	00	01	00	01	00	00
4. G.B. Malignancy	00	00	00	01	00	01	00	00
5. Choledocholithiasis	01	02	02	03	00	01	00	00
6. Choledocholcyst	00	01	01	00	00	00	00	00
7.Cholecystitis with Choledocholithiasis	00	00	00	01	00	01	00	00

According to disease cholelithiasis occur mainly in 36-45 yr followed by 46-55 yr followed by cholecystitis and gall bladder polyp occur mainly 25-35 yr. mostly hepatobilliary disease common in female compare to male.

3. Number of patients according to disease

Nature of Disease	Number of Patients	Percentage
1. Cholelithiasis	60	60%
2. Cholecystitis	20	20%
3. GB Polyp	05	05%
4. GB Malignancy	02	02%
5. Choledocholithiasis	09	09%
6. Choledochocal cyst	02	02%
7. Cholelithiasis with choledocholithiasis	02	02%

A major number of patients 60%, were diagnosed to have cholelithiasis and second largest one were 20 % who were diagnosed to have cholecystitis.9%patients were diagnosed to have choledocholithiasis, cholelithiasis with choledocholithiasis 2%. G.B polyp cases are 5%, choledochol cyst was found in 2%.

DISCUSSION AND CONCLUSION : Majority of the patient visiting section of radio-diagnosis were observed to be asymptomatic and only small group of population were observed to have the complaint which give a clue towards the diagnosis of the disorder of gall bladder and billiary tree. It was also observed in the study that the prevalence of disorder is more in female population compare to males.

Even then easy availability of ultrasonography and awareness among the patient has increased the chances of early detection of liver, gall bladder pathology, which helps in prevention of progression and complication of these disorders.

Reference:

1. Bennion. L. J, Grundy. S. M: Risk factor for the development of cholelithiasis in man 1978:229:1161-1167
2. K. Rajgopal Shenoy Manipal Manual of Surgery: second Edition: 2006:25:386-388.
3. Everhart. J. E, Khare. M, Hill. M, Maurer. K. R,: Prevalance and ethnic difference in gall bladder disease gastroenterology: 1999:117: 632-639.
4. Haaga. J. R, Herbener. T. E: The gall bladder and biliary tract: 2003:1341-1394.
5. Strom. B. L, West. S. L,: The epidemiology of gallstone disease : 1985: p 1-26.
6. Terris. M: Epidemiology of Cirrhosis of the liver national mortality data Public Health 1967:57:2078-2088.
7. Grant. B. F, Noble. J, Malin. H: Decline in liver cirrhosis mortality and component of change : 1986: 10:66-69
8. National Institute of Alcohol Abuse and Alcoholism fifth special report on alcohol and health from the secretary of health and human service 1983:146
9. Laennec. R. T. H: Auscultation mediate et des maladies: 1819:196.
10. Harvey. R. T, Miller. W. T,: Acute billiary disease radiology:1999 : 213:831-836.
11. Cooperberg. P. L, Wong. L. D, Cohen. M. M, Burhenne. H. J: Accuracy of common hepatic duct size in the evaluation of extrahepaticbilliary obstruction radiology: 1980:135: 141-144.
12. Bowie. J. D: What is upper limit of normal for the common bile duct on ultrasound how much do you want it to be? :2000:95:897-900.
13. Hoeffel. C, Azizi. L, Lewin. M: Normal and pathological feature of the postoperative billiary tract at 3D MR cholangiopancreatography and MR imaging radiographics.: 2006:26:1603-1620.

●

ISSUES CONCERNING COPYRIGHT FOR NEWS MEDIA

*DR. RAJNISH KUMAR SINGH**

Copyright supports the rights of authors and creators to exclude competitors and the public from accessing and copying their works to the extent necessary to provide incentive to recover the investment they made in creating those works.[1] The technological development has increased the contours of intellectual creation and innovation. We are living in the knowledge economy which has enhanced the focus on intellectual creation. This has led to the debate on whether the intellectual property requires greater protection. Whether there is a requirement of change in the existing law or they are sufficient to protect the intellectual property in this technological world. The technology has digitalized the form of creation and innovation.[2] Copyright law protects the author or creator who by skill, capital and labour creates an original work by providing exclusive rights to create and reproduce the work. However, technology allows flawless, inexpensive and instantaneous copying, reproducing and distributing the work. There is an enormous growth not only in the creation of works but also the illicit consumption. The protection of copyright work in the digital world is the greatest challenge faced by the copyright law.[3] The International Conventions including the WIPO Copyright Treaty, 1996 and the WIPO Performances and Phonograms Treaty, 1996 oblige countries to provide adequate legal protection and remedies against the circumvention and also imposes obligations concerning Digital Rights Management. India has amended its Copyright Law in 2012 to be in consonance with these developments.

Media industry in India is heading towards a big growth rate. The Media & Entertainment (M&E) industry in India has experienced robust growth over the last few years and as per the FICCI-KPMG report[4] on the Indian Media & Entertainment Industry, this industry is expected to grow further at a compounded annual growth rate of 15 % per annum over the next five years. The potential of this industry in India has been recognised and has attracted foreign players who are keen to tap this industry. This is evident from the fact that in spite of the economic slowdown, the Foreign Direct Investment (FDI) received in this industry in the year 2011 was approx. INR 32.64 billion, which is 72% more than the FDI received in 2010-11.[5]

Now, the time has come when some introspection by the Indian media is required. Many people, not only those in authority but even ordinary people, have started saying that the media have become irresponsible and wayward, and need to be reined in. Under the Constitution of India, freedom of the media is part of the freedom of speech guaranteed by Article 19 (1) (a). However, no freedom can be absolute, and reasonable restrictions can be placed on it. One of the basic tasks of the media is to provide truthful and objective information to the people that will enable them to form rational opinions, which is a *sine qua non* in a democracy. But are the Indian media performing this role properly? India is passing through a transitional period in its history, from a feudal agricultural society to a modern industrial society. This is a very painful and agonising period. The media must help society in going through this transitional period as quickly as possible, and by reducing the pain involved. This they can do by attacking feudal ideas, for example, casteism and communalism, and promoting modern scientific ideas.[6] The law in India is in a precarious state on a vital aspect of freedom of the press: the lack of statutory protection of a journalist's sources. The fundamental right to freedom of speech and expression includes press freedom. This covers an entire process from news gathering, editorial judgement, publication and distribution of printed matter. Press freedom covers all four stages. Curb any of them and press freedom is curbed in its entirety.[7]

PROTECTION UNDER THE COPYRIGHT ACT, 1957

News requires investment and the commercial viability of a news media publisher is dependent on its ability to robustly protect the intellectual property it creates and curates. A stable copyright regime is therefore crucial not only to a healthy and vibrant news media industry but also to free speech and democracy. In the digital age, this has become even

* Associate Professor, Faculty of Law, Banaras Hindu University, Varanasi

more important and the need for efficient copyright protection and better enforcement of the rules is greater than ever before. The current regime generally strikes the right balance in terms of protecting the rights of content creators and the rights of consumers or users. Any significant new exceptions could be highly damaging to the news media industry. The fundamental right to freedom of speech and expression includes press freedom. This covers an entire process from news gathering, editorial judgement, publication and distribution of printed matter. Press freedom covers all four stages. Curb any of them and press freedom is curbed in its entirety. Of them all, the least understood is the scope of the first stage - the collection of news. It is a reporter's need and duty to protect the identity of the source of his information. Else, vital information of concern to the people in a democracy would be suppressed.

The status of freedom of the press is the same as that of an ordinary citizen. The press cannot claim any immunity from taxation, is subject to the same laws regulating industrial relations, and press employees are subject to the same laws regulating industrial employment.[8] But the legal implications arising out of the concept of 'press freedom' are many and hence they are not confined to the constitutional provisions alone. The different aspects of it impinge inter alia on criminal law, law of contempt, Copyright Act , Official Secrets Act, Freedom of Information Act, Law of torts, Prevention of Insults to National Honour Act etc , to name a few.

Copyright protects literary, artistic, dramatic and musical works which pass the requirement of originality. It also protects sound recordings and cinematograph films. The first and foremost requirement is that the work in question is original. This means that the author must have shown at least a small spark of creativity when he made the work. For example, courts have said that simply arranging listings in a telephone book alphabetically according to the last name of the phone service subscriber lacks the creativity necessary to qualify for a copyright.[9] Second, the work must be "fixed in any tangible medium of expression." This "fixation" requirement means that only works preserved in a tangible form (a book, a newspaper, a video, a website, etc.) - as opposed to those existing entirely in an artist's mind - will receive copyright protection. Copyright law also recognizes a distinction between "expression" and "ideas." Only creative expression, and not mere ideas or facts, qualifies for copyright protection. [10] In the case of *Donough* v. *Allied News Paper* the court observed that in case of literary works copyright subsist in the particular form of language used. Thus, the words chosen to convey the news in a newspaper may belong to the journalist the news will not. In *Indian Express Newspaper (Bombay) Pvt Ltd*., v. *Jagmohan*[11] the reporter of Indian Express, Mr. Ashwini Sarin investigated into the flesh trade in Madhya Pradesh and purchased in Shivpuri village, a woman "Kamala" for Rs 2,300 to establish the trafficking in women. He then wrote series of articles exposing the prostitution trade and involvement of bigwigs from politics and police department in 1981. Then Mr. Vijay Tendulkar scripted a play by name 'Kamla' totally based on the Indian Express exposure, and staged the play for 150 times in 32 cities and in seven languages. Jagmohan Mundhara, a film producer planned to produce a film on the same theme from the same writer Vijay Tendulkar. Journalist Ashwini Sarin and the Indian Express newspaper complained that Jagmohan and Vijay infringed their copyright. The Indian Express contended that, when series of sensational reports resulted from sweat of brow of the journalists, and forms an effective expression of what was happening around, why not it be protected? How is that others could make capital out of it leaving the original authors of the 'exposure' without any protection to their writing? The Bombay High Court held that there could not be any copyright in an event which has actually taken place. The Court observed: "There is distinction between the materials upon which one claiming copyright has worked and the product of the application of his skill, judgment, labour and literary talent to these materials. The ideas, information, national phenomena and events on which an author expends his skill labour, capital, judgment and literary talent are common property and are not the subject of the copyright".

According to Madabhushi Sridhar this judgment ignored the skill, capital, talent and labour invested by the journalist and simply termed the incident as national phenomena and finally refused the copyright to journalists. The Court should have recognized the way the national phenomena or tragic happening in society was creatively reported by the journalist alerting the authorities. The justice could be ordering Vijay Tendulkar and Jagmohan to acknowledge the efforts and risk of Journalist and secure his permission on token payment of a share in their proceeds. If not it would amount to permitting a theater and cinema person to commercially exploit an expression of idea which is not their own, which is against the spirit of copyright regulation.[12]

The copyright law is based on two competing consideration. One, the creator's property, that is, the original works need to be protected. Two, for advancement of knowledge in the interest of the society, there should be some amount of freedom to produce parts of other people's copyrighted works. Copyrights have been held to be a right which person acquires in a work, which is the result of his intellectual labour. This primary function of the copyright law is to protect from annexation by other people the fruits of a man's work, labour or skill. In respect of the Press, copyright means, under section 14 of the Copyright Act, 1957, the exclusive right in the case of a literary, dramatic or musical work, to do and authorize the doing in substantive form of any of the following acts, namely:

- To reproduce the work in any material form
- To publish the work
- To make any adoption of a work
- To reproduce or publish translation of the work

MEDIA AND COPYRIGHT PROTECTION

The ability to freely express one's knowledge, interpretations and opinions is a human right under the United Nations Universal Declaration of Human Rights and is protected by many national and international laws. Nevertheless governments, corporations, unofficial groups and powerful individuals sometime impose explicit or implicit forms of censorship, or create conditions in which people perform self-censorship for their own safety and well-being. Even a cursory examination of the origins of copyright law reveals the potential conflict between property rights in intellectual creations and freedom of expression. In its earliest stages, the copyright system was a device to enable the English Crown to control the output of the newly invented printing press. Initially, the control took the form of royal grants for the exclusive printing of particular books. Later, printing monopoly was granted to the Stationers' Company, a trade association of favoured printers. Although direct attempts at censorship had ceased by 1709 when the first modem copyright statute was enacted, the tension between copyright and free speech still persists.[13]

Indian media and entertainment industry may face the legal challenges of copyright, trademark, etc. The M&E industry never gave much importance to the protection of IPR or contractual rights in general. The scenario, however, has changed drastically over the past few years. Recent trends also reveal that the rights holders have become extremely proactive in taking disputes to courts for a multitude of reasons including infringement of intellectual property rights, breach of contract. The courts in India have also been supportive of the need to safeguard intellectual property rights, which has given further impetus to the faith of the right holders in the fair justice system of the country.[14]

Copyright law's history is one of continuous evolution in the face of technological change. But arguably no prior technological change has impacted copyright with a magnitude comparable to the development of the Internet. As a broadening array of creators continue to express themselves and share their valuable works with the world, and as the Internet continues to grow in economic, social and cultural relevance, the importance of these questions will only be heightened.[15] Due to advancement of science and technology copyright-protected materials may be replicated and transmitted across the globe easily. The borderless nature of the Internet can subject website owners and operators to liability under copyright laws not only in their home country, but throughout the world. Blatant infringement of copyrighted material is rampant on the Internet.[16] The law continues to evolve in response to rapidly changing technology and new forms of digital publishing, networking and communication. The fluid and ever-changing nature of copyright exposures, and the fact that the law is reactive, responding after the fact to changes – means that legal ambiguities and grey areas are inevitable.[17] The Fair Use provision of the copyright law allows the use of copyrighted material for such purposes as criticism, comment, news reporting, teaching, scholarship, or research. For every other situation you will need to pay the copyright owner or obtain permission to use copyrighted material. What and what does not fall under the Fair Use provision is a complex issue.[18] However, an increasing number of people want to provide others with the right to use their own work without charge or requiring permission.[19]

Digital technology and the Internet are altering many industries and changing the way people use and enjoy consumer electronic products, media and entertainment. Although beneficial in many respects, this evolution also exacerbates the tension among copyright holders. However, when some part of this digital media ecosystem gains a disproportionate measure of influence, the system becomes destabilized. In time, the instability may yield a new equilibrium, but its ultimate effects are difficult to anticipate in the short run.[20] In the case of digital media the transition to fully formed digital distribution services is now in progress. What happens during this transitional period is important on a cultural as well as a commercial level. In the United States, for example, social values such as allowing access to information and creating an environment that encourages development and creation were important considerations in the codification of copyright law in the U.S. Constitution and later statutes.[21] Digital technologies and digital media content have become more portable in time, space and format. Content providers, though, have been slow to adapt to digital distribution for fear of crushing old business models before they devise new ones. Industry players generally implement digital technology to protect existing business and aggressively pursue perceived abusers of copyrighted material. They have solicited and received assistance in these efforts from legislators aimed at preventing what they perceive as illegal copying or sharing.[22]

Under Indian Copyright Law, in the case of a literary, dramatic or artistic work made by the author in the course of his employment by the proprietor of a newspaper, magazine or similar periodical under a contract of service or apprenticeship, for the purpose of publication in a newspaper, magazine or similar periodical, the said proprietor shall, in the absence of any agreement to the contrary, be the first owner of the copyright in the work in so far as the copyright relates to the publication of the work in any newspaper, magazine or similar periodical, or to the reproduction of the work for the purpose of its being so published, but in all other respects the author shall be the first owner of the copyright in the work.[23] In fact, the copyright is the sister of printing press. When the press was introduced into England in 1476, the need for protection of printed works was felt inevitable. And when the copying became technically much more easy, effective, faster, wide spread and neat than the original, the need for copyright protection is much more high and intensive. A copyright law, thus, is needed to secure a fair return for the author's labour. But the ultimate aim is, by this incentive, to stimulate artistic creativity for the general public good.[24] Judge Walker has summarized that "the copyright law seeks to establish a delicate equilibrium. On the one hand, it affords protection to authors as an incentive to create, and, on the other, it must appropriately limit the extent of that protection so as to avoid the effects of monopolistic stagnation."[25] The public interest is the criterion for copyright protection.

The only balancing factor is doctrine of fair use. It is the most important of the rights of the users. Unfortunately, the fair use is the least specifically defined and least understood of user's rights. Certain specific fair uses of copyrighted works are not infringements even if they involve in copying, adapting, performing, or displaying the copyrighted work. There are four non-exclusive factors for courts to consider in determining whether any particular use is a fair use and thus, not an infringement of copyright. The four factors are:

a) the purpose and character of the use, including whether such use is of a commercial nature or is for non-profit educational purposes;

b) the nature of the copyrighted work;

c) the amount and substantiality of the portion used in relation to the copyrighted work as a whole; and

d) the effect of the use upon the potential market for or value of the copyrighted work.

A court is required to examine these factors in adjudicating an assertion of infringement by the copyright owner on the one hand and the assertion of fair use by the alleged infringer on the other.[26] Section 52 of the Copyright Act 1957 lists acts, which even if infringement per Section 51 read with Section 14, have been statutorily declared to be not constituting infringement of copyright. But for Section 52 the acts listed thereunder would have constituted infringement of copyright. In *Entertainment Network (India) Ltd.*[27] it was held that the Copyright Act seeks to maintain a balance between the interest of the owner of copyright in protecting his works on the one hand and interest of the public to have access to the works, on the other.

"It is impossible to lay down any hard-and-fast definition of what is fair dealing, for it is a matter of fact, degree and impression. However, by far the most important factor is whether the alleged fair dealing is in fact commercially competing with the proprietor's exploitation of the copyright work, a substitute for the probable purchase of authorised copies, and the like. If it is, the fair dealing defence will almost certainly fail. If it is not and there is a moderate taking and there are no special adverse factors, the defence is likely to succeed, especially if the defendant's additional purpose is to right a wrong, to ventilate an honest grievance, to engage in political controversy, and so on. The second most important factor is whether the work has already been published or otherwise exposed to the public. If it has not, and especially if the material has been obtained by a breach of confidence or other mean or underhand dealing, the courts will be reluctant to say this is fair. However this is by no means conclusive, for sometimes it is necessary for the purposes of legitimate public controversy to make use of "leaked" information. The third most important factor is the amount and importance of the work that has been taken. For, although it is permissible to take a substantial part of the work (if not, there could be no question of infringement in the first place), in some circumstances the taking of an excessive amount, or the taking of even a small amount if on a regular basis, would negative fair dealing."[28]

In *Hyde Park Residence Ltd* v. *Yelland*[29] a newspaper published photographs taken on a security camera when Princes of Wales Diana, and her friend Dodi Fayed visited Villa Windsor in Paris, on the day prior to their deaths in a car accident. The photographs were stolen by a security guard and sold to the newspaper, which published them more than a year later. Hyde Park had sought summary judgment at the first instance relying on breach of copyright. The defendant relied on the defence of fair dealing for the purpose of reporting current events. The judge upheld it as fair use. However, it was reversed on appeal. Motive of alleged infringer, the extent and purpose of the use, will decide the fairness or otherwise of the usage. In Diana case the photographs by security camera had not been published or circulated to the general public. This was considered to be one of the important indicators that the use was not fair and not for the purpose of reporting current events. The Court said that "A fair minded and honest person would not pay for the dishonestly taken driveway stills and publish them in a newspaper knowing that they had not been published or circulated."

In Europe, copyright review is likely to be high on the agenda of the Juncker Commission while changes are also being introduced by the UK government. The UK Government has introduced changes to copyright exceptions contained in the Copyright, Designs & Patents Act 1988 which follow publication of the Hargreaves Review in May 2011. The Intellectual Property Office will be reviewing the operation of the exceptions - which cover a range of uses including quotation, archiving, text and data mining, parody, caricature and pastiche - a year after they come into force.[30]

In *Monge* v. *Maya Magazines, Inc*.[31] in January 2007, pop singer and model Noelia Lorenzo Monge secretly married her manager, Jorge Reynoso. Approximately six photographs were taken using the couple's camera, three at the wedding and three later that evening. The couple never released the photographs and kept their wedding secret for the next two years, motivated at least in part to maintain Monge's marketable image as a young, single pop singer. In the summer of 2008, Oscar Viqueira, a paparazzi who occasionally worked as the couple's driver and bodyguard, discovered a memory chip in the ashtray after Reynoso borrowed his car. The chip contained more than four hundred photographs and videos, including the six wedding-related photos. In February 2009, Viqueira sold all of the files on the chip to TVNotas, a celebrity gossip magazine. The magazine promptly published the six photographs to expose the couple's secret wedding. When Monge and Reynoso learned of the publication, they registered five of the six photographs with the U.S. Copyright Office and filed a lawsuit against the magazine and its publisher. The district court granted the Magazine's motion for summary judgment, finding its use of the photographs constituted fair use under 17 U.S.C. § 107 and barred the plaintiffs' copyright infringement claims. The only issue raised on appeal was whether the district court properly applied the fair use standards.

In the *Ashby Donald* case, three photographers were convicted by a French court of copyright infringement after publishing unauthorised catwalk photographs on a fashion website. French copyright law gives specific protection to fashion designs. The photographers complained to the ECHR that their Article 10 right to freedom of expression had been infringed by their copyright convictions resulting in fines and damages totalling €255,000. The ECHR held that the claimants' Article 10 rights had not been infringed, the publication of the photographs being purely commercial and not a contribution to any important topic of public debate. In different circumstances, however, the human rights balancing exercise between the right to freedom of expression and a copyright owner's property rights could fall the other way.[32]

CONCLUSION

A legal system that simultaneously recognizes both a basic right of free speech and proprietary interests in forms of expression should be prepared to resolve inevitable conflicts. It is relevant to note that a balance has to be struck between the two seemingly conflicting claims of individual interest and public interest. The decision of Delhi High Court in *Rameshwari Photocopy Service*[33] case establishes the argument that section 52 is not to be interpreted as an exception to section 14 and 51 of the Copyright Act, it actually provides rights of the users of the copyright. From the standpoint of the newspapers it is important to note that in order to take the defence of fair use they must be able to prove that the extract has been taken from a published work, in a lawful manner, the dealing is transformative in nature, the motive for dealing is positive and the dealing will not come in conflict with the normal exploitation of the work of the owner. The newspaper must not take extracts if it is possible to achieve the purpose without violating the copyright.

Reference

1. David Herlihy and Yu Zhang, "Music Industry and Copyright Protection in the United States and China" 1(4) *Global Media and China*, 2016, pp.390–400
2. C.P. Dayananda Murthy, "Copyright and the Digital Media: Perspective and Challenges in the New Legal Regime in India" in M. Sinha and V. Mahalwar (eds.) *Copyright Law in the Digital World* (Singapore: Springer, 2017) pp. 221-253
3. *Ibid*.
4. Indian Media and Entertainment Industry Report, 2012
5. "Media and Entertainment", available at: *http://www.nishithdesai.com/information/areas-of-service/industry/media-entertainment.html*
6. Markandey Katju, "Media and Issues of Responsibility" 2011, available at: *http://www.thehindu.com/opinion/lead/Media-and-issues-of-responsibility/article13059658.ece*
7. A.G. Noorani "Laws in India fail to protect media sources" 2016, available at: *http://www.deccanchronicle.com/opinion/columnists/261216/laws-in-india-fail-to-protect-media-sources.html*
8. Vijay Jaiswal, "Freedom of Press in Indian Constitution: Brief Overview", 2013, available at: *https://www.importantindia.com/2011/freedom-of-press-in-indian-constitution/*
9. *Feist Publications Inc. v. Rural Telephone Service*, 499 U.S. 340 (1991)
10. *R.G. Anand* v. *Delux Films* AIR 1978 SC 1613
11. AIR 1985 Bom. 229
12. Sridhar Madabhushi,"Copyright: Copyright Limitations on Media Freedom" available at: *https://www.bananaip.com/ip-news-center/copyright-limitations-on-media-freedom*
13. Robert C. Denicola, "Copyright and Free Speech: Constitutional Limitations on the Protection of Expression" 67(2) *California Law Review*, 1979, at 285
14. *Ibid*.
15. *Copyright Policy, Creativity, and Innovation in the Digital Economy*, the Department of Commerce Internet Policy Task Force, 2013, at 1
16. "Intellectual Property and the Internet: Copyright Infringement Liability in the Digital Era", An Advisen Special Report, 2010, at 1
17. *Ibid*.
18. A fair use is copying of copyrighted material for a limited and transformative purpose, such as to comment upon, criticize, or parody a copyrighted work. Such uses can be done without permission from the copyright owner. It is a defense against a claim of copyright infringement. If your use qualifies as a fair use, then it would not be considered an infringement.
19. "Media, Popular Culture, and Communication Rights Research Guide: Copyright & Fair Use" available at: *https://guides.library.yale.edu/media?p=1975659*
20. "Copyright and Digital Media in a Post- Napster World" *GartnerG2 and the Berkman Center for Internet & Society,* Harvard Law School, 2005, at 2
21. *Ibid*.
22. *Ibid*.
23. *A Hand Book of Copyright Law,* Department of Secondary Education and Higher Education, Ministry of Human Resource Development, Government of India, available at: *http://copyright.gov.in/documents/handbook.html*
24. Sridhar Madabhushi,*supra* note 12
25. *Computer Associates International, Inc* v. *Altai, Inc* 982 f.2d 693; 1992 U.S.
26. Sridhar Madabhushi, *supra* note 12
27. *Entertainment Network (India) Ltd.* v. *Super Cassette Industries Ltd.* (2008) 13 SCC 30
28. Laddie H, P Prescott and M Vitoria, *The Modern Law of Copyright and Designs* (Butterworths, 3rd ed. 2000) at 20.16; the observation was approved in the case of *Ashdown* v. *Telegraph Group Ltd* [2002] Ch. 149 cited from *http://www.copyrightuser.org/understand/exceptions/news-reporting/*
29. [2001] Ch. 143
30. Availableat: *http://www.newsmediauk.org/Current-Topics/Copyright-IP*
31. 2012 WL 32900014 (9th Cir. 2012)
32. Available at: *https://www.theguardian.com/media-network/media-network-blog/2013/feb/13/freedom-speech-trump-copyright*
33. Decided on December 9, 2016

MEGALITHIC CULTURAL TRADITION AMONGST THE TRIBES OF CENTRAL INDIA AND TRIBES OF NORTH-EAST INDIA

DR. VINAY KUMAR*

Etymologically speaking the word 'megalith' is derived from two Greek words *megalithos* meaning huge and *lithoi* meaning stone; hence, it denotes a huge stone. The term 'megalith' may be explained as 'a grave or memorial erected in stone, whether dressed or in its natural form containing, enclosing or erected over the funerary assemblage'. Megalithic culture has no regional bounds as its cultural remnants are found all over the world. These monuments are found in Europe, Africa and Asia, including in the far eastern countries. In the neighbourhood of the Indian sub-continent, the presence of this culture is noticed in Iran and Baluchistan, extending up to Pakistan. In northern India, this culture is sporadic in occurrence as compared to south India[1]. Gordon Childe thinks that the early centres of Megalithic architecture were situated near the Mediterranean, the Atlantic and the North Sea. According to him, it was from this region that the dolmen and the port-hole slab reached the Indian peninsula. The megaliths in south India, according to Gordon Childe, are not likely to be affected by land borne impulses from Iran but were rather exposed to maritime influences[2]. But Dikshit in his paper on 'The origin and distribution of Megaliths in India[3] opines that the Indian megaliths appear with different traits introduced by different people at different times.

Megalithic Tradition among the Tribes of Central India

Megalithic practices are observed by aboriginal tribes of India even to this day. This practice is noticed among *Gadaba*, *Bondo* and *Munda* tribes in districts of Koraput and Keonjhar in southern Orissa. It is usually believed that the Kol and Gond communities of Central India were megalith builders, and some cultural-continuity of this practice survives, with the erection of smaller standing stones. They still use the stone circles which is directly influenced by those of Baluchistan, Pakistan and the Makran region[4]. *Menhirs* are also found in abundance among these tribes of Central India.

Among the tribal populations of India the Gonds stand out by their numbers, the vast expanse of their habitat and their historical importance. Gondi or Gond people belong to the Central India and are spread over the states of Chhattisgarh, northern part of Andhra Pradesh, Madhya Pradesh, eastern region of Maharastra, and western part of Orissa. They are the largest tribe in Central India. They are actually a part of the large tribal category, which includes the Santhal and the Bhil tribal communities. Also the Gond tribes identify themselves as 'Koytoria'. If one traces out the origin of the word Gond, one finds it no difficulty to find out the fact that this has been taken from the Telugu word 'Konda' which signifies hill. Also there are several surveys that have been carried on the region, which has thrown some light on the total population of the Gond tribes. It has been enumerated to be more than four million thus making the Gond tribes the largest tribal community of the Central India. The social structure of the Gondi people are divided in four basic categories namely Madia Gonds, Raj Gonds, Dhurve Gonds and Khatulwar Gonds. The Gondi tribes are categorised in three major sub castes namely Muria, Maria, and Dorla. Some of the evidences of megalithic structures of their time still exist in some parts of their dominion. The Stone Age burial practice, however, has however disappeared in Europe, Latin America and many parts of Asia. But, the "grave art" continues to flourish in Gond tribal pockets of Chhattisgarh's Bastar region[5]. *Adivasis* converging at the village burial ground, performing cremation or burial rituals for the dead clan member amidst recital of "hanal pata" (burial song in tribal Gondi dialect), beating of drums in a melancholic rhythm, and then raising memorials to "preserve the soul of the dead" is still a common sight in remote tribal areas of Bastar. The architectural designs of the memorial structures found in different places in Bastar are as varied from each other as is possible. As the Stone Age legacy, dating back to the Iron Age in India, passed on to the successive generations, the Bastar tribals have continued the tradition. Bastar

* Assistant Professor, Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology, Banaras Hindu University, Varanasi

being one of the most primitive centers of the tribal culture has the most exclusive and ancient pattern of culture in relation to the Megalithism as is followed in the means of death ceremonies mainly in the tribal context which is still being followed by the occupational tribes rather though with many modifications. *Adivasis* converging at the village burial ground, performing cremation or burial rituals for the dead clan member amidst recital of "hanal pata" (burial song in tribal Gondi dialect), beating of drums in a melancholic rhythm, and then raising memorials to "preserve the soul of the dead" is still a common sight in remote tribal areas of Bastar. Among the tribes who are following this culture the main are the Gondis and with the gradual development of time the off shots of this tribes followed this they are Marias, Dorlas as well as Dhurwas. Among the category of Marias we have two divisions one is the Abujhmaria and another is the Dandami Marias. The former's role is not significant in this relation and the later is the legendary follower of this cultural pattern.

The megaliths here are broadly classified into four categories — *Menhir, Cist, Cairn Circle,* and *Cap Stone*. In Bastar, basically *menhir* types (large standing stones) of megaliths are noticed. Currently three tribal groups — Marias, Dorlas and Murias — practice the megalithic culture. Earlier, Gond tribals of Kanker in Bastar also observed this tradition, but they discontinued it since long. The tradition, according to anthropologists, has come to Bastar from the Indonesian archipelago and to the north-eastern region of India and Orissa through Burma. Stone slabs used for building the tombs are engraved with what is the depiction of the culture of the clan to which the dead belonged, along with the deceased's own life and achievements. Figurines of animals, birds, men and women are also found in the engravings. The motifs also illustrate the dead person reaching heaven riding on an elephant. The articles used by the deceased are also buried under the memorial along with an iron ring, in which the local priest "entraps" the departed person's soul by performing some complex rituals. The rituals associated with the burial ceremony are very expensive, as it involves a feast for the clan members and even slaughtering a cow. However, in many cases, tribals, who cannot afford the practice, are forced to postpone it to a later period.

Gonds of Bastar reveals a fusion of cultures which has not only taken place in the past but is going on in the present. The practices of erecting a dolmen as a seat for a village elder, for the 'Village Mother' or for the ghost of a dead person to sit on, a circle of stones for the village panchayat and a memorial menhir in the village of ancestral origin, together with a belief in a collective clan soul and what amounts to a form of ancestor-worship recall very strongly the *Sawara*, *Munda* and *Khasi* cultures, while they link up with other similar practices of the megalithic cultures farther east, e.g. in the Naga hills, Mentawi, Farther Asia generally and even the Pacific. The same group of cultures is again suggested by the use of a communal bachelor's hall, of the sago palm and of grass rain-coats, by stilt-walking and by the making of fire by means of a fire-saw instead of a drill. Reference has already been made to the megalithic culture of the Maria, now apparently rapidly decaying. Here again, much is suggestive of various Assam and Indonesian cultures. Menhirs are transported as by Lhota Nagas and erected as by the Angami, while stone cists are put up by the village path. Seed is fertilized with blood, suggesting not only the *Khond* meriah sacrifice, but also the general theory underlying the head-hunting practices of Naga, Wa, Kayan, Igorot or Taigal from Assam to Formosa.

The Kol are an ancient tribal community, one of the original inhabitants of northern and central India. Korku is a scheduled tribe (ST) community predominantly found in the East Nimar (Khandwa and Burhanpur), Betul and Chhindwara districts of Madhya Pradesh and adjoining areas in Melghat region of Maharastra in India speaking the Korku language, which is a member of the Austroasiatic language family. Korkus have derived their name from the combination of the word 'koru' meaning man and 'ku' which makes it plural meaning tribal men. The Korkus are a branch of the great Munda tribes and are placed here in the vicinity of the great tribe- the Gonds. Korkus are initially believed to be a hunting gathering community dwelling in the forests of Satpura ranges on either sides of the river Tapti. These two tribal communities are also still practising the megalithic tradition in central India.

Megaliths Culture among the *Khasi* Tribes of North-East India

The North-East region comprises the seven states of Assam, Arunachal Pradesh, Manipur, Meghalaya, Mizoram, Nagaland and Tripura. It has different cultural, linguistic, religious and ethnic races. The races which dwelt upon the region since remote antiquity are the Austrics, Mongolians, Dravidians and

Aryans. Migration of all these races had contributed the development of composite culture in this region[6]. The megalithic culture is widespread in the state. The notable feature is the prevalence of these customs in some of the tribal communities of the state. Table stone and *menhirs* were being erected after the remarkable events of social importance. Typologically these are classified broadly into three categories *viz. menhirs*, dolmen and stone cists. *Menhirs* and dolmens are the monumental groups. *Menhirs* are found erected in the line of three, five, seven etc. whereas the dolmens are usually built in front of the *menhirs*. Origin of this tradition in this part of the country is perhaps influenced by the Southeast Asian megalithic tradition during the first half of the first million B.C. and perhaps ended during the first century AD. Date of origin of these megalithic traditions, however, is problematic. Some believe that this tradition was spread to this region from the west. According to Christoph von Fürer-Haimendorf's observation they belong essentially to south-eastern Asia-Indonesia, Oceania, the Philippines, Formosa and were introduced into north-eastern India by Austro-asiatic immigrants[7]. The *Khasis* and Nagas of Assam erect single standing stones (*menhirs*) or alignments of stones in honour of the dead, who are thereby encouraged to help their living kinsmen. In Assam, as well as in Indonesia and Oceania, a forked wooden post of Y-shape is an alternative to the *menhir*, and both posts and *menhirs* are associated with ox-sacrifice. An identical custom occurs in Bastar; and the Koyas and Raj Gonds of Hyderabad erect small forked posts carrying the tails of sacrificial cows on graves or the site of memorial feasts. In all these regions it is the widespread belief that the soul or 'virtue' of the dead man is attached to the stone or post and benefits his survivors and the village-crops.

One of the striking features of the *Khasis* is the Megalithic culture whereby they erect megaliths, monoliths, cromlech and dolmens over which lie the foundation of prehistoric origin. It is astonishing to see that this culture is found to be associated with ancient people from all over the world such as the *Monkhmer* group of South East Asia. Such practices of the erection of stones are found in France and other parts of Europe. The *Khasis* indeed approach more nearly to the dominant megalithic custom of peninsular India in that they collect periodically the bones of clan- members and deposit them in a free-standing cist, as big as a small house, built of enormous single slabs. The significant aspect of the megalithic tradition is that the tradition is still in vogue in some of the pocket areas of the tribal communities in the *Khasi* and Jaintia Hills. They are widely distributed in the *Khasi* and Jaintia Hills of Meghalaya. Some of the megalithic sites in the Meghalaya are Nartiang, (Fig. 1) Cherrapunji, Jowai, Maoflong, Lailugkot etc. Amongst several other sites in Ri-Bhoi District of Meghalaya like Mawrong, Mawbri, Iapngar, Tyrso, Umswai, Amjong, Umbi, Nongkhrah; Umjajew, San-Mer, Nongpyiur-Myrkhan and Tynring in East *Khasi* Hills District; sites around Shilian Myntang-Chei Bnai in Jaintia Hills District, and Nongspung and Wahlang of West *Khasi* Hills District, the site of Sohpet-Bneng Hill in Ri-Bhoi District situated north-east of Umiam-Barapani site deserves a special mention due to its association with the *Khasis* as their ancestral site. The *Khasis* generally erect a monolith as a tribute to a dead person. Immediately after the cremation, a monolith will be erected. These monoliths are comprised of a set of upright and flat stones. The upright stones or the *menhirs* are known as *mawsynsang* or the milestone and the table stone or dolmens are known as *mawkynthei* or the female stone. *Menhirs* or pillars stand upright, their bane being dumped inside and the dolmens lie flat in the front (Fig. 2 & 3). They are known a *Mawkjat* which are laid during the cremation of the deceased or during the disposal of the ashes of the demised members of the house. *Mawknaii maw pyrsa* commemorating the seniors or juniors usually vary from three tall pillars to eleven or more and are associated with two or more dolmens.

The megalithic monuments of Nartiang are significant because of larger dimension. Some of the monuments are very big even 9m high. Nartiang used to be the summer capital of the Jaintia Kings of the Sutnga State. The megaliths here are huge granite slabs probably hewn out by the fire setting method. The huge monolith, is said to be erected by Mar Phalyngki, a Goliath of yore. The Nartiang *menhir* measures 27 feet 6 inches in thickness. The monoliths represent the megalithic culture of the Hynniewtrep people representing thus the Stonehenge of Northeast India. The types of the megalithic monuments are *menhirs*, dolmens and cairns. The stone cairns are the monuments of upright stones in square or circular plan fitted closely. The stone cairns contain the bones of the family members or clans. These are deposited periodically after removing one flat stone. The calcified bones and ashes of the deceased are collected from time to time in an earthen jar and deposited in the cist. The dolmens are differed from the cist structurally as well as in content. Structurally dolmens are comprised of flat table stones and upright stones. But unlike stone cairns these do not contain any bony remains or ashes in jars. The third variety is the monumental groups of *menhirs*. They are comprised of huge stone slabs erected over the ground.

Conclusion

Hence we can see that the megalithic culture survives today only in Bastar and its adjoining areas in Andhra Pradesh and Orissa. The tradition also continues in very few pockets of north-eastern states of India, but not as profusely as seen in Bastar. Though the concept of Megalithism has changed a lot from that what was during the time of crude and rough megaliths to the present cemented cenotaphs and the painted memorial, what yet pleases is the basic core concept of the whole them which is unchanged but there are many obstacles in the way of protection of the practice of this culture among the future generations of this society as the main constrain is the expenditure of the feast which the deceased's relatives have to bear at the time of the installation of the memorial. The second one are the anti laws and political scenario when many political fractions are trying their best to create political advantages over the sensitive issues related with megalithism, these tribal communities thinks twice before performing such a sacrifice which is a must according to their tradition.

As far as the developments are concerned no such modern revolutions are far from the deeper forests of *Dandakaranya*. Today's tribe wants to develop themselves as far as possible which is nice but not at the cost of their own separation from their own cultures, this is what we have recorded as today's tribal context lacks that seriousness towards the megalithism concept what their ancestors felt, and implemented. As far as awareness is concerned we have noticed that there have been some efforts of awareness in the state ASI departments to protect the memorials as we can see shelters being constructed over many of the wooden memorials these days and blank painted new boards waiting for information with newly fenced area protecting is quite appreciable.

Endnote

1. Hutton, J.H. 1933. "Megalithic Burials in South India", *Journal of the Royal Asiatic Society* (New Series), 65, pp. 508-510.
2. Childe, V. Gordon. 1948. "Megaliths", *Ancient India*, 4, pp. 4-13.
3. Dikshit, K.N. 1969. "The Origin and Distribution of Megaliths in India", *Seminar papers on the problem of megaliths in India*, Banaras Hindu University, Varanasi, p.10.
4. Banerjee, N.R. 1966. "The Megalithic Problem of India", in: D. Sen and A.K. Ghosh (ed.) *Studies in Prehistory*, Firma K.L. Mukhopadhyay, Kolkata, pp.163-175.
5. Russell, R.V. 1916. *The Tribes and Castes of the Central Provinces of India.* Vol. 3, Macmillan, London, pp. 520-526.
6. Ashraf, A.A. 1998. "Archaeological Remains and Further Prospects in Arunachal Pradesh", *Puratattva* 28: pp. 64-76.
7. Heimendorf, C.von Furer. 1945. "The Problem of Megalithic Cultures in Middle India", *Man in India*, 25, pp. 73-86.

Fig.1. Nartiang, Shillong, Megaliths

Fig.2.Cherrapunjee, Megaliths

Fig.3.Cherrapunjee, Menhirs

●

THE ECONOMIC IMPACT OF ONLINE VIDEO STREAMING AND DIGITIZATION ON FILM INDUSTRY

SAMEERA KHAN AND DR. NEHA PANDEY***

With technological changes and extensive digitization, the Indian media and entertainment sector has undergone a fundamental change in the recent past. It has completely changed the way entertainment is consumed by the masses and has revolutionized the distribution models, giving rise to VoD services on OTT platforms. With the launch of over-the-top (OTT) services, VoD has been at the forefront of disruption in the media industry, and the production budgets of companies like Netflix and Amazon now rival those of traditional studios. Moreover, this disruption has transformed the value drivers in the entire chain of production, aggregation and distribution, with consumer reach and satisfaction becoming the Holy Grail.

Disruption caused by OTT players has posed several major challenges to established media industry players in developed markets. However, in India, given the digital adoption stage that the country is at, media players can adapt to the changes by developing more customized business models and rolling them out in a controlled manner.

Traditional and conventional media industry players in India will coexist and achieve impressive growth over the coming years. Collaboration between OTT players and traditional media industry players will give rise to new business models in the Indian context, ensuring the latter's survival. By some estimates, India is amongst the fastest growing OTT markets in the world and will be one of the top 10 OTT markets by 2022.

DIGITAL TECHNOLOGIES

A set of technological developments drives the change in the film industry. The main technological forces include:

- broadband Internet connection;
- digital file compression;
- streaming media; and
- Encryption.

These technologies allow video files to be digitized, stored and transmitted via digital networks, which in turn made video-on-demand possible. VoD allows the viewer to choose from a large database of movies located on a video server, and have full control on playing the movie (for example, start, pause, replay, rewind and fast forward).

Video-on-demand is transmitted primarily through two media: digital cable network and the Internet. Cable companies such as Time Warner and Cox Communications are leveraging their fibre optic network with VoD technology companies such as Concurrent, Sea-Change and Diva TV to provide VoD to their network customers. With broadband Internet connections reaching more and more house- holds, VoD through the Internet is also becoming a viable media for movie distribution.

DIGITAL CABLE NETWORKS

To allow customers to select the movie from a standard database, the movie media is first uploaded to the main- frame computer for storage and distribution. The storage library accepts media from different formats and stores them in the library. The movies are then digitally uploaded to the video server of the cable company where the viewers can select the movie through the set-top box to the tele- vision. The selected movie is then uploaded to the digital link, which converts the MPEG file to an RF signal for transmission. Then the link establishes a one-to-one connection to the serving residence and the movie is ready to be viewed.

VoD services through OTT platforms

In its current form, VoD refers to streaming of content over the Internet or through applications typically referred to as OTT platforms. VoD services are classified based on the model of monetization, namely subscription VoD (SVoD), transaction VoD (TVoD) and advertising VoD (AVoD). Amazon and Netflix would fall under the SVoD category, whereas

*Research Scholar, Deptt. of Journalism & Mass Communication, Banaras Hindu University, Varanasi
**Assistant Professor, Deptt. of Journalism & Mass Communication, Banaras Hindu University, Varanasi

iTunes has a transaction based business model—that is, TVoD. One of the most preferred categories of content consumption in India is via the advertising-based model—that is, AVoD—which is led by YouTube.

OTT has caused huge disruption in the content consumption space. From an Indian perspective, where having multiple cable connections in a single Indian household is a distant dream, OTT platforms enable individual viewership. By providing the comfort of viewing at one's convenience in terms of time, place and device, OTT has been a game changer. As opposed to television, where programmes work on a schedule, OTT provides the audience the option to view what they want at any time of the day. The growth of OTT has given rise to concepts of 'cord sharing', 'cord cutting' and 'cord never'. In many mature markets, it has had a significant impact on the growth and sustainability of linear media businesses such as cinema, television and newspapers.

Globally, the OTT market (TVoD+SVoD) is set to grow at a CAGR of 10.1% during the period 2017–2022. During the same period in India, the segment is expected to grow from 297 million USD (19,328 million INR) to 823 million USD (53,630 million INR) in 2022 at a CAGR of 22.6%. With increasing Smartphone penetration and lower data tariffs, VoD is showing promising growth. Mobile video advertising (largely AVoD) is the fastest growing sub-segment of India's Internet advertising market, projected to rise at a CAGR of 32.8% from 2017 to 2022 and to reach 317 million USD (20,641 million INR)by 2022. Globally, the industry has recently witnessed a shift in focus from content and distribution to 'user experience'. However, for a country like India, content, specifically customized regional content will play an important role in driving revenues.

Need to connect directly with the end user

Today the third wave of convergence is seen in the entertainment and media space, across a variety of media, access (wireless/fixed), business models and geographies. Netflix began as a DVD rental service and Amazon, predominantly as an e-commerce platform. On the other hand, Apple's success has been primarily linked to innovative devices. Yet, today, each one of them is acting as a producer/content aggregator, distributor and retailer of content.

Convergence across geographies has been hastened due to the ability to seamlessly employ the same business model across countries. Emerging business models are a result of players wanting to build diversified revenue streams and, more importantly, to build a direct relationship with the end user. The five fundamental drivers of this convergent business model are uninterrupted connectivity, mobile devices becoming the primary source of content consumption, the need to move away from traditional revenue streams, value shifting from content creators to platforms, and ability to provide a personalized offering to the consumer.

FILM INDUSTRY alias CINEMA

Even though India has been a significantly under-screened country and will continue to remain so for the next few years, cinema is set to grow at a CAGR of 9.4% from 1,785 million (116,262 million) in 2017 to 2,802 million USD (1,82,528 million INR) in 2022. The average ticket price was just about 0.82 USD (50-60 INR) in 2017, which is way below China's at 5.07 USD (300–350 INR). However, the fact that India has the highest number of admissions in the world accounts for its high revenue and will place the country as the third largest cinema market by end of 2019 itself. This can be attributed to the 'community viewing' culture which is prevalent in India. Recently, the extent to which Indian films have travelled globally is commendable. In 2017, Baahubali 2: The Conclusion grossed more than 121 million USD globally and 20 million USD in the USA itself. Even though Bollywood is starting to gain international appeal, the fact remains that within the country, it accounts for less than 18% of the releases annually.

Another interesting trend is the shifting attitude of consumers with respect to international content. Disney's The Jungle Book was the all time highest grossing foreign film in India. On the basis of the above discussion, one can argue that growth of VoD will have no impact on the cinema industry in India. This is logically supported by the fact that the experience of cinema cannot be substituted with VoD and, therefore, VoD in any form cannot be a substitute for cinema. At best, it can serve as an alternative to consumption of cinema content within the comfort of one's home.

This is in sharp contrast to the trend in mature markets. The rise in VoD through OTT has forced studios to concentrate on 'franchise' properties, which rely on a big-budget, big star cast and cinematic experiences to counter consumption on OTT, and to get audiences into the theatre.

THE VALUE CHAIN OF FILM INDUSTRY

The value chain of a film industry includes production and distribution, as illustrated in Figure 1.

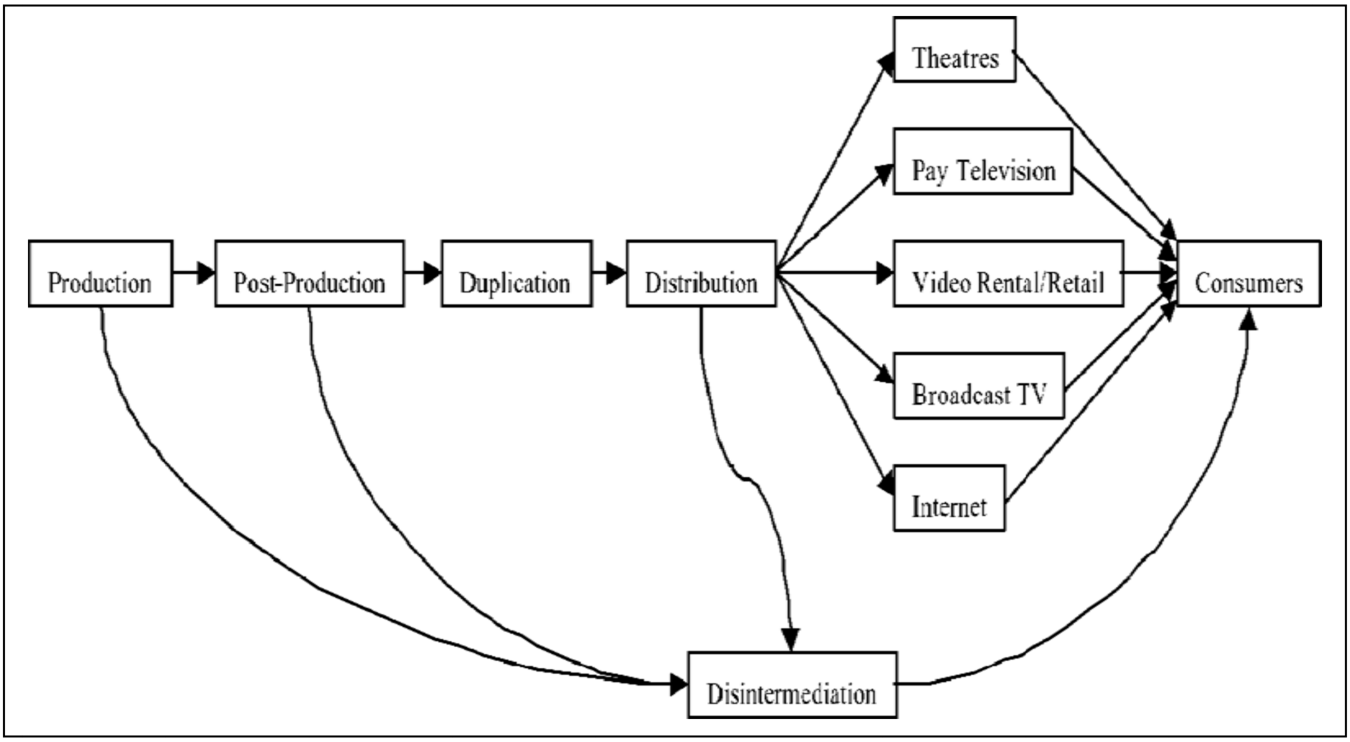

Figure 1. Value Chain of Film Industry

The production of a movie is a complex process that involves many different owners and suppliers. Owners can include the screenwriter, producer and the movie studio that will ultimately distribute the finished movie. The creators of the movie, the content producers, can operate independently of the movie studios that market and distribute the movies. In this case, the movie studios act as the aggregator and distributor of the finished movies. Suppliers in the film industry include the people that work on the movie, such as the actors and editors, the equipment manufacturers, the suppliers of the film stock, and the companies that develop and duplicate the finished film.

PRODUCTION

The production phase is where the actual shooting of the movie takes place. The film that is shot each day is sent to the film lab for development into ‘dailies’ so that each day’s shooting can be reviewed during the production of the movie. The ‘dailies’ allow the movie producers to monitor the creation of the movie as its being shot. After shooting has been completed, the movie is assembled during the post-production stage. During this phase, the raw film footage is edited and reduced into the final movie. Visual effects, music, sounds, and voice-overs are also added during post-production. Once the movie has been completed, it moves on to the duplication phase where thousands of copies are made for distribution to the movie theatres. A film duplication service is usually contracted to perform this function. It has been estimated that movie studios spend about $850 million a year on duplication services, and another $450 million in delivery-related costs (Putnam 1999). As is discussed later, these costs could be substantially reduced by digital films and Internet delivery.

DISTRIBUTION

Films are typically distributed through multiple channels. Consumers differ in their taste, preference, urgency and willingness to pay for the movie. In order to maximize revenues, studios release films to the distribution channels in sequential release windows, typically in the following order: movie theatres, video rental stores, sell- through videos, pay-per-view T.V., Premium channels and finally basic cable/network/syndicated television. This is illustrated in Figure 2.

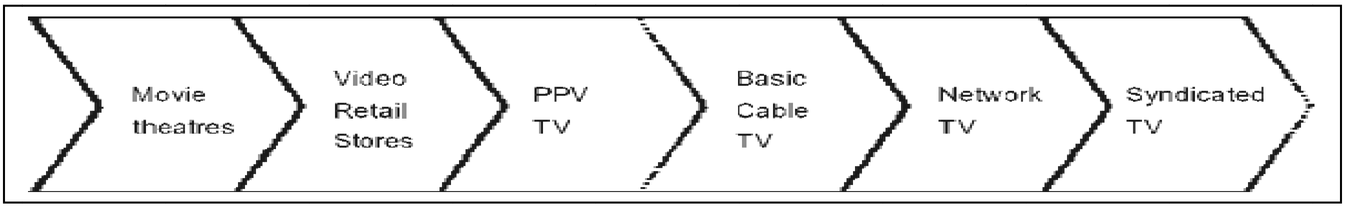

Figure 2. Sequential release windows

A film's success depends largely on its theatrical performance, which in turn affects the performance in video rental and other distribution channels. Rentals (along with video sales) are a substantial revenue stream for movie studios.

Video rentals and sales combined account for about $7.3 billion, or 48%, of the $15.1 billion of domestic revenue in 1999 (Hollywood Entertainment 2000). This revenue stream is especially important to the large number of movies that are not box office hits and are not profitable in theatres.

In recent years, the major studios have faced rising production and marketing costs, with the average cost per film increasing from $26.8 million in 1990 to $54.8 million in 2000 (MPAA 2001). The rising costs of production and marketing encourage studios to seek cost-cutting opportunities, and digital distribution appears to be one such opportunity.

IMPACT OF DIGITIZATION

Before the Internet emerged, the revenue models, distribution channels and the industry structure related to films had changed a little. As movies are being digitized, the nature of the industry structure will undergo significant transformations. It has been identified that the major structural changes will be likely to occur in disintermediation and bargaining power. The digitization of film production and distribution has the potential to disinter mediate some of the middlemen in the industry. In addition, the bargaining power of movie studios over the content producers may decrease and the number of content producers may increase due to the lower costs of digitally produced movies.

Yet the disintermediation and shift in bargaining power are structural changes of the industry that will take years to realize. In the short term, one immediate impact of digital technologies on the film industry would be cost reductions in the various production and distribution phases.

COST REDUCTION

In the *production* stage, there would be significant cost reductions if a movie were produced using digital technologies as opposed to physical film. Much like digital still picture cameras, digital movie cameras eliminate the need for costly film. In addition, the cost of creating 'dailies' can also be avoided. Traditionally, movies have been edited by physically cutting and splicing together the actual film stock. This was a tedious process that left much room for errors. With the increase of processing power, it is now possible to edit and assemble digital movies on a personal computer. Computers also reduce the cost of adding special effects and sound editing.

In the *distribution* stage, as discussed earlier, the Internet has created a new distribution channel for films. Currently, sites like Atomfilms.com allow users to watch short movies through streaming video. It is unclear if and when feature length movies will be made available over the Internet, but as adoption of broadband technologies increases and streaming technologies improve, the Internet distribution channel is likely to gain in momentum. In addition, digital projection systems have been introduced to replace the traditional film projection systems in movie theatres. Hence, not only individual consumers, but also movie theatres will increasingly rely on the Internet to 'download' digital movie files. The widespread adoption of digital technologies has the potential to reduce distribution costs dramatically. Theoretically, digital movies could reduce the marginal costs of duplication to almost zero. The low or even zero marginal costs of digital goods have been documented in the literature (Bakos and Brynjolfsson 2000). This characteristic of digital video files may open up new strategic uses of bundling and versioning (Varian 1999).

DISINTERMEDIATION

As movie production is increasingly digitized, and the Internet becomes a viable distribution channel, several types of businesses along the traditional value chain may be seriously impacted or even eliminated. The following players have been identified as most vulnerable to disinter- mediation, which is defined as the elimination or reduction of the middle layers in the value chain.

- *Film Manufacturers, Processors and Duplicators* – A movie that is produced digitally with digital cameras will eliminate the need for film stock. This leads to the potential for disinter mediating not only the manufacturers of the film stock, but also the businesses that process and develop the exposed physical films. Initially, the need for 'dailies' will disappear, but as theatres become equipped with digital projection systems, the duplication of finished films will also be reduced if not eliminated. These businesses will either disappear or have to trans- form themselves into other types of movie-related service providers.

- *Distributors and Video Rental Stores* – The distribution of movies over the Internet will be likely to disinter mediate the video rental stores. Once streaming technology and the Internet evolve to the point where the quality of the streamed movies can compete with the quality of videotapes and DVDs, the need to rent physical video- tapes will be seriously reduced. As the use of the Internet to distribute movies increases, traditional video rental and retail businesses such as Blockbuster would have to adapt to digital videos and change their business models, or else they will face the threat of being eliminated. Disintermediation will happen: the question is 'when?' It depends on when the Internet will provide the kind of bandwidth and quality of sound and picture good enough to compete with videotapes.

CONCLUSION

It has been examined how digitization of film production and distribution will affect the structure of the film industry value chain. This is important because not only does the film industry represents a $15 billion business but also it illustrates how digitization will induce deep transformations in industry structure when the nature of the product changes from physical to digital. The interplay between technology and business goes well beyond the movie industry. The economics of digitization may have wider implications for other digital goods industries. For example, digital music, online magazines, and e-books will likely confront the same challenges soon, where digitization of products and delivery herald a significant change in established business models.

Traditionally a physical good, movies are increasingly being digitized. This permits distribution through the Internet in conjunction with video-on-demand technologies. Different economics of digital goods brings fundamental differences in the production and distribution process, which in turn would cause transformations in value propositions, business models, and industry structure. Video-on-demand is a disruptive technology in the sense that it has the potential to change the entire landscape of the film industry. Various stake- holders in the industry will have to adapt and change their business models or risk being eliminated from the new value chain. The bottom line is that as VoD develops as an industry standard, the industry segments with control of the two most important assets, content and customer will eventually hold the power in the new value chain.

These predictions are contingent on the technological developments and adoptions by various players. How soon the Internet will become a viable distribution mechanism for films depends on advances of several key technologies such as broadband Internet connection, digital file compression, encryption and streaming media. Whatever path this will take, the film industry will be a highly dynamic sector and a fascinating test field on how technological innovations disrupt existing industry structures.

REFERENCES

Bakos, Y. and Brynjolfsson, E. (2000) 'Bundling and Competition on the Internet: Aggregation Strategies for Information Goods', *Marketing Science 19*(1), 63–83.

Blockbuster Inc. (2000) Annual Report.

Hollywood Entertainment Corporation (2000) Form 10-K, 30 March.

Jacobson, P. (2001) 'Studios Look to Sidestep Antitrust Issues', *CNET News.com*, 16 January.

Film industry Association of America (MPAA) (2001) '2000 US Economic Review', MPAA Global Research.

Putman, P.H. (1999) 'A Digital Force: Lucasfilm on Electronic Cinema', *Millimeter* October.

Shapiro, C. and Varian, H.R. (1999) *Information Rules: A Strategic Guide to the Network Economy*, Boston, MA: Harvard Business School Press.

Film industry Report, ASSOCHAM (2017), Global & Indian Research.

Varian, H.R. (1999) 'Buying, sharing and renting information goods', working paper, University of California, Berkeley.

Vogel, H. (1998) *Entertainment Industry Economics*, Cambridge: Cambridge University Press.

Zhu, K. and MacQuarrie, B. (2001) 'The Impacts of Digitization and Bundling on the Music Industry', forthcoming, *Communications of the ACM*.

Zhu, K. and MacQuarrie, B. (2001) 'The Economic Impacts of Digitization on Motion Pictures', forthcoming, *Communications of the ACM*.

●

BEHIND THE EDGE OF REASON: AN ENQUIRY INTO MOTIVE FOR ERECTING MONOLITHIC PILLARS IN INDIA

DR. S. KRISHNAMURTHY* AND DR. SACHIN KUMAR TIWARY*

As an architectural element, pillars always fascinated the sculptors, architects and the patrons alike. It was especially modeled and embellished with choicest decorations. Probably the loftiness and standalone feature of the pillar made it an epicenter of attraction and it served the purpose of propagating the message to the masses. Even though a monolithic pillar is not an architectural element and doesn't have any functional purpose a sort of mysticism and authority is added to it by its association with religious beliefs and political events. Even rulers like Firoz Shah Tughlaq got fascinated by the pillars and the inscriptions engraved on it and got it transported for its study[1] (Ahmad, 2010). The purpose for erecting monolithic columns differed in various periods and contexts, in spite of its association with sacredness. The inscriptions refers to these pillars in different terms like *yupa*, *silastambha*, *dhammathambam*, *kirtistambha, gardudastambha, vishnordhvaja, dhvajastambha, jayastambha,balayasthi, gotrasaulika,* etc. It seems that due to the loftiness of the pillar and its association with sacred spots, Ashoka has thought that it is the best place for engraving his edicts. From many of the depictions on the relief panels at Bharahut, Bodhgaya, Amravati and Sanchi it can be seen that they were held in veneration and became objects of worship. Inscriptions found engraved on these pillars, point to the fact that they were erected for varied purpose *viz*., to get religious merit for oneself or to their kin or to their preceptor; to proclaim their victory and to commemorate some person or event.

Previous work

Even though a comprehensive work on the purpose of erecting monolithic pillars in India, is not available, many scholars have worked and published regarding different aspects of a monolithic pillar. One article by A. Ghosh (1967), deals exclusively with the purpose of Ashokan pillars. The accounts of Alexander Cunningham in his Archaeological Survey of India - Reports (for the year 1862-65, 1871-72 and 1880-81)[2,3,4,5], Sir John Marshall in his report on "*The Monuments of Sanchi: their exploration and conservation*", in ASI-AR-1913-14[6,7], Altekar, V.S. (1940[8], 1942[9,10], 1956[11]), B. Ch. Chhabra (1947)[12], D. D. Kosambi (1960)[13], John Irwin (1973[14], 1974[15], 1976[16] and 1983[17]), D. Stadtner (1975)[18], Nihar Ranjan Ray (1979)[19], C .B. Pandey (1982)[20], David T.M.F. (1990), S. L. Nagar (1992)[21], V. Jayaswal (1993-94, 1998[23], 2001[24], 2004[25]), Harry Falk (2006)[26], Le Huu Phuoc (2012)[27], A. R. Sengupta (2013)[28], A.Welch (1993)[29], Romila Thapar (2009)[30] and the reports on explorations and excavations published by Archaeological Survey of India in *Indian Archaeology- A Review* (for the years 1957-58, 1960-61, 1961-62, 1962-63, 1963-64, 1964-65)[31] also provide firsthand precise information about the free standing monolithic pillar of India erected in different ages. Except the detail of of A. Ghosh (1967)[32] no one has wrote anything about it purpose.

Purpose of Erecting Pillars

Multifarious are the purposes behind the creation and erection of a free standing monolithic pillar. Based on collaborative study of archaeological, epigraphical, literary and ethnographic sources they are discussed as below. Often the intended purpose of its erection can be more than one. In such cases stringent categorization of pillars is not feasible and several reasons can be attributed to the erection of a pillar.

1. As Sacrificial Posts: *Yupa* is well known as the sacrificial post of the Vedic altar, often remarked upon by comparative religionists as a Vedic variant of the Cosmic Pillar or axis *mundi*. Vedic literature such as the *Apastamba Srautasutra* (VII. 2. 13-15), mentions that a sacrificial post called *yupa*, which should be as high as the sacrificer standing with or without raised hands or standing on a chariot has to be erected at the eastern side of the altar and the animal to be sacrificed was tied to this *yupa*. The text also says that the *yupa* has to be eight cornered and tapering at the top[33].

*Assistant Epigraphist, Office of the Director (Epigraphy), ASI, Ministry of Culture, Government of India, Mysur, Karnataka
**Assistant Professor, Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology, Banaras Hindu University, Varanasi

Nineteen such inscribed *yupas* have been reported by B. Ch. Chhabra[12] from India and South - east Asia, like at Isapur, Kosam (Uttar Pradesh), Nandasa, Barnala, Badva Nagar, Bijaygadh (Rajasthan) and Koetei (Borneo), all datable between 2nd to 4th century C.E.. Among them the one discovered from Isapur in Uttar Pradesh (now preserved in Archaeological Museum, Mathura) agrees very well with the description given in the literature mentioned *supra*. It records the erection of a sacrificial post by Dronala, a Brahmana of *Bharadvaja gotra* during the 24th reign of the Kushana emperor Vasishka (C.102 C.E.) while performing sacrifice for 12 days. A *yupa*, from Kosam (now in Allahabad Museum, Uttar Pradesh), datable to 2nd century C.E., on palaeographical grounds, describes erection of such seven *yupas* by Sivadatta, minister of a king (name lost), on the occasion of the performance of seven *soma* sacrifices[9]. Pictorial depiction of such *yupas* used in sacrifice can be found carved on the lintel portion of a temple at Pawaya (now preserved in the Gujari Mahal Museum, Gwalior, Madhya Pradesh) datable to the Gupta period (4th century C.E.). Three inscribed *yupas* from Badva, erected during the reign of Maukharis of Bala, datable to 237 C.E., records its erection on the occasion of *Triratra* sacrifice[8, 9]. Also of same nature, is the *yupa* from Bijaygadh fort (Rajasthan), datable to 372 C.E., which records its erection by Vishnuvardhana, son of Yasovardhana after completion of *pundarika* sacrifice, for the increase of prosperity and welfare of his fame, family, race, share and enjoyment[34]. The inscription on a pillar at Bihar Sharif (Bihar) of the reign of Budhagupta, describes the erection of a *yupa* by a minister in front of group of shrines (*devaniketanamandalam*) headed by goddess Bhadrarya and other deities like Skanda and divine mothers[35].

2. Memorials for the Dead: We can say that the earliest extant examples of erecting something resembling a pillar can be had from the Iron age period in the form of menhirs (from Briton *men* = stone + *hir* = long) which were like memorials meant for marking the place where the dead lay buried and later on these memorials were worshipped by the people related to the dead person. The Chinese version of *Sarvastivadin Vinayapitaka* includes a dialogue exchanged between the Buddha and a disciple, which showed that there had existed the practice of erecting pillars near the spots of tumuli or any sacred spot and it was only later on when the Buddhists began to follow the tradition of creating earthen tumuli over the remains of Buddha and his disciples, they have also assimilated the practice of erecting pillars as well. Alexander Cunningham, the pioneer in the field of Indian archaeological research has written in his reports that, adjacent to many of the so called Ashokan pillars he has noticed the existence of ancient tumulus[2]. Indeed the excavation conducted at Lauriya-Nandangarh in 1904-05 has proved that two out of the four mounds were pagan funerary burials and only later on they were converted as Buddhist stupa. The most important find in support of this claim were gold images of nude female deity[36]. Literary evidence from *Sathapatha Brahmana* (XIII: 8:1:5) also shows that (i.e. *circa* 8th century B.C.E.) the burials of the kings were four cornered or circular in shape[37]. So now the question arises as to what is the significance of these pillars attached with the king's burial. From literature like Mahabharata it is known that the *dhvaja* was worshipped by the warriors before the commencement of battle in the belief that the deity is actually manifest in it and brings victory. Small standards were also taken to the battle field by the kings and it is believed that the destruction of the enemy's *dhvaja* brings misfortune to their opponents. Artistic evidence for such practice can also be found from one of the bas-reliefs from Bharahut railing (Fig.1), which portrays a queenly personage on horseback carrying a *Garudadhvaja*[15].

Fig.1: The Bharahut railing displayed in the Bharahut gallery of Indian Museum, Kolkata

From this it can be seen that *dhvaja* worship has been closely linked with fortunes of the kingdom. An inscription, recently discovered from the village Goniyasar (Kutch district, Mandvi tahsil, Gujarat) of the time of Kshatrapa Rudrasimha I, dated Saka 102, refers to the memorial pillar with inscription engraved on it as *lekhalashti*[7]. It is interesting to note that in the inscription engraved on a pillar at Supia (Madhya Pradesh), erected by Varga-gramika during reign of Gupta king Skandagupta, dated 460 C.E., it is called as *bala-yashti* (memorial pillar) and *gotra-saulika* (family pillar of stone), as it was erected in memory of all the family members[35]. Another pillar from Eran (Madhya Pradesh) records its erection in memory of Goparaja, general of King Bhanugupta, who had a victorious death in a battle with the Maitras. Even as late as 19th century C.E., stone pillars are erected in memory of the dead.

3. Used to Engrave Administrative Orders: Some of the edicts, engraved by Ashoka on the pillars erected by him are addressed to his officials and contain information dealing with administration. Ashoka wishes that his agents, officials of all ranks and even *mahamatras* of the borders should work in accordance with morality. Pillar edict IV refers to the duties and judicial power of Rajukas, which they should accomplish by being fearless, confident and unperturbed. The same edict speaks of respite given to prisoners and advices them the various methods to shed off their sin and attain merit[38].

4. As Pillars of Morality (*dhamma-thambam*) - Propagation of *dharma*: Major portion of the edicts issued by Ashoka speaks of his keen desire to spread morality among the masses and his officials. He got engraved moral injunctions, which is intended for the public and the officials to follow in their everyday life. In fact in the 7th edict, found on Delhi-Topra pillar, he refers to the pillars erected by him as *dhamma-thambam*, and orders that this rescript on morality has to be engraved either on stone pillars or stone slabs, where available, so that it may be of long duration. In his first edict he assures people that his agents, officials of all ranks and even the mahamatras of the borders were disposing their duty in accordance with morality[38]. Thus by this proclamation, Ashoka tries to win the confidence of his people. In the second pillar edict, he describes morality as few sins, many virtuous deeds, compassion, liberty, truthfulness and purity.

5. To Assert Political Authority Over the Territories: Even though Ashoka refers to the pillars he erected as *dhamma-thambam* (pillars of morality), yet it seems that he used the pillars for political motive too, as it indirectly glorified the ruler and asserted political authority over the territories. His pillars are found distributed in major parts of the North India, which were previously *janapada* states, such as Sankisa, the capital of Panchala, Meerut the capital of Kuru, Ropar the capital of Kurukshetra or Shrikantha, Sanchi the important centre of Chedi *janapada,* Sravasti the capital of Kosala, Kausambi the capital of Vatsa and Sarnath, which is near Kashi *janapada*.

6. In Honor of Gods and Saintly Personages, to Gain Religious Merit: Ashoka was influenced by the Buddhism after the bloody mutiny of Kalinga. He accepted, followed and preached morality, under its influence. He visited several places related to Gautama Buddha and erected pillars adjacent to the Stupa. For example: Rummindei (birth place of Buddha), Sarnath (first sermon), Sankisa (miracle of Buddha, reaching heaven by ladder), etc. The pillar erected by Ashoka at Rummindei was of commemorative nature. The inscription engraved on it mentions that Ashoka visited Lumbini, worshipped this spot and got erected a stone bearing a horse and a pillar (Fig.2) in order to record that it was the birth place of Buddha[38].

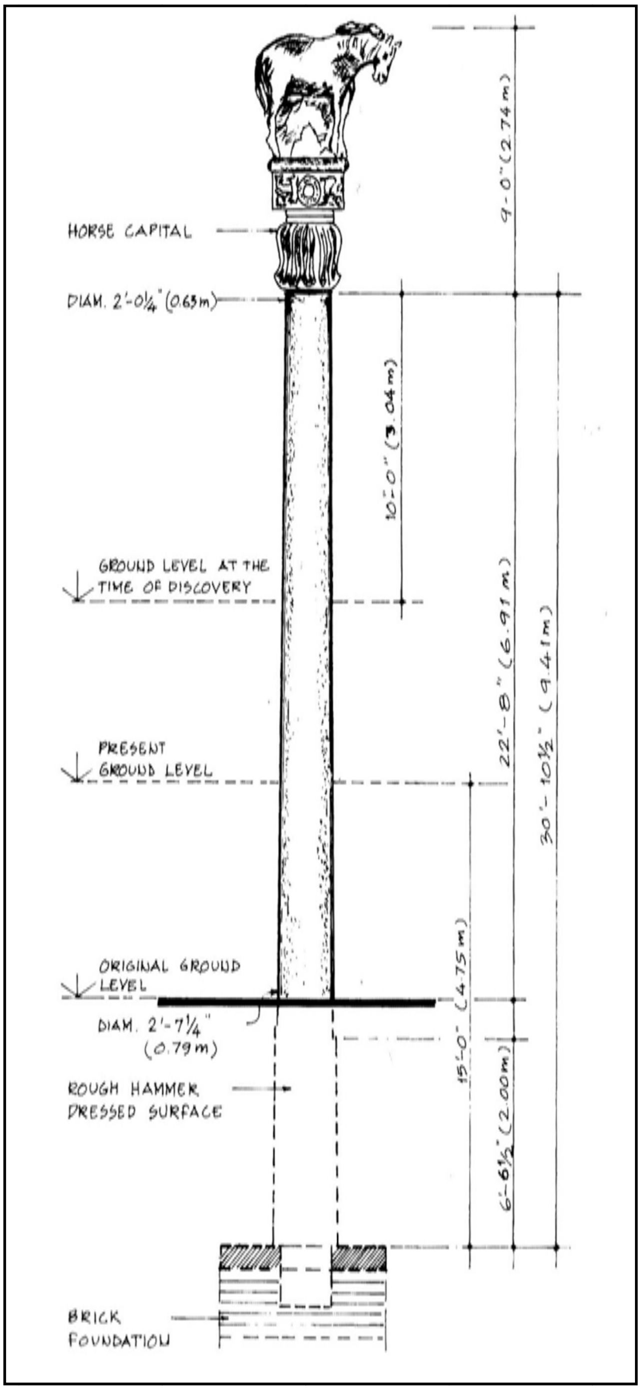

Fig.2: The conjucatural view of the Lumbini pillar (Source: Basant Bidari, 2009, Lumbini Beckons, p.42)

On the pillar at Nigalisagar, Ashoka records the work of enlarging the stupa of previous Buddha, Konakamana at the place and offered worship[38]. The inscription engraved on the pillar erected by Heliodorous, a Greek ambassador at Besnagar (Madhya Pradesh) datable to *circa* 2nd century B.C.E. shows that the *garudadhvaja* was erected in honor of God Vishnu[39]. From many of the depictions on the relief panels at Bharahut and Sanchi it can be seen that they were held in veneration and became objects of worship. In Gupta period several such pillars erected in honor of god for increasing religious merit can be seen. The inscription on the iron pillar at Mehrauli (Qutub complex, Delhi), refers to itself as *vishnordhvaja,* erected in honor of Vishnu. A pillar from Rajghat (now in Bharat Kala Bhavan, Varanasi, Uttar Pradesh), erected during the reign of Budhagupta (478 C.E.) mentions that a lady named Damasvamini has probably erected the *sila-stambha* for increasing religious merit of her parents. A *dhvajastambha* can be seen installed at Eran (Madhya Pradesh) in honor of Janardana by the chiefs Maharaja Matravishnu and his younger brother Dhanyavishnu, subordinates of certain Surasmicandra, who in turn was a feudatory of Budhagupta (484-85 C.E.). Among the multitude of pillars erected in honor of Brahmanical gods, in Gupta period, the Kahaum pillar (Uttar Pradesh), is an exceptional raised in praise of Jaina tirthankaras (Fig.3) and the inscription asserts that it was erected by a certain Madra for the welfare of all existing beings. *Dhvajasthambas* of this kind continues to be erected, especially in front of temples in South India and it plays a vital role in declaring the commencement of the annual temple festival (*brahmotsavam*), when a huge flag bearing the emblem of the mount of the principal deity is hoisted on it.

Fig.3: General and detail view of the Kahaum pillar, Uttar Pradesh

7. For Giving Sectarian Instructions: The edicts on the pillars at Sanchi and Sarnath are interesting as they

are sectarian in nature, especially addressing the monks and nuns residing in the Buddhist monasteries. It issues a warning, that those monks and nuns who try to cause disharmony in the Buddhist Sangha, will be expelled by clothing them in white robes.

8. In Celebration of Political Victory: Even though the pillars erected by Ashoka seems to be intended for propagation of morality and in celebration of the newly embraced faith i.e. Buddhism, yet there seems to be political overtones too. For example, Ashoka decorated the pillars with various capital figures such as, Lion in Udaigiri, Kausambi, Sarnath, Sanchi, Rampurva, Lauriya Areraj, Bull at Rampurva (Fig.4), Elephant at Sankisa and Horse at Lumbini to signify the power, strength, intelligence and stamina of his rule. Inscription engraved on the pillars erected by the rulers of Gupta dynasty refer to itself as *kirtistambha* and eulogizes the various victories and achievements of the king. The best example is the Allahabad pillar inscription of Samudragupta, eventhough it was engraved on an already existing pillar of Ashoka. The main intent of the inscription is to describe the glory, conquests and descent of the imperial Gupta king Samudragupta. Though, the famous iron pillar at Mehrauli was erected by king Chandra in honor of god Vishnu, yet it contains information about the conquests made by the king, thus serving the dual purpose of glorifying the king and god as well. Another pillar is at Bhitari installed by Skandagupta, the objective of which though is to record the construction of the temple in memory of his father Kumaragupta, it also served the dual purpose of immortalizing the achievements of himself and that of his father.

9. Propagating Social Message: It seems that, one of the intended purpose for erecting pillars, at important locations is to convey social message to the masses regarding the various welfare activities carried out by the king. One such example is the tax relief given by Ashoka to the inhabitants of Lumbini as a mark of respect for the place. In the second pillar edict Ashoka claims to have performed many virtuous deeds and even provided benefits to the bipeds, quadrupeds, birds and aquatic animals. His seventh edict at Delhi-Topra speaks of welfare activities like digging up of well and planting of trees.

10. A Signage- Indicative of Sacred Spots: Scholars like D.D. Kosambi have shown that the pillars could also be served as landmark for marking a sacred spot. Artistic evidence of worshipping pillar at sacred spots can be drawn from the bas-relief panels of the railing at Bodhgaya and at Sanchi stupa (Fig.5) which portrays several examples of worship of pillar sometimes individually and in cases in front of the *Chaityas*, thus serving the purpose of *Chaitya-Yupa*. In one such case the artist has depicted a pillar crowned with elephant in front of a tree-shrine. Here the tree portrayed is not *pipal*, but *sirisa*, which is usually associated with the enlightment of Krakucchanda, the former Buddha. A pillar erected during the reign of Kumaragupta (415-16 C.E.) at Bilsad (Uttar Pradesh) is another example of this kind. The inscription engraved on it makes known that the pillar was erected in front of a temple of Swami-Mahasena to record the construction of a gateway and a charitable hall by certain Dhruvasarma. Such pillars can be regarded as a precursor to the practice of erecting *dhvajastambha* in front of temples.

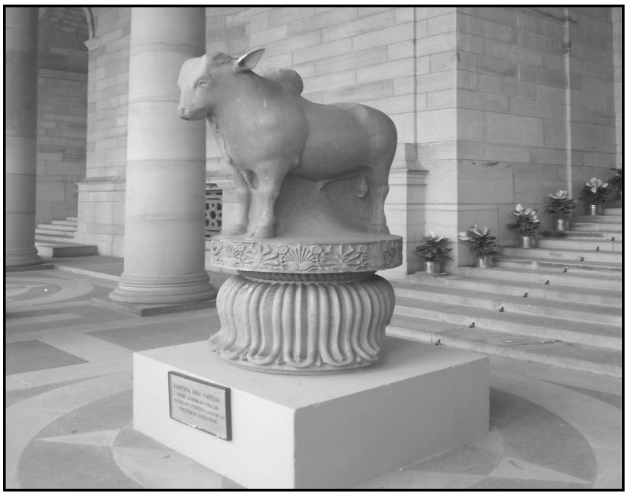

Fig.4: General view of the Rampurwa Bull kept in the Rashtrapati Bhawan, New Delhi

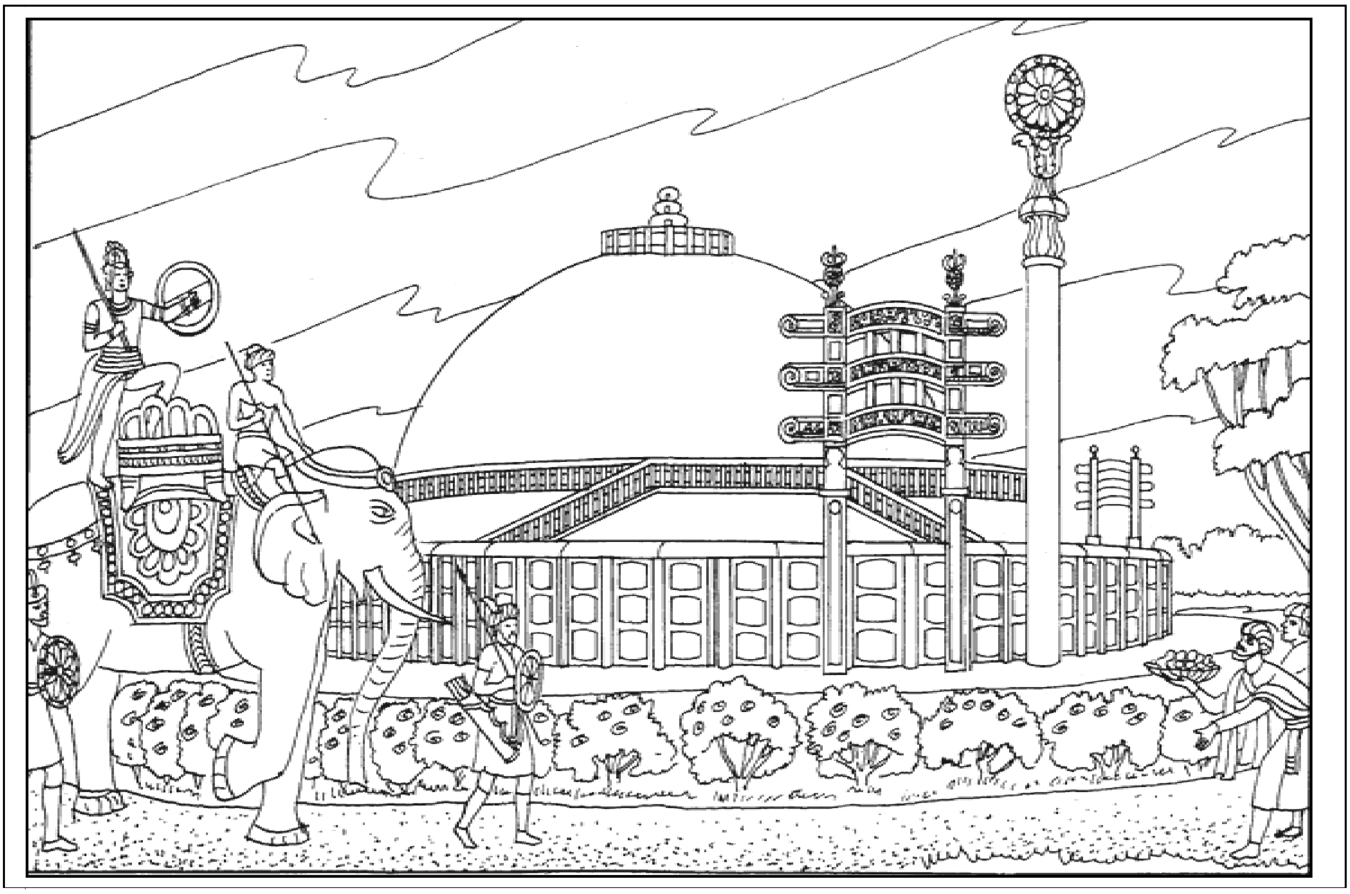

Fig.5: Line drawing of the Sanchi stupa along with the Ashoka Pillar, Madhya Pradesh, (Source: Supercoloring.com)

11. A Signage - Indicative of Crossroads and Trade Routes: Scholars like D.D. Kosambi have shown that these sacred spots happen to have developed at the crossroads, which served as major trading routes as well. According to him "before cities existed in northern India, crossroads were synonymous with *caityas* or 'sacred spots', and also with the sites of festivals, because prior to urbanization, crossroads were places where people met and had their markets and celebrations. By mapping the geographical location of the pillars erected by Ashoka that, it can be seen that they were all erected along the great northern trade route which, at least from the 6th century B.C.E, linked the eastern Ganges basin with the Achaemenid empire of Persia and other civilizations of the ancient Near East. In one way it conveys not only the trading routes, but also imparts the message of the king to the traders coming from different parts of the country and beyond.

12. Commemorating the Lady who Committed Sati: Even though pillars erected in memory of the lady, who committed Sati, is of commemorative nature, yet it forms a class by itself. It is interesting that the earliest epigraphical reference to the act of *Sati* comes from the inscription engraved on the pillar erected at Eran (Madhya Pradesh), during the reign of Bhanugupta (510-11 C.E.).

13. For Astronomical Purpose: From the study of the images engraved on the capital part of the pillar erected at Udayagiri (Madhya Prades), it can be surmised that it was erected for some astronomical purpose. The artistic representations on them show in relief seated figures of Aditya within a circle, which could be numbering twelve representing the twelve Adityas *i.e.* the 12 *rasis*. As the abacus is broken only seven could be seen. The wheel which was found in fragments was studied by Prof. R. Balasubramaniyam and he regards them as "*Nakshatra cakra*". On its one side is carved with lotus in its entire bloom and on the other side the outer borders of lotus contained circular medallions with male figures seated in it flanked by pair of female figures inside oval borders on either side. The wheel when complete could have carried 27 or 28 such figures, which in Vedic astrology

represents the 27 stars. So it could be seen that such monolithic pillars could also have served astronomical purpose.

Conclusion

Monolithic pillars are those which comprises of two components - the shaft, which is made of a single block of stone, hence the name monolithic and the crowning capital part in the form of a deity or royal insignia or any other animal figure made of another block of stone. The earliest example of erecting a pillar like structure is from the Vedic Age. Multifarious are the purposes behind the creation and erection of a free standing monolithic pillar. Often the intended purpose of its erection can be more than one. In such cases stringent categorization of pillars is not feasible and several reasons can be attributed to its erection. The present paper examined the various causes for the installation of a pillar, analyses the inscriptional evidence and archaeological context with suitable examples. The scope of this paper is confined from 3rd century B.C.E. to 6th century C.E. Recently a monograph on the pillars of the Gupta period was also published, discussing on its various aspects like technology used for its transportation and erection, typology of the pillars, decline, purpose and art by the both author S.K.Tiwary and S.Krishnamurthy in the years 2012[40], 2014[41], 2016[42], 2018[43].

The above descriptions are the importance source and it is now clear to prove that there were several reasons behind the erection of pillars. It is well stated in the inscriptions refers to these pillars in different terms like *yupa*, *silastambha*, *dhammathambam*, *kirtistambha, gardudastambha, vishnordhvaja, dhvajastambha, jayastambha, balayasthi, gotrasaulika,* etc. The terms itself enough to prove that the erection of pillars were in different context with variety of reasons. The article also referees the previous work in which the galaxy of scholars those who worked for the pillar architecture but no one has well focused on the purpose behind the erection of pillars. In this context now we have proved contextually, textually and architecturally the purpose behind the erection of pillars. The purposes as described in detail above are; As Sacrificial Posts, Memorials for the Dead, Used to Engrave Administrative Orders, As Pillars of Morality (*dhamma-thambam*), Propagation of *dharma*, To Assert Political Authority Over the Territories, In Honor of Gods and Saintly Personages, to Gain Religious Merit, For Giving Sectarian Instructions, In Celebration of Political Victory, Propagating Social Message, A Signage- Indicative of Sacred Spots, A Signage - Indicative of Crossroads and Trade Routes, Commemorating the Lady who Committed Sati and For Astronomical Purpose.

References

1. Ahmad, Imtiaz, 2010, "Reinstallation of an Ashokan Pillar", in Mrinmoy Chakraborty ed. *Kriti Rakshana* (A bimonthly publication of the National Mission for Manuscripts), Vol.4 nos.5-6, Vol.5 nos. 1-4, April 2009-March 2010, National Mission for Manuscripts, Indira Gandhi National Center for Arts, New Delhi.
2. Cunningham, A 1966, Report of tours in Malwa and Bundelkhand, Indological Book House, Varanasi, p.69.
3. *Ibid*., et.al., 1969 (reprint), Archaeological Survey of India-Report of tours in Northern and Eastern Bihar in 1880-81, Vol. XVI, Varanasi: Indological Book House.
4. *Ibid*., 1972 (reprint), Archaeological Survey of India-Four Reports made during the years 1862-63-64-65, Vol. I, Varanasi: Indological Book House.
5. *Ibid*., 1999 (reprint), Cunninghum's Archaeological Survey of India Report, Vol. III, Delhi: Rahul Publishing house.
6. *Annual Report* No. 7: 88-90; No. 10: 77-90; No. 14: 148-49, Archaeological Survey of India, New Delhi.
7. *Annual Reports on Indian Epigraphy for the years 1986-87, 2014-15*, Archaeological Survey of India, New Delhi.
8. Altekar, A. S., 1940, Three Maukhari Inscriptions on Yupas: Krita year 295, in *Epigraphia Indica* Vol. 23, pp. 42-52.
9. *Ibid*., 1942, Allahabad Municipal Musuem Yupa Inscription, *Epigraphia Indica* Vol. 24, pp. 245-253.
10. *Ibid*., 1942, Fourth Yupa Inscription from Badva, in *Epigraphia Indica* Vol. 24, pp. 251-53.
11. *Ibid*., 1956, Nandsa Yupa Inscriptions, in *Ep. Ind.* Vol. 27, pp. 252-67.
12. Chhabra, B. Ch. 1947, Yupa Inscriptions, in *India Antiqua: A volume of oriental studies presented by his friends and pupils to Jean Philippe Vogel*), Kern Institutue, Leyden, pp.77-82.
13. Kosambi, D. D., 1960, "At the Crossroads: Mother Goddess Cult Sites in Ancient India", in *Journal of the Royal Asiatic Society*, vol. 92, Issue 1-2 (April 1960), London, pp.17-31, 135-144.
14. Irwin John, 1973, "Ashokan Pillars: A Reassessment of the Evidence", in *The Burlington Magazine*, The Burlington Magazine Publications, Ltd. Vol. 115, No. 848 (Nov., 1973), London, pp. 706-720.
15. *Ibid.,* 1974 "Ashokan Pillars: A Reassessment of the Evidence-II: Structure", in *The Burlington Magazine*, Vol. 116, No. 861 (Dec., 1974), London, pp. 712-727.
16. *Ibid.,* 1976, "Ashokan Pillars: A Reassessment of the Evidence - IV: Symbolism", in *The Burlington Magazine*, Vol. 118, No. 884 (Nov., 1976), London, pp. 734-753.

17. *Ibid*., 1983, " The Ancient Pillar-Cult at Prayāga (Allahabad): Its Pre-Aśokan Origins", , in *Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland*, No. 2 (1983), University of Cambridge, New York, pp.253-280.

18. Stadtner, D., 1975, " A Sunga Capital from Vidisa", in *Artibus Asiae*, Vol. 37, No. 1/2 (1975), pp. 101-104, Zurich (Swizerland).

19. Ray, N.R., 1979, *Maurya Tatha Mauryottar Kala,* The Macmillan Company of India Limited, New Delhi.

20. Pandey, C.B., 1982, Mauryan Art, Bhartiya Vidya Prakashan, New Delhi.

21. Balasubramaniam, R., *et.al*, 2004. "*The original image atop the Delhi iron pillar*" in Indian Journal of History of Science, Vol. 39.2.

22. Nagar, S.L., 1992, Indian Monoliths, Intellectual Publishing House, New Delhi.

23. Jayaswal, Vidula, 1998, *From Stone quarry to the sculpturing workshop: A report on archaeological investigations around Chunar, Varanasi and Sarnath,* Agam Kala Prakashan, Delhi.

24. Jayaswal, Vidula, 2001, "*Royal Temple of Gupta Period*", in Excavation at Bhitari, New Aryan Book International, Delhi.

25. Jayaswal, Vidula, 2004, "*Ashokan Pillar: Medium, Chiseling and Manufacture"*, in the Anandvan of Indian Art (Dr. Anand Krishna felicitation volume), ed. Manu Krishna and Nawal Krishna, Indian Book Atidha Publication, Varanasi.

26. Falk, Harry, 2006, Aśokan Sites and Artefacts: A Source-book with Bibliography, Philipp von Zabern, Havertown, pp. 139-157

27. Phuoc, L.H., 2012, Buddhist Architecture, Grafikol, USA, pp.28-44

28. Sengupta, A.R., 2013, Buddhist Art and Culture Symbols and Significance, Vol. I, Agam Kala Prakashan, New Delhi, pp.121-142

29. Welch, A., 1993, Architectural Patronage and the Past: The Tughluq Sultan of India, Muqarnas, Vol. 10, pp.311-322.

30. Thapar, R., 2009, Ashoka- A Retrospective, Economic and Political Weekly, Vol.44, No.45, pp.31-37

31. Indian Archaeology- A Review, 1957-58: 68; 1960-61: 17; 1961-62: 24; 1962-63: 11; 1963-64: 15; 1964-65: 16. Archaeological Survey of India, New Delhi.

32. Ghosh, A, 1967, "The Pillars of Aśoka - Their Purpose", in *East and West*, Vol. 17, No. 3/4 (September-December 1967), Istituto Italiano per l'Africa e l'Oriente (IsIAO), Italy, pp. 273-275.

33. Garbe, Richard (*ed.*), 1882, *The Srauta Sutra of Apastamba belonging to the Taittiriya Samhita with the commentary of Rudradatta*, Vol. I, Prasnas 1 - 7, Asiatic Society, Calcutta, pp.400-410.

34. Fleet, John Faithful, 1888, *Corpus Inscriptionum Indicarum-Inscriptions of the Early Gupta Kings and their Successors,* Vol. III, Calcutta: The Superintendent of Government Printing, pp.252-254.

35. Bhandarkar, D. R., 1981, *Corpus Inscriptionum Indicarum - Inscriptions of the Early Gupta Kings*, Vol. III (Revised), New Delhi: Archaeological Survey of India, pp. 206, 257-259, 269, 305-308, 317-319, 334, 340, 346-347.

36. Bloch, T., 1909, "*Excavations at Lauriya"*, in Archaeological Survey of India-Annual Report, 1906-07. Calcutta, pp.19-26.

37. Julius Eggeling, 1900, *Sacred Books of the East*, *Vol. 44 - The Satapatha Brahmana*, Part V, The Clarendon Press, Oxford, p.423.

38. Hultzch, E., 1925, *Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. I - Inscriptions of Asoka (New Edition)*, Archaeological Survey of India, New Delhi, pp.119-120, 123-125, 130-137, 160-161, 164-165.

39. Sircar, D.C., 1991, *Select Inscriptions*, Vol. I., V.R. Publishing House, Delhi, p.88

40. Tiwary, S.K., Krishnamurthy, S., 2012, Monolithic Pillars of Gupta Period, Pura-Jagat: Indian Archaeology, History & Culture: Latest Researches in honour of late Shri Jagat Pati Joshi, Vol. I & II, Bharatiya Kala Prakashan, New Delhi, pp. 356-363.

41. Tiwary, S.K., Krishnamurthy, S., 2014, *Monolithic Pillars of the Gupta Period*, B.R. Publishing Corporation, New Delhi.

42. Krishnamurthy, S. and Tiwary, S.K., 2016, Origin, Development and Decline of Monolithic Pillars and the Continuity of the Tradition in Polylithic, Non-Lithic and Structural Forms, in *Ancient Asia* no 7, p.1. Ubiquity Press, London, DOI: http://www.ancient-asia-journal.com/articles/10.5334/aa.78/

43. Krishnamurthy, S. and Tiwary, S.K., 2018, A Comparative analysis of the Mauryan and Gupta Monolithic Pillars, Bharati, Vol. No. 42, Ancient History Culture & Archaeology, Banaras Hindu University, Varanasi, U.P., pp. 143-148.

"A COMPARATIVE STUDY OF ADVERBS IN HINDĪ AND GERMAN"

*DR. PREM NIWĀS SINHĀ**

This paper presents a comparative study of Adverbs in Hindī and German languages. Both the Languages belong to different sub-families of Indo-European. Hindī belongs to modern Indo-Aryan while German belongs to West Germanic group within the Germanic branch of Indo-European. The main approach of this study is descriptive. The objective of this paper is to present the similarities and dissimilaries of adverbs. This study will be much helpful in the field of language teaching.

The term "adverb' is used for 'kriyāvisheṣaŋ' in Hindī and 'das umstandswort (Adverbien) - 'circumstances word', in German.

Generally, an adverb may be defined as (i) "jis prakār kriyā kī visheṣtā batāne wāle shabdõ ko kriyāvisheṣaŋ kahate haĩ, usī prakār visheṣaŋ aur kriyā visheṣaŋ kī visheṣtā batāne wāle shābdõ ko bhī kriyāvisheṣaŋ kahate haĩ"[1]

(ii) "an adverb is a word which modifies or qualifies the meaning of a verb, but it may also modifies an adjective or another adverb."[2] It gives more information about when, where, how or in what circumstances something happens.

(iii) "Das adverb steht als Satzglied bei verben oder als, Attribut bei Nomen, Pronomen, Adjektiven und anderen Adverbien."[3]

(iv) "The traditional term ADVERB covers a range of words with a varieties of uses. Typically, adverbs are words which donot decline and which express relations like time, place, manner and degree."[4]

An adverb usually plays the role of a sentence modifier and is always a sentence element which stands alone. Adverbs can also relate to the whole sentence, they often tell us what the speaker is thinking or feeling.

Classification of Adverbs:

1. According to kāmatā Prasād Guru̱[5] – He has classified the adverbs on the basis of their usage (prayog), form (ru̱p), and meaning (arth) into various types.

1) According to usage (prayog) : 1. sādhāraŋ. 2. sanyojak. 3. anubadh.

2) According to form (ru̱p) : 1. mu̱l, 2. yaugik, 3. sthāniya.

3) According to meaning (arth) :
- **1.** sthān vāchak 2. sthiti vāchak 3. dishā vāchak
- **2.** kāl vāchak 1. samay vāchak 2. avdhi vāchak 3. pounah punay vāchak
- **3.** pariŋām vāchak.
- **4.** rīti vāchak

2. According to Āryendra Sharmā[6]: The more important 'original' Adverbs may be divided into the following groups according to their meaning,

1. Adverbs of time.
2. Adverbs of place.
3. Adverbs of manner.
4. Adverbs of Degree.
5. Adverbs of Affirmation and Negation.

3. According to Kellogg, S.H.[7]: Adverbs may be classified into the following classes:

1. Adverbs of Time.
2. Adverbs of Place.
3. Adverbs of manner
4. Adverbs of Affirmation and Nagation.

4. According to Griesbach, Heinz: Schulz, Dora[8]: He classified the adverbs into the following classes:

∗ Guest Professor: Department of modern Languages and linguistics, Sampurnānand Sanskrit University, Vārānasī-02,U.P.

∗ This paper was accepted for 33rd All India conference of Linguist, University of Chandigarh, Hahiyānā, on October 1-3, 2011.

1. Lokal adverbien,
2. Temporal adverbien,
3. Modal adverbien,
4. Kausal adverbien.

5. According to Curme, George O[9]: Adverbs may be divided according to their meaning into following classes. 1. Adverbs of Place. 2. Adverbs of Time. 3. Adverbs of Manner. 4. Adverbs of Degree. 5. Adverbs of Cause or Reason. 6. Adverbs of Condition. 7. Adverbs of Concession. 8. Adverbs of Purpose or end. 9. Adverbs of means. 10. Adverbs of Material. 11. Modal or sentence Adverbs.

6. According to Martin Durrell:[10] He classified the adverbs into the following classes:

1. Adverbs of time.
2. Adverbs of place.
3. Adverbs of direction.
4. Adverbs of manner, viewpoint, attitude and reason.
5. Adverbs of degree.
6. Interrogative adverbs.

7. According to aforesaid classification the main types of adverbs may be classified according to their meaning into the following classes:

1. Adverbs of Time.
2. Adverbs of Place.
3. Adverbs of Manner.
4. Adverbs of Degree.
5. Adverbs of Affirmation and Negation.
6. Interrogative adverbs.

Now we will discuss in detail about declension and comparison of adverbs in the two languages.

1. Adverbs in Hindī:

In Hindī adverbs are also sub-divided into various groups according to their meaning. The number of which is so great that we can deal only with the most important.

(i) The pronominal adverbs, like the pronominal adjectives are derived from demonstrative, relative and interrogative pronouns. These are: ab (now), jab (when), yahȧ̃: (here), idhar (hither), yõ (thus), etc.

(ii) All these adverbs can append the emphatic particle hī, ab + hī = abhī (just), idhar hī (just hither); e.g. abhī vah vidyālaya pahủchā hī thā. (He had just reached the school.)

(iii) kabhī is not an emphatic interrogative. It denotes ever, sometimes, (at) some (one) time: e.g. kyā āp kabhī puŋe gaye haĩ? (Have you even been puŋe?), Other forms are: kabhī–kabhī (sometimes), jab kabhī (whenever.)

(iv) kahĩ: is not an emphatic interrogative. It denotes somewhere at some or any place. e.g. vah kahĩ: gayā hai (He has gone somewhere.)....

kahĩ: ....kahĩ: (here... there); yahȧ̃:...vahȧ̃: (here ..There); etc. All these have the force of a conjunction, and may be called conjunction adverbs. Other forms are: jyõ- jyõ..... tyõ-tyõ , jyõ hī..... tyõ hī (no sooner...than), yõ hī (just, in vain), etc. is archaic.

(v) 'to' (then) is used as a correlative of 'jab' (when), or of 'yadi'(if) signifies(then). e.g.

yadi tum vahȧ̃: gaye to pachhtāwoge. (If you will go there then you will repent.)

(vi) All the pronominal adverbs, including those combined with 'hī' (but excluding those denoting manner), may be used as noun and attach the case – signs 'se' (from, since), 'ko' ('to' with adverbs of place),'par' (at with adverbs of place only) and 'kā' (of) besides the preposition 'tak ' (upto). e.g. abse (henceforth), vahĩ: se (from that very place); kab kā (of which timė), kahȧ̃: par (at which place); kab tak ' (how long) etc.

(vii) kuchh –kuchh (a little , partly, to the same extent), etc. bahut kuchh (to a great extent) are also used adverbially; e.g. vah/usne kuchh paṛhā, (He read a little).

(viii) Adjectives are used as adverbs. e.g. bahut (very), thoṛā – thoṛī (a little), kam (less), kam se kam (at least), achhā (well), etc. e.g. vah bahut achhā gātā hai. (He sings very well)

(ix) Noun are used as adverbs usually have the case-sings 'ko', 'se', 'mẽ' and 'par' e.g. shām ko (in the evining), dhyān se (attentively), āne par (after coming), etc.

(x) The suffixes (or particles) 'mātr' and 'bhar' when it is attached to nouns denoting time, signify 'only' and the whole respectively. 'chhaŋ bhar' and 'pal bhar'; however, are synonymous without attaching 'ko'. e.g. vah rāt bhar sotā hai. (He sleeps the whole night.) but vah rāt ko sotā hai. (He sleeps at night).

(xi) Verbs are used as adverbs, participles (present and past) and the absolutive are the most frequent. e.g. mere āte hī. (As soon as I came.), use gaye hue. (Since he went.), dillī hokar (via Delhi). etc.

(xii) The absolutive is generally adverbial in nature. It is not affected by the gender number or case of the subject or of the object. e.g. maĩ chāy pikār parhũngā. (I shall read after tea time.), shreyā douṛkar āī. (shreyā come running.), etc.

(xiii) Coordinative compounds consist of two adverbs which are connected by aur (and), or 'yā' 'or'. e.g. sẳ:jh aur savere, sẳ:jh –savere (in the evening and the morning) etc. Sometime the same adverb (or adverbially used word) is repeated. e.g. pās-pās (close together, side by side), kabhī-kabhī (sometimes) etc.

(xiv) Some prefixes form compounds which are used as adverbs. Such compounds are called adverbial determinatives (abyayibhāv) e.g. pratidin (everyday, daily), har sāl (every year), ājanm (for life) etc. In some adverbial compounds the first member is an adverb used as a prefix. e.g. yathāshakti (as far as one can)- ' shakti ' – ability, power, etc.

Now, we will discuss about the classes of adverbs:

1. <u>Adverbs of Time[11]:</u> Adverb of time shows when an action is done. e.g.; āj (today), kal (tomorrow, yesterday), savere (in the morning), hameshā (always), etc. ar̲un kal āyegā.(Arun will come tomorrow.) etc.

2. <u>Adverbs of place[12]:</u> Adverb of place shows where an action is done. e.g.: āge (before, infront), pīchhe (behind, at the back), pās, nikaṭ (near, close), sāmane (infront), u̲par (above), nīche (down), yahẳ: (here), vahẳ: (there.) etc. merā bhāī yahẳ: rahtā hai. (My brother lives here.)

3. <u>Adverbs of manner[13]:</u> Adverb of manner shows how an action is done. e.g. achānak, ekāek (suddenly), kisī tarah (some how), bhinntā se (differently), dhīre se, dhīre-dhīre(slowly), tej(fast), jor se (loudly), ṭhik (exactly) etc. e.g. praŋav jor se boltā hai. (praŋav speaks loudly.)

4. <u>Adverbs of Degree[14]:</u> Adverbs of degree shows how much or to what extent an action is done. e.g. bilkul (completely, entirely), prāyah (almost), lagbhag (almost, nearly), aur (more), bahut (very), e.g. vah bahut khush hai. (He is very happy.) etc.

5. <u>Adverbs of affirmation and negation[15]:</u> Affirmative words are hẳ: (yes)- is the simple affirmative; 'jī'- is the polite form, and 'jī' hẳ: – is polite emphatic. i.e. avashy, jaru̲r (certainly, surely.) etc. Negative words are: na, nahĩ:, and mat.

I. 'na' is used as the final word in an interrogative sentence to denote affirmation, or when an affirmative answer is expected. e.g.: wah mere sāth āyegā na? (He will come with me, won't he?).

II. na.....na (neither...........nor) as a conjunction is common for all tones and moods. e.g.; na koī āyegā na jāyegā. etc.

III. 'nahĩ:' is used as a negative of statement in reply to questions only 'nahĩ:' can be used, the polite form: nahĩ: to etc. Being ‘jī: nahĩ:’, nahĩ: jī (slightly emphatic). e.g. kya āryā hai? Jī nahī: (nahī: jī).

IV. 'mat' is used only in the imperative and in some what curt. As a mild prohibitive, 'na' is more idiomatic. In the optative, 'na' is almost exclusively the choice. e.g. 'tu mat jā' (don't go, you don't go.) 'āp mat jāiye'. (Please! you don't go. – honorific) - Imperative.

6. <u>Interrogative adverbs:</u> The Hindī interrogative adverbs correspond to the English wh-words, (i.e., when, what and where, etc.), and like them they introduce questions. They fall into similar groups to other adverbs.

(i) Time: kab (when)-e.g. vah kab āyegā? (When he will come?).

(ii) Place: kahẳ: (se) - (where from), kahẳ: (tak) - (where to), e.g. vah kahẳ: se ā rahā hai? (Where from he is coming?).

(iii) Manner: kaise (how), e.g. hamlog kaise Vārānasī jāyẽge? (How we will go to Vārānasī?).

2. Adverbs in German:

In German the adverb has the same form as the positive of the adjective. e.g.: 'langsam' (slow or slowly). Thus 'die Postkutsche ist langsam'. means 'The mail-coach is slow; sie geht langsam' means She goes slowly.[16] The term ADVERBIAL is commonly used to refer to both single words (i.e. adverbs) and adverbial phrases which function adverbially.

The German adverbs cannot be declined, but they can be graded. In German, adverbs are also sub-divided into various forms according to their meaning. The numbers of adverbs are so great that we can deal only with the most important. i.e.

(i) In a few cases the adverbial form may add- e; e.g. lang or lange (long), - Ich bin schon lange hier (I have been here for a long time already.), gern or gerne (willingly, with pleasure) e.g.:

Ich trinke gern Tee. (I like drinking tea.)

Wollen sie mitkommen? Gerne! (Will you comė along? with pleasure, wilingly.)

(ii) Adverbs are inflected only for the purpose of comparison. The comparative is formed like the adjective by adding – er to the positive. e.g.: schnell- (quickly), schneller–(more quickly),

Er ging schnell ans Fenster. (He quickly went to the window.)

Er lauft schneller als ich. (He runs more quickly than I.) There are two forms for the superlative: am schnellsten and aufs schnellste. The form am-sten is called the relative superlative, and is used when different objects are compared or the same object is compared with itself in different circumstances. e.g.:

Heinrich bleibt hier am langsten. (Henry remains here longest: i.e. He remains longer than anybody else.)

The form in aufs- ste is called absolutive superlative, and is used to describe a quantity in its highest degree without any comparison being intended. e.g.:

Marie sang aufsschönste. (Mairy sang most beautifuly. i.e. very beautifully indeed.)[17]

Here are some examples of adverbs regularly compared: arm (poorly), ärmer am ärmsten aufsärmste. edel (nobly), edler, am edelsten, aufsedelste.

The following are irregular:

gut (well), besser, am besten. Oft (often), ofter, am häufigsten. viel (much), mehr, am meisten. wenig (little), weniger, or minder, am wenigsten, or am mindesten.

i) A number of adverbs are formed from the Genitive of nouns: e.g.: tags from Tag (day), tags darauf (next day). morgens (in the morning)- der morgen (morning). Sonntags (on Sunday); nachts (at night)- die Nacht (night) etc.

ii) The pronominal adverbs are derived from pronouns. e.g., danach – after that, darauf-on it. Towards it; wonach-after/for which. worauf-on which etc.

iii) A few end in -lich: e.g. neulich (recently), gantzlich- (entirely), freilich (certainly, by all means). etc.[18]

iv) The adverb can occupy different positions in a sentence. (i.e., word order in the sentence). e.g.

a. Der Lehrer kauft jetzt (adverb) ein Buch. (The
I II III IV
teacher purchases now a book.)

b. Jetzt (adverb) kauft der Lehrer ein Buch. (Now
III II I IV
purchases the teacher a book.)

c. Ein Buch kauft der Lehrer jetzt (adverb). (A
IV II I III
booк purchases the teacher now.)

Now, we will discuss the adverbs of time, place, manner, degree, affirmation and negation and interrogative adverbs.

1. Adverbs of time[19]: (Which answer the question when?). Adverbs of time provide information on 1. The point in time. 2. Duration. 3. Repetition. These are, e.g.: heute (today), gestern (yesteday), jetzt (now), nun (now), noch (still, yet, another), schon (already, the very, even), um (about), dann und wann (now and then), nachstes Jahr (next year), sofort (at once), wann (when), vorher (before), dann (then), manchmal (sometimes), gerade (just now), morgems (in morning), montags (on Monday), meistens (mostly), taglich (everyday), lange (for a long time), etc. e.g:

noch (still, yet): (i) Er ist noch sehr schwach. (He is still very week.)

(ii) Der Brief ist noch nicht angekommen. (The letter has not yet arrived.)

2. Adverbs of place[20]: (which answer the question where?), These are, e.g.: da, dort (there), hier (here), an (at), mitten (middle), zu (on, at), aus (out of), daraus (thereout), von (of, from), unten (down), oben (up), hinten (behind), neben (near), wo (where), woher (where from), wohin (where to), dahin (thither), warum (why, wherefore), darum (therefore), etc. Hin and her are also used in combination with prepositions to form adverbs and indicate the direction in which movement takes place. These adverbs have a wide range of uses and can occur alone or linked with another word. In general hin denotes motion away from the speaker (or the person concerned) while her denotes motion towards the speaker (or another point of reference), hin-and her-combine with prepositions to form directional adverbs. e.g., hinab, herab, hinauf, herbei, etc. These occur mainly a separable verb prefixes. In general they link the direction indicated by the preposition with the notion away from or towards the speaker. e.g. wir stiegen die Treppe hinauf. (we climed up the stairs.) Daher (from there), dahin (to there), These are called compound adverb e.g.: 1. Woher kommst du? (where do you come from?) 2. Wohin fährst du? (where are you going to.)

(i) Da hast dein Buch. (There is book for you.)

(ii) Mitten im Garten ist ein Teich. (In the middle of the garden there is a pond.) etc.

woher (where from), wohin (where to), hinaus, heraus (outside), daher (from there), etc. are also called compound adverb. e.g. woher kommen sie? (where do you come from?)

3. Adverbs of manner[21]: (Which answer the question how? Or in what manner?). These are, e.g. auch, selbst, sogar (even), besonders (particularly), nur (only, simply), wahrscheinlich (probably), irgendwie (some how), anders (differently), vielleieht (perhaps), bestens (heartly) etc. e.g.:

(i) Er wollte doch nur helfen. (He only wanted to help.)

(ii) Ich danke bestens. (I thank you heartly.)

4. Adverbs of Degree[22]: (which answer the question how much? Or in what degree?), These are; e.g.: sehr (very), zu (too), fast (almost), ungefähr (about), genug (enough), hoch (highly), lange and längst, höchst (extremely), erst (only), alle Tage (everyday), recht (really), etc. , e.g.:

(i) Das ist zu heiss. (That is too hot.)

(ii) Er hat Geld genug. (He has enough money.)

5. Adverbs of Affirmation and Negation[23]: These are, e.g.: Ja (yes), Jawohl, doch (after all), wohl (indeed, certainly). schon (surely, no doubt), etc.

Adverbs which qualify the whole sentence are the affirmative ja (yes), and its emphatic form 'jawohl', e.g.: kommt er? Is he coming? jawohl! er kommt. (Yes, he certainly is.) Ja is used in a number of idiomatic ways, unstressed e.g.

Er kommt ja jeden Abend. (You see he comes every evening.)

doch: It is also emphatic and has a different force according to the word order and stressed used. In normal or inverted order it has the meaning of after all, just, truly, surely, in any event, any way.) e.g.:

(i) komm doch! (Do come!). The negation are: nein (no), and nicht (not), nicht wahr (is it not true.) e.g.:

(ii) kommt er? (Is he coming?), Nein! (no!). Er kommt nicht. (He is not coming.) Sie sprechen Deutsch, nicht wahr? (you speak German, don't you?)

6. Interrogative adverbs[24]: The German interrogative adverbs also correspond to the English wh-words, (i.e., when, what and where, etc.), and like them they introduce questions. They fall into similar groups to other adverbs.

i. Time: wann? when? : e.g. Wann kommt der Zug in Berlin an? (When the train will arrive in Berlin?)

bis wann? until when?, (how long?) etc. e.g. Bis wann bleibt ihr hier? (How long you will be here.)

ii. Place: wo? where? woher? (where from?), wohin? (where to) etc. e.g. Woher kommt der Zug?/wo kommt der Zug her? (Where from the train is coming?) Wohin fahrt ihr heute?/wo fahrt ihr heute hin? (Where are you going today?)

iii. Manner: wie? how? etc. e.g. Wie habt ihr es gemacht? (How you have done it?)

According to aforesaid description we can summarised as follows:

	Adverbs	Use	Examples	
1.	Time	answering the question when.	Hindī: German:	kal (yesterday), ā:j (today), gestern (yesterday), heute (today)
2.	Place	answering the question where.	Hindī: German:	yahā̊: (here), vahā̊: (there), u̲per: (up) hier (here), dort (there), oben (up)
3.	Manner	answering the question how.	Hindī: German:	kisītarah (somehow), bhinntāse (differently) irgendwie (somehow), anders (differently)
4.	Degree	answering the question how much /small….. (often with adjectives),	Hindī: German:	bahut (very), balki (rather) sehr (very), ziemlich (rather)
5.	Interrogative	wh-words (in Hindī kab/kyõ/kahā̊:) and in German, wann/warum /wo are introducing question.	Hindī: German:	kab? (when?), kyõ? (why?) wann? (when?), warum? (why?)

Comparative Points:

The comparative points are as follows:

i) The classes of Adverbs are similar in the two languages: i.e. Adverbs of time, Adverbs of place, Adverbs of manner, Adverbs of degree, Adverbs of affirmation and negation and Interrogative adverbs.

ii) Noun, adjective and verb are also used as adverb in the two languages. e.g.:

Noun: Hindī: shām (evening-noun)- shām ko/mẽ- 'in the evening' (adverb.)

Hindī: somvār (noun) – somvār ko (on Monday-adverb)

German: der Montag (noun) – montags (on monday-adverbs.) e.g.

Hindī: vah shām ko/mẽ bāzār jātā hai./sham ko/mẽ vah bāzār jātā hai. (In the evening he goes to market.)

In Hindī noun and adverb all sounds are not used in capital while in German noun is always used in capital sound and adverbs are always used in small sounds with ending-s.

German: Abends er geht nach Markt./Er geht abends nach Markt. (In the evening he goes to market.), abends (adverb) 'In the evening'. der Abend (noun) ‘evening’.

Adjective:

Hindī.: ve bahut achhā khelte haĩ. (They play very well.)

German: Sie spielen sehr gern. (They play very well.)

Verb: Hindī.: Shām ko vah jald (shīghra) ghar gayā.

(In the evening he went soon to the house.)

German: Abends er ging bald nach house.

(In the evening he went soon to the house.)

In Hindī an adverb is represented in German by two or three words with different meanings. e.g.:

Hindī	German
vahā̊:	da, dort (there)
ab	jetzt, nun (now),
Prāyah, aksar	selbst, sogar (even), etc.

iii) The adverb occupies different positions in a sentence in the two languages. e.g.:

Hindī: bālak <u>ab</u> ek kitāb kharīdatā hai.

German: Das Kind kauft <u>jetzt</u> ein Buch.

Hindī: <u>ab</u> bālak ek kitāb kharīdatā hai.

German: <u>Jetzt</u> kauft das Kind ein Buch.

But, in Hindī, <u>ab</u> kharīdatā hai bālak ek kitāb. It is not accepted while in German it is accepted. <u>Jetzt</u> kauft das Kind ein Buch.

again, in Hindī, ek kitāb kharīdatā hai bālak <u>ab</u>. It is not accepted while it is accepted in German: Ein Buch kauft das Kind <u>jetzt</u>.

According to word order in Hindī (SOV), verb always occupies at the last position in the sentence while in

German (SVO), verb always occupies at the second position in the sentence.

iv) Compound adverbs are also found in the two languages.

e.g. Hindī: kahå̃ se German: wo her (from where)

Hindī: har jagah German: über allhin (every where) etc.

v) There are three forms of affirmation in Hindī. i.e. hå̃:, jī, and jī hå̃: (yes), while in German only one: i.e. ja (yes). There are three forms of negation in Hindī. i.e. na, nahĩ:, and mat, while in German two: nein (no), nicht (not) 'nein' (no) is used for 'na' and 'nicht' (not) is used for nahĩ: and mat.

Conclusion:

On the basis of aforesaid discussion we have tried to present almost all the possible form/declension, formation and comparison within both the languages. In this study we have found similar and dissimilar declension, formation of adverbs in the two languages, which were cited with appropriate examples. Of course, both the languages belong to different language families; nevertheless they share some common features within adverbial structure and usage. Therefore, this study can be useful in the teaching of both the languages.

References:

1. Guru̱, Kāmatā Prasād : Hindī Vayākaraŋ. Samvat 2032, Page. 134. Nāgarī Prachāriŋī Sabhā, Vārānasī. U. P.
2. Green, David : Contemporary English Grammar and Composition. First edition 1971, Page. 123, The macmillan company of India Ltd. New Delhi.
3. Griesbach, Heinz: Schulz, Dora : Grammatik der Deutschen Sprache. Edition 1962, Page. 215, Max Hueber Verlag, Mùnchen.
4. Durrell, Martin : Hammer's German Grammar and usage. First and Second edition 1971, Fifth edition 2011, Page. 137, Routledge Taylor & Francis- Group. London and New York.
5. Guru̱ Kāmatā Prasād : Hindī vyākaraŋ. Samvat 2032, Page.118-121, nāgarī prachāriŋī sabhā, Vārānasī. U. P.
6. Sharmā, Āryendra : A Basic Grammar of Modern Hindī. First edition 1958, Page. 153-154, Central Hindī Directorate. New Delhi.
7. Kellogg, S. H. : A Grammar of the Hindī Language. Second edition revised 1893, Second Indian edition 1990, Page. 380-383. Munshirām Manohar lāl Publishers Ltd. New Delhi.
8. Griesbach, Heinz: Schulz, Dora : Grammatik Der Deutschen Sprache. Edition 1962, Page. 217-219, Max Hueber Verlag, Mùnchen.
9. Curme, George o : A grammar of the German Language.

   Second revised edition 1960, Page. 340-354, Frederick Ungar Publishing Co. New York.
10. Durrell, Martin : Hammer's German Grammar and usage. First and Second edition 1971, Fifth edition. 2011, Page. 137, Routledge Taylor & Francis- Group. London and New York.
11. Sharmā, Āryendra : A Basic Grammar of Modern Hindī. First edition 1958, Page. 10-14, Central Hindī Directorate, New Delhi.
12. Sharmā, Āryendra : A Basic Grammar of Modern Hindī. First edition 1958, Page. 10-14, Central Hindī Directorate, New Delhi.
13. Sharmā, Āryendra : A Basic Grammar of Modern Hindī. First edition 1958, Page- 10-14, Central Hindī Directorate, New Delhi.
14. Sharmā, Āryendra : A Basic Grammar of Modern Hindī. First edition. 1958, Page. 10-14, Central Hindī Directorate, New Delhi.
15. Sharmā, Āryendra : A Basic Grammar of Modern Hindī. First edition. 1958, Page. 10-14, Central Hindī Directorate, New Delhi.
16. Wilson, P.G. : German Grammar. First edition 1950, Page.156, The English Universities Press Ltd. London.
17. Wilson, P.G. : German Grammar. First edition 1950, Page. 157, The English Universities Press Ltd. London.
18. Wilson, P.G. : German Grammar. First edition 1950, Page. 158, The English Universities Press Ltd. London.
19. Wilson, P.G. : German Grammar. First edition 1950, Page. 160, The English Universities Press Ltd. London.
20. Wilson, P.G. : German Grammar. First edition 1950, Page. 161, The English Universities Press Ltd. London.
21. Wilson, P.G. : German Grammar. First edition 1950, Page. 161, The English Universities Press Ltd. London.
22. Wilson, P.G. : German Grammar. First edition 1950, Page. 162, The English Universities Press Ltd. London.
23. Durrell, Martin : Hammer's German Grammar and usage. First and Second edition 1971, Fifth edition 2011, Page. 151, Routledge Taylor & Francis- Group. London and New York.
24. Griesbach, Heinz: Schulz, Dora : Deutsche Sprachlehre für Ausländer. Edition 1967, Max Hueber Verlag, München.

THE RESIDENT OF BANARAS: OFFICE OF CONTROL, POWER, POLITICS (1775-80)

DR. SHREYA PATHAK*

Banaras, known as Kashi in ancient text, is one of the most ancient living cities of reverence not only in India, but also in the world. There is plethora of research work done and published on the religious and cultural development of the city, but when it comes to the political developments in the city during the modern time period i.e. during British rule, there is paucity of published work. Before British entered the political horizon, Banaras was a zamindary under Oudh Suba and was ruled by a family who were descendents of Mansaram. His successors, though paying revenue to the Nawab of Oudh or the Wazir, were almost ruling independently. This research paper deals with the time period after 1775 i.e. immediately after the annexation of Banaras by the English, who always had covetous eyes over Banaras because of its alluring wealth and strategic position. East India Company, being a trade company, always had eyes over the commercial significance of any region and Banaras in that case stands on the highest rung as it possess trade route, both land and sea, that crosses through the territory under Raja of Benares. After the demise of Raja Balwant Singh, English always supported Chait Singh and played an important role in placing him on the throne much against the wishes of then Nawab Oudh Shuja-ud-dowla, under whom Raja was ruling the zamindary. After the demise of Oudh Nawab Shuja-ud-dowla, English signed a new treaty with his successor Asaf-ud-dowla on May 21, 1775 after which he gave up all the territories dependent on Raja Chait Singh and the sovereignty to the English Company in lieu of defense of Oudh.

Though, English could easily increase the amount of annual revenue to be paid by the Raja, but they evaded taking any such decision and endeavoured to maintain the political rights of the Raja to make him feel confident and secured in his relation with the Company. Even the Court of Directors gave their acquiescence to Hastings's proposal of not increasing the annual payment of revenue. In 1775, after annexation of the territory under Raja Chait Singh, Office of Resident was opened in Banaras, with the purpose of receiving monthly payment of revenue. The paper deals with how this office became a centre of power and politics in Banaras and the Resident, an instrument to encroach upon the Raja's inviolable rights.

After annexation, the Company had to determine in what manner this transfer was to be implemented. In July 1775, the plan of settlement drafted by the Governor General was put forth in the Council for deliberations by all the members of the Council. The plan approved by the Council members clearly maintains that the Raja would pay the yearly revenue of Rs 22, 48,449 to the Company and he would be empowered to exercise a complete and uncontrolled authority under the sovereignty of the Company, but compensation would be demanded from the Raja for *kotwali* as the Raja was not enjoying this right under the Nawab. Thus, it was unanimously agreed that the amount demanded should not exceed the amount that Raja was paying to the Nawab before annexation.[1] While things were being finalized related to revenue dues, it was decided, after protracted deliberations, to appoint a covenanted servant to take the possession of the territories on behalf of the Company on payment of the stipulated amount of revenue and come to a final settlement with the Raja. Francis Fowke was appointed with a detail letter of instructions where three points need to be highlighted. These are:[2]

1. To assure the Raja that the Council do not want paid to the late Vizier Shuja-ud-dowla and the equivalent amount fixed for the grant of mint and

* Assistant Professor, Department of History, Vasanta College for Women Rajghat, Varanasi

kotwali. Suitable deduction will also be allowed to him for expense and risk of transporting the revenue at Calcutta.

2. He will enjoy free and uncontrolled management of internal government and collection of revenue as long as he adheres to the engagement and they would never demand any augmentation other than the fixed annual tribute.

3. The Raja was to be resolutely recommended to maintain a body of 2000 horses disciplined after the European manner and the Company will pay a gratuity of Rs 15 per month for each private man when they will be under Company's employ, but he was not be insisted to comply to this demand.

Though, Fowke was appointed to make a complete settlement with the Raja, but he was not the Governor General's first choice. Hastings, being caught in the politics of the Council members, was fettered to take any action wilfully to implement his plans. Any final decision could be taken by the Council only on the basis of the majority and Hastings, with the support of lone Councillor Barewell, was not enjoying the majority needed to implement his proposals. This deadlock situation left him with no viable option but to bend down to the situation. The political equation changed in his favour with the demise of one of the Councillor of the opposing camp Monson on September 25, 1776. Now, he could command over the majority of the Council using his casting vote. How important Banaras was in his eyes and how desperate he was to control the Raja is evident from the fact that soon after attaining majority, his first decision was to replace Fowke by his adherent Graham in December 1776, on pretence that the investiture of the Raja, for which he was sent to Banaras, was over.

This moots a question that if the investiture of the Raja was over and the purpose for which the Council appointed Fowke was fulfilled, then what was the need to appoint another Officer on the Chair? Though, Hastings adroitly managed the situation by giving reasons of administrative convenience and stated in the Council that Graham was appointed for demanding and receiving bills of exchange from the Raja and *"for transacting any occasional business"* between this Government and the Raja. This moots second question: the purpose for which Graham was appointed could be easily fulfilled by Fowke and there was no reason from administrative point of view to recall Fowke. Infact there was no reason to continue that post as now the settlement with the Raja was over. The term used by Hastings for appointment for Graham *"for transacting any occasional business"* was very ambiguous and raise many questions over his intensions.

Though, Francis expressed his dissent considering Fowke more appropriate for the post, but he gave his acquiescence for Graham's appointment, and only Clavering was averse to the decision.[3] Daniel Barewell was appointed as the Assistant Resident, but neither there was additional work nor any special purpose to create a new post of Assistant Resident and even the Court of Directors reprimanded this appointment and regarded the post dispensable stating, "*...two persons appointed immediately afterwards, with two Salaries, to execute an Office which had been filled with reputation by Mr. Fowke alone; and that Mr. Graham enjoys all the Emoluments annexed to that Office of Mr. Fowke, We must be of opinion that Mr. Fowke was removed without just Cause, to make room for Mr. Graham; and that the addition of Mr. Barewell's salary is a clear loss of 300 Rupees P. Month to the Company.*"[4] The fact that Mr. Barewell was the brother of Councillor Barewell itself manifests the purpose for which Hastings appointed him. Hastings shared a very amiable relation with Barewell and he was the only Councillor who staunchly supported Hastings on different issues raised deliberations and voted in Governor General's favour.

Although, Hastings staunchly championed the establishment of Resident Office of a Resident at Banaras, but previously, 22 days immediately after signing treaty with Asaf-ud-dowla, he opined on the issue in his minute of June 12, 1775, when it was proposed to appoint a Resident, he demurred, "*...it would frustrate the intention of rendering the Rajah Independent if a Resident was appointed to receive the money as it became due at Benares such a Resident would unaviodably acquire an Influence over the*

Rajah and over his Country which would in effect render him the master of both. This consequence might not perhaps be brought completely to pass without a struggle and many appeals to the Council, which in a Government constituted like this, cannot fail to terminate against the Rajah, and by the Construction to which his opposition to the agent would be liable might eventually drawn on him severer Restrictions and end in reducing him to the mean and deprived state of a mere Zemindar".[5] Inspite of divulging so deleterious effect of a Resident on the Raja's authority, Hastings within a short span of time manifested a volte-face in his attitude towards Banaras and the Office of Resident. Thomas Graham joined the office as Resident in January 1777, with an ulterior motive of encroaching Raja's inviolable rights as he divulged in his letter to Anderson, "*If I have put even a shadow of authority, I will make him feel very sore for his indifference... I shall have it in my power to bring him on his marrow bones".*[6] He joined with a pertinacious desire to build up the political power of the Residency and interfere in the internal matters of the Raja. Within two months, Graham started sending reports to Governor General regarding military activities of the Raja that may raise suspicion on the probity of the Raja. The purpose was to make his fidelity questionable so that Hastings could legalize the actions that he was planning to take against him. Graham joined with a pernicious desire to build up the political power of the Residency and interfere in the internal matters of the Raja. On March 8, 1777, Graham wrote that Raja Chait Singh was repairing his forts, stocking provisions, issuing orders for the manufacture of gunpowder, assembling forces and moving guns in night.[7]

There was a volte face in the policy of Hastings towards the Raja. Where previously every small representation of the Raja was given heed and consideration by the Governor General, now the Council lucidly directed Graham to discourage any requisition of the Raja contrary to the agreement with the Government. The Office of the Resident also interfered in the matter of dismissed *dewan* Ausan Singh and the Raja, under duress, executed a deed of reconciliation with Ausan Singh and agreed to give territory yielding revenue of Rs. 65000/-.[8] Thus, the Council, through the office of Resident, was continuously emboldening Raja's enemies.

The Office of Resident became a more prominent weapon against the Raja with the commencement of war between Britain and France in 1778. A proposal regarding the Raja's contribution as his burden of the War was put forward for deliberation by the Council and it was resolved that the Raja as a subject was under obligation to promote the interest of the Company. Through the Resident, Raja was forced to pay an amount of Rs. 5 lakh much against his will.

How political the Office of Resident in Banaras was, can be envisaged by the fact that within four days of joining of Sir Eyre Coote as Councillor in place of General Clavering of April 1, 1779, another Council member Francis moved a resolution for the recall of Graham as Benares Resident, but this resolution could not get the assent of the Council as Coote did not gave his support.[9] Inspite of the fact that the Raja was paying his revenue with great regularity, Graham was reporting about the difficulties in obtaining monthly installments from the Raja to project him as a great menace for the Company.

In 1779, Council again demanded Rs. 5 lakh as a share of his burden and empowered Graham to call two battalions if Raja persists in refusing payment.[10] Though, Raja gave his consent to pay the amount still, Graham humiliated him by demanding the payment many times within five days duration. The Raja even complained that incessant demand was creating inconveniences and his endeavours were being interruputed.[11] The ulterior motive behind the appointment of Graham as Resident of Banaras itself becomes evident from the fact that inspite of clear instructions from Court of Directors to reappoint Fowke in Banaras, Hastings evaded to comply for a long time. The Directors had a clear vision that Fowke was removed from his post without any justifications, simply to make space for the appointment of Graham.[12]

Finally, Hastings reappointed Fowke as the Resident of Banaras in February 1780, but not for too long. Hastings asked Fowke to furnish him with Raja's military details to which Fowke responded that the Raja was deliberately concealing the military strength. This nettled Hastings and soon appointed Markham as the new Resident. In this minute, he cited the reason for removing Fowke, "*he stands a screen between the Raja and Government instead of an instrument of control and that the Raja himself and ever Chief in Hindostan with whom we are in connection will regard it as the pledge and foundation his independence.*" He stated that the office of Benares Resident being a "*representative station*" could not be under charge of a man "*not preferably chosen*" by the members of actual Government. He expressed in his minute, "*Mr Francis Fowke is not agent that I cannot give him any confidence that while he continues*..." John Benn was appointed Assistant to the Resident. Since Fowke's new appointment was to take effect after months, he was permitted to draw his salary for the time as Resident of Benares.[13] Thus, at a time when Company was in dire need of finance due to battle at two fronts Mysore and Marathas, it was taking a burden of salary of two residents for the same post for three months in a line. Markham was appointed at this juncture for a very special purpose that the later events will explain.

It was a time when the Council was bifurcated into two groups. After the demise of Monson, there was a situation of flux among the Council members and Clavering declared himself as the next Governor General. Receiving this information Raja Chait Singh sent a deputation to congratulate the new Governor-General. Later, with the orders of the Court of Directors, Hastings was again placed as Governor-General, but this deputation from Banaras nettled Hastings, who considered that the Raja was supporting the opposing camp of the Council and he planned to avenge him. He was determined to disinherit the Raja, but he could not do the same as per the investiture given to him and the settlement made with him. This was possible only in two situations, either he fail to pay the annual revenue in time of he join hands with any of the enemies of the Company and avowedly challenge the Company's authority under whose sovereignty he was ruling. So, Hastings tried to create such compulsive situation, through the office of Resident, where the Raja either fail and refuse to pay the revenue on time or join hands with the Marathas, as they always shown their interest in this holy city. Hastings was always threatening Chait Singh for payment of money over and above the stipulated revenue which was clear violation of the agreement from the English side. It was clearly mentioned in the agreement that they would never demand any augmentation other than the fixed annual tribute. Not only he was wrongly demanding money from the Raja, but was also trying to avail any opportunity to take military action against him through the Resident who was each time empowered to call army to be against the Raja. It was not the Raja, but the Company that was violating the agreement each time ignominiously and the Office of Resident was the instrument to implement his plans without any remorse.

References

1. Foreign and Political Department (henceforth FPD), Secret Committee (henceforth SC), 5 July 1775, No. 2, National Archives of India, New Delhi.
2. FPD, SC, Draft of the Instructions to Francis Fowke, August 24, 1775, no. 3, National Archives of India (henceforth NAI), New Delhi.
3. FPD, Secret Proceedings, 11 November-30 December 1776, vol. 45, Minute of Governor General dated December 23, 1776, NAI, pp. 3857-58.
4. Public Department (henceforth PD), letter from Court of Directors to Council, 30 January 1778, para 66.
5. FPD, June 12, 1775, No. 3, Governor General's minute, NAI.
6. British Museum, Additional Manuscript No. 45422, letter from Graham to anderson, April 5, 1777, Private section, NAI.
7. Davies, C.C., *Warren Hastings and oudh*, Oxford University Press, London, 1939, p. 134.
8. Calendar of Persian Correspondence, letter from Sambhunath to Maharaj Misar, no. 854, March 31, 1778, volume V.
9. Fort William-India House Correspondence, vol. 8, p. 601, notes.

10. FPD, Secret Proceedings, 3 July-23 December 1779, vol. 57, 26 August 1779, letter from Governor General to the Resident dated August 26, 1779, p. 1154.

11. FPD, 29 September 1779, no. 4, letter from Graham to the Council with an enclosure of translation of Raja Chait Singh's letter dated September 17, 1779.

12. PD, letter from Court of Directors to Council, 30 January 1778, para no. 66 and 67; also see letter from Court, 27 May 1779.

13. FPD, 4-19 January 1781, vol. 62, no. 12, Minute of Governor General, 14 January 1781, pp. 144-149.

●

PROSPECTIVE MEMORY HIGH AND PROCRASTINATORS

VATSAL PRIYADARSHI PANDEY*

Prospective memory can be considered as the memory for future intentions. As an active component of human cognition prospective memory involves forming, retaining and executing a future intention.[1] There are two forms of prospective memory which are time-based prospective memory and event based prospective memory. Where the former involves executing a future intention at a specific time while the later follows an event. A good example would be to arrive at a station right before the train arrives, the proper execution of this behavior would require adequate functioning of time based prospective memory while an example of an event based prospective memory would be take ask a friend for help soon as you see him or her. While its important to maintain our intentions for the future we often postpone an action for the future. This particular behavior can be considered as procrastination. More specifically we tend to delay a task despite having the knowledge that delay the task can affect its quality of completion.[2]

Prospective memory has a retrospective component also which contains storage of events or words that have been taken place in past. Prospective memory contains. From the aforementioned explanation it is clear that procrastination can be considered as active behavior where one has volitional choice to postpone a task. However, there are situations where someone may simply forget on completing a task rather than just volitionally choose to postpone. In other words poor prospective memory may have something for procrastinators. One may not choose to procrastinate rather one may procrastinate as result of poor prospective memory. Based on these rationales the current study aimed at comparing the scores of prospective memory between high and low procrastinators. It was assumed that there will be a significant relationship between high and low procrastination on the measures of prospective memory.

Methods

The current study was incorporated a between subject group design where there were two groups namely high procrastination group and low procrastination group. The study was conducted on students of Amity University Madhya Pradesh, Gwalior. The data was collected from 70 students of undergraduate and postgraduate level. Procrastination was assessed using General Procrastination Scale[3] and prospective memory was measured using prospective memory questionnaire.[4] The questionnaires were handed over to the participants after establishing a rapport. The participants gave their responses in the presence of the researcher. The participants took an average time of 20 minutes to complete the questionnaire. The data was analyzed using SPSS version 20.00. In order to evaluate the difference in score independent t-test was applied. The alpha value was selected at 0.05 level of significance.

Result

The table 1 shows the mean and SD of high and low procrastination group on various measures of prospective memory. The total score on the prospective memory measure is only marginally different than that between and high and low procrastinators. An independent test indeed confirmed this and it was found that there was no significant difference between high and low procrastinators on total score on prospective memory $t(63) = 0.91$, $p = 0.36$. However, on the score of self-cued short term prospective component of the prospective memory questionnaire the high procrastination group scored significantly higher than the low procrastination group $t\ (63) = 2.08$, $p = 0.04$. It is to be noted that self-cued short term prospective memory component was the only measure where statistical significance was observed.

Discussion

The main objective of the study was to compare the scores of prospective memory between high and low procrastinators. It was assumed that there will be significant difference between high and low procrastinators on measures of prospective memory. This assumption was only partially supported by the current study. As it was observed that high

* Department of Psychology, School of Humanities and Social Sciences, christ (Deemed to be University) Delhi NCR, Ghaziabad.

procrastinators scored significantly on self-cued short prospective memory component of prospective memory questionnaire. This measure of prospective memory taps into the how individuals maintain a future intention for short period of time and tends to implement that intention for a short period of time.[5] As it appears the high procrastinating individuals reported that they've problem in maintaining a future intention for a short period of time. This particular finding may further imply that high procrastinating individuals may have poor working memory which may help maintaining this future intention for a shorter period of time. There is some supportive evidence of this notion. As noted by Altgassen, Scheres, and Edel (2019) that among people with attention deficit and hyperactivity disorder there seems to be some role of poor prospective memory tends to act as a mediating role in everyday symptoms of ADHD and procrastinatory behavior. ADHD has been know to affect working memory capacity[6] However, future investigation should look into the dynamics between working memory capacity, procrastination and prospective memory.

It is to be noted that there is some limitation of the study. The sample size was low therefore, future studies should include the augmented sample size. Use of self-reports. The current study used self-report measures of prospective memory. Biases related to self-report measures may confound the relationship between procrastination and prospective memory. Thus future studies should incorporate objective measure of prospective memory. In sum it can be concluded that poor prospective memory can affect the level of procrastination. However, more research is warranted to decipher the exact the mechanism through which procrastination is affected by prospective memory.

Table 1 Showing descriptive statistics on measures of prospective memory

	Groups	N	Mean	SD
Total Score	High Procrastinators	34.00	37.20	1.59
	Low Procrastinators	31.00	35.28	1.38
SS	High Procrastinators	34.00	5.79	1.51
	Low Procrastinators	31.00	5.03	1.43
LS	High Procrastinators	34.00	4.53	1.76
	Low Procrastinators	31.00	4.55	1.55
RSS	High Procrastinators	34.00	4.88	1.74
	Low Procrastinators	31.00	4.74	1.41
RLS	High Procrastinators	34.00	4.35	1.74
	Low Procrastinators	31.00	3.94	1.55

Note. SS = Short-term self-cued, LS = Long-term self-cued, RSS = Retrospective short-term self-cued, Retrospective Long-te

References

1. Crystal JD, George Wilson A. Prospective memory: A comparative perspective. *Behav Processes.* Published online 2015. doi: 10.1016/j. beproc. 2014.07.016

2. Steel P. The nature of procrastination: A meta-analytic and theoretical review of quintessential self-regulatory failure. *Psychol Bull.* Published online 2007. doi: 10.1037/0033-2909.133.1.65

3. Lay CH. At last, my research article on procrastination. *J Res Pers.* Published online 1986. doi: 10.1016/0092-6566(86)90127-3

4. Smith G, Della Sala S, Logie RH, Maylor EA. Prospective and retrospective memory in normal ageing and dementia: A questionnaire study. *Memory.* 2000;8(5):311-321. doi:10.1080/09658210050117735

5. Altgassen M, Scheres A, Edel M-A. Prospective memory (partially) mediates the link between ADHD symptoms and procrastination. *Atten Defic Hyperact Disord.* 2019; 11(1):59-71. doi: 10.1007/s12402-018-0273-x

6. Kofler MJ, Rapport MD, Bolden J, Sarver DE, Raiker JS. ADHD and working memory: the impact of central executive deficits and exceeding storage/rehearsal capacity on observed inattentive behavior. *J Abnorm Child Psychol.* 2010;38(2): 149-161.

●

HANSDA SOWVENDRA SHEKHAR'S SHORT STORY COLLECTION "THE ADIVASI WILL NOT DANCE": RE (CONFIGURATION) OF LITTLE HISTORIES OF TRIBALS IN LITERARY HORIZON

*DR. KUMARI PRITI**

The Adivasi will Not Dance by Hansda Sowvendra Shekhar is a collection of little histories that are contributing to the character of India as a developing, diverse and evolving nation. The collection is a tribute to lives of struggle and marginalization, which avoid the exotic or self- pitying tone. Stories are written from the margin, against the grain, and told it with great skill and humanity. It explores Adivasi identity politics and experience. The variety of stories in this book moves readers on well-trod paths in progressive literature, narrating the hardships adivasis face under modernism and capitalism. It offers a rare glimpse of middle class Santhal life.

The formation of Jharkhand as an independent state has only intensified the vulnerability of tribals. The consistent land acquisition in the name of development has displaced and dispossessed thousands of tribals from their ancestral land and possession. Displacement and development have become synonyms and most often it goes beyond monetary gain to control over the policy formulation process. As per a human rights report published by the Jharkhand human Rights Movement (JHRM), the state government has signed more than 100 MOUs which certainly goes against the provisions of Fifth Schedule because these MOUs are clear indication of dispossession and displacement of tribals.

Santhal tribes are the third largest tribe in India. They are settled in the states like Bihar, Orissa, Jharkhand, West Bengal, Assam etc. They descend from Pre Aryan period. In British Colonialism they proved themselves to be the greatest fighters who strove against the permanent settlement of Lord Cornwallis in 1855. Baba Tilka Majhi was the first Santhal leader who went for armed rebellion against the British in 1789. During the late 1850s Santhal hero Sidhu inspired and assembled around 10 thousand Santhals to run parallel government against the British regime.

In the eponymous story **The Adivasi will Not Dance** Mangal Murmu, a Santhal musician from Matiajore village of Pakur district in Santhal Pargana receives an invitation from the government of Jharkhand to present his musical performance with his troupe before an eminent person whose identity is not revealed. He was assured by the government officials that all performers will be well paid. He along with his troupe starts practicing for the performance. Simultaneously he also got the news of vacating the eleven villages by its inhabitants to establish a thermal power plant. The outcry of the villagers have been recorded by the writer in the following way: the villagers refused outright. Santhals, low-caste Hindus, Paharias, everyone began fighting for their land. The district administration fought back. The agitators were all beaten up and thrown into police lock-ups[1]. Paramilitary forces, the CRPF had been called in to control the situation. Out of eleven villages four villages had already been razed to the ground by bulldozers to make room for the foundation- stone-laying ceremony.

Mangal Murmu finally comes to know that they have to perform before the President of the country. It's through newspaper they come to know that the President would stay in Jharkhand for three days and he will lay down the foundation of the Thermal power plant. It is on account of this chaotic scenario the performers couldn't concentrate on their practice. In the words of Mangal Murmu : " How can all of you be so indifferent ? How can you expect us to sing and dance when our families are being uprooted from their villages?[1] The construction of Thermal Power plant is an onslaught on Advasis' lands and its rich possession. The thermal power plant is going to be set up by a wealthy businessman cum M.P. for his own selfish motives but it was projected as the welfare initiatives taken by him for the upliftment of humanity in general and advasis of that locality in particular. But it was the public face which was presented by him and accepted by all (his own class). On the contrary there was

* Assistant Professor, (English), Arya Mahila P.G. College, Chetganj, Varanasi

forceful acquisition of land and public agitation and demonstration against this act of brutality which was suppressed by police's savagery in the form of beating up and throwing the protestors into lock ups.

The musician along with his troupe presents himself on the podium for performance. In his welcome speech he with his questions expresses his and his tribes' plight and annihilation and he asserts: we will sing and dance before you but tell us, do we have a reason to sing and dance? Do we have a reason to be happy? And at last he with an affirmative tone he ask for his land and if they don't get it back, Adivasi will not dance[1].

In another story **November is the Month of Migration** in the story -collection "The Adivasi will not Dance" presents the pathetic plight of santhal tribe especially the trauma of Santhal women. They migrate from their aborigines for their sustenance each and every year to Bardhaman from far-flung corners of the Santhal Pargana to plant rice and other crops in farms owned by zamindars. Men, women, children got uprooted from their soil to sustain themselves. But on the way of their destination, Santhal women have to make compromises with their honour. They are resorted to prostitution to satisfy their hunger and basic needs of the family members.

Talamai as its very name reflects a lack of imagination, as a middle daughter (Tala : middle; mai : girl) who is among the forty three people going on to Bardhaman for their livelihood. She is hungry and waiting for the train which is going to carry them off to their destination. She gets attracted to a man who invites her with a bread pakora in hand which is nothing but a signal to her. He is young, fair, a Diku Jawan of RPF. He enquires her regarding her hunger and offers her to render services to him. She has an insight into what he is referring to. The sex game which he gets inclined to gets over within ten minutes. It recalls the readers the mechanical sex act in T.S. Eliot's "**The Waste Land**" where the typist girl is ready for sex-act without any emotional intimacy with her partner.

The typist home at teatime clears her breakfast, lights

Her stove, and lays out food in tins.

X X X

The time is now propitious, as he guesses,

The meal is ended, she is bored and tired,

Endeavours to engage her in caresses

Which still are unreproved, if undesired

Flushed and decided, he assaults at once;

Exploring hands encounter no defense;

His vanity requires no response,

And makes a welcome of indifference (The

Waste Land: 222-242).

In the words of the writer: Talamai lies quietly, observing the changing contours of the policeman's face in the dim light…. Once, he says: "Saali, you Santhal women are made for this only (41, Shekhar). She knows the routine. She has to do nothing, only spread her legs and lie quiet. Whatever the act is performed, it is the man who has the lead role to play. And at last she receives two pieces of cold bread pakora and a fifty rupee note. The ill treatment received by the marginalized from main stream sections of society critically questions the welfare measures announced by the Government as well as the progressive stance of the society.

Female migration is often not visualized as an option to earn better or higher incomes, but in terms of survival strategy because staying at home may result in starvation. Santhal labour is the backbone of agriculture in Bardhaman. Sexual abuse is a constant fear tormenting the women labourers. It is observed that they would be compelled to satisfy the sexual needs of their employees and others in order to make extra income to fulfill the needs of family. They migrate with a deep sense of fear in their hearts. Their only consolation lies in the support system which may be extended to them from their kin group and the male companions. Group migration with men is in trend with the purpose of physical security. Male migration runs parallel with physical and financial burdens on women resulting in overwork accounts for poor health and indebtedness. Women have to grapple with the rearing of children and smooth functioning of family relationships which induce stress and tensions. They are bound to do all sorts of jobs in neighbouring villages. This consequently leads to full circle to the women labourers exposed to the prospects of sexual harassment, owing to time constraint unable to fulfill their commitments to children or nurture personal relationships.

Deforestation is accompanied by walking longer distance for fuel, meager availability of food products to supplement the food such as greens, berries, mushrooms, mahua, tamarind, kendu, mango, jackfruit, sal leaves and seeds, vegetables and roots and lack of opportunities to earn a little extra income through the sale of tooth twigs, leaf plates, raw mangoes making survival difficult with each passing day. In the absence of the availability of options of self-employment at home, and in the absence of well-developed sources of irrigation despite an abundance of rainfall they have to survive as migrants. Migration may be collaborated with negative impact on schooling and health care, substandard mode of living, worst working conditions.

Santhals have been gradually alienated from their ancestral lands which have been possessed by non-tribals business magnets, government development policies such as construction of dams and other industrial enterprises, or restrictions on the aborigines with reference to the use of forests and common property resources has culminated in loss of control over basic resources for local population. In many instances, the real owners cultivate their lands either as mere labourers or share croppers[2]. It is so-called development projects have displaced santhals in unprecedented manner without having an access to secure and sustainable alternatives at their native place.

Santhal women's vulnerable position get worse on account of santhal Pargana Tenancy Act formulated in 1949 which don't accord property right to women whether moveable or immoveable. Even the widows don't get any share in her husband's property and is practically homeless. The widowed women in the age group of 50and above in the lack of any means of sustenance are barely able to survive. Polygamy which is common in Santhal society is also a daunting issue. Santhali women who are deprived of inherited land, targets of polygamy, thrown out of house without any economic support are impelled to live miserable life saturated with hardships[3].

The powerlessness and exploitation of the Santhals by the main stream society resulted in Santhali men to give vent to their own feelings of power on their women. The marginalized status of women in Santhali society is at par with women's status in countries like Gambia, Peru and Chile etc. This is a real stumbling blog for women because they don't have rights to regular employment, inequity in terms of wages and no safeguard for their working condition. The women could no longer remain passive but demanded share-cropping rights or labour remuneration, if not given, pulled back their labour from the household's plots, threatening the basis of conjugal contract.

In Santhali society, Santhali women are no longer willing to bear wrongdoings rather a small group of women had constituted a group known as 'Ayo-Agidhari' (Women's rights) to raise voice to counnter oppressive stand of the santhali society in general and non-tribal society in particular[5].

The Santhal Pargana Tenancy Act is the basis for maintaining land relations and transfer in the Santhal Parganas. The history of exploitation with vested interest have consummated in the compulsive transfer of land from Adivasis to Non-adivasis. The act is implemented (through section 20) to protect Adivasi's right to land by making all land in the region non-transferable[4].

Santhals in the Santhal Pargana are completely dependent on land and agriculture as their sole source of sustenance. That's why development policies should be inextricably linked with land and its natural resources diversified utilizations that cater benefits to the larger chunks of society.

References

1. Shekhar, Sowvendra Hansda. The Adivasi will Not Dance. Speaking Tiger Publishing Pvt. Ltd, New Delhi,2017, pg.181, 183& 187.
2. Bhowmick K. Pradip, Singh K.Prabhat, Rajak, P. M, editors. Changing Tribal Society in India: Issues & Challenges. Abhijeet Publications, New Delhi.
3. Kumar, Sujit. "Adivasis and the State Politics in Jharkhand". Journals.sagepub.com, Sage Journals, 3April, 2018.journals.sagepub.com/doi/10.1177/232102301876281
4. Rao, Nitya and Rana Kumar. "Women's Labour and Migration: The Case of Santhals". Economic and Political Weekly Vol. 32, No. 50 (Dec. 13-19, 1997), pp. 3187-3189. www.jstor.org/stable/4406173
5. Rao, Nitya and Rana Kumar. "Land Rights and Women: Case of Santhals". Economic and Political Weekly. Vol. 32, No. 23 (Jun. 7-13, 1997), pp. 1307-1309 www.jstor.org/stable/4405478

SKILL INDIA MISSION SEEN THROUGH A GENDER PERSPECTIVE

DR. SWATI SUCHARITA NANDA*

A vital focus area of the concept of *New India* advanced by the present Prime Minister of India goes beyond mere economic empowerment of all citizens. It seeks to bring about lasting transformation to the country by making it strong, secure and prosperous.[1] This is being done both by reflecting on the impact of various government schemes and bringing about reform initiatives in different sectors.

The *New India Movement* took a formal shape with the announcement of the five-year plan titled *Sanklap se Siddhi* (attainment through resolve).[2] Within the period 2017-2022, the plan seeks to build an India free from poverty, corruption, terrorism, communalism, casteism and uncleanliness and work for uniting the entire country through good governance and technology.[3] With the view of taking the idea of *New India* forward, a number of flagship schemes have been launched that include *Pradhan Mantri Jan Dhan Yojna*, *Direct Benefit Transfer*, *Pradhan Mantri Ujjwala Yojana*, *Jan Suraksha Yojana*, *Atal Pension Yojana*, *Swachh Bharat Mission*, *Deendayal Antyodaya Yojana*, *Indradhanush*, *Pradhan Mantri Mudra Yojna*, *Make in India*, *Stand Up India*, *Start Up India*, *Housing for Poor* and *Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana*. The Prime Minister had elaborated his notion by stating: "A new India where the poor do not want anything by way of charity, but seek opportunity to chart out their own course … Indians today are not waiting for governmental sops. They only want opportunities to be created for them, so that they can work for their livelihood and prosperity."[4] Thus, one of the most important ideas that propels the *New India Movement* in the present era is the commitment to make India economically self-sufficient. Through the reforms, the movement seeks to chart a definite route towards India's economic ascendance on the global chessboard. At the same time, the movement seeks to make every citizen of India an equal participant in the process.

It is expected that the *New India* would be based on best quality of employees who can enable India to compete at the global level as an ascending power. Given the advantages that India already has in terms of demographic dividend, proper skill-building would go a long way in not only increasing India's productivity in different sectors but also facilitate the country to become a skill provider for the world. It has been reiterated by scholars that India requires reforms in many sectors including the education sector to keep pace with the world. "The education system must be attuned to the new global environment by promoting creativity and improving the quality of education and training at all levels. In a globalized economy, a large pool of skilled workers is indispensable for attracting industrial investment including foreign direct investment".[5]

It is against this background that the present paper makes an effort to understand the Skill India policy initiatives being planned and implemented across the country. The paper primarily seeks to look at the initiatives through the perspective of women of India. Towards this end, the paper begins by discussing the various scheme initiatives under and would then try to look at them through a gender lens. The paper also makes an effort to focus on issues and areas that may create challenges in achieving the goals set by the scheme initiative.

Skill India Initiatives

The campaign for a professionally skilled India was started by Prime Minister Shri Narendra Modi in 2015 with the objective of training more than 20 crore Indian citizens in different skills by the year 2022. Various initiatives were taken as a part of this mission that are discussed below.

<u>National Policy for Skill Development and Entrepreneurship</u>: National Policy for Skill Development and Entrepreneurship was formulated in 2015 by the Ministry of Skill Development and Entrepreneurship with a view to create an eco-system of empowerment by skilling on a large scale at speed with high standards and to promote a culture of innovation-based entrepreneurship which can generate wealth and employment so as to ensure sustainable livelihoods for all citizens in the country.[6] The policy has been guiding the overall route being taken up by the Skill India Mission.

∗ Assistant Professor, Political Science, DAV PG College, Varanasi

Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY): The Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY) was considered to be the leading scheme of the Skill India Mission. The union cabinet gave its approval to the scheme on 15th July 2016 as a four year scheme (2016-2020) for which a budgetary allocation of Rs.12,000 crore has been made. Skill India campaign sought to create initiatives such as the National Skill Development Mission and Skill Loan Scheme and begin a National Policy for Skill Development and Entrepreneurship, 2015 under the Ministry of Skill Development and Entrepreneurship. The prime objectives of this scheme are:

- To provide the youth with skill-training with a view to increase productivity of various sectors
- To bridge the gap between the demand and supply of skilled manpower in the country
- To enable the youth and working age population of the country to get gainful employment opportunities
- To standardize the qualification pack (QP) for various job roles in all sectors
- To initiate a process whereby registry of skills can be created

National Skill Development Corporation of India: The National Skill Development Corporation of India (NSDC), set up in 2008, has been integrated with this mission with a view to:[7]

1. Catalyze creation of large, good quality and for-profit vocational institutes
2. Providing funding to build scalable and profitable vocational training initiatives
3. Enable creation of support systems required for skill development

A network of institutions has been designed for the implementation of the scheme. The Ministry of Skill Development and Entrepreneurship is at the top echelon of the scheme. The scheme is financially supported by the NSDC that focuses on 21 sectors and makes efforts to develop a differentiated understanding of each sector with a view to make them attractive for private investment. NSDC has also been instrumental in setting up Sector Skill Councils (SSC) that are autonomous industry-led implementing bodies. SSCs are entrusted with the responsibility for creating occupational standards, qualification bodies, competency frameworks as well as look after the issues related to training.[8] Issues related to training refer to conducting the Train the Trainer programs, skill-gap studies, assess and certify the trainees on the curriculum as per the National Occupational Standards. These require Assessing Agencies and Training Partners. Institutional arrangements comprising of the National Skill Development Corporation (NSDC), Sector Skill Councils (SSCs), Assessing Agencies and Training Partners are already in place for implementation of the scheme.

National Skill Qualification Framework: The National Skills Qualifications Framework (NSQF) has an important role to play in the Skill India Mission. The framework is evolved to arrange all qualifications in a series of levels of knowledge, skills and aptitude. It is designed to evaluate and distribute certifications for competency at different levels through formal, non-formal and informal learning.

Skill Loan Scheme: The Skill Loan Scheme was launched by the government in 2015 with a view to support youth who wish to go through skill training programmes in the country. This is being done by bringing the banks into the Skill India mission.

Rural India Skill: Ministry of Rural Development (MoRD) has been roped in to play a significant role in expanding the objective of the Skill India mission through the Deen Dayal Upadhyay Grameen Kaushal Yojana. Focusing on the rural youth, the Yojana has been implementing the idea of a Digital India in the villages of India.

With such a broad framework, the Skill India Mission seeks to transform the economy from an input-based to outcome-based skill training in the country. The success of this mission can bridge the gap between the demand and supply of skilled manpower. Further, the idea is not merely to give skill training but to provide high quality skills training that can lead India to not merely an ascending economy in terms of employability of workforce but also a global provider in the field. Given the enthusiasm with which the scheme is being advanced, one can also hope that this will encourage new thinking in the area of skill-building and skill-upgradation.

Skill India through a gender lens

There cannot be any doubt about the sincerity of the government's skill-building initiatives. This can be understood from the fact that the government has provided the required budget for the scheme. In the union budget of 2016-17, Rs.1, 700 crore was allotted to the scheme with the primary aim being setting up of 1500 training institutes across the country.[9] Mere allotment of funds, however, does not ensure the success of any policy or scheme. It must be assessed from various perspectives to have a holistic understanding the points of success as well as the challenges.

One of the most important perspective is to look at any policy through the perspective of the most marginalized sections of the society. It is well-known that women working in the low-income unorganized sectors can be regarded as belonging to the most marginalized groups as far as salary and benefits are concerned. It would be pertinent to mention that these women bear multiple burdens of work as care-givers and nurturers at their homes and as workers in the informal sector. While there is no denying that women in India are hardworking and very capable but due to their association with domesticity, most women don not possess confidence needed to bargain space as well as money in the public sphere. Skill-building trainings would not yield successful results if skilled women would not come out of their homes or not learn to handle customers or bargain in the market. Given this, it is important that a gender analysis of the skill building initiatives.

Efforts to integrate gender perspective

The print release of the Ministry of Skill Development and Entrepreneurship in March 2019 has emphasized on the focus put on women's integration into the schemes under the banner of Skill India Mission. In order to encourage women citizens to contribute to the economic ascendance, skill building schemes have not only been equipping women with market-relevant skills but also facilitating their self-sufficiency through entrepreneurship.[10]The print release suggests that:[11]

- There is nearly 97% increase in admissions in 2018 as compared to 2014 to reach 173,105 women trainees from 87,799.
- Close to 50% of the candidates enrolled and trained under PMKVY are women; out of the total 56 lakh candidates who have benefited from the scheme.
- Under the Recognition of Prior Learning (RPL), more than 4 lakh women candidates have been oriented in different skill areas, recognizing their existing skills through a formal certificate and giving them a means to earn better livelihood.
- Skill India, through NSDC, has been conducting focused pilot program with UNDP and Society of Development Alternatives (DA), to benefit more than 50,000 women in 7 states/UTs over a uration of 15 months.
- Emphasis has been laid on creating additional infrastructure both for training and apprenticeship for women; flexible training delivery mechanisms such as mobile training units, flexible afternoon batches along with on local need-based training to accommodate women; and ensuring safe and gender sensitive training environment, employment of women trainers, equity in remuneration, and complaint redressal mechanism.
- NSDC, through its training partners such as Mann Deshi Foundation, Shri Mahila Sewa Sahkari Bank Limited and Sri Sarada Math Rasik Bhita, is working exclusively on skill development of women, especially in rural areas.
- Under a PMKVY project, Amrita Vishwa Vidyapeetham is targeting remote villages to foster women empowerment through skill development and creation of occupational opportunities. The project is focused towards vulnerable and marginalized groups and tribal population. With over 50% participation from women, the project has been implemented in Chhattisgarh, Odisha, Jharkhand, Kerala and Tamil Nadu. Partnership with Humara Bachpan Trust in Odisha aims to give employment & entrepreneurship opportunities to about 1500 women belonging to the economically disadvantaged sections.
- Recently, more than 6000 training targets have been allocated to train women in 4 Prime Minister Kaushal Kendras (PMKK). The crèche facility is also available at these centers so as to facilitate the new mothers to take up skill training. Trainings are being conducted for Self Employed Tailor, Beauty Therapist, Customer Care Executive, Hair Stylist, Yoga Trainer, etc.

Government of India has also noted that the "Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojna (PMKVY), in its two phases, has achieved an incredible milestone of 17.72 Lakh women training**,** including 8.63 lakh pieces of training under PMKVY-1 (July 2015 – June 2016) and 9.09 Lakh under PMKVY-2 (July 2016 till date). With an emphasis on women empowerment and improving employment opportunities, the scheme being implemented by National Skill Development Corporation (NSDC), encompasses skill development via short-term training programs, special projects and recognition of prior learning, covering over 250 courses. The scheme has witnessed proportionate enrolment of women (1:1). The employment numbers are equally commendable with over 50% of the trained women securing placement as well. Some of the women-centric projects have been – carpet weavers in Rajasthan (Jaipur Rugs Foundation), dairy & poultry farmers (pan-India), bakery and apparel training for Bru Tribe (North East), a retail program for Amazon Meri Saheli (North East), etc."[12]

However, a media report of January 2018 turned attention towards the need to look into some of the challenges that women face in relation to the Skill India Mission.[13] Among others, these included non-payment of fees in time by the training centers, inability of the women to pass compulsory theoretical examinations and encouragement of gender division of skills by the centers. In order to face these challenges, some suggestions are given below:

- It is important to understand the difference between skills-training and capacity-building while planning for a large-scale mission such as the Skill India. Skills-training is based on the assumption that the participant is to be given training of certain skills to fit into employment in a certain sector but capacity-building refers to not only giving skills-training but also instilling confidence in the participant. It is important that the government as well as its partner agencies look at skills-training as including capacity-building. There is also a need to understand the difference between skill-building and skill-upgrading. While skill-building focuses on teaching new skills without focusing the existing skills of the participant, skill-up gradation concentrates on aligning the new skills with the existing skills of the participant.
- Non-recognition of existing skills must not be there. In fact, skill India must base itself on not only recognition of the existing skills but also building on it. Existing skills in most cases are a product of contextual and cultural upbringing of the person. This must be respected. Technicalities must be introduced in away so that the person can adapt to it naturally. Excessive downgrading of existing skills may not always lead a positive attitude towards new technical skill learning.
- Contexts of the persons being given skill-building trainings must be clearly understood and appreciated. Their economic, social, cultural backgrounds are important as these situate the persons in a certain location within the societies and families. For example, they might be having their gender roles to perform. Skill-building must take note of this. This also brings our attention towards the need to be flexible with persons who are being given new skills.
- It is important to reform the primary and secondary level school education so as to enable the candidates under skill-building initiatives to get the best results. Given the literacy level of most states of India, skill-building needs to be supplemented with school education. Otherwise, they might not get the cut off marks to be able to get certificates.
- It is important for training centers to understand that one of the most important issues integrated with the Skill India mission is to facilitate women's integration in the economy as equal participants. This requires not to encourage gender stereotypes in the job choices and roles. On the contrary, training centers must act as transformative agents with regards to breaking the gender stereotypes in the various sectors. This also demands the training centers to instil confidence in the women participants simultaneously counselling their families to facilitate women's entry in various job roles of their own likings.
- What is also important is the proper implementation not only of the training programmes but also the availability of funds to the training partners and regular monitoring of the disbursement of the same to the participants of the skills training. In those case where the participants join the skills training by leaving their existing jobs, non-payment can result in the participants' leaving the training before completion.
- Accountability of the training partners must also be ensured both with regards to the quality of the skills training as well as the management of funds.

As has been seen and experienced in many other governmental schemes by previous governments, poor monitoring and supervision can lead to failure of the scheme.

- There is a need to ensure that the training centers are harassment-free organisations where various grievance committees are not only in place but are active. Most important of these are the laws and mechanisms regarding the prevention of sexual harassment at workplace. It is only when participants feel free that they will learn the most. It must be internalized buy the training centers that they are not merely training the targets but are creating active agents of change who are going to be drivers of the economy of New India.

Conclusion

As can be understood from the discussions in the paper, the Skill-building initiatives have the potential of transforming the Indian economy to a high-yielding economy that can show directions not only in the South Asian region but can be the leading light of Asia. While the noble yet ambitious mission of skilling India makes one optimistic about the future of the quality of the Indian workforce participation, especially those of the women members, in various sectors of the economy, an assessment of the scheme at the end of the five years would be the best yardstick to measure its success. With careful measures and step-by-step evaluation, Skill India can help in achieving the objectives of the New India Movement.

References

1. This point has been dealt in detail in Debroy, B., Ganguly, A. & Desai, *K. A. (2019) Making of New India: Transformation Under Modi*, Wisdom Tree, New Delhi.
2. Modi's Independence Day Speech is all about creating New India, Business Standard, August 16, 2017, accessed on www.business-standard.com/article/economy-policy/modi-s-independence-day-speech-is-all-about-creating-a-new-india-117081500358_1.html.
3. http://healthyindiachronicle.in/pm-vision-new-india-2022/; accessed on 14.06.2019.
4. Modis' Vision 2022, Hindustan Times, March, 13, 2017; available at https://www.hindustantimes.com/assembly-elections/election-results-the-foundation-of-a-new-inclusive-india-pm-modi/story-retKz0dyLeZlC5hYgaPkEI.html; accessed on 14.06.2019.
5. Nayana Tara, S.,Kumar, N.S.Sanath (2916) Skill Development in India, *IIMB Management Review*, 28,pp. 235; available at www.sciencedirect.com; accessed on 15.06.2019.
6. Government of India (2015) *Aims and Objectives of the Policy*, *National Policy for Skill Development and Entrepreneurship, New Delhi*, p.11.
7. National Skill Development Corporation, https://nsdcindia.org/about-us accessed on 14.06.2019.
8. Ministry of Skill Development and Entrepreneurship, https://www.msde.gov.in/ssc.html
9. Press Information Bureau, Ministry of finance, Government of India, 29.02.2016; available at http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=136991; accessed on 15.06.2019.
10. Women get a special focus on Skill India Mission, Press Information Bureau, Ministry of Skill Development and Entrepreneurship, Government of India, Date.08.03.2019; available at http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=189350 on 15.06.2019
11. Ibid. 9
12. Skill India empowers more than 35 lakhs women; available at https://blog.mygov.in/skill-india-empowers-more-than-35-lakh-women/; accessed on 15.06.2019.
13. Why women might be opting out of the Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana?, *Indian Express*; available at https://indianexpress.com/article/gender/genderand-development-why-women-might-be-opting-out-of-the-pradhan-mantri-kaushal-vikas-yojna/; accessed on 15.06.2019.

STUDENT'S MOTIVATION FOR USING INSTAGRAM IN AHMEDABAD

ROOSHABH KUMAR MEHTA*

In the last decade, the numbers of social media mobile applications have been launched and have attracted millions of people around the global. Instagram is one of the most preferred mobile phone applications by large numbers of people in India. India, a Country diverse by languages, cultures, and religions, world's biggest democracy where 69 million people are using Instagram, stood at 3rd position followed by Brazil (70 Million) and USA (110 Million) as on July 2019 ("Countries with most Instagram users 2019 | Statista", 2019). An application launched in 2010, provided a platform where pictures can have a voice louder than words and reported one billion monthly active users across the countries ("Countries with most Instagram users 2019 | Statista", 2019). As per the authors' opinion, this application came up with a totally unique concept of allowing people to narrate their stories pertaining to any aspect of their life; in the form of pictures. Ferwerda, Schedl & Tkalcic, (2016) mentioned Instagram as a popular 'Photo-sharing' and 'Social Networking Application'. These pictorial stories reach to the users who could be interested in it by hashtags embedded with the stories. When a user intends to upload any pictorial story on such a platform the primary requirement is editing. In this reference, adding ease to such users, Instagram provides picture editing as well as the video editing features. A group of researchers has noticed the effect of personality traits on the selection of picture filters. This study is based on 22,398 pictures of 113 Instagram users residing in the USA and showing how personality traits ('Openness to experience', 'Conscientiousness', 'Extraversion', 'Agreeableness' and 'Neuroticism') of Instagram user can be identified by observing the picture filter they utilise (Ferwerda, Schedl & Tkalcic, 2016).

It became very important for some researchers to know; what makes people toutilise such application and what are their motives? What sort of activities they normally do on this platform? Such questions made researchers to carry out study and dig out answers from respondents that they have chosen. Firstly, do we call Instagram a Social networking Application? As per the researchers' opinion, such mobile applications can't be classified as social media apps until users can find other people having similar interests and who are unknown to each other prior to virtual interaction trough the app platform (see Modak & Mupepi, 2017). On this platform called Instagram, hashtags play a very imperative role by allowing users to search a particular picture tagged with a specific hashtag. This way people post their pictures by choosing/ creating hashtags then those pictures are available on public timeline search. If an Instagram user utilises certain Hashtags frequently then indirectly one can make a judgment about his/ her interest. When any user views any picture on the public timeline which interests him/her, further to view such pictures, this viewer might check out the Instagram-profile of another user who posted that picture. Or a user can search posts based on the hashtag of interest and then reach to the profiles other users who posted them. This way, people can search for pictures/ posts with the help of Hashtags and find other people having similar interests (see, Manikonda & Kambhampati, 2014). They may follow and start interacting. This way they get the opportunity to meet new people who were unknown earlier. As per some researchers' opinion, Instagram users encompass a social network but differ from the other social media platforms like Twitter and Flickr by considering some of the basic characteristics ('clustering coefficient', 'homophily', 'reciprocity' etc.) of social media platform (Hu, Manikonda & Kambhampati, 2014). To answer what normally people share on this platform, how people (users) differ in terms of their posts, Hu, Manikonda & Kambhampati, (2014) have carried out a study "What We Instagram: A First Analysis of Instagram Photo Content and User". In their sample, they have considered the information of 5o active Instagram users and gather the record of 20 posts of each user. Based on their study they have classified the picture into 8 distinct categories 'Friends', 'Food', 'Gadget', 'Captioned', 'Photo', 'Pet Activities', 'Selfies' and 'Fashion'. Along with this categorisation of pictures they have classified the users into some distinct categories like 'selfies-lovers', 'Common user', those who share captioned pictures, those who do equal care

* P. hd. Scholar, Department of Statistics, School of Science, Gujarat University

of friends and themselves. By keeping the aim to get the initial understanding of Instagram, Manikonda & Kambhampati, (2014) have kept the focus on the network structure, users' activities, demographics, and users' shared content. They came up with the top ten hashtags that users have widely adopted in their posts; love, follow, instagood, me, like, tbt, cute, photo of the day, beautiful, happy.

In their study with a framework of 'uses and gratification theory' (users do select the media as per their need) and based on the opinions of the 239 under graduation students belong to the age range of 18 to 52, they have identified the following basic motives of consuming Instagram; 'Surveillance/Knowledge about others,' 'Documentation,' 'Coolness,' and 'Creativity' (Sheldon & Bryant, 2016). As a platform to document life stories in a pictorial form, those people who do social activities more frequently than their chances are high for using the Instagram app if their intentions are to make a documentation of their activities on such a virtual platform. These researchers have observed about those respondents who want to be famous, want to be noticed, like to portray themselves as a cool and at the same time want to get knowledge about others; such people ('narcissists') who give much importance to self or consider themselves special, they are using Instagram to present their post in a certain way. Sheldon & Bryant, (2016) found that Narcissism is more related to how frequently users do comment/ Like on a friend's photo or post. On such a platform, narcissism concept could be related to posting selfies which may be called social media-driven narcissism. Another group of researchers has also attempted to answer the question of "why people use Instagram?" This group has found out some social and psychological motives; 'social interaction', 'archiving', 'self-expression', 'escapism', and 'peeking' by analysing the opinions of 212 Korean Instagram users belong to age range 20- 39 years (Lee, Lee, Moon & Sung, 2015).

The objective of this paper is to check the usefulness of the CFA (confirmatory factor analysis) in order to test the fitting of a predesigned theoretical model that exhibits the social and psychological motives of the Instagram users. This is a study to understand how different estimation methods of CFA should be considered to fit the theoretical model on the data. Here, authors have chosen the model designed by Lee, Lee, Moon & Sung, (2015) in their research paper. This model talks about the Psychological and Social Motives of people who are using Instagram, and authors assumed that this might fit in India (more precisely in Ahmedabad). So, they have developed this model based on the responses of Instagram users of Korea and an average of respondents' age was 29 years. Particularly, they haven't targeted an age group that authors have chosen for the current study. Here, authors have targeted Instagram users belong to the age group 21 to 25 and who are pursuing their master's program either in government or private college situated in Ahmedabad.

Methodology

The major research design for the current study is conclusive in nature. Here, the authors have adopted a major part of a questionnaire presented by Lee, Lee, Moon & Sung, (2015) in their study. These researchers have developed the questionnaire by referring the literature on internet (Ko, Cho & Roberts, 2005, Teo, Lim, & Lai, 1999, Papacharissi & Rubin, 2000), SNSs (Jung, Youn & McClung, 2007, Brandtzæg & Heim, 2009, Lin & Lu, 2011, Kim, Sohn & Choi, 2011) and belonging motivators. Based on that process of deriving motives, the first phase ended up with 60 items and till the end of the third stage they came up with 38 items (used for building up the second part of the questionnaire). After factor analysis (principal component analysis) with those 38 items, some items were observed to have high loadings with more than two variables. So 10 such items were deleted and 28 were the finalised items. A similar type of scale has been retained by the authors for respondents to express their view on statements, (1= Strongly Disagree to 5= Strongly Agree). This research questionnaire has been prepared in vernacular language also to remove the barrier of not understanding English as a foreign language.

A research sample has been drawn consisting of 358 respondents. A major part of the research questionnaire developed based on the model presented by Lee, Lee, Moon & Sung, (2015). Most of the participants, in the informal discussionon motives (during a time of data collection); have revealed the same sort of motives for the consumption of Instagram which is mentioned in a paper presented by Lee, Lee, Moon & Sung, (2015). As authors have mentioned earlier target group includes mostly those users of Instagram who would be using Instagram for at least the past six months. All the respondents are active users of Instagram and pursuing their post-graduation degree program in the city of Ahmedabad. Research questionnaire is divided into two different parts, the first one is meant for seeking demographic details from the users which includes name, gender, name of degree program, type of institute (government/ private), apps they have installed on their mobile, amount of time they normally spent on Instagram, numbers of following and followers they do have, type of post they prefer to see etc. The second part of the questionnaire covers all those questions pertaining to motivations/ reasons due to which they are consuming Instagram.

Sampling

By keeping in mind, the students of post-graduate (PG) degree program as relevant respondents for this research, the authors first have prepared the list of government and private universities of Ahmedabad offering PG level degree programs. Out of that list, two universities have been chosen randomly. One is a state university of Gujarat which is the government granted university whereas another one is a private university. Then authors gather the list of participants studying in PG level degree programs in both the universities. 200 participants were selected from the state university of Gujarat and the same numbers selected from the private university. Collectively 400 respondents' views have been collected by adopting cluster sampling. This data collection process (questionnaire method) required one week of time and conducted in the month of January 2019. The hard copies of the research questionnaire were distributed among the respondents. Out of 400 filled questionnaires, 358 complete questionnaires were sorted separately for the analysis. This sample is considerable as per the authors' opinion by refereeing the discussion presented by Hair (2010) with a view to the application of CFA (confirmatory factor analysis)/ SEM (Structural Equation Modeling). Considering the summary of discussion (as provided in a table below) on the ideal sample size suitable for CFA and Communalities (see, Table 5, Appendix), the present research sample can be considered as adequate.

The minimum size of the sample	No of factors	No. of observed/ manifest variables per factor/ construct	Communalities
100	5 or fewer	3 or More	0.6 or higher
150	7 or fewer	3 or More	Modest level (0.5)
300	7 or fewer	<3 (few out of 7)	Lower level (<0.45)
500	Large number	<3 or 3 or equal to 3	Some with lower level

Demographic Details

In a research sample, the proportions of males and females are 0.54 and 0.46 respectively. They all belong to the age group 21 to 25 and the average age is 23 years. The majority of the respondents are using Instagram for the last three years. The average number of followers is 578 and the average following is 372. On a typical day, these people like on an average of 15 posts.

Exploratory Factor Analysis

In the present case, this was the initial way to check to what extent the model which was developed earlier by Lee, Lee, Moon & Sung, (2015) for a totally different demographic zone fits the present research data. Exploratory Factor Analysis has been carried out to notice the factors that may appear within the research data. By interpreting the output one can say that a model for current data is not considered as the model of excellent fit but on the contrary, it is not a poor model also. When eigenvalue criteria kept as 1.0, the principal component analysis helped to extract 6 factors for each of them eigenvalue was above 1.00; this way 6 factors have been noticed by EFA. Out of these six factors, five were sensible so the five-factor model has been considered which can explain approximately 52 % of the variation. Less amount of variation in respondents' responses for the statements could be the reason for it. Here, KMO(0.897) indicates good data adequacy, Bartlett's Test of Sphericity (0.00<0.05) indicates factor analysis is useful for dimension reduction, Communalities fall into the range from 0.437 to 0.791. This shows that the percentages of variance explained by mentioned factors in manifest variables fall within a range of 43.7 % to 79.1 %. Here, variables like F_13 and F_18 misclassified as compared to the theoretical model which has encountered in exploratory factor analysis, such variable loaded on different factors than followed theory, apart from these most of the variables and factors are following the structure of the theoretical model. Later on, F13 and F_18 were linked with appropriate factors in the CFA model (see Table 5, Appendix).

Confirmatory Factor Analysis (CFA)

To check whether the theoretical model by Lee, Lee, Moon & Sung, (2015) fits the data, the authors have used the AMOS package.

Normality of the data and outlier detection

Here, the outlier detection method is completely based on the values derived using Mahalanobis distance D^2available in AMOS which is meant formapping the distance between each and every data point and centroid. Based on the calculated Table (Snapshot is available in the Appendix, chart 2) p1 exhibiting the probability of D^2value (for case 3, or for respective case) exceeding 78.96 whereas the p2 is showing the probability that D^2value (for any case) could exceed78.96. This way the smaller values in p1 column are expected but smaller values of the p2 column indicate the improbable far placement of observation from the centroid (Byrne, 2013). Comparing any two subsequent values from the table one can reach the outlier case. For instance, the last column of the table has been created by authors, considering the difference between any two subsequent D^2 values that show that relatively high difference (19.15) observed between case 3 and case 153 (see, Table 1, Appendix). This case is an outlier in this data and has been removed. In the final model, univariate normality exists in data because for all the variables kurtosis values are <10 and except one all the skewness values are < 3.0. From this, we may assume that the manifest variables mentioned for the final model are approximately normally distributed (Byrne, 2013). Considering normality as a debatable topic particularly in dealing with CFA/ SEM model, univariate normality might not be a matter of concern because the kurtosis values fall into the rage of -1 to 1, from Table 2, Appendix (Schumacker and Lomax, 2012). When it comes to the normality of the SEM/ CFA model's data there are two aspects to look at it; Univariate Normality (normality of each variable/ column) and Multivariate Normality (assesses the normality across all variables considering pairs of observations). As non-normality can become the cause of overestimation of chi-square statistics and underestimation of standard errors of the estimate; with reference to this theory, Muthén & Kaplan (1985) have concluded the below points based on their study.

1. 'if most variables have univariateskewnesses and kurtoses in the range -1.0 to + 1.0, not much distortion is to be expected'
2. 'This is largely independent of the number of variables and number of categories'
3. 'when most skewnesses and/or kurtoses are larger in absolute value than 2.0, and correlations are large (say 0.5 and higher), distortions of ML and generalized least squares (GLS: Generalised Least Square) chi-squares and standard errors are very likely'.

with a view to the above points, univariate normality holds by the data (see, Table 2, Appendix). When it comes to multivariate normality the authors- have followed the discussion presented by Gao, Mokhtarian & Johnston, (2008) to make the assessment of what percent of the data is normal by deleting the observation till the critical ration dropped below 1.96. this way 160cases have been deleted and that detects 55% overall data is normally distributed. Actually, all of these 160 cases weren't outliers, it was only one as mentioned earlier. The authors have done this exercise because in AMOS measure of multivariate normality is Mardia's coefficient of multivariate kurtosis and its critical ratio, which follows an asymptotically normal distribution with mean 0 and standard deviation 1. With this understanding, for a significance level 5 % the value of the critical ration has to be 1.96 or below to confirm the normality of the data (see, for example, Gao, Mokhtarian& Johnston, 2008). Chi-square statistics values for the normal data consisting of 197 cases is 555.564 which is quite greater than the research data (440.384) consisting of 357 cases; when the chosen method was MLE (see, Table 3, Appendix). All the covariances are observed significant for research data but for normal data, Social Interaction and Escapism observed as insignificant. This way, working on a sample of 197 cases might suspect a loss of important information. Therefore, the authors have decided to work on a sample of 357 cases and one can say that the multivariate normality of it is moderate.

Estimation

As data is moderately normally distributed and the measurement type of all the chosen variables is Scale (notation in SPSS data- file), Maximum Likelihood Estimation can bean appropriate method but the other two methods (Generalised Least square, Asymptotically Distribution Free) have also adopted.

The number of parameters estimated in the final version of the model is 88 (Covariance 11, variances =29, weights= 48). For our five factors namely Social Interaction (SI), Peeking (P), Self- Expression (SE), Archiving (A) and Escapism(E), total 28 manifest variables were there at initial stage then referring values of fit indices which was showing poor model fit some variables have been eliminated based on the poor values of Regression weights. In the final model, the ranges of regression weights are; MLE (0.494 to 0.808), ADF (0.634 to 0.915) and GLM (0.571 to 0.815). This way authors have deselected 4 variables having week factor loadings (regression weight) to make it possible for a model to have factor loading values very closed to 0.50 or higher. This way theoretically such variables which are not correlated properly with the respective factor were removed. The final model (Presented here) is having 24 manifest variables and 5 factors.

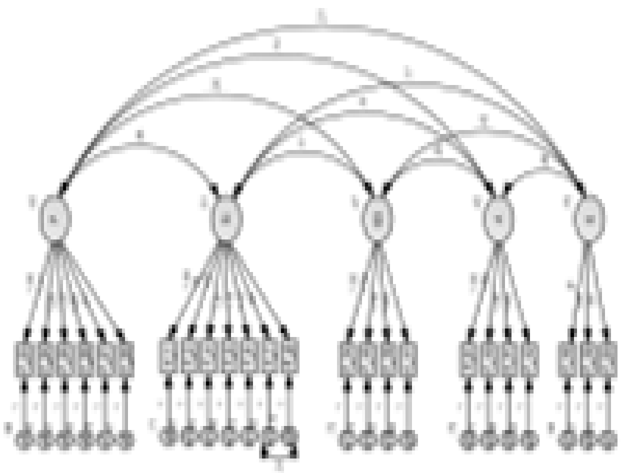

Reliability and Validity

Here, all 28 items are scaled items, this is the reason reliability is an important concept to understand to what extent adopted 5.0 scale produces a result which is consistent in nature when the measurements are made in a repetitive manner. Composite Reliability (CR) for all the factors is up to the mark irrespective of methods, it is good to say in context to total score variance that the total true score variance is as per the prescribed level. The benchmark for CR is 0.70; with this, all the factors have achieved composite reliability (Malhotra and Dash, 2015). From Table 7, Appendix, it has been clear that convergent validity is not much problematic for MLE output as it is either above the threshold level (0.50) or near to it. Basically, this measures the amount of variation due to respective factors. Its range is 0 to 1 and it can describe the average variance extracted by factor. Except 'Escapism' all the factors are having some what considerable level of convergent validity if the estimation method is MLE (see, Table 7, Appendix). Discriminant validity focuses on the uniqueness of a factor in a way that manifest variables loaded on it. By following the theoretical model, the structure of listed factors along with loaded manifest variables is something that is established earlier. Keeping the research objective in mind, how well this structure fits into the Indian context is the question. In such exercises of the fitting theoretical model (structure of factor and loaded variables), cross-loading may appear during analysis, such relationships could be stronger or weaker. Stronger relations raising a question against the unique contribution of factor. Discriminant validity can help us to measure the unique contribution of each factor. If the Highest correlation coefficient value between any two factors is considered and MSV is the square of that quantity. If it is less than AVE (average variance extracted), Discriminant Validity holds by the factor. With ADF, Archiving's discriminant validity is questionable (see, Table 7, Appendix).

Model Fit Indices

These indices help to comment on the fitting of the theoretical model. As the authors, first did Exploratory Factor Analysis to check at what extant our theoretical model exists in the Indian context. After that as per the theoretical model, they have designedthe CFA (Confirmatory Factor Analysis) model. So, basically, this tool firstly develops two types of variance-covariance matrices, one derived based on expected vales and another one is based on the relations dictated in the theoretical model (observed values). To investigate whether the respective values of these two matrices are closed to each other or not, 'Absolute Fit Indices' can be used.

Absolute Fit Indices can be classified into two categories, Goodness of fit and badness of fit. Here P-value (0.000) is significant, normally the lower value of this probability shows the poor model fit. By following a book written by Malhotra and Dash, (2015), and keeping in mind the present data scenario (m= numbers of variable= 24, n= sample size= 357) this particular value also increases (affected) by the large sample and the higher number of variables. That is why significant of p-value in such cases shows the good fit of the model (if the number of variables is between 12 to 30 and the number of the respondents is more than 250), Hair, (2010).

Chi-square test here throws lights on whether the observed covariance matches with the estimated covariance matrix.

$$\chi^2 = (N-1)(covariance\ matrix\ Observed - covariance\ matrix\ estimated)$$

Goodness of Fit

Basically, it gives an indication of the fitting of the theoretical model. Higher the value of GFI(goodness of fit index, 0.904) and AGFI (adjusted goodness of fit index, 0.881) in the range of 0 to 1, indicates the better fit of the theoretical model to the sample data. Here, both the values are higher than the prescribed level for GLM and MLE, but GLM result is slightly battered than MLE (see, Table 3, Appendix). Indicates the theoretical model fits the given data (Hair, 2010).

Badness of Fit

Root Mean Square Error approximation helps to understand how well the model fits the population data with the given estimations. As this value gets lower then it shows the batter fit of the model. The prescribed value of it is lower than 0.06 for any model to be considered as a good model. Here this value is 0.048 (MLE) which is below the prescribed criteria of 0.06. PCLOSE (0.647, MLE) is greater than the prescribed value of 0.50.The terms LO 90 (0.041) and HI 90(0.055) showing the lower possible value and higher possible value of RMSEA calculated if MLE is selected. Results of MLE is slightly poor than GLM (see, Table 3, Appendix). Refereeing this ‘ badness of fit’ one can say that model fit will be good on population data (Hair, 2010).

Incremental Fit indices

These indices show how well the presented theoretical model fits relative to the null model. Null is the one type of baseline model that assumes all observed variables are uncorrelated. The range of these fit indices is 0 to 1, higher values suggesta relatively good fit. NFI (Normalised Fit Index, 0.861), TLI (Tucker lewis Index, 0.921), CFI (Comparative Fit Index, 0.931) indicating theoretical model fits better relative to the null model (Hair, 2010) when MLE is chosen. Here, MLE shows batter results comparatively than others.

Parsimony Fit Indices

Conceptually they are similar to adjusted R-Square in Stepwise regression. These indices help to identify a suitable model out of 2 or more than two models. These indices are much useful in relative comparison of the models; they aren’t useful for a single model. The range of this indices is again o to 1 which is just like other indices, higher values of these are showing the better fitting of the respective model. Though authors have tried to compare the values of these indices calculated using different estimation methods (Hair, 2010). For MLE these values are relatively higher (see, Table 3, Appendix). This doesn’t strongly recommend that MLE should be chosen over ADF and GLS.

Conclusion

This study confirms the Psychological and Social Motives of Instagram users (Postgraduate students) in the city of Ahmedabad as presented by Lee, Lee, Moon & Sung, (2015). This time motives got confirmed with the different demographic groups using CFA. Here, for the moderately normal data MLE is the most appropriate method to fit the model. And for the subsequent analysis, factor scores can be generated by choosing MLE which is considered also. Researchers need to take care of the distribution fits the given data, here data is moderately normal from the perspective of multivariate normality. However, univariate normality holds by each of the variables. Normality status will impact of method of estimation. ADF depends on the scale of variable, if the scale of the distribution is changed then the estimates would be affected but this is useful when the distribution is not known or data is not normally distributed (Schumacker and Lomax, 2012). GLM (generalized Least square) and MLE (Maximum Likelihood) are such methods for which estimates are properly related. Both of these methods assume normality so they are not distribution-free methods (Schumacker and Lomax, 2012). For a slight to moderate level of non-normal and interval scaled variables/ ordinal scaled variables MLE method should be adopted, for the severe level of non-normal and interval scaled/ ordinal scaled variables ADF, GLS estimation methods should be employed (Schumacker and Lomax, 2012). Here, the authors have tried to demonstrate how one can decide the appropriate method of estimation for a given data. Moreover, Instagram is much useful platform for the population of respondents to remain connected with the people in their sphere, to get updates from friends and families living far away (see, Table 5, Appendix). This platform helps them to get the latest updates of their celebrities. Here they can search for the stuff they interest in for example fashion, decore, pats, nature, etc. But considering the values of fit indices and convergent validity of the scale, one can say that this adopted scale needs to modified for a chosen demographic to design the good/ excellent theoretical model. This theoretical model is considerable only it is not excellent for the mentioned demographics.

Limitations& Future research

Considering the constraints related to fund and time, the sample size couldn't be more than 500. Additionally, authors have narrow down the focus and targeted Instagram users belong to a very small sub-population of the entire population (Instagram users in India). Instead of a selected age group, the same study can be carried for the different age groups. Moreover, the model presented by Lee, Lee, Moon & Sung, (2015) is not parfactly fitting in the mentioned demographical group. In the future, authors wish to explore some more motives to modify this model. Along with this, they wish to focus on small vendors to understand their utilisation patterns because in this study they haven't captured the voices of those who are using Instagram for business purposes. That study going to be on exploring the advantages of using Instagram to grow business.

Appendix

Table 1: Observations farthest from the centroid (Mahalanobis distance)

Observation number	Mahalanobis d-squared	p1	p2	Difference with the previous value
3.00	78.96	0.00	0.00	
153.00	59.81	0.00	0.00	19.15
51.00	58.55	0.00	0.00	1.26
247.00	57.61	0.00	0.00	0.94
30.00	57.27	0.00	0.00	0.35
203.00	55.39	0.00	0.00	1.88
115.00	55.34	0.00	0.00	0.04
152.00	54.51	0.00	0.00	0.83
233.00	54.36	0.00	0.00	0.15
161.00	51.85	0.00	0.00	2.51
118.00	51.72	0.00	0.00	0.13
306.00	51.57	0.00	0.00	0.15
.	.	.	.	.
.	.	.	.	.
.	.	.	.	.

Table 2: Nomality Assessment

Variable	min	max	skew	c.r.	kurtosis	c.r.
F_8	.000	5.000	-.258	-1.991	-.522	-2.014
F_20	.000	5.000	.211	1.626	-.491	-1.895
F_19	.000	5.000	.265	2.045	-.534	-2.059
F_12	.000	5.000	.259	1.997	-.330	-1.271
F_11	.000	5.000	.236	1.821	-.416	-1.605
F_10	.000	5.000	.156	1.205	-.412	-1.589
F_9	.000	5.000	.314	2.423	-.195	-.752
F_18	.000	5.000	.217	1.673	-.497	-1.916
F_17	.000	5.000	.225	1.739	-.585	-2.256
F_16	.000	5.000	.225	1.739	-.429	-1.653
F_15	.000	5.000	.063	.486	-.715	-2.759
F_14	.000	5.000	.132	1.020	-.346	-1.334
F_7	.000	5.000	-.132	-1.021	-.757	-2.920
F_6	.000	5.000	-.061	-.472	-.658	-2.537
F_5	.000	5.000	-.101	-.776	-.713	-2.749
F_4	.000	5.000	.006	.050	-.690	-2.660
F_2	.000	5.000	.116	.892	-.584	-2.254
F_1	.000	5.000	-.322	-2.481	-.268	-1.035
F_28	.000	5.000	.003	.025	-.549	-2.119
F_27	.000	5.000	-.300	-2.312	-.278	-1.073
F_26	.000	5.000	-.241	-1.859	-.579	-2.232
F_25	.000	5.000	-.261	-2.011	-.557	-2.146
F_24	.000	5.000	-.062	-.478	-.612	-2.360
F_23	.000	5.000	-.177	-1.365	-.646	-2.491
Multivariate					102.951	27.531

Table 3: Model Fit Statistics

Method of Estimation	Model	Default model	Independence model	Method of Estimation	Model	Default model	Independence model
ADF	NPAR	59	24	ADF	IFI	0.733	0
GLM	NPAR	59	24	GLM	IFI	0.787	0
MLE	NPAR	59	24	MLE	IFI	0.932	0
ADF	CMIN	1099.914	3453.415	ADF	TLI	0.69	0
GLM	CMIN	354.324	773.992	GLM	TLI	0.739	0
MLE	CMIN	440.384	3178.368	MLE	TLI	0.921	0
ADF	DF	241	276	ADF	CFI	0.73	0
GLM	DF	241	276	GLM	CFI	0.772	0
MLE	DF	241	276	MLE	CFI	0.931	0
ADF	P	0	0	ADF	PRATIO	0.873	1
GLM	P	0	0	GLM	PRATIO	0.873	1
MLE	P	0	0	MLE	PRATIO	0.873	1
ADF	CMIN/DF	4.564	12.512	ADF	PNFI	0.595	0
GLM	CMIN/DF	1.47	2.804	GLM	PNFI	0.473	0
MLE	CMIN/DF	1.827	11.516	MLE	PNFI	0.752	0
ADF	RMR	0.153	0.39	ADF	PCFI	0.637	0
GLM	RMR	0.099	0.362	GLM	PCFI	0.674	0
MLE	RMR	0.07	0.312	MLE	PCFI	0.813	0
ADF	GFI	0.884	0.635	ADF	RMSEA	0.1	0.18
GLM	GFI	0.917	0.818	GLM	RMSEA	0.036	0.071
MLE	GFI	0.904	0.375	MLE	RMSEA	0.048	0.172
ADF	AGFI	0.855	0.604	ADF	LO 90	0.094	0.175
GLM	AGFI	0.896	0.803	GLM	LO 90	0.028	0.065
MLE	AGFI	0.881	0.321	MLE	LO 90	0.041	0.167
ADF	PGFI	0.71	0.584	ADF	HI 90	0.106	0.185
GLM	PGFI	0.737	0.753	GLM	HI 90	0.044	0.077
MLE	PGFI	0.726	0.345	MLE	HI 90	0.055	0.178
ADF	NFI	0.681	0	ADF	PCLOSE	0	0
GLM	NFI	0.542	0	GLM	PCLOSE	0.998	0
MLE	NFI	0.861	0	MLE	PCLOSE	0.647	0
ADF	RFI	0.635	0				
GLM	RFI	0.476	0				
MLE	RFI	0.841	0				

Table 4: Regression weights

Variable		Factor	MLE	ADF	GLM
F_23	<---	Peeking	0.558	0.826	0.603
F_24	<---	Peeking	0.644	0.807	0.659
F_25	<---	Peeking	0.737	0.874	0.72
F_26	<---	Peeking	0.736	0.915	0.753
F_27	<---	Peeking	0.668	0.777	0.634
F_28	<---	Peeking	0.534	0.762	0.582
F_1	<---	Social_Interection	0.646	0.727	0.692
F_2	<---	Social_Interection	0.494	0.634	0.571
F_4	<---	Social_Interection	0.672	0.705	0.702
F_5	<---	Social_Interection	0.753	0.867	0.747
F_6	<---	Social_Interection	0.695	0.814	0.709
F_7	<---	Social_Interection	0.654	0.858	0.661
F_14	<---	Self_Expression	0.631	0.769	0.682
F_15	<---	Self_Expression	0.687	0.677	0.689
F_16	<---	Self_Expression	0.723	0.893	0.707
F_17	<---	Self_Expression	0.712	0.781	0.691
F_9	<---	Archiving	0.602	0.716	0.644
F_10	<---	Archiving	0.642	0.766	0.655
F_11	<---	Archiving	0.808	0.892	0.815
F_12	<---	Archiving	0.733	0.684	0.723
F_19	<---	Escapism	0.777	0.767	0.802
F_20	<---	Escapism	0.625	0.775	0.628
F_18	<---	Escapism	0.732	0.732	0.743
F_8	<---	Social_Interection	0.526	0.771	0.578
		min	0.494	0.634	0.571
		max	0.808	0.915	0.815

Table 5: Variables, Codes, Factor Loadings, Reliability Cronbach alpha, Frequencies

Variable	Item	Factor loading	Communalities	Cronbach Alfa	Strongly Disagr	Disagree	Neutral	Agree	Strongly Agree
F_5	To get connected with people (friends/ relatives) living far away	0.738	0.627	0.834	4%	24%	29%	26%	17%
F_6	To communicate with the friends and family	0.729	0.589		4%	29%	27%	24%	15%
F_7	To get updates of the people in you contact list	0.691	0.594		4%	22%	30%	22%	21%
F_4	To Maintain relationship with the people	0.658	0.619		5%	26%	31%	24%	14%
F_8	To know the things happening around me	0.596	0.565		3%	23%	28%	23%	21%
F_1	To Interact with Known people	0.533	0.573		7%	15%	36%	29%	13%
F_13	So I can share my updates with people	0.473	0.531		9%	25%	29%	28%	9%
F_25	To surf variety of photos	0.770	0.659	0.821	3%	24%	25%	31%	16%
F_26	To surf variety of videos	0.768	0.665		5%	24%	26%	28%	15%
F_27	To surf about the life events of people who know me	0.699	0.570		4%	20%	32%	25%	17%
F_24	To surf about the life events of celebrities	0.602	0.510		5%	29%	26%	25%	12%
F_28	To surf about the life events of people who do not know me	0.540	0.475		6%	27%	32%	23%	11%
F_23	To surf photos and videos of my interest	0.477	0.456		6%	25%	27%	28%	14%
F_22	To get relax	0.437	0.513		6%	25%	31%	25%	12%
F_17	So I can do show off when I get opportunity	0.710	0.620	0.806	15%	31%	29%	16%	8%
F_15	So people can see my actual self (I can be who I am)	0.709	0.581		10%	30%	26%	22%	10%
F_16	So I can share my personal in information (About my life, about my relationship status)	0.706	0.602		12%	33%	31%	16%	8%
F_14	So people can notice me	0.681	0.580		9%	32%	33%	18%	7%
F_18	To come out of reality of me and my life	0.530	0.561		12%	32%	31%	17%	6%
F_11	To develop photos using filters and save them on Insta	0.791	0.717	0.785	9%	39%	28%	19%	4%
F_10	To create my own space on Instagram	0.739	0.610		10%	33%	31%	18%	6%
F_12	To develop videos using filters/ effects and save them on Insta	0.703	0.642		11%	37%	29%	16%	6%
F_9	To make a record of my daily event	0.629	0.533		11%	39%	29%	14%	6%
F_20	To come out of loneliness	0.791	0.672	0.687	12%	35%	28%	18%	6%
F_19	To forget about problem of my life	0.738	0.664		11%	38%	25%	19%	7%
F_21	To get that stuff from social media which I want without many efforts	0.555	0.466		10%	31%	29%	24%	6%
F_3	To Interact with Unknown people whose interest is different than mine	0.773	0.645	0.638	7%	32%	33%	22%	6%
F_2	To Interact with Unknown people whose interest is similar with mine	0.720	0.649		7%	31%	31%	22%	8%

Table 6: Reliability and Validity

ADF Method									
	CR	AVE	MSV		Escapism	Archiving	Self_Expression	Social_Interection	Peeking
Archiving	0.825	0.547	0.607	Escapism	1				
Peeking	0.900	0.644	0.318	Archiving	0.618	1			
Social_Interection	0.879	0.512	0.258	Self_Expression	0.678	0.779	1		
Self_Expression	0.865	0.617	0.607	Social_Interection	0.448	0.508	0.432	1	
Escapism	0.728	0.475	0.460	Peeking	0.564	0.421	0.535	0.79	1
GLM Method									
	CR	AVE	MSV		Escapism	Archiving	Self_Expression	Social_Interection	Peeking
Archiving	0.791	0.489	0.354	Escapism	1				
Peeking	0.802	0.450	0.261	Archiving	0.461	1			
Social_Interection	0.834	0.420	0.181	Self_Expression	0.678	0.595	1		
Self_Expression	0.787	0.481	0.460	Social_Interection	0.295	0.425	0.35	1	
Escapism	0.784	0.549	0.460	Peeking	0.474	0.299	0.511	0.621	1
MLE Method									
	CR	AVE	MSV		Escapism	Archiving	Self_Expression	Social_Interection	Peeking
Archiving	0.779	0.471	0.384	Escapism	1				
Peeking	0.801	0.449	0.169	Archiving	0.466	1			
Social_Interection	0.819	0.398	0.140	Self_Expression	0.677	0.62	1		
Self_Expression	0.786	0.480	0.458	Social_Interection	0.197	0.374	0.283	1	
Escapism	0.769	0.528	0.458	Peeking	0.33	0.28	0.411	0.573	1

Questionnaire

This has been prepared for Research purpose only. Your opinions will be safe and secure with us. I promise that we won't share it with any third party. ….. Kindly share your valuable experience of using Instagram

Please mention your name or Email-Id

1) Please mention your age

2) What is your Gender?

- Male
- Female

3) Since how long are you using Instagram?

- Less than one year
- Last 1 Year
- 1 to 2 Years
- 2 to 3 Years
- More than 3 years

4) Mention Total Followers are there in your profile (Approximately)

5) Mention Total Followings (Approximately)

6) In a typical day, how many posts do you like on Instagram?

I am Using Instagram Because I want ___	Strongly Disagree	Disagree	Neutral	Agree	Strongly Agree
To Interact with Known people					
To Interact with Unknown people whose interest is similar to mine					
To Interact with Unknown people whose interest is different than mine					
To Maintain a relationship with the people					
To get connected with people (friends/ relatives) living far away					
To communicate with friends and family					
To get updates of the people in my contact list					
To know the things happening around me					
I am Using Instagram Because I want ___	Strongly Disagree	Disagree	Neutral	Agree	Strongly Agree
To make a record of my daily event					
To create my own space on Instagram					
To develop photos using filters and save them on Insta					
To develop videos using filters/ effects and save them on Instagram					
I am Using Instagram _______	Strongly Disagree	Disagree	Neutral	Agree	Strongly Agree
So I can share my updates with people					
So people can notice me					
So people can see my actual self (I can be who I am)					
So I can share my personal in information (About my life, about my relationship status)					
So I can do show off when I get the opportunity					
I am Using Instagram Because I want ___	Strongly Disagree	Disagree	Neutral	Agree	Strongly Agree
To come out of the reality of myself and my life					
To forget about the problem of my life					
To come out of loneliness					
To get that stuff from social media which I want without many efforts					
To get relax					

I am Using Instagram Because I want ___	Strongly Disagree	Disagree	Neutral	Agree	Strongly Agree
To surf photos and videos of my interest					
To surf about the life events of celebrities					
To surf a variety of photos					
To surf a variety of videos					
To surf about the life events of people who know me					
To surf about the life events of people who do not know me					

SAS Codes

```
proccalis data=work.insta method=ml method=gls method=adfplots=all summary;

path

F_23 <--- Peeking,
F_24 <--- Peeking,
F_25 <--- Peeking,
F_26 <--- Peeking,
F_27 <--- Peeking,
F_28 <--- Peeking,
F_1 <--- Social_Interection,
F_2 <--- Social_Interection,
F_4 <--- Social_Interection,
F_5 <--- Social_Interection,
F_6 <--- Social_Interection,
F_7 <--- Social_Interection,
F_14 <--- Self_Expression,
F_15 <--- Self_Expression,
F_16 <--- Self_Expression,
F_17 <--- Self_Expression,
F_9 <--- Archiving,
F_10 <--- Archiving,
F_11 <--- Archiving,
F_12 <--- Archiving,
F_19 <--- Escapism,
F_20 <--- Escapism,
F_18 <--- Escapism,
F_8 <--- Social_Interection
;
pvar

Peeking=1, Social_Interection=1, Self_Expression=1, Archiving=1, Escapism=1,

F_1 F_2 F_4 F_5 F_6 F_7 F_8 F_9 F_10 F_11 F_12
        F_14 F_15 F_16        F_17    F_18    F_19
F_20 F_23 F_24        F_25 F_26 F_27 F_28;

pcov

Peeking Social_Interection Self_Expression Archiving Escapism;

run;
```

References

Brandtzæg, P. B., & Heim, J. (2009, July). Why people use social networking sites. In International conference on online communities and social computing (pp. 143-152).Springer, Berlin, Heidelberg.

Byrne, B. (2013). Structural Equation Modeling With AMOS (2nd ed., pp. 103-106). Hoboken: Taylor and Francis.

Countries with most Instagram users 2019 | Statista. (2019). Retrieved 6 July 2019, from https://www.statista.com/statistics/578364/countries-with-most-instagram-users/

Ferwerda, B., Schedl, M., &Tkalcic, M. (2016, January). Using Instagram picture features to predict users' personality. In International Conference on Multimedia Modeling (pp. 850-861).Springer, Cham.

Gao, S., Mokhtarian, P. L., & Johnston, R. A. (2008). Nonnormality of data in structural equation models. Transportation Research Record, 2082(1), 116-124.

Hair, J. (2010). *Multivariate data analysis* (pp. 650-680). Upper Saddle River, N.J.: Pearson.

Hu, Y., Manikonda, L., & Kambhampati, S. (2014, May). What we instagram: A first analysis of instagram photo content and user types. In Eighth International AAAI conference on weblogs and social media.

Jung, T., Youn, H., & McClung, S. (2007). Motivations and self-presentation strategies on Korean-based' Cyworld' weblog format personal homepages. Cyber Psychology & Behavior, 10(1), 24-31.

Kim, Y., Sohn, D., & Choi, S. M. (2011). Cultural difference in motivations for using social network sites: A comparative study of American and Korean college students. Computers in human behavior, 27(1), 365-372.

Ko, H., Cho, C. H., & Roberts, M. S. (2005). Internet uses and gratifications: A structural equation model of interactive advertising. Journal of advertising, 34(2), 57-70.

Lee, E., Lee, J., Moon, J., & Sung, Y. (2015). Pictures Speak Louder than Words: Motivations for Using Instagram. *Cyberpsychology, Behavior, And Social Networking*, *18*(9), 552-556. doi: 10.1089/cyber.2015.0157

Lin, K. Y., & Lu, H. P. (2011). Why people use social networking sites: An empirical study integrating network externalities and motivation theory. Computers in human behavior, 27(3), 1152-1161.

Malhotra, N. and Dash, S. (2015). Marketing Research, An Applied Orientation, 7e. 6th ed. Pearson India, pp.278, 279,700 to 750.

Manikonda, L., Hu, Y., & Kambhampati, S. (2014). Analyzing user activities, demographics, social network structure and user-generated content on Instagram.arXiv preprint arXiv:1410.8099.

Modak, A., & Mupepi, M. G. (2017). Dancing with Whats App: Small Businesses Pirouetting with Social Media. In CONFERENCE PROCEEDINGS BY TRACK (p. 51).

Muthén, B., & Kaplan, D. (1985).A comparison of some methodologies for the factor analysis of non-normal Likert variables. British Journal of Mathematical and Statistical Psychology, 38(2), 171-189.

Papacharissi, Z., & Rubin, A. M. (2000).Predictors of Internet use.Journal of broadcasting & electronic media, 44(2), 175-196.

Schumacker, R., & Lomax, R. (2012). *A Beginner's Guide to Structural Equation Modeling* (pp. 60-70). Hoboken: Taylor and Francis.

Sheldon, P., & Bryant, K. (2016). Instagram: Motives for its use and relationship to narcissism and contextual age. Computers in human Behavior, 58, 89-97.

Teo, T. S., Lim, V. K., & Lai, R. Y. (1999). Intrinsic and extrinsic motivation in Internet usage. Omega, 27(1), 25-37.

●

'प्रज्ञा' पत्रिका अंक - 65, भाग-2, वर्ष 2019-20 के लोकार्पण के अवसर पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए
कुलपति प्रो. राकेश भटनागर एवं मुख्य संपादक प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय
स्थान एवं दिनांक - कुलपति आवास, 30 सितम्बर 2020

लोकार्पण के उपरान्त लिया गया चित्र (फोटो)
बायें से – कुलपति, प्रो. राकेश भटनागर, प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय, मुख्य सम्पादक 'प्रज्ञा' जर्नल; डॉ. शत्रुघ्न त्रिपाठी, ज्योतिष विभाग; प्रो. आनन्द प्रसाद मिश्र, भूगोल विभाग एवं प्रो. मिथिलेश कुमार पाण्डेय, अंग्रेजी विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

BANARAS HINDU UNIVERSITY

सर्वविद्या की राजधानी

विश्वविद्यालय के उद्देश्य

1. अखिल जगत् की सर्वसाधारण जनता के एवं मुख्यतः हिन्दुओं के लाभार्थ हिन्दू शास्त्र तथा संस्कृत साहित्य की शिक्षा का प्रसार करना, जिससे प्राचीन भारत की संस्कृति और उसके विचार-रत्नों की रक्षा हो सके, तथा प्राचीन भारत की सभ्यता में जो कुछ महान् तथा गौरवपूर्ण था, उसका निदर्शन हो।
2. साधारणतः कला तथा विज्ञान की समस्त शाखाओं में शिक्षा तथा अन्वेषण के कार्य की सर्वतोन्मुखी उन्नति करना।
3. भारतीय घरेलू धन्धों की उन्नति और भारत की द्रव्य-सम्पदा के विकास में सहायक आवश्यक व्यावहारिक ज्ञान से युक्त वैज्ञानिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक शिल्प कलादि सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार और प्रसार करना।
4. धर्म तथा नीति को शिक्षा का आवश्यक अंग मानकर नवयुवकों में सुन्दर चरित्र का गठन करना।

OBJECTIVES OF THE UNIVERSITY

1. To promote the study of the Hindu Shastras and of Sanskrit literature generally as a means of preserving and popularizing for the benefit of the Hindus in particular and of the world at large in general, the best thought and culture of the Hindus, and all that was good and great in the ancient civilization of India;
2. To promote learning and research generally in Arts and Sciences in all branches;
3. To advance and diffuse such scientific, technical and professional knowledge, combined with the necessary practical training as is best calculated to help in promoting indigenous industries and in developing the material resources of the country; and
4. To promote the building up of character in youth by religion and ethics as an integral part of education.